समर्पण

विदेह जनक के समान शासक होते हुए भी परम ज्ञानी और भक्त
हिन्दू-संस्कृति के अनन्य उपासक तथा
उत्तराखंड के प्रति असीम श्रद्धा रखने वाले
डाक्टर सम्पूर्णानन्दजी के
कर-कमलों में

लेखक

श्री उत्तराखंड–यात्रा–दर्शन

भूमिका—

देवतात्मा हिमालय और उसके चरणारविन्दों से निकलने वाली गङ्गाओं ने केवल आर्यावर्तकी पुण्यभूमि का निर्माण नहीं किया, वरन् उसे अपने अंक में लेकर पालापोसा भी है। हिन्दू-धर्म हिमालय-धर्म है, और हिन्दू संस्कृति गङ्गा-संस्कृति। हिमालय की जिस पावन भूमि से गङ्गा-यमुना बही हैं, वहीं ब्रह्माका मानसरोवर, विष्णुका बदरीनाथ और महेश के केदार-कैलाश हैं। यहीं उमा का नन्दाकोट और कार्तिकेय के क्रौंचद्वार हैं। यहीं गणेश और दुर्गा की क्रीड़ाभूमि है। यक्ष, गन्धर्व और किन्नरों की लीला भूमि, खस, किरात और नागों की क्रीड़ास्थली और आर्यों की देवभूमि यहीं है। युग-युगसे ऋषि-मुनि और कवि-लेखक जिसकी महिमा गाते रहे हैं, उसके संबध में कुछ कहना साहस-मात्र है। गिरीश शंकर और गिरीश हिमालय एक हैं। अस्तु पुष्पदन्त के शब्दों में:—

अतीतः पन्थानन्तव च महिमावाङ्मनसयो-
रतद्व्यावृत्यायञ्चकितममिधत्तेश्रुतिरपि ।
सकस्य स्तोतव्य, कतिविधगुणः कस्य विषयः ?
पदेत्वर्व्वाचीने पतति न मनः कस्यन वचः ?
मधुस्फीतावाचः परमममृतन्निर्मितवत-
स्तव ब्रह्मन् किंव्वागपिसुरगुरोर्विस्मयपदम् ।
मम त्वेताँव्वाणींगुणाकथनपुण्येन भवतः
पुनामीत्यर्थेऽस्मिन् पुरनथनबुद्धिर्व्यवसिता ॥

इस पुस्तक में उत्तराखण्ड (केदारखण्ड) की तीर्थयात्रा के इतिहास और प्रभावों पर संक्षेप में कुछ विचार प्रकट किए

गए हैं। इस संबंध में मैंने बहुत सी सामिग्री एकत्रित की थी, जिसका मैं समय और स्थानके अभाव से पूरा-पूरा उपयोग नहीं कर सका हूं इसका बड़ा मुझे खेद है। फिर भी जो सामग्री प्रस्तुत की जा रही है, उससे पाठकों का मनोरंजन होगा, ऐसी आशा है।

इस विषय पर अभी तक किसीने, जहां तक मुझे ज्ञात है, लेखिनी नहीं उठाई है, इसलिए मेरे प्रयास में त्रुटि होना स्वाभाविक है। इसमें जिन विचारों को प्रकट किया गया है, उनके प्रमाण स्थान-स्थान पर दिए गए हैं। यह पुस्तक यात्राकी डायरी या अपनी यात्रा का वर्णन मात्र नहीं है। यद्यपि मैंने इस पुस्तक में वर्णित अधिकांश तीर्थोंकी यात्रा स्वयं की है, और उन भागों की भी यात्रा की है जिनका उल्लेख इसमें नहीं होसका है, पर मैंने प्राय: सर्वत्र दूसरे व्यक्तियों के हृदय में हिमालय के सौन्दर्य से जो लहरें उठी हैं, उन्हीं के उद्धरण दिए हैं, जिससे पाठकों को हिमालय के विभिन्न रुचिवाले भक्तों की भावनाओं का पता लग सके।

इस पुस्तक में मुख्यत तीर्थों के इतिहास और व्यवस्था का अध्ययन किया गया है। आज इस सम्बन्धमें विभिन्न लेखकों के विचारों को उद्धृ करना आवश्यक था, इसमें यदि कहीं कोई कटुता दिखाई दे तो उसके लिए मैं क्षमा प्रार्थी हूं, पर अपने अध्ययन के आधार पर मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचता हूँ कि जिस धर्म को आज हम मानते हैं वह अकेले आर्यों की देन नहीं है। वास्तव में उसमें आर्यों की देन बहुत कम है। हमारे शिव, उमा, (नन्दा), यक्ष, नाग, गङ्गा और न जाने कितने देवी-देवता तीर्थ और धार्मिक भावनाएं हमें अपने उन पूर्वजों से मिली हैं

जो आर्यों के आने से पूर्व इस देशमें बसे थे। वे आर्यों से किसी प्रकार पिछड़े या हेय नहीं थे। हमें हिन्दू नाम सिन्धुओंके वंशज होने के कारण मिला है। सारे भारतके निवासियों की नसों में जितना आर्येतर रक्त है, उतना आर्यरक्त नहीं है।

भारत में आर्य लोग इतनी अधिक संख्या में प्रविष्ट नहीं हुए जो यहा के निवासियों को सर्वथा मिटा देते। उलटे उन्हीं को यहां की जनता में घुलमिल कर उनकी रीति-नीतियों को अपनाना पड़ा। भारत में आर्यों के प्रवेश से पहले हिमालय प्रदेश की अनेक जातियों में से दो जातियां खस और किरात प्रमुख थीं। किरात खसों के आगमन से बहुत पहले ही पूर्व की ओर से इस देश में प्रविष्ट हुए थे और सारे हिमालय की निचली ढालों पर छागए थे। असमके नागा किरात, बिहार और उत्तर प्रदेश तथा नेपाल की तराई के थाड़ू, देहरादून-भाबर के महर और कांगड़ा-होशियारपुर, जम्मू के घृत उसी महानकिरात-वंश के अवशेष हैं। आर्यों के प्रवेश से कई शताब्दी पहले इस देश में पश्चिम उत्तर में हुंजा-नगर दर्दिस्तान की घाटियों से होकर दरद-खस जाति में प्रवेश किया और उन्होंने किरातों के उत्तम चराई क्षेत्रों को उनसे छीन कर उन्हे दो भागों में बांट दिया। कुछ किरातों ने हिमालय की निचली ढालों और तराई में शरण ली और कुछ हिमालय की अति ऊँची ढालों पर चले गए। जहां वे कुलूमें मलाणी के निवासी, बुशहर-रामपुर के कनोरे, ऊँची भोटांतिक घाटियों के तंराण परतंगण, मारछा, तोलछा, जोहारी, असकोट के राजकिरात और नेपाल की नेवार, मगर, राई लिम्बू आदि किरांती जातियों को विद्वान किरातों का ही वंशज मानते हैं। नेपाल के पूर्व से असम तक इनकी अविच्छिन

शृंखला है।

हमारे प्राचीन साहित्यमें इन किरातों का किरात, चिलात, निषाद, दस्यु, व्याध, वनव्याध, भिल्ल आदि अनेक नामों से उल्लेख मिलता है। उत्तराखण्ड के इन किरातों के अनेक देवी-देवताओं और तीर्थों को खसों ने और आगे चलकर सारे भारत के हिन्दुओं ने अपना लिया। शिव उन्हीं किरातों के देवता थे। और महाभारत के अनुसार अर्जुन को उत्तराखण्ड में शिव किरात-वेश में ही मिले थे। केदारखण्ड ग्रंथ के अनुसार गुरु वशिष्ठ उत्तराखण्ड में आकर कुछ समय तक किरातों के साथ रहे थे। इन किरातों, व्याधों, या भिल्लों के सहस्रों स्मारक आज भी सारे हिमालयमें मिलते हैं। टेहरी में भिलंगणा (भिल्लगङ्गा) भिल्लेश्वर महादेव तो प्रसिद्ध हैं ही, इनके अतिरिक्त सैकड़ों भिल्-ङा नाम वाले गांव आज तक चले आते हैं। ये किरात प्राचीन ग्रन्थों में कहीं तो पतित क्षत्री कहे गये हैं और कहीं म्लेछ, किरा-तों की मुखाकृति तिब्बत, बर्मा, चीन आदि देशों की मंगोल वंशी जातियों की मुखाकृति से मिलती-जुलती है। चपटा मुख, चपटा माथा, मूंछ-दाढ़ी कम, पीला सा रङ्ग और बहुतों की चपटी नासिका। इस प्रकार की किरात मुखाकृतियाँ हिमालयकी ऊँची ढालों पर कन्नौर से असम तक और आगे सारे दक्षिण-पूर्वी एशिया में मिलती हैं। नेपाल, सिक्किम, भूटान, और असम में तो इन्हीं मुखाकृतियों का बाहुल्य है। हिमालय की सारी भाषाओं पर किरातों की भाषा की छाप मिलती है।

दूसरी महाजाति जिसने हिन्दू धर्म के निर्माण और उत्तराखण्ड के तीर्थों की मान्यता और प्रचार में योग दिया, खस महाजाति है। आरंभिक वैदिक साहित्य में जिन देवताओं का

वर्णन है उनमें से अधिकांश की आज पूजा-अर्चा नहीं होती, उत्तर वैदिक साहित्य पुराणों निगमागमों, जातकों और अन्य पाली ग्रन्थों में हम जिन सहस्रों देवी-देवताओं, नागों, गंधर्वों यक्षों, किन्नरों आदिकी पूजा का वर्णन मिलता है, वे सहसा कहां से आगए ? वे आर्यों के आगमन से पूर्व इस देशमें बसी जातियों के उपास्य थे और जन साधारण में उनकी पूजा प्रचलित होने के कारण लोकसाहित्य में उन्हें स्थान मिलगया। इनमें से न जाने कितने देवी-देवता खसों के ग्राम-देवी-देवता हैं। आज अपना प्राचीन इतिहास भुला देने के कारण खस जाति की सन्तान अपने को खस कहने में अप्रतिष्ठा समझती है। किन्तु कश्मीर से लेकर नेपाल तक आज भी हिमालय के निवासियों में खस-रक्तकी प्रचुरता है और उत्तराखण्ड के सारे महातीर्थ खस महाजाति के तीर्थ हैं, जिन्हें सारे भारत के हिन्दुओं ने अपनाने में अपना गौरव समझा है।

खस महाजाति का इतिहास आर्यजाति के इतिहास से भी अधिक प्राचीन और अधिक रोचक है। आर्यों के स्मारक ईरान, आर्यावर्त, आर्यपुत्र, आर्या जैसे थोड़े-से शब्द रह गए हैं। किन्तु खस-महाजाति के सहस्रों स्मारक पूर्वी यूरोपसे लेकर हिमालय होते हुए असम तक फैले हैं। कौकेशश (कश्यकम) काशगर (खस गिरि), कास्पियनसागर, काजविन, कप्पोडोशिया, केफाशिरू, कशदा, चाल्दियां, कश्मीर, खसपट्टी, (टेहरी) खसपरजिया बोली (अलमोड़ा) तथा खसकुरा बोली (नेपाल) आदि के अतिरिक्त हिमालय की ढालों पर सहस्रों गांव खस जाति के स्मारक हैं। अकेले गढ़वाल में कस्याली, कसोला, कसलीनगर कछरा, कसेटो, कलसारी, कसबाड़ी, कस, कस-

वाल, जसवाल, कस्सी, फमियारी, कमखल, कसमाणी, कस-नेथ, जसपुर, कसकोट, असकोट, कचुंडा, कडाम्, कोल्सी, कसलो, किसमोला, कसियाणा आदि बीसियों गांव हैं।

कुश, खस, कस, कस्सी या कस्साइत जाति आज से पांच सहस्र वर्ष पूर्व कौकेशश से लेकर काश्चियन के निकट-प्रदेश तक फैली थी। स्ट्रैबो ने इसका उल्लेख कास्पियन के निकट-प्रदेश में किया है। यहां से यह जाति एशिय, यूरोप और अफरीका में फैलगई। अफरीका में यह जाति कुशाइन नाम से और यूरोप के इतिहास में आयत-कपाल (ब्रौड हेड्स), अलपाइन, या अना-तोलियन आदि नामों से प्रसिद्ध है। यह जाति एशियाकी पर्वत-शृंखला पर तुर्की, ईराक और ईरान में फैलगई। और इसने विक्रम सं १८ शताब्दी पूर्व बेबीलोनिया पर अधिकार कर लिया और उस देश पर इसका राज्य ५७६ वर्षों तक रहा। यह कस्सा-इत या कस या खस जाति सूरियश (सूर्य) मरुतश (मरुत) सुरियश (यूनानी बोरीज) के अतिरिक्त कश्शू देवता की पूजा करती थी जो इस जाति का अपना देवता था। इसी कश्शू की पूजा हिमाचल और जौनसारके खस महाशू के नाम से तथा चम्बा के गद्दी मागीमहेश के नाम से और सारे भारत के हिन्दू महेश्वर के नाम से करते हैं। कस-खस जाति का यह 'शू' शब्द हिमालय की भाषाओं में सैकड़ों शब्दों में मिलता है। बारहस्यू में स्यू यही 'शू' है।

बेबीलोनिया से राज्य उठ जाने पर यह जाति एशिया के पर्वतोंपर पूर्वकी ओर चलकर हिमालय पर आगई हित्ती जाति कुर्द जाति, और तोख जाति इसी कस खस जातिकी शाखाएं हैं। सदा पर्वतों पर रहने से यह जाति तोख, या तुषार (हिम पर्वतों

के मनुष्य) कहलाई। यूरोप की पूमो जर्मन जाति की संतान है। वैदिक आर्योंने खसों का दस्यु नाम से उल्लेख किया है। इसी जाति की एक शाखा कुषाण जाति थी जिसमें प्रसिद्ध कनिष्क सम्राट हुआ और जिसका उत्तर पश्चिमी भारत और मध्य एशिया पर अधिकार था।

महाभारत, विष्णु, पुराण मारकंडेय पुराण तथा भागवत पुराणों में खसों का उल्लेख मिलता है। बृहत्संहिता और मनुस्मृति राजतरंगिणी आदि ग्रंथों में भी खसों का उल्लेख है। नन्दवंश संभवतः कुणिन्द खसों का वंश था। चन्द्रगुप्त मौर्य को मगध के सिंहासन पर बिठानेके प्रयत्न में चाणक्य की सहायता करने वाले यही पश्चिमी हिमालय के खस थे, जैसा कि विशाखदत्तने लिखा है। जिस नरेशने ध्रुवस्वामिनी के लिए गुप्त सम्राट शर्म (राम) गुप्त आक्रमण किया था वह कार्तिकेयपुर (जोशीमठ) का खस-नरेश था जैसा कि काव्य भी मांसा से प्रकट होता है।

ये खस सूर्य, मरुत, कश्शू के अतिरिक्त शिमलिय या हिम पर्वतों की रानी की पूजा करते। थे इसी शिमलिय से ईरानी भाषा के जिम और भारतीय आर्य भाषाओं के हिम और हिमालय शब्द बने हैं। खसों की इस शिमा, जिमा, हिमा देवी का ही नाम उमा है, जिसे आर्यों ने उमा हैमवती के नाम से पूजना आरंभ किया है। यही उमा, आज भी सारे हिमालय प्रदेश में नन्दा, पार्वती गौरी, गौरजा आदि सैकड़ों नामों से पूजी जाती है।

यहां खसों का इतिहास अति संक्षेप में दिखाया गया है विशेष विवरण के लिए हरवर्ट बूश हाना की पुस्तक कलचर

गेट कलतर रेस-ओरजिन्स, ग्रिशमैन की पुस्तक ईरान, रैप्सन की पुस्तक कैम्ब्रिज हिस्टरी आफ इंडिया आदि देखिए। खसों का विस्तृत सप्रमाण इतिहास मेरी पुस्तक "उत्तराखन्ड का इतिहास" में मिलेगा। इस संक्षिप्त इतिहास से भी यह विदित होजाता है कि खस महाजाति का इतिहास आर्यजाति के इतिहास के समान ही बड़ी रोचक और महत्वपूर्ण घटनाओं से भरा है और खस महाजाति की संतान को अपने नकली पूर्वजों की कल्पना करने की आवश्यकता नहीं है। हिमालय, उमा, नन्दा, घंटाकर्ण अगणित यक्ष, रक्ष, नाग, गन्धर्वादि की कल्पना के लिए और उत्तराखड के तीर्थों की मूल-स्थापना के लिए हिन्दू जाति खस महाजाति की ऋणी है। और यदि उस महाजाति के वंशजों का आज तक उत्तराखड के कुछ तीर्थों पर अधिकार चला आता है, तो यह गौरव की बात है। समय के अनुसार रीति नीतियां बदलती हैं और जातियां नया चोला धारण करती हैं। उन्हीं के साथ-साथ तीर्थ, तीर्थों के देवता मन्दिरों के पुजारी और पूजा-अर्चा की विधियां भी बदलती हैं। कांगड़ा में बज्रेश्वरी का मंदिर पहले बौद्ध मंदिर था आज हिन्दू मन्दिर है। नेपाल के अनेक तीर्थ सौ वर्ष पहले बौद्ध तीर्थ थे। पंजाब के अनेक गुरुद्वारे पचास वर्ष पहले हिन्दू मंदिर थे। भारत की सैकड़ों मसजिदें थीं इसे कौन नहीं जानता। यह लीला चलती रहती है।

हिमालयका, विशेष रूप से मध्य हिमालय उत्तराखंड का द्रविणों से बहुत अधिक सबंध रहा है। गंगा के मैदान में बसी हुई जातियों के बीच से होकर जब आर्य आगे बढ़ने लगे तो जिस प्रकार कुछ द्रविड़ और मुंड शबर जातियों को विन्ध्याचल के दक्षिण में

जाना पड़ा उसी प्रकार कुछ द्रविड़ और मुंडशवर जातियों को उत्तर में हिमालय में प्रविष्ट होना पड़ा। गढ़वाली भाषा में अगणित शब्द सीधे तामिल से लिए गए हैं जिनमें से कुछ अत्यन्त मनोरंजक हैं। हमारी अनेक सामाजिक प्रथायें लिंगवास, पितृ-कुड़ी स्वयं 'कूड़ी' (घर) शब्द भी दाक्षिणात्यों से हमें मिले हैं। महाभारत के उत्तर भारतीय पाठ में हिमालय की खस जातियों और तीर्थों का उतना प्रचुर, महत्वपूर्ण और मनोरंजक वर्णन मिलता, जितना दाक्षिणात्य पाठमें, यद्यपि संभावना इसके विपरीत होनी चाहिए। क्यों? निश्चय ही महाभारत में दाक्षिणात्य पाठ के कम से कम उत्तराखण्ड संबंधी विशेष वर्णन अवश्य उत्तराखण्डमें लिखे गए हैं। गंगोत्तरी का जल रामेश्वरम् में अवश्य सहस्राब्दियोंसे चढ़ता रहा है। शंकर से भी पहले दाक्षिणात्य उत्तर भारत के कुछ मंदिरों में प्रविष्ट हो चुके थे। विशेष कर काली, भैरव आदि के मन्दिरों में (कादम्बरी में चंडिका-वर्णन)। दक्षिण में जा बसने वालों के भ्राता उत्तर में भी बसते थे। इस सम्बन्ध में हम विस्तारपूर्वक उत्तराखंड के इतिहास में लिखेंगे।

यात्रा मार्ग में मोटरें आजाने से गढ़वाल को जो हानि पहुँची है, उसकी पूर्ति नहीं होसकती, मोटर मार्ग आने से लाभ भी हुए हैं, इसमें सन्देह नहीं। पर्वतीय भागों में वर्तमान काल में मोटर जीवन का अंग है, प्राण है। इस पुस्तक में उसका जो प्रभाव चट्टियों पर पड़ा है केवल उसी पर विचार किया गया है। युग की पुकार के साथ ही हमें चलना होगा, परिणाम जो कुछ हो। सीमांत प्रदेश होने के कारण उत्तराखण्ड में मोटर-मार्ग अब तो अनिवार्य होगए हैं।

इस ग्रन्थ में कहीं-कहीं कुछ उक्तियों में एक ही विषय पर

कुछ ऐसे विचार आगए हैं, जो ध्यान पूर्वक न पढ़ने पर परस्पर-विरोधी लग सकते हैं। ऐसा विरोधाभास प्रायः उन स्थलों पर मिलता है जहां दूसरे ग्रन्थोंके उद्धरण दिएगए हैं जो विभिन्न लेखकों के विचारों को प्रकट करते हैं। उत्तराखण्ड के मन्दिरों पर दाक्षिणात्य रावल आदिका अधिकार कब से हुआ इस संबंधमें अभी निश्चय पूर्वक कुछ नहीं कहा जा सकता। लगभग सौ डेढ़ सौ वर्षों से तो अविच्छिन्न परम्परा मिलती है, किन्तु उससे पहले केवल अनुमान मात्र लगाया जा सकता है। इस संबंध में दोनों प्रकार के प्रमाण या अनुमान इस पुस्तक में दिए गए हैं। बाणके समय तक संभवतः और पहले से ही दाक्षिणात्य 'सिद्ध' उत्तर-भारत के मन्दिरों में पहुँचने लगे थे। किन्तु बदरीनाथ, केदार-नाथ आदि के तीर्थों पर उनका अधिकार इतना प्राचीन नहीं है। और दक्षिणात्य रावलों की परम्परा को शंकराचार्य के समय से माननेके लिए प्रमाण नहीं मिलते।

पुस्तक का कलेवर न बढ़े इस विचार से उद्धरणों को बहुत संक्षिप्त करना पड़ा है और अनेक छोड़दिए गए हैं। फिर भी अनेक पुस्तकों के उद्धरण इस पुस्तक में आए हैं। उन सब पुस्तकों के लेखकों और प्रकाशकों का मैं बड़ा कृतज्ञ हूँ।

गीताप्रेस द्वारा प्रकाशित महाभारत का मैंने बहुत उपयोग किया है। इसका प्रत्येक अंक ज्यों-ज्यों प्रकाशित होता था मैं अपने लिए विस्तृत अनुक्रमणिका बनाता जाता था। पीछे महा-भारत की व्यक्तिवाचक अनुक्रमणिका प्रकाशित होगई है जो हिन्दी में एक निराली और अत्यन्त उपयोगी वस्तु है, उससे मुझे बहुत लाभ पहुँचा। गीता प्रेस वालों की मेरे ऊपर जो कृपा सदासे रही है, उसे कोरे 'धन्यवाद' शब्दसे टालदेना 'साहित्यिक

मूर्तता' है।

मेरे परम पूज्य श्री विशाल मणि जी शर्मा उपाध्याय का मुझ पर बड़ा अनुग्रह है। उन्हीं की प्रेरणा से मुझे यह पुस्तक शीघ्रातिशीघ्र जैसी बनपड़ी लिखकर देनी पड़ी है। उत्तराखण्ड के सम्बन्धमें लिखने वाला, या केदारकी यात्रा करने वाला प्रत्येक व्यक्ति श्री उपाध्याय जी से परिचय प्राप्त करने और उनकी विद्वत्ता से उठाने का इच्छुक रहता है। उत्तराखण्ड की यात्रा के सम्बन्ध में लिखने वाले राहुल आदि अनेक व्यक्तियों ने अपने ग्रन्थों में उपाध्याय जी का आभार प्रदर्शन किया है। नारायण-कोटि के निकट के खंडहरों के महत्व को जनता और सरकार के सन्मुख रखनेका श्रेय आपको ही है। आपकी प्रेरणा से ही काली मठ की मूर्तियों की सुन्दरता और शिलालेखोंका महत्व जनता के सन्मुख आयाहै। आपका आभार मैं किन शब्दों में व्यक्त करूँ ?

मैं पाठकोंसे अपनी त्रुटियों के लिए क्षमा मांगता हूँ और निवेदन करता हूँ कि पुस्तक की उपादेयता बढ़ाने के सम्बन्ध में अपने सुझाव सूचित करनेकी कृपा करें। तथा पुस्तक की त्रुटियां बतलाकर अनुगृहीत करें। शिवप्रसाद डबराल

❋ प्रकाशकीय निवेदन ❋

भारत तीर्थों का देश है। नगाधिराज हिमालय से लेकर कन्याकुमारी तक तीर्थों की एक शृङ्खला सी बनी हुई है। तीर्थ का अर्थ है, जिसके द्वारा तरना संभव हो। आर्य मान्यताओं के अनुसार संसार एक विशाल भव सागर है, जिसको पार करने में तीर्थ भी साधन माने गये हैं। तीर्थों के वातावरण में पहुँचकर मनुष्य निष्पाप हो जाता है। इस मान्यताको लेकर ही इस धर्म-प्राण देशके लोग यात्रा करते हैं। इस प्रकारकी यात्रा से धार्मिक दृष्टि से पुण्य लाभ तो होता ही है किन्तु साथ ही स्वदेश के विभिन्न क्षेत्रों और उनमें रहने वाली समान संस्कृति के सूत्र में आबद्ध जनताके शुभ दर्शन होतेहैं, उनके रहन-सहन और जीवन-चर्याका पता चलता है। यात्रियों को अनेकता में एकता का आभास मिलता है। अतः जनता के हृदयमें लोक संग्रही भावना का विकास और पारस्परिक सौहार्द की अभिवृद्धि भी हमारे तीर्थों का प्रयोजन मानी जा सकती है।

धर्म-ग्रन्थों में तीर्थों की महिमा का विशद वर्णन है। प्राचीनकाल में धर्माचार्य और महात्मा गण तीर्थों में सन्त सम्मेलनों और समारोहों का आयोजन करते थे। पर्वों के अवसर पर देश के विभिन्न भागों के तीर्थों में आज जो बड़ी संख्या में जन-समुदाय एकत्र होता है वह उस परम्परा का संकेत है। विभिन्न धर्मावलम्बियों के फहराते हुए झण्डे आज भी मानों भारत की सांस्कृतिक एकता की घोषणा करते हैं।

युगों तक फैली हुई प्राचीन परम्परा के इस 'हिमालय" प्रदेश में बहुत से ऐसे स्थान हैं जिनका धार्मिक दृष्टि से बहुत बड़ा महत्व है। बहुत से ऐसे भी स्थल हैं जिन्हें तीर्थ नहीं कहा

जा सकता पर ऐतिहासिक और पर्यटकों की दृष्टि से उनका बड़ा महत्व है। प्रस्तुत ग्रन्थमें मेरे परम मित्र श्री शिव प्रसाद डबराल प्रिन्सिपल- डी०ए०वी०इन्टर कौलेज दुगड्डा गढ़वाल ने अदम्य उत्साह के द्वारा प्रखर पाण्डित्य का प्रकाश कर जनता जनार्दन की जो ठोस सेवा की है उसे विद्वान सहृदय पाठक ही समर्थन कर सकते हैं। श्री डबराल जी ने अथक परिश्रम कर महान् शोध की, फलस्वरूप उनका विविध साहित्य प्रकाशन हमारे राष्ट्र और राष्ट्रीय जीवन के लिए बहुत बड़ी देन है। प्रस्तुत ग्रन्थ की पांडु लिपि को लेखक महोदय ने प्रकाशनार्थ मुझे दिया और मैंने श्री हीरालाल बडोला "उत्तराखण्ड प्रेस" मुनिकी रेती ऋषिकेश को दिया किन्तु प्रेस की असुविधायें आने से २१२ पेज से आगे छपने को श्यामकाशी प्रेस मथुरा को देना आवश्यक प्रतीत हुआ। इसी कार्य के लिये मुझे १ माह भगवान् श्रीकृष्ण की जन्मस्थली मथुरा एवं वृन्दावन में निवास करना पड़ा। धन की कमी के कारण सभी उपयोगी कामों की गति धीमी पड़जाती है किन्तु मेरे पुराने मित्र-श्यामकाशी प्रेस के अध्यक्ष श्री०ला० कुञ्जलाल अग्रवाल, श्री पं-पुरुषोत्तम दास कटारे मालिक हरि-हर प्रेस, श्रीश्याम सुन्दर मालिक पुस्तक मन्दिर मथुरा ने तन, मन, धनसे मेरी जो सहायता की उसका मैं हृदयसे आभारी हूँ और हृदय से सदैव आपकी उन्नति का परम पिता से प्रार्थी हूँ। इसी मथुरा नगरी के सिद्ध हस्त लेखक, कवि श्री-राजेश "दीक्षित" श्रीहीरामणि शर्मा ज्योतिषी-गढ़वाली, श्रीनिरंजनदत्त पाण्डेय, श्रीकुञ्जी लाल एण्ड संस भारत स्टूडियो ने जो सहायता की है उनकाभी मैं आभारी हूं। साथ ही यह भी कि इस मधुपुरी में देव-दानव अबभी अपने कामों पर जी जानसे परिश्रम करते देखने में आये, किन्तु परम-पिता की कृपा से अच्छे लोगों के सम्पर्क से

बुरे समय का प्रभाव नहीं होता। अन्त मे मैं अपने गुण ग्राही पाठकों से यह भी प्रार्थना करूंगा कि इस ग्रन्थ-रत्न के छपने में मुझे सस्ता साहित्य मण्डल कनाट सर्कस देहलीके प्रसिद्ध साहित्यकार श्रीयशपाल जैन, विष्णु प्रभाकर, श्रीपं०रविशंकर शर्मा, भानूप्रसादत्त विद्यालङ्कार नवभारत टाइम्स १० दरिया गंज तथा श्री शङ्करदत्त शास्त्री ऋषिकुल ब्रह्मचर्याश्रम हरिद्वार और श्री भुवनेश शास्त्री अध्यक्ष टिहरी गढ़वाल मोटर यूनियन एवं श्री देवेन्द्र विज्ञानी अध्यक्ष विज्ञान प्रेस, श्रीहीरालाल घडोला, श्रीधनञ्जय भट्ट उत्तराखण्ड प्रेस मुनि की रेती ऋषिकेश और श्रीत्रिविकमसिंह रावत ऊखीमठ गढ़वाल का भी सहयोग रहा है अत मैं उनका आभारी हूँ। इस ग्रन्थ के छपने में कोई त्रुटियां रही हों तो विज्ञपाठक उसकी जानकारी कराने की कृपा करें जिसे भविष्य में दुरुस्त कराने का प्रयास किया जा सके। मेरा तो जीवन इसी साहित्य सेवा में विलीन होने को है जिसमें प्रतिकूल अनुकूल समय आते ही रहते हैं।

"तर हरिः जगता कुरुता शिवम्।"

विशालमणि शर्मा-उपाध्याय

❋ सम्मति ❋

विश्व व्यापी पूजा भास्कर की ६ वीं आवृत्ति को देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई। श्री० पं०विशालमणि शर्मा उपाध्यायजी कर्मकाण्ड के प्रचार के लिये महान कार्य कर रहे हैं। हम उनके इस शुभ कार्य में सफलता की हृदय से कामना करते हैं।

चन्द्रशेखर शास्त्री	केदारदत्त शास्त्री आचार्य
रजिस्ट्रार (प्रस्तोता)	प्रधानाचार्य ऋ० कु विद्यापीठ
ऋषिकुल विद्यापीठ हरिद्वार	हरिद्वार

श्री उत्तराखंड-यात्रा-दर्शन

विषय सूची

—::❀::—

अध्याय १

देवतात्मा हिमालय

१ देवतात्मा की कल्पना—

नगाधिराज हिमालय जितना अपार और सुन्दर है, उतना ही विस्तृत और मोहक हिमालय-साहित्य भी है। युग-युगमें लाखों मनुष्य उसके चरणोंमें अपनी लिखित, मौखिक और मूक श्रद्धाञ्जलियां अर्पितकरते गएहैं। सारे हिमालयका अवलोकन और उसके सारे साहित्यका अध्ययन एक ही जीवनमें पूरा करलेना असंभव है। इसीलिए हिमालय-सम्बन्धी विभिन्न ऋषि-मुनियोंकी भावनाओंका सार महाभारत [आदि० ३०।१८] में केवल इतना कहकर दियागयाहै,—"हिमवान् भारतकी उत्तर सीमापर स्थित एक विशाल पर्वतराज है जो शरीरसे पर्वत होतेहुए भी आत्मासे देवता है"। इसीको भारतकी आत्मा कालिदासने "अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा हिमालयो नाम नगाधिराजः" कहकर व्यक्त कियाहै। [कुमार-संभव, १।१]

२. केवल मिट्टी—पत्थर नहीं—

हिमालय केवल पत्थर-मिट्टीका ढेर नहीं है, वह लता, वनस्पति-औषधि, पुष्प और रत्नोंका निरा उत्पत्ति-

स्थान नहीं है । हिमालयका सच्चा स्वरूप कविके शब्दोंमें देवतात्मा है, उसके प्रदेश देवभूमियां हैं। हिमालयका देवत्व कोरी कविकल्पना भी नहीं है जिस पर्वतराजके उच्च शिखरोंकी हिमराशि मातृभूमिका सुन्दर मुकुट है, जो हमारे मेघजल, वर्षा-संस्थान और ऋतुचक्रके क्रम को चलाता है, जिसने अपनी नदियों द्वारा करोड़ों वर्षोंके निरंतर श्रमसे, हमारे लिए पवित्र, विस्तृत और सुन्दर मातृभूमिका निर्माण किया है, उस हिमालयका देवत्व स्वयं सिद्ध है। हिमालयमें देवत्वकी यह भावना समस्त राष्ट्रमें व्याप्त होगई । देशका कोई भाग ऐसा नहीं बचा जहांकी जनता ने हिमालय-संबंधी इस दृष्टिकोणको न अपना लियाहो। इस विश्वासके सर्वत्र मान्य होनेके कारण पूर्व-पश्चिम और उत्तर-दक्षिण से सब लोग हिमालयके दर्शनोंके लिए आतेलगे, और आज भी उसी अभिलाषासे आतेहैं।" [अग्रवाल, भारतकी मौलिक एकता, ८२-८३]

३. हिमालय संबंधी नामोंमें सौन्दर्य—

हिमालयके अनुपम सौंदर्य और महानतापर हमारे पूर्वज कितने मुग्ध हुएथे, इसीसे प्रकट होजाताहै कि उन्होंने इस महान् देवतात्मा नगाधिराजकी द्रोणी-द्रोणी छानडालीथी। उसकी सरिताओं और सरोंमें और उसके हिमानी और हिमशिखरोंमें उन्होंने सर्वत्र देवतात्माकी छटा देखीथी। इसीसे तो उन्होंने इस पर्वतराजके अंग-अंगको जो नाम दिएहैं,उन्हें सुनकर आजभी देशी-विदेशी सभी झूमतेहैं । "हिमालय-संबंधी प्राचीन नाम अपने संगीत और तालसे हमें मुग्ध करलेतेहैं ।" "हिमालय" और "कैलास"जैसे नाम प्राचीन स्मारकोंके रूपमें

अशोकके स्तंभोंके समान हैं। गंगोत्री और बदरीनाथ-जैसे नाम उन आर्य यात्रियोंके साहस और श्रमका स्मरण कराते हैं, जिन्होंने सबसे पहले हिमालयकी जोतों, घाटों और दरी-द्रोणियोंमें प्रविष्ट होनेका उपक्रम कियाथा। हिमालय प्रदेशमें गंगाकी द्रोणीमें नदी-धाराओं, देवस्थानों, हिमशिखरों और बस्तियोंके नाम संस्कृत भाषाके सौंदर्यके अनुपम उदाहरण हैं। ये नाम प्राचीन भारतीय भूगोल-शास्त्रियोंकी कलाके अद्भुत उदाहरण हैं। अर्वाचीन भूगोल इनकी प्रशंसा करनेके साथ ही इनसे ईर्ष्या भी करताहै। [बरार्ड-हेडन, ए स्केच-ऑव दि ज्यौग्राफी एंड दि जिऑलॉजी ऑव दि हिमालय, भाग १, पृ० ७; भाग ३, पृ० ८०]

४. सिन्धुयुगमें भी हिमालय-पूजा—

यदि आर्य लोग बाहरसे आयेथे, जैसा कि अब अधिकांश विद्वान मानतेहैं, तो हिमालयके इस सौन्दर्य-भंडारका पता लगानेका श्रेय और उसमें देवतात्माकी कल्पनाके लिए हमें अपने उन पूर्वजोंका कृतज्ञ होनाचाहिए जो मुट्ठी भर पशु चारक घुमंतु आर्योंके आनेसे पूर्व इस सारे देशमें पश्चिमसे पूर्व तक और उत्तरसे दक्षिण तक फैलेथे। जिनके अपार सागरमें आर्य घुलमिल कर भाग्यवान बने। जिनकी सिन्धु-सभ्यताके अवशेष धीरे-धीरे प्रकट होरहेहैं और जिनके सिन्धु नामसे हम अपनेको हिन्दू मानतेहैं।

५. वेदमें हिमालय-स्तुति—

यस्येमे हिमवन्तो महित्वा यस्य समुद्रं रसया सहाहुः
यस्येमाः प्रदिशो यस्य बाहू कस्मै देवाय हविषा विधेम

जिसकी महिमाका गान ये विशाल हिमवान कररहेहैं, जिसकी महत्ता समुद्रों, एवं अचल धरतीसे उद्घोषित होरहीहै, ये अनन्त दिशायें जिसकी भुजायें हैं, उस देवकी हम हविष्यसे आराधना करतेहैं। [ऋग्वेद १०।१२१।४]

> हिमवत: पस्त्रवन्ति सिन्धौसमह संगमः
> आपोह मह्यं तद् देवीर्ददन्न हृद्द्योत भेषजम ।

हिमालयसे निकलनेवाली और समुद्रमें मिलनेवाली नदियां हमारे लिए उत्तम औषधि प्रदान करें। [अथर्व ६।२४।१]

> गिरयस्ते पर्वता हिमवन्तोरण्यं ते पृथ्वि स्योनमस्तु

हे मातृभूमि ! तेरी पहाड़ियां, तेरे हिमधवल पर्वत, हिमवन्त, तेरे वन-उपवन हमारे लिए सुखमय हों। [अथर्व २।१।११]

६. आज भी हिमालयके भक्त—

केवल प्राचीन कालके कल्पनाशील 'अंधविश्वासी और भीरु' लोगोंपर ही हिमालयने अपनी मोहनी नहीं बखेरी, आजका, अपनेको सभ्य और सुशिक्षित समझनेवाला मनुष्य भी हिमालयकी छटापर उतना ही मुग्ध है। "पर्वतराज हिमालय भारतका ही नहीं, विश्वका एक गौरव है। स्थान-स्थान पर उन्होंने बड़ी उदारतापूर्वक अपने सौन्दर्यका दान कियाहै। कहींसे, भी हिमालयके दर्शन करलीजिए, आपका हृदय आनन्दसे गद्गद् होजाएगा। गंगोत्तरी जाइए, यमनोत्तरी जाइए, बदरीनाथ जाइए, मानसरोवर जाइए, अमरनाथ जाइए, केदारनाथ जाइए, एवरिस्ट जाइए, कैलाश जाइए, गिरिराजकी भव्यता आपके हृदयको बिना मोहे नहीं रहसकती। उसके हृदयसे न जाने कितनी नदियां और प्रपात निकलतेहैं, उसकी गोदमें न जाने कितने प्रकारके वृक्ष खड़ेहैं, उसके आंगन में

कितने पशु-पक्षी स्वच्छन्द विचरण करतेहैं, उसके हिममंडित शिखर जाने कितने यात्रियोंको यहां खींचलातेहैं। हिमालय निस्सन्देह सौन्दर्य, विस्मय और भव्यताका आगार है" । [यशपाल जैन, जय अमरनाथ, ८७-८८]

७. हिमालयका आकर्षण—

"हिमालयमें जो आकर्षण है, वह अन्यत्र कहीं नहीं है। यद्यपि उनका आकार-मात्र ही गंभीरसे गंभीर व्यक्तिके हृदयमें आनन्दकी लहरें उठादेनेके लिए पर्याप्त है, किन्तु हिमालयकी विशेषता उसका आकार-मात्र नहीं है। वे ज्ञानेन्द्रियोंको सर्वोत्तम आनन्दका अवसर देतेहैं, हिमालयका आकर्षण सचमुच उन देवताओं और ऋषि-मुनियोंके जीवनसे जुड़ाहै जो अनन्तकालसे इन पर्वत शृंखलाओंपर रहतेआएहैं । [खोसला, हिमालयन सरकुट, प्रस्तावना, IX] हिमालयके इसी आकर्षणमें उसकी मोहनी है। जो हिमालयके रजतमुखारविंदकी आभापर एक बार दृष्टि डाललेताहै, फिर उसे अन्यत्र कुछ सुन्दर नहीं लगता। हिमालय-कीट उसके हृदय-अन्तरालमें घुमता ही चलाजाताहै बाहर निकल नहीं सकता। "पर्वतोंके प्रति मेरे मनमें सदासे आकर्षण रहाहै। पर्वतोंको देख कर मैं सब-कुछ भूलजाताहूं और उनकी विराटताके आगे मेरा मस्तक नत होजाताहै । यहां पर्वतराजके दर्शन कर ऐसी धन्यता अनुभव होतीथी, जैसी पहले संभवतः कभी नहीं हुई।" [यशपाल जैन, जय अमरनाथ, ८१]

८. भारतीय हृदय और हिमालय—

श्रद्धालु भारतीय हृदय महान हिमालयके पदतलमें केवल श्रद्धासे [illegible]

नहीं देखा। इसीसे हिमालयपर मुग्ध होकर उसके अंग-प्रत्यंगकी, परिक्रमा करदेनेमें ही हमारे पूर्वज लीन रहे। उनमें कभी शिखर-विजयका दम्भ नहीं हुआ। "मेरे हृदयमें कभी हिमालय शृंखलाओंपर विजय पाने या उन शिखरोंपर अभियान करनेकी अभिलाषा नहीं हुई, जो आजतक किसीने नहीं जीते हैं। मेरे हृदयमें प्रकृतिपर विजय पाने या अपने लिए यश प्राप्त करनेकी अभिलाषा कभी नहीं उठी। मेरी हिमालय-शृंखलाओंके प्रति मित्र-शत्रु जैसी भावनायें नहीं हैं। मेरे जीवनमें कल्पना-लहरें उठाना उन्हीं पर निर्भर है। मैं उनके निकट रहना चाहताहूँ, चाहे वे मुझपर मुस्कराएं या क्रोध प्रकट करें। मैं यह नहीं जानता कि वे मेरी रक्षा करेंगे या विनाश। मैं केवल इतना ही जानताहूँ कि मेरे हृदय मे हिमालय-शृंखलाओंको देखकर जितनी अधिक और गहरी आनन्दकी लहरें उठतीहैं, उतनी और किसीको देखकर नहीं।" [खोसला, हिमालयन सरकुट, प्रस्तावना IX]

९. वे भी विस्मित—

हिमालयके प्रति हमारे देशवासियोंकी यह श्रद्धापूर्ण नम्रताकी भावना सहस्त्राब्दियोंसे हिमालयकी छायामें रहने, उसके चरणों में लोटने अथवा उसमें एक वार देवत्वकी कल्पना करलेनेसे उत्पन्न भी मानी जासकतीहै। अपने देशकी इस महान विभूतिके प्रति देशप्रेमकी भावना भी इसे अतिरंजित करनेका कारण होसकतीहै। पर यूरोपके वे लोग भी, जो पर्वत-शिखरोंको गर्वसे मानवको ललकारने वालेके रूपमें देखते हैं और पर्वतशिखरोंके मस्तक पर चरण रखकर विजय करनेमें ही जिन्हें आनन्द आताहै, हिमालयकी मोहिनीशक्तिसे वे भी

वेसिमित होतेहैं।" हिमालय और आलपस्में कितना अन्तर है। यहां पग-पग पर दृश्यावलीमें कितनी विभिन्नता एक साथ मिलतीहै। *यहां जंगलसे हिम तक पहुँचनेमें बस पग-भरका* अन्तर है। [हरजौग, अन्नपूर्णा, ४६]

"पर्वतकी चोटी पर पहुँच कर हमारे सन्मुख हिमालयका ऐसा महान विस्मयकारी और मोहक दृश्य आया जिसकी हमने कल्पना भी न कीथी। पहले तो हमें केवल धुंधकी चादर फैली दिखाईदी। तब दूर, बहुत दूर, हमें हिमकी एक अपार दीवार दिखाईदी जो धुंधके ऊपर इतनी ऊंचाई तक खड़ीथी कि कहना कठिन है। उत्तरकी ओर इस हिमकी दीवारसे सैकड़ों-सैकड़ों मील तक क्षितिज घिराथा। यह चकाचौंध लगादेनेवाली दीवार सर्वथा अपरिमित दिखाईदी, जो कहीं भी छिन्न-भिन्न या अंगुल भर भी टूटीहुई न थी। *सात सहस्र मीटर वाले शिखरोंके पीछे आठ सहस्र मीटर वाले शिखरोंकी* शृंखला खड़ीथी और आगेवाले शिखर पीछे खड़े शिखरोंकी महानता और सौन्दर्यके सम्मुख फीके पड़रहेथे। यह हिमालय था, हमारा स्वर्ग ! आजसे लेकर जीवनान्त तक हम इस दृश्यको भुला न सकेंगे।" [हरजौग, अन्नपूर्णा, ३३]

१०. मौन, भीत और मंत्रमुग्ध—

फ्रेंच हिमालयन एक्सपेडिशनके नेता, हरजौग, जिनके दो उद्गार ऊपर उद्धृत हैं, हिमालयकी दमकसे कैसे मौन, भीत मंत्रमुग्ध होगएथे, वे स्वयं कहते हैं—"हिमका अपार पिरामिड धूपमें स्फटिक-क्रिस्टल-सा दमकताहुआ हमारे शिर पर २३००० फीटसे अधिक ऊंचाई पर खड़ाथा। *प्रातःकालके कुहरेमें उसका* दक्षिणी मुख, जो नीला चमक रहाथा, इतनी अधिक ऊंचाई

तक आकाश भेद कर खड़ाथा कि विश्वास करना कठिन था। इस अतिकाय पर्वतके सन्मुख हम मंत्रमुग्ध हो, मौन खड़ेथे। यद्यपि हम उसके नामसे पूर्ण परिचित थे, फिर भी उसे अपने सन्मुख प्रत्यक्ष देखकर हम इतने अधिक प्रभावित हुए कि हमारे मुखसे एक भी शब्द न फूटताथा। इस मोहिनीके उतर जाने पर, धीरे-धीरे हमें ध्यान आनेलगा कि हम कहां खड़ेहैं। जब हमारे भय और रसानुभूतिके आनन्द दूर होनेलगे तब हम उसकी रूपरेखाका अध्ययन करने लगे। [हरजोग, अन्नपूर्णा, ३५-३६]

११. हिमवान् मोतियोंके बीच हीरा—

अपार हिमालयका यह मध्यवर्ती भाग जो केदारखण्ड कहलाताहै और यमुनासे नन्दादेवी तक फैलाहै, अद्भुत सौन्दर्यका भण्डार, धरतीका सर्वश्रेष्ठ रत्न है। "इस छोटे-से प्रदेशमें, जो टेहरीसे लेकर पूर्वमें अलमोड़ा तक फैलाहै और हूणदेश (तिब्बत) की सीमापर केवल तीस मीलकी चौड़ाई वाला है, शिखर-समुच्चयोंकी ऐसी विचित्र शृंखलाएं चलीगई हैं, जैसी संसारके किसी भी भागमें नहीं मिलतीं। इस छोटेसे क्षेत्रमें कमसे-कम ८० शिखर बीस सहस्र फीट या अधिक ऊंचे हैं। और उनके बीच-बीचमें, मोतियोंके बीचमें हीरोंके समान, कुछ ऐसे शिखर भी खड़ेहैं जो संसारभरके सर्वोच्च शिखरों-मेंसे हैं। इनके पार हूणदेशके पठारमें गुरला मानधाता और कैलास-शृंखलाएं खड़ीहैं। यह "तिसे" या कैलास-शिखर, अपनी महानतासे, पर्वताधिराज-सा निकटके प्रदेश पर शासन करता है। [शेरिंग, वेस्टर्न तिबेट ऐन्ड ब्रिटिश बार्डरलैंड. ३०]
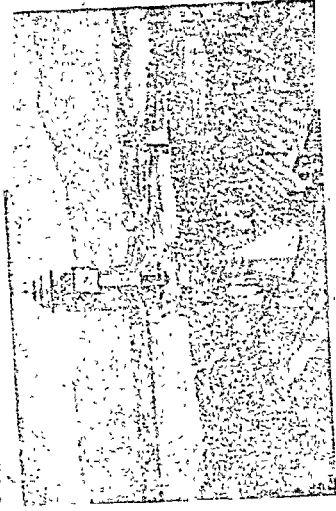
१२. सचमुच महेश्वरका निवासस्थल—

इस छोटे-से क्षेत्रमें शिखरोंकी शृंखलाओंके अतिरिक्त हिन्दुधर्मके सर्वोच्च सौन्दर्यस्थल यमुनोत्तरी, गंगोत्तरी, केदारनाथ, बदरीनाथ, कैलास और नन्दादेवी आगये हैं, जिन पर मुग्ध हो, यमुना, गंगा, शिव, विष्णु, महामाया और महेश्वरने इन्हें अपने निवासके लिए चुना है। "एशियाके (हिन्दू और बौद्ध) धर्मोंका मूलाधार वह हिमाच्छादित और धूपमें दमकती शिलाका मन्दिर है, जिसके समान सुन्दर वस्तु धरतीपर नहीं है। इसके अत्यन्त आकर्षक ढांचे और विचित्र ढंगसे सुगठित रूपको देखकर मेरे इस कथनमें तनिक भी अत्युक्ति नहीं है कि कैलास संसारमें सबसे पवित्रतम शिखर है। यह संसारका सबसे पुनीत पर्वत है। यह देवताओंका महोच्च सिंहासन है। [हेम और गानसेर, दि थ्रोन ऑव दि गौडस]

विचित्र सौंदर्यवाला यह अद्वितीय पर्वत शिवलिंगके आकारका होनेके कारण एशियाके महान् धर्मोंके देवताओंका सिंहासन बनगया है। कैलास केवल करोड़ों हिन्दुओं और बौद्धोंका ही पवित्रतम स्थान नहीं है, वरन् भूतत्वशास्त्रकी दृष्टिसे भी अनुपम है। [हेम और गानसेर, सेन्ट्रल हिमालय, जिऑलौजिकल ऑबजरवेशन्स ऑव स्विश एक्सपेडिशन, १९३६]

१३. महादेवका महाशिखर—

"अन्य धर्मोंके अनुयायी और विदेशी भी (जिनमें मिट्टी-पत्थरके ढेर पर्वतोंके प्रति श्रद्धा-पूज्य-भाव नहीं होता) कङ् रिम् पोचे (कैलास) को देखकर भय और श्रद्धाकी भावनासे भरजाते हैं। इस-जैसा पुनीत एवं प्रसिद्ध पर्वत धरतीपर एक

भी नहीं है। ऐवरिस्ट अथवा मोंट ब्लाक इसके सन्मुख तुच्छ है।" [स्वेन हेडिन, ट्रास-हिमालय पृ० १७१]

१४. महामायाका सिंहासन भी—

नन्दादेवी शिखरपुंजकी रूपराशि पर मुग्ध होकर ६० वर्ष पूर्व शेरिंगने लिखाथा—"यह कहनेमें तनिक भी अत्युक्ति नहीं है कि हमारी सुन्दर पृथ्वीपर एकभी स्थान इन निरन्तर हिमाच्छादित श्रेणियोंके अद्भुत सौन्दर्यकी बराबरी नहीं करसकता। सभी लोग, इस प्रदेशमें जिस सुखमाको पातेहैं, उसका वर्णन करना शब्दोंकी शक्तिसे बाहर समझतेहैं। अपनी पूरी शक्ति लगाकर एक हिन्दु महर्षिका यह कथन सर्वथा सत्य है, "जो हिमालयकी हिमराशिका केवल स्मरण भी करलेता है, चाहे उसे हिमालय देखनेका अवसर न भी मिले, वह काशीमें विधि-विधानसे पूजा करनेवाले व्यक्तिसे श्रेष्ठ फल पाता-है। हिमालयका स्मरण करने मात्रसे मनुष्य मुक्त होजाताहै। जो हिमाचलमें मृत्युको प्राप्त होताहै, अथवा कहीं भी रहने पर मृत्युकालमें हिमका स्मरण करताहै, वह पातकोंसे मुक्त हो-जाताहै"। [शेरिंग, वेस्टर्न तिबेट, पृ० ३६७]

१५. अशिक्षित दरिद्र कुली भी—

शेरिंगने वाल्मीकिके जिस कथनका ऊपर उल्लेख कियाहै, वह भारतमें घर-घर प्रत्येक हिन्दुके हृदयमें है। अशिक्षित निर्धन गढवाली मजूर तककी यही धारणा है। "पहाडी व्यक्ति यद्यपि पवित्र वस्तुओंके प्रति इतने श्रद्धालु नहीं होते, पर हिम-की महाराशिको देखते ही श्रद्धा-भयसे भरजातेहैं। यहा तक कि भारसे लदेहुए कुलीकी भी ज्यों ही हिमालयपर दृष्टि पड़ती है, वह तुरंत भगवानके उस निवासस्थानको हाथ जोड़कर

प्रणाम करताहै । इनमें जो अधिक धार्मिक विचारवाले होतेहैं वे तो हिमालय पर दृष्टि पड़ते ही हाथ जोड़कर कुछ देर स्तुति करतेहैं । [पौ. गढ़वाल सेटलमेंट रिपोर्ट, (१८६६). पृ०४]

१६. मैदान निवासियोंके लिये हिमालयका विस्मयकारी दृश्य

बंगाल और द्वाबके असीम मैदानोंके निवासियोंको कहीं एक पत्थर तक देखनेको नहीं मिलताहै, क्योंकि इन मैदानोंका समतल और धूल-भरा क्षेत्र सर्वत्र चौरस है। उनके नेत्रोंके सम्मुख जब महान् हिमालय खड़ा होताहै तो उनका आश्चर्य-विमुग्ध होजाना स्वाभाविक ही है। जबकि वे लोग भी जो साधारण ऊंचाईवाले पहाड़ी देशोंमें रहचुकेहैं, हिन्दुस्तानके मैदानसे जब उस महान् हिमालयको सहसा उठता देखतेहैं, जिसकी ढालें और पक्ष शिखरसे ७० मीलकी दूरी तक फैलेहैं और जो सहसा पहिली दृष्टिमें एक खड़ी दीवार-जैसे सीधे मैदान पर खड़े दिखाईदेतेहैं, उन्हें इतना रहस्यपूर्ण और प्रभावशाली पातेहैं । [विवर, फॉरेस्ट्स ऑव अपर इन्डिया, पृ० ४-५]

१७. गढ़वाल-हिमालयका सौन्दर्य—

सारे हिमालयका सर्वोत्तम-भाग गढ़वाल-हिमालय है, जो यमुनोत्तरीसे नन्दादेवी तक फैलाहै । जिसके अद्भुत सौन्दर्य पर युग-युगमें न जाने कितने व्यक्तियोंने अपनी श्रद्धांजलियां और शरीर अर्पितकिएहैं।

सर जॉन स्ट्रेचीने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'इंडिया' में लिखा है, भारतमें नौकरी करतेहुए आरम्भिक वर्षोंमें मुझे विभिन्न पदोंपर दस वर्ष तक कुमाऊं और गढ़वालमें कार्य करनेका सौभाग्य प्राप्तहुआ । और मैंने अनेक बार ग्रीष्म ऋतुको हिमालयके ऊंचे प्रदेशोंमें बिताया । कई बार मैंने गंगाजीके

और उसकी सहायक नदियोंके स्रोतोंपर स्थित अगणित हिमानियोंका अवलोकन किया और कई वार तिब्बत जानेवाले घाटोंपर पहुँचा, जिनमें से एक १८ सहस्र फीटसे अधिक ऊंचा है और कई वार मैंने हिमाच्छादित शिखरोंसे लगेहुए वनप्रदेशोंमें भ्रमण किया। मैंने यूरोपके अनेक पर्वतोंको देखा है। किन्तु मैंने कहीं ऐसी पर्वत-शृंखला नहीं देखीहै जो विशालता, महानताके साथ, वनस्पतिके सौन्दर्य और दृश्यावची-के आकर्षक रूपमें हिमालयके समक्ष पहुँचसके। यद्यपि कुमाऊं-गढ़वालकी केवल दो चोटियां ही २५ सहस्र फीटसे ऊंची पहुँचतीहैं और हिमालयके अन्य भागोंमें कुछ इनसे भी ऊंचे शिखर हैं, किन्तु ऐसा प्रतीत होताहै कि औसत ऊंचाईमें गढ़वाल-कुमाऊंके हिमालय अन्य सब भागोंसे अधिक ऊंचे हैं। क्योंकि लगातार २०० मील तक पर्वत-शिखर २२ सहस्र फीटसे लेकर २५ सहस्र फीटसे अधिक ऊंचाई तक पहुँचतेहैं।"

१८. हिमालयके सन्मुख विश्वके पर्वत तुच्छ—

उस पर्यटकको जिसने हिमालयके शिखरों और हिमानियोंका प्राकृतिक सौन्दर्य देखाहै, जरमात और चमौनी सर्वथा तुच्छ दिखलाईदेतेहैं। यह कहने मात्रसे कि प्रायः हिमालयके शिखर आल्पसके शिखरोंसे दुगने ऊंचे हैं, उनकी तुलनात्मक ऊंचाईका कोई अनुमान नहीं लगता। यह सत्य ही कहागयाहै कि यदि सारे बरनीज आल्पस्को उखाड फेंकाजाए तो वह हिमालयकी एक ही घाटीमें डूबजाए। जिस प्रकार स्काटलैंड और वेल्शकी पहाड़िया शीतकालमें हिमसे ढकजाने पर भी मौंट ब्लांक और मौंट रोसाके समान तुच्छातितुच्छ हैं, उसी प्रकार नन्दादेवी और त्रिशूल के सन्मुख आल्पस् पर्वतमाला!
दें हम मैटरहौर्नको उठाकर जुंगफ्रानपर भी खड़ा करदें तो

भी दोनों मिलकर हिमालयके उच्च शिखरोंको नहीं पासकते और दूनागिरि-जैसे अद्भुत शिखरका मिलना तो सर्वथा असंभव है। [ट्रैची, इन्डिया]

१९. रोरिकका हिमालय-वन्दन—

हिमालयके उत्तुंग शिखरोंके आरोहणमें, अभियानमें एक अव्यक्त, अनिर्वचनीय आनन्द निहित है। अन्तरात्माकी कोई शक्ति हमें शतत इस उच्चताकी ओर बढ़नेके लिए आह्वान करतीरहतीहै। यदि कोई हिमालयोन्मुख इन साहसिक यात्राओंका प्रारम्भ ढूंढनेका उपक्रम करे तो अद्भुत परिणाम काशित होगा। वस्तुतः इन शिखरोंके आकर्षणकी पृष्ट भूमिका रिज्ञान यह सिद्ध करदेगा कि हिमालय अप्रतिम क्यों है? प्रज्ञात अतीत कालसे असंख्य विभूतियोंका इसके पार्वत्य अंचलोंसे संबंध संग्रन्थित है।

हे हिमागार! हे वसुधाके यशोरत्नात सौन्दर्य! हे रहस्य मय! तुम्हें नमस्कार है। तुम्हारा यह अनन्त वैभव, तुम्हारा यह दिव्यालोक युग-युगसे आकर्षणका केन्द्र रहाहै! तुम्हारे दर्शन मात्रसे चित्त उत्फुल और भव्य भावनाओंसे परिपूर्ण होजाताहै। तुम धन्य हो, तुम अनन्य हो! [निकोलस रोरिक, त्रिपथगा, हिमालय-अंक, (१९५८), पृ० १७]

अध्याय २

हिमालय-धर्म

१. उमा हैमवती--

हिमालयके संबंधमें देवत्वकी भावना आर्योंने वैदिक युगमें ही ग्रहण करलीथी। हिमालयसे शिव और उमाका जो तादात्म्य आर्योंसे पूर्व भारतके निवासी स्थापित करचुकेथे उसे आर्योंने अपनालिया। 'उमा हैमवती'—हिमालय-पुत्री उमा—का उल्लेख और उसमें महान चेतनसत्ताकी कल्पना सामवेद-के केनोपनिषद् ३-१२ तथा यजुर्वेदके बृहदारण्यक उपनिषद् मे ६।१।३ मिलतीहै।

स तस्मिन्नेवाकाशे स्त्रियमाजगाम बहुशोभमानामुमा हैमवतीं ता होवाच किमेतद् यक्षमिति॥ [केन ३।१२] यक्षके अन्तर्धान होजाने पर इन्द्र वहीं खड़ेरहे, अग्नि-वायुकी भांति वहांसे लौटे नहीं। इतनेमे ही उन्होंने देखा कि जहां दिव्य यक्ष था, ठीक उसी स्थान पर अत्यन्त शोभामयी हिमाचल-कुमारी उमादेवी प्रकट होगईहैं। उन्हें देखकर इन्द्र उनके पास चलेगए। इन्द्रपर कृपाकरके करुणामय परब्रह्म पुरुषोत्तमने ही उमारूप साक्षात् ब्रह्म-विद्याको प्रकट कियाथा। इन्द्रने भक्ति-पूर्वक उनसे कहा—'भगवती! आप सर्वज्ञ शिरोमणि ईश्वर श्री शंकरकी स्वरूपा-शक्ति हैं। अतः आपको अवश्य ही सब बातोंका पता है। कृपापूर्वक मुझे बतलाइए कि यह दिव्य यक्ष

जो दर्शन देकर तुरन्त ही छिपगया, वस्तुतः कौन है और किस हेतुसे यहां प्रकट हुआथा ?' [कल्याण, उपनिषद् अंक, १८१]

यह उमा हैमवती खसोंकी नन्दादेवी है, जिसको नन्दादेवी-शिखरकी अधिष्टात्री मानागयाहै और जिसके नन्दाकोट, नन्दा-घुंघटी और त्रिशूल-शिखरोंके सौन्दर्य पर संसार मुग्ध है। जिसके पादप्रदेशके अधिपति कत्यूरी नरेश अपनेको 'नन्दा-भगवतीचरण-कमल-कमला-सनाथमूर्तिः' कहकर गर्वका अनुभव करतेथे।

२. गिरिश शिव—

खसोंसे उमा हैमवतीकी उपासनाके अतिरिक्त आर्योंने उस रुद्र-देवेशको भी अपनाया जिसे यजुर्वेदके शतरुद्रिय-स्तोत्रमें 'गिरिशंत', 'गिरित्र', 'गिरिश', 'गिरिचर', तथा 'गिरिशय' कहागयाहै, जिन सब नामोंका अर्थ है, पर्वतका अधिवासी। "तया नस्तन्वा शन्तमया गिरिशन्ताभि चाकशीह ।२। यामिषु गिरिशन्त हस्ते बिभर्ष्यस्तव। शिवा गिरित्र तां कुरु मा हिंसी: पुरुषं जगत ।३।" आदि [वाजसनेयि संहिता, कांड १६, सूक्त १]

वैदिक रुद्र या शिवकी उपासना हिमालयकी उपासना है। "रुद्रका विशेष अस्त्र उनका धनुष है और इस धनुषसे जो बाण वे छोड़तेहैं, वह मनुष्य और पशु दोनोंका संहार करताहै। [ऋग्वेद, २।३३।१०; ७।४६।१] यह बाण ज्वलन्त प्रतीक हैं—उस कड़कती हुई बिजलीका, जिसके प्रहारसे किसीके प्राण बच नहीं सकते। हिमालयकी उपत्यकाओंमें, जहां ऋग्वेदीय आर्य लोग बसतेथे, यह बिजली विशेषरूपसे घातक और भयावह होती-है। इसीसे रुद्रके क्रूर और अहितकारी रूपका समाधान होजाताहै। अपने सौम्य रूपमें रुद्रको 'महाभिषक' भी कहा

गयाहै, जिसकी औषधियां ठंडी और व्याधिनाशक होतीहैं। [यदुवंशी, शैवमत पृ० ३]

आगे चलकर तो कैलास पर्वतको शिवका निवासस्थल ही मानलियागया और यही कल्पना 'केदार' के सम्बन्धमें भी की गई।

३. महाभारतमें हिमवान्—

आजसे कम-से-कम २५०० वर्ष पूर्व ही हिमालयके संबंधमें उन समस्त कल्पनाओं और भावनाओंका पूर्ण विकास होचुका था जो आज तक चलीआतीहैं। हिमालयमें देवत्व, उसमें देव, यक्ष, गन्धर्व, किन्नर और अप्सराओंका निवास, ऋषि मुनियोंकी तपस्थली और राजर्षियोंका तपहेतु हिमालय-गमन हिमालयमें महान गुरुकुल, हिमालयकी तीर्थयात्रा, उसमें शिव, विष्णु, उमाके निवास, गंगामें त्रैलोक्य-पावनताकी कल्पना आदि सभी महाभारतमें इतने विकसित रूपमें मिलतीहैं, कि उनके विकासमें एकसे अधिक सहस्राब्दियां लगीहोंगी। महभारतमें हिमालयके संबंधमें जो कुछ कहागयाहै, रामायण और पुराणोंमें वह सब तो है ही उसके अतिरिक्त भी बहुत है। महाभारतमें हिमवानके वर्णनसे ही हिन्दुओंकी हिमालयमें देवत्वकी कल्पनाका पूरा परिचय मिलजाताहै।

४. आदिपर्वमें हिमवान्—

आदिपर्वमें कहागयाहै—'हिमवान, भारतकी उत्तर सीमा पर स्थित विशाल पर्वतराज शरीरसे पर्वत होतेहुए भी 'आत्मा' से देवता है। वालखिल्य मुनि यहां तपस्या करनेकेलिए आयेथे, (३०।१८)। शेषनाग संयम-नियम तथा एकांतवासके लिए हिमालय पर्वत पर आयेथे, (३६।३-४)। व्यासजी गांधा-

ि बालकोंकी रक्षाकी व्यवस्था करके हिमालयपर तपस्या
लए चलेगयेथे, (११४।२४) । राजा पांडु कालकूट और
ालय पर्वतको लांघते हुए गन्धमादन पर्वतपर चलेगयेथे,
१८।४८) । क्षत्रिय लोग भृगुवंशी ब्राह्मणोंके गर्भस्थ बालकोंकी
हत्या करतेहुए सारी पृथ्वी पर विचरनेलगे । यह देखकर
यके मारे भृगुवंशियोंकी पत्नियोंने दुर्गम हिमालय पर्वतका
श्रय लियाथा, (१७७।२०-२१) । पाराशरने समस्त राक्षसोंके
नाशके उद्देश्यसे किएजानेवाले सत्रकेलिये जो अग्नि संचित
थी, उसे उत्तरदिशामें हिमालयके आसपास एक विशाल
नमें छोड़दिया. (१८०।२२) । इन्द्रपुत्र अर्जुनने भी हिमालयकी
ात्रा कीथी, (२१४।१) ।

१. सभापर्वमें हिमवान्—

सभापर्वमे, हिमवान कुवेरकी सभामें रहकर धनके स्वामी
हात्मना भगवान कुवेरकी उपासना करते हैं, (१०।३१-३४) ।
वर्षि नारदजीने ब्रह्माजीकी सभाका दर्शन पानेके उद्देश्यसे
सूर्यके बताए अनुसार हिमालयके शिखरपर एक हजार वर्षोंमे
पूर्ण होनेवाले महान व्रतका अनुष्ठान कियाथा, (११।८-९) ।
अर्जुनने संग्राममे हिमवान्को जीतकर धवलगिरिपर आकर
उन्हीं आपनी सेनाका पड़ाव डाला, (२७।२६) । भीमसेनने
हिमालय के पास जाकर सारे जलोद्भव देशपर थोड़े ही समय
में अधिकार प्राप्तकरलिया (३०।४) । हिमालयपर्वतपर मेरु-
सावर्णिने युधिष्ठिरको धर्म और ज्ञान का उपदेश कियाथा,
(७८।१४) ।

६. वनपर्वमें हिमवान्—

वनपर्वमे, राजा भागीरथने तपस्याके लिए हिमालयपर्वतको
प्रस्थान किया । गिरिराज हिमालय विविध वस्तुओंसे विभूषित

तथा नाना प्रकारके शिखरोंसे अलंकृत हैं। इसकी रमणीय शोभाका विस्तृत वर्णन, (१०८।३-११)। कुलिन्दराज सुबाहुका विशाल राज्य हिमालयपर्वतके निकट था। पांडवोंने रातमें वहां रहकर दूसरे दिन सवेरे हिमालयकी ओर प्रस्थान किया, (१४०।२४-२७)। पांडव लोग सत्रहवें दिन हिमालयके एक पावन पृष्टभागपर जापहुँचे। हिमालयके उस पावन प्रदेशमें वृषपर्वाका पवित्र आश्रम था। वहां जाकर उन्होंने वृषपर्वाको प्रणाम किया, (१५८।१८-२१)। भीमसेन हिमालयपर्वतके सुन्दर प्रदेशोंका अवलोकन करतेहुए वनमें शिकार करनेलगे। इस अवस्थामे उन्हें एक अजगरने पकडलिया (१७८ अ०)। मार्कंडेयजीने भगवान बालमुकुन्दके उदरमे हिमवान् तथा हेमकूट पर्वतोंको देखाथा, (१८८।१०२)। हिमवान् पर्वत पर प्रावारकर्ण नामसे प्रसिद्ध एक उल्लू निवास करता है, जो मार्कंडेयजीसे भी पहलेका उत्पन्न हुआहै, (१९९।४)। कर्ण हिमालयपर्वतपर आरूढ हो, हिमवान्प्रदेशके समस्त भूपालोंको जीतकर उन सबसे कर वसूलकिया, (२५४।४-६)।

७. उद्योगपर्वमें हिमवान्—

उद्योगपर्वमें, उत्तरमे हिमवान्के शिखरपर भगवान् महेश्वर भगवती उमाके साथ नित्य निवासकरतेहैं, (१११।५)।

८. भीष्मपर्वमें हिमवान्—

भीष्मपर्वमे, हिमवान् पूर्वसे पश्चिम दिशाकी ओर फैलेहुए ६ वर्षपर्वतोंमेसे एक है, (६।३-५)।

९. द्रोणपर्वमें हिमवान्—

द्रोणपर्वमे, अर्जुनने स्वप्नमे भगवान श्रीकृष्णके साथ कैलासकी यात्रा करते समय पवित्र हिमवान्-पर्वतका शिखर देखाथा, (८०।२३-२४)।

१०. कर्णपर्वमें हिमवान्—

कर्णपर्वमें, त्रिपुरदाहके समय हिमवान और विन्ध्य ़गवान रुद्रके रथमें आधारकाष्ट बनेथे, (३४।२२)। गंगाने ़पने गर्भको देवपूजित हिमवान्पर्वतके सुरम्य शिखरपर ़ोड़दियाथा, जिससे स्कन्द प्रकटहुएथे, (४४।६)।

११. शल्यपर्वमें हिमवान्—

शाल्यपर्वमें,कुमार कार्तिकेयका अभिषेक करनेके लिए गिरिराज हिमालयके अधिष्ठाता देवता हिमवान् भी पधारेथे, (४५।१४-१८)। इन्होंने कुमारको सुवर्चा, अतिवर्चा नामक दो पार्षद प्रदान किएथे, (४५।४६-४७)।

१२. सौप्तिकपर्वमें हिमवान्

सौप्तिकपर्वमें, भगवान श्रीकृष्णने हिमालयकी घाटीमें रहकर बड़ी भारी तपस्याके द्वारा रुक्मिणीदेवीके गर्भसे प्रद्युम्नको ़न्मदिया, (१२।३०-३१)।

१३. शान्तिपर्वमें हिमवान्

शान्तिपर्वमें, पर्वतोंमें श्रेष्ठ हिमवान्ने राजा पृथुको अक्षय ़न समर्पित कियाथा, (५६।११८)। हिमालयके सुरम्य शिखरपर जिसका विस्तार सौ योजनका है, भगवान् ब्रह्माजीने एक ़ज्ञ कियाथा, (१६६।३२-३७)। पर्वकालमें प्रजापति दक्षने हिमालयके पार्श्ववर्ती गंगाद्वारके शुभप्रदेशमें एक यज्ञका आयोजन कियाथा, (२८४।३)। राजा जनकका उपदेश सुनकर शुकदेवजीने हिमालयपर्वतको प्रस्थान किया। इस पर्वतपर सिद्ध और चारण निवास करतेहैं। एक समय देवर्षि नारदजी इसका दर्शन करनेकेलिए वहां पधारे थे। वहां सब ओर अप्सरायें विचरतीहैं। विविध प्राणियोंकी शान्त मधुर ध्वनिसे

वहांका सारा प्रान्त व्याप्त रहताहै। सहस्त्रों किन्नर, भ्रमर खंजरीट, चकोर, मोर और कोकिल अपना कलरव फैलाए रहतेहैं। पक्षिराज गरुड़ हिमवान्‌पर नित्य निवासकरतेहैं। चारों लोकपाल, देवता और ऋषि जगतके हितकी कामनासे यहां सदा आतेरहतेहैं। भगवान् श्रीकृष्णने पुत्रकेलिए यहीं तप कियाथा। यहीं कुमार कार्तिकेयने बाल्यावस्थामें देवताओं पर आक्षेप किया और तीनों लोकोंका अपमान करके शक्ति गाड़दी और यह बात कही—जो मुझसे भी बलवान, ब्राह्मणभक्त और पराक्रमी हो, वह इस शक्तिको उखाड़दे अथवा हिलादे। भगवान विष्णुने कुमारके सम्मानकी रक्षाकेलिए उस शक्तिको हिलादिया, उखाड़ा नहीं। हिरण्य-कशिपुके पुत्र प्रह्लादने उसे उखाड़नेकी चेष्टाकी, किन्तु वे चीत्कार करके मूर्छितहो, हिमालयके शिखरपर गिरपड़े। गिरिराज हिमालयके पार्श्वभागमें उत्तर दिशाकी ओर भगवान शि[illegible] दुधर्ष तपस्या कीहै। भगवान् शंकरके उस आश्रमको प्रज्वलित अग्निने चारों ओरसे घेररखाहै। उस पर्वतशिखरका नाम आदित्यगिरि है। उसपर अजितात्मा पुरुष नहीं चढ़सकते। उसका विस्तार दस योजन है। वह आगकी लपटोंसे घिराहुआ है। शक्तिशाली भगवान् अग्निदेव स्वयं विराजमान हैं। गिरिराज हिमवान्‌की पूर्वदिशाका आश्रय लेकर पर्वतके ए[illegible] तटप्रांतमें किसी समय महर्षि व्यास अपने शिष्य महाभाग सुमन्तु, जैमिनि, पैल तथा वैशम्पायनको वेद पढ़ाया करतेथे (३२७।२-२७)। शुकदेवजीके ऊर्ध्व लोकमें गमन करते समय गिरिराज हिमालय विदीर्ण होता-सा प्रतीत होताथा। उन्होंने अपने मार्गमें पर्वतके दो दिव्य शिखर देखे, जो एक-दूसरेसे सटेहुएथे। उनमेंसे एक हिमालयका शिखरथा, और दूसरा मेरुका। शुकदेवजी उन्हें देखकर भी नहीं रुके। उनके निकट

आते ही वे दोनों पर्वतशिखर सहसा विदीर्ण होकर दो भागोंमें बंटगए, (३३३।५-१०)। हिमवान की पुत्रीका नाम उमा है। उसे रुद्रदेवने पत्नी रूपमें प्राप्त करनेकी इच्छाकी। इसी बीचमें महर्पि भृगुने आकर हिमवान्से उस कन्याको अपने लिए मांगा। हिमवान्ने कहा—'इसके लिए देख-सुनकर रुद्रदेवको वर निश्चत करलियागयाहै।' यह सुनकर भृगुने हिमवान को शाप देदिया कि तुम रत्नोंके भंडार नहीं रहोगे, (३४२।६२)। भगवान नारायण और शंकरके युद्धसे हिमालयपर्वत विदीर्ण होने लगाथा, (३४२।१२२)। हिमवान्पर्वतपर देवर्पि नारदका अपना आश्रम है, (३४६।३)।

१४. अनुशासनपर्वमें हिमवान्—

अनुशासनपर्वमें, भगवान श्रीकृष्णने हिमालयपर्वतपर पहुँचकर महात्मा उपमन्युका दिव्य आश्रम देखा था, (१४।४३-४५)।

१५ आश्वमेधिकपर्वमें हिमवान्—

आश्वमेधिकपर्वमें, हिमालयपर्वतपर महात्मा राजा मरुत्तके यज्ञमें ब्राह्मणोंने बहुतसा धन वहीं छोड़ दियाथा, (३।२०-२१)।

१६. आश्रमवासिकपर्वमें हिमवान्—

आश्रमवासिकपर्वमें, धृतराष्ट्र और गांधारीके दावानलसे दग्ध होजानेके पश्चात् संजय हिमालय पर चलेगए, (३७ ३३-३४)।

१७. महाप्रस्थानिकपर्वमें हिमवान्—

महाप्रस्थानिकपर्वमे, महाप्रस्थानके समय योगयुक्त पांडवों मार्गमें महापर्वत हिमालयका दर्शन किया और उसे लांघक

जब वे आगे बढ़े, तब उन्हें बालूका समुद्र दिखाईदिया, (२।१-७)। [महाभारत, वर्ष ३, संख्या १२, पृ० ४०५-६]

इस प्रकार महाभारतके १८ पर्वोंमेंसे १४ पर्व किसी न किसी रूप में हिमालयका यशगान करतेहैं। महाभारतके मुख्य पात्र पांडव हिमालयमें जन्म लेतेहैं, अपने जीवनका बहुत बड़ा भाग हिमालयकी यात्रामें बितातेहैं और अंतमें हिमालय होकर ही विलीन होने जातेहैं।

१८. महाभारतमें केदारखंडके प्रमुख स्थल—

आजके समानही २४०० वर्ष पहले केदारखंड—दक्षिणमें गंगाद्वार (हरिद्वार) से लेकर उत्तरमें कैलास तक और पश्चिममें तमसासे लेकर पूर्वमें नन्दादेवी-तकका क्षेत्र,-हिमालयका पावनतम क्षेत्र मानाजाताथा। पांडवोंकी तो यहां क्रीड़ा-स्थली थी ही। इस क्षेत्रके निम्न स्थान महाभारत-कालमें भी महत्वपूर्ण थे।

अगस्तवट—हिमालयके पासका एक पुराक्षेत्र (अगस्त्यमुनि?) तीर्थयात्राके समय यहां अर्जुनका आगमन हुआथा। [आदि, २१४।२]

अग्निशिरतीर्थ—यमुनातटवर्ती तीर्थ-विशेष (यमुनोत्तरीका तप्तकुण्ड ?) जहां सृंजयपुत्र सहदेवने यज्ञ कियाथा, (वन, ९०।५-७)

अंगारपर्ण—गंगातटवर्ती एक वन जो गंधर्वराज अंगारपर्णके अधिकारमें था। [महाभारत, वर्ष ३, अंक १२]

अंगिराश्रम—अलकनन्दा नामक गंगाके तट पर,स्थितहै जहां अंगिराऋषि स्वाध्याय करतेथे। [वन, १४२।६]

उरग—एक भारतीय जनपद। [भीष्म, ९।५४]

उरगा—उत्तर भारतकी एक पर्वतीय राजधानी (उरगम ?]

जहांके राजा रोचमानको अर्जुनने परास्त कियाथा[सभा,२७।१६]

एकचक्रा—एक प्राचीन नगरी (चकरौता) जहां भीमने वकासुरको माराथा। [आदि, ६१।२६-२६]; १५५ अध्यायसे १६३ अध्याय तक]

कण्वाश्रम—मालिनी नदीके तट पर महर्षि कण्वका आश्रम (चौकीघाटाके पास) (आदि, ७०।२१-२६]

कनखल-[वन, ८४।३०;६०।२२; अनु० २५।१३]

किम्पुरुषवर्ष—जम्बूद्वीपका एक खंड, जिसे हैमवत भी कहते हैं। (शान्ति, ३२५।१३-१४]

कुब्जाम्रक-[वन, ८४।४०] केदारखंड नामक ग्रन्थके अनुसार ऋषिकेश-लक्ष्मनझूलाके पासका तीर्थ]

कुलिन्द—प्राचीन देश (सभा, २६।३ भीष्म ६।५५,६३] यमुनाकी उपरली घाटीका प्रदेश, टेहरी गढ़वाल

कुशावर्त तीर्थ [अनु० २५।१३]

कैलास-कुवेर और भगवान शिवका निवासस्थान [वन, १०६।१६-१७, वन, १४१।११-१०] इस कैलासके पास ही विशाला [वदरिकाश्रम] है।

क्रौंचपर्वत-[माणाद्वार ?] जिसे स्कन्दने विदीर्ण कियाथा, [शल्य, ४६।८४]।

खसदेश-एक देश (गढ़वाल, जिसका प्राचीन नाम खसदेश था), [द्रोण, १२१।४२]

गंगाद्वार-हरद्वार या हरिद्वार। यहां प्रतीपने तपस्या कीथी, (आदि, ६७।१] यहां भरद्वाज मुनि रहतेथे, (आदि, १२६।३३] अर्जुनने यहांकी तीर्थयात्रा कीथी, [आदि, २१३ अध्याय] पत्नी सहित महर्षि अगस्तने यहां तप कियाथा। [वन, ६७।११]। जयद्रथने यहीं आराधना करके भगवान शिवको संतुष्ट कियाथा

[वन, २७२।२४-२६]। दक्षने यहीं, कनखलमें यज्ञ कियाथा, [शल्य, ३८।२७-२८] । गंगाद्वार और वहांके तीर्थ-विशेष कुशावर्त,. विल्वक, नीलपर्वत तथा कनखलमें स्नानसे स्वर्ग-प्राप्ति, [अनु० २५।१३] गंगाद्वारमें भीष्म द्वारा अपने पिताका श्राद्ध और पिंड लेनेकेलिए शान्तनुका हाथ प्रकट होना, [अनु, ८४।११-१५]। धृतराष्ट्र, गांधारी और कुंतीका गंगाद्वारके वनमें दग्ध होना और वहां युधिष्ठिर द्वारा उनका श्राद्ध, [आश्रम, ३६।१४-२०]

गंगामहाद्वार—वह स्थान जहां हिमालयके शिखरसे गंगाजी उतरीहैं। यह गंगोत्तरीसे बहुत आगे है। इस गंगामहाद्वारसे आगे जानेवाला मनुष्य हिमराशिमें गलजाता है। (उद्योग, १११।१६-२०]

गन्धमादन—हिमालयके उत्तरभागमें स्थित बदरिकाश्रमका समीपवर्ती पर्वत । यहां कश्यपजीने तपस्या कीथी, [आदि, ३०।१०]। यहीं भगवान शेषने भी तप कियाथा, [आदि, ३६। ३]। शतशृंगपर्वतपर तपस्याकेलिए जाते समय कुन्ती-माद्री सहित पांडु यहां आएथे, [आदि, ११८।४८]। यह गन्धमादन पर्वत दिव्य रूप धारणकरके कुबेरकी सभामें रहकर उन भगवान धनाध्यक्षकी उपासना करता है, [सभा, १०।३२] नारायणने यहां यत्रसायंगृही मुनिके रूपमें दस सहस्र वर्षों तक निवास कियाथा, [वन, १२।११]। तपस्याके लिए जातेसमय अर्जुन हिमवान् तथा गन्धमादन पर्वतको लांघकर आगे गएथे, [वन, ३७।४१]। लोमशके अनुसार गन्धमादन पर केवल तपोबलसे जासकतेहैं, [वन, १४०।२०]। गन्धमादनपर विशाला बदरीका वृक्ष और भगवान नर-नारायणका आश्रम है। वहां सदा यक्ष लोग निवास करतेहैं [वन, [illegible]
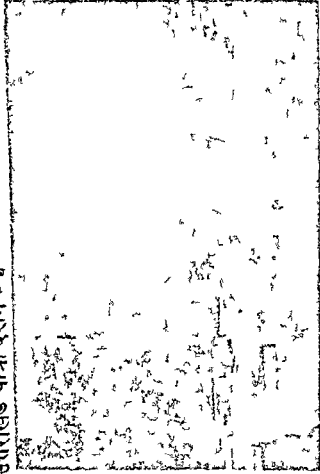
लक्ष्मण झूला

वर्णन, [वन, १४३।२-६] घटोत्कच और उसके साथियोंकी सहायतासे पांडवोंका गंधमादन पर्वतपर पहुँचना, [वन, १४५ अध्याय]। गन्धमादन पर भीम द्वारा कुबेरके सखा राक्षसप्रवर मणिमान्का वध, (वन, १६०।७६-७७]। अर्जुनका इन्द्रलोकसे लौटकर गन्धमादनपर आना, [वन, १६४ अध्याय]। लंकासे निर्वासित कुवेरका गन्धमादनपर निवास (वन, २७५।३३]। गन्धमादन पर नर-नारायणकी घोर तपस्याका उल्लेख, [उद्योग, ६६।१५]

घीरवासा-एक यक्ष (का स्थान) जो कुवेरकी सभामें स्थित हो, भगवान् धनाध्यक्षकी सेवा करताहै। [सभा, १०-१८]

जातुगृह, लाक्षा-गृह—[लाखामंडल] जिसे दुर्योधनने वारणावतमें बनवायाथा, (आदि ६१।१७] केदारखंडके अनुसार वारणावत टिहरीमे भिलंगणा-क्षेत्रके पास है।

तगण—एक भारतीय जनपद (तोलछोंका प्रदेश) [धुतीसे नीचेका पैनखंडा परगना] [भीष्म, ६।६४]।

तीर्थकोटि—[वन, ८४।१२१]।

देववन—एक पुण्यक्षेत्र जहां वाहुदा और नन्दानदी वहतीहै, [वन, ८७।२६]।

देवीस्थान—शाकंभरीदेवीका स्थान, [वन, ८४।१३]।

नन्दन—स्वर्गका दिव्यवन, जहां केवल जितेन्द्रिय भावसे ावर्तनन्दा और महानन्दा तीर्थका सेवन करनेवाले जासकतेहैं अनु० २५।४५]।

नागतीर्थ—कनखलके समीप नागराज कपिलका तीर्थ, वन, ८४।३३]।

नागशत—एक पर्वत जहां तपस्याकेलिए जाते समय दोनों ानियों सहित राजा पांडु पधारे थे. [आदि. ११८।४७]।

परतगण—एक भारतीय जनपद, (घृतीमें उपरका पैनखंडा परगना, मारछोंका प्रदेश), [भीष्म ६।६४]।

बदरिकाश्रम—यहां पूर्वकालमें नर-नारायणने अनेक बार दस-दस सहस्र वर्ष तक तपस्या कीथी, [वन, ४०।१]। इस तीर्थमें स्नान करनेसे मनुष्य दीर्घायु पाता और स्वर्गलोक जाताहै, [वन ८८।१३]। पाडवोंने यहांकी यात्रा कीथी। यहां नर-नारयणका आश्रम और अलकनन्दा-नामक भागीरथीकी धारा है। यहांकी प्राकृतिक सुषमाका वर्णन, [वन, १४५ अध्याय]। बदरीवन और उसके निकटकी विशालपुरी मिलाकर बदरिकाश्रम तीर्थ कहलाताहै, [वन,६०।२८]। इसका विस्तार पूर्वक वर्णन, [वन,१४५।१२-२४] दियागयाहै।

नन्दा (देवी) पर्वत—भाइयों-सहित युधिष्ठिरजीने लोमश जीके साथ नन्दा और अपरनन्दाकी यात्रा कीथी। वे हेमकूट पर्वतपर आए और वहां अद्भुत बातें देखीं। वहां बिना वायुके बादल उत्पन्न होते और अपने-आप सहस्रों ओले गिरने-लगतेथे। खिन्न मनुष्य उस पर्वतपर चढ नहीं सकतेथे। प्राय प्रतिदिन वहां तीव्र वायु चलतीथी और प्रतिदिन वर्षा होतीथी। प्रात साय इस पर्वतपर अग्निदेव प्रज्वलित दिखाईदेतेथे। वहां मक्खियां डंक मारतीथीं। लोमशजीने बतलायाकि "यह सब ऋषभ नामक प्राचीन तपस्वी ऋषिके शापसे होताहै। नन्दाके तटपर पहले देवता लोग आएथे। उस समय उनके दर्शनकी इच्छासे मनुष्य सहसा वहां आपहुंचे। देवता यह नहीं चाहतेथे, अत उन्होंने उस पर्वतीय प्रदेशको ,जनसाधारणके लिए दुर्गम बनादिया। तबसे साधारण मनुष्योंकेलिए इस हेमकूटपर चढना तो दूर रहा, इसे देखना भी कठिन होगया। जिसने तपस्या नहीं कीहै, वह इस महान पर्वतका दर्शन नहीं कर-

मकता। यहां अब भी देवता और ऋषि निवास करतेहैं। इसीलिए सायं-प्रातः अग्नि प्रज्वलित होतीहै। यहां नन्दामें गोता लगानेसे मनुष्योंका सारा पाप तत्काल नष्ट होजाताहै। युधिष्ठरने यहां स्नान करके कौसिकी (कोसी अल्मोड़ामें) तीर्थकी यात्रा कीथी, [वन, ११०।१-२१]। इस नन्दा (देवी) तीर्थमें मृत्युने तपस्या कीथी, [द्रोण, ४२।२०-२१]।

बलाका तीर्थ—गन्धमादन पर्वतके निकटका एक तीर्थ [अनु, २५।१६]।

बिन्दुसर—कैलासके उत्तरमें एक प्राचीन सरोवर, जहाँ भगीरथने गंगावतरणके लिए बहुत वर्षों तक उग्र तपस्या की थी, यहां मायासुरका आगमन; प्रजापति द्वारा यहां भी यज्ञोंका अनुष्ठान, यहां यज्ञ करके इन्द्रको सिद्धि-प्राप्ति, यहां श्रीकृष्णने बहुत वर्षोंतक यज्ञ कियाथा, [सभा, ३।२-१६]। यहींसे मयनामक दानवने देवदत्त शंख और वृषपर्वाकी गदाको लाकर अर्जुन तथा भीमसेनको समर्पितकियाथा। [महाभारत वर्ष ३, अंक, १२, पृ० २१७] [गढ़वालका विनसर ?]

बिल्वक तीर्थ—हरिद्वारके अन्तर्गत, [अनु,२५]।

ब्रह्मतुंग—एक पर्वत जो स्वप्नमें श्रीकृष्णजी सहित शिवजी के पास जातेहुए अर्जुनको मार्गमें मिलाथा, [द्रोण, ८०।३१]।

भद्रतुंग—एक तीर्थ, [वन, ८२।८०]।

भरद्वाज-आश्रम—हरिद्वारके पास, [आदि, १२६।३३-३८]

भरद्वाज—[गढ़वालका प्राचीन नाम], एक भारतीय जनपद, [भीष्म, ६।६८]

भारद्वाजतीर्थ—[आदि, २१५।४]

भृगुतीर्थ—[वन, ६६।३४-३८]।

भृगुतुंग—एक प्राचीन पर्वत जहां ययातिने तपस्या कीथी, [आदि, ७५।२७] अर्जुन द्वारा यहांकी तीर्थयात्रा, [आदि २१४।२]। यहां शाकाहारी होकर एक मास निवास करनेसे अश्वमेध-फल मिलताहै, [वन, ८४।५०]। यहां उपवासका माहात्म्य, [वन, ८५।६१-६२],यह महान पर्वत भृगुतुंग आश्रमके नामसे प्रसिद्ध है। यहां भृगुने तपस्या कीथी, [वन ९०।२३]। यहांके 'महाह्रद' नामक तीर्थ या सरोवरमें स्नान करनेसे और तीन रात निराहार रहनेसे ब्रह्महत्याके पापसे मुक्ति, [अनु, २५।१८-१९]।

मन्दराचल—कैलासके पास मन्दराचलकी स्थिति है। जिसके ऊपर मणिवर यक्ष और यक्षराज कुबेर निवास करतेहैं, [वन, १३९।५ ६]। स्वप्नावस्थामें श्रीकृष्णके सा कैलास जातेहुए अर्जुनने मार्गमें महामन्दराचलपर पदार्पण कियाथा, [द्रोण, ८०।३३]। उत्तरदिशाकी यात्रा करते समय अष्टवक्र मुनि इस पर्वतपर गयेथे, [अनु, १९।२४]।

मानसद्वार, (मानसद्वार)-मानसरोवरके पासकी एक पर्वत जो उसका द्वार मानाजाताहै। इसके मध्यभागमें परशुरामजीने अपना आश्रम बनायाथा। [वन, १३०।१२] कालिदासने मेघदूत (पूर्व, ५७) में कहाहै—क्रौंचपर्वतमें हंसोंके आवागमनका द्वार वह रन्ध्र है जिसे परशुरामने पहाड तोडकर बनायाहै। वह उनके यशका स्मृतिचिन्ह है।

माल्यवान—हिमालयका एक पर्वत। आर्ष्टिषेणके आश्रमसे गन्धमादनकी ओर आगे बढ़नेमें मार्गमें पाण्डवोंको माल्यवान पर्वत मिलाथा, जहांसे गन्धमादन दिखाईदेताथा, [वन, १५८।३६-३७]।

मुँजपृष्ठ—हिमालयके शिखरपर एक रुद्रसेवित स्थान, [शान्ति, १२२।४]।

मेरु—इस पर्वतके शिखरसे दुग्धके समान श्वेत धारवाली पुण्यमयी भागीरथी गंगा बड़े वेगसे चन्द्रहृदयमें गिरतीहै, [भीष्म, ६।१०-२३]।

यामुन—एक भारतीय जनपद, [भीष्म, ६।४१] गंगा यमुनाके मध्यभागमें स्थित एक प्राचीन पर्वत, [अनु, ६८।३], जौनसार-बावर।

रुद्रकोटि, [वन, ८२।११८-१२४; ८३।७७]।
वसुधारा तीर्थ, [वन, ८२।७६-७८]।
वृषदंश—मंदराचलके निकटका एक पर्वत [द्रोण,८०।३३]

व्यासगुफा—जहाँ हिमालयकी पवित्र तलहटीमें पर्वतीय गुफाके भीतर स्नान आदिसे पवित्र हो, कुशासनपर बैठकर ध्यानयोगमें स्थित हो, व्यासजीने धर्मपूर्वक महाभारत इतिहास के स्वरूपका विचार करतेहुए ज्ञानदृष्टि-द्वारा आदिसे अन्त तक सब कुछ प्रत्यक्षकी भांति देखा, [आदि, १।२८ के पश्चात दाक्षिणात्य पाठ २६।४०]।

शतशृंग—एक पर्वत, जहां गन्धमादन, इन्द्रद्युम्न और हंसकूटको लांघकर राजा पांडुने पदार्पण कियाथा और तपस्या कीथी, [आदि, ११८।५०]। यहीं पांचों पांडवोंका जन्म हुआथा। [आदि, १२२-१२३]। स्वप्नावस्थामें श्रीकृष्णके साथ कैलाश जातेहुए अर्जुनको मार्गमे शतशृंगपर्वत मिलाथा, [द्रोण, ८०।३२]

शैलोदा—मेरु मन्दराचलकी मध्यवर्ती एक नदी, जिसकी तटवर्ती म्लेछ जातियोंको अर्जुनने जीताथा, [सभा, २८।६ के पश्चात् दाक्षिणात्यपाठ पृ० ७४८]। इसके तटोंपर कीचक बांसों की छायामें रहनेवाले खस आदि म्लेछोंने राजसूय यज्ञमें

युधिष्ठरको पिपीलक नामक सुवर्ण भेंटकियाथा, [सभ ५२।२-४]। नागपुर परगनेमें तुगनाथके पासकी नदी।

शोणितपुर—बाणासुरकी राजधानी। शिव, कार्तिकेय भद्रकाली और अग्नि देवता इस नगरकी रक्षा करतेथे भगवान श्रीकृष्णने सबको जीतकर उत्तरद्वारमें प्रवेश किय [सभा, ३८।२९ के पश्चात दाक्षिणात्य पाठ,पृ० ८२१]

हिरण्यबिंदु—[आदि, २१४।४]।

हेमकूट—उत्तरदिशाका एक पर्वत जहा अर्जुनने अपन सेनाका पडाव डालाथा और वहासे वे हरिवर्ष गयेथे, [सभ २८।६ के पश्चात् दाक्षिणात्य पाठ]। (२) नन्दाके तटप दुर्गम पर्वत, जहा राजा युधिष्ठर भी आएथे। इसे ऋषभ कूट भी कहते हैं। यहा बिना वायुके ही बादल उत्पन्न हो और ओले बरसतेथे। वेदोंके स्वाध्यायकी ध्वनि सुना देतीथी, पर कोई दिखाई न देताथा, [वन ११०।१।१८]।

१९. महाभारतमें केदारखंडकी प्रमुख नदिया—

ऊपर हम देखचुकेहैं कि महाभारतकाल तक केदारखंड हिमालय धरतीपर परम पुनीत स्थान बनचुकाथा और इसके पग-पगपर तीर्थोंकी स्थापना होचुकीथी। उस समय इसक विस्तार कैलास और मानसरोवर तक समझाजाताथा। जिन नदियोंकी सहायतासे हमारे पूर्वज इस प्रदेशमें प्रविष्ट हुएहोंगे उनसे उनका परिचित होना और उनमें पूज्यभावकी स्थापना कर लेना सर्वथा स्वाभाविक था। महाभारतमें इस प्रदेशकी निम्न नदियोंका उल्लेख है।

अपरनन्दा—एक नदी, जिसका दर्शन अर्जुनने कियाथा [आदि, २१४।६-७]। युधिष्ठरने इसकी यात्रा कीथी, [वन

११०।१]। दैववंश—ऋषिवंशके साथ कीर्तिनीय पुण्य नदियों में इसका नाम भी आयाहै, [अनु, १६५।२८]।

अलकनन्दा, [आदि, १६६।२२]।

अश्वरथा—गन्धमादन पर्वतके नीचे आर्ष्टिषेणके आश्रमके पास बहनेवाली एक नदी, [वन, १६०।२१]।

आवर्तनन्दा—[अनु, २५।४५]

इन्द्रतोया—गन्धमादनपर्वतके निकट बहनेवाली एक नदी। यहां स्नान और तीन रात उपवासका फल अश्वमेधका पुण्य, [अनु, २५।११]।

इन्द्रद्युम्न सरोवर—गन्धमाधन पर्वतके समीपका सरोवर जहां पत्नियों सहित पांडु पहुचेथे. [आदि, ११८।५०]।

कालिन्दी, कालिन्दगिरिनन्दिनी यमुना—[सभा, ६।१८]। यमुना, सूर्यपुत्री, जो परम पावन नदीके रूपमें, कलिन्द पर्वत से प्रकट होनेके कारण कालिन्दी कहलातीहैं। यमुनाजीके द्वीपमें पाराशरजीने सत्यवतीके गर्भसे व्यासजीको उत्पन्न कियाथा, [आदि, ६०।२]। ये गंगाजीकी सात धाराओंमेंसे एक है, इनका जल पीनेसे पाप दूर होते हैं, [आदि, १६६।१६-२१]। जरासंधके मंत्री तथा सेनापति हंस और डिमकका यमुनाजीमें कूदकर प्राण त्यागना, [सभा, १४।४३-४४]। वन-गमनके समय पाडवोंका यमुनाजीके जलका सेवन करके आगे बढ़ना, [वन, ५।२]। सृंजयपुत्र सहदेवका यमुनातटपर लाख स्वर्णमुद्राओंकी दक्षिणा देकर अग्निकी उपासना करना [वन, ६०।७]। राजा भरतका यमुनाजीके तटपर ३५ अश्वमेध यज्ञोंका अनुष्ठान करना, [वन, ६०।८]। ये आर्चीक पर्वतके पास बहतीहैं। ब्रह्मऋषिसेवित पुण्यमयी नदी है। पापके भयको दूर भगातीहैं। इनके तटपर मान्धाता और दानव

सहदेवकुमार सोमक्ने यज्ञ कियाथा, [वन, १२४।२१-२६]। इनके तटपर नाभागपुत्र अम्बरीषने यज्ञ कियाथा, [वन, १२६।२]। अगस्त्यजीने यमुनातटपर घोर तपस्या कीथी, [वन,१६१।४६]। राजा शान्तनुने यमुनातटपर ७ बड़े-बड़े यज्ञोंका अनुष्ठान कियाथा, [वन, १६१।२५]। भारतकी प्रमुख नदी, [भीष्म ६।१४] भरतने यमुनातटपर एकबार १०० अश्वमेध यज्ञ किएथे,[द्रोण, ६८।८]। तथा (फिर दो सौ और)कुल ३०० अश्वमेध यज्ञ किएथे, [शान्ति २६।३६]।

— तमसा (टौंस) [भीष्म, ६।३१]।

नन्दा, अपरनन्दा—भाइयोंके साथ युधिष्ठरजीने लोमशजीके साथ नन्दा और अपरनन्दाकी यात्रा की। वे हेमकूट पर्वतपर आए और वहां अद्भुत बातें देखीं। यहां नन्दामें गोता लगानेसे मनुष्योंका सारा पाप तत्काल नष्ट होजाताहै, [वन, ११०।१-२१]।

मन्दाकिनी—उत्तराखंडमें गढ़वालकी केदारपर्वतमालासे निकलनेवाली 'मन्दाग्नि' या 'कालीगंगा' नामवाली नदी, जिसका जल भारतवासी पीतेहैं, [भीष्म, ६।३४]।

मालिनी—कण्वमुनिके आश्रमके समीप बहनेवाली एक नदी, जिसके दोनों तटोंपर कण्वमुनिका आश्रम फैलाहुआथा, और यह बीचमें बहतीथी, [आदि ७०।२१]। इसीके तटपर शकुन्तला का जन्म हुआथा, [आदि ७२ १०]

महागौरी [भीष्म ६।३३]

भागीरथी—इसके तटपर तर्पण करनाचाहिए, [वन, ८४।१४]।

जाह्नवी—गंगाका एक नाम [आदि ६६।४] गंगाजी जान्हवी पुत्रीभावको प्राप्त हुई, [अनु, ४।३]।

गंगा—देवनदी। वसुओंकी माता। भीष्मकी जननी। महर्षि वशिष्ठके शाप और इन्द्रके आदेशसे आठ वसुओंका गंगाजीके गर्भसे शान्तनुपुत्र होकर जन्म लेना, [आदि, ६७।७४; ६६,-६७-६८] इनके द्वारा नवजात शिशुओंका जलमें प्रक्षेप, [आदि, ६८।१३]। भीष्मका जन्म होनेपर उनके भी वधकी आशंकासे शान्तनुकी कड़ी फटकारसे गंगाजीका शान्तनुसे शापका रहस्य खोल कर भीष्मको लेकर अन्तर्धान होना, [आदि, ६६ अध्याय]। गंगा द्वारा भीष्मको पालपोस और सुशिक्षित करलेनेपर शान्तनुको सौंपना, [आदि, १००।३०-४०]।

गंगा प्राचीनकालमें हिमालयके स्वर्णशिखरसे निकलीं और सात धाराओंमें विभक्त हो समुद्रमें गिरी। इन सातोंके नाम गंगा, यमुना, सरस्वती, रथस्था, सरयू, गोमती और गंडकी हैं। इन धाराओंके जल पीनेवाले पुरुषोंके पाप तत्काल नष्ट होजातेहैं। ये गंगा देवलोकमें अलकनन्दा, और पितृलोकमें वैतरणी नाम धारण करतीहैं। इस मर्त्यलोकमें इनका नाम गंगा है। इनका-तीर्थ रूपसे वर्णन, [वन,८५।८८-६६]। इनका राजा भगीरथको वर देना, [वन, १०८।१५]। इनका भूतलपर गिरना, [वन, १०६।८]। इनके द्वारा समुद्रका भराजाना [वन, १०६-१८]। अग्निकी स्थानभूत नदियोंमें इनकी भी गणना, [वन, २२२।२२]। मेरुपर्वतके शिखरसे दुग्धके समान श्वेत धारवाली, विश्वरूप, अपरिमित शक्तिशालिनी, भयङ्कर वज्रपातके समान शब्द करनेवाली, परम पुण्यात्मा पुरुषों द्वारा सेवित पुण्यमयी भागीरथी गंगा बड़े प्रबल वेगसे सुन्दर चन्द्रमोह्रद (चन्द्रकुण्ड) में गिरतीहै। गंगा द्वारा प्रकट कियाहुआ वह ह्रद समुद्रके समान प्रतीत होताहै। भगवान शंकर इन्हें एक लाख वर्ष तक अपने मस्तक पर धारणकिएरहे। ब्रह्मलोकसे उतरकर त्रिपथगामिनी गंगा पहले हिरण्यशृंगके पास बिन्दुसरोवरमें

प्रविष्टहुई। वहींसे उनकी सात धाराएं विभक्त हुईं। जिनके नाम वस्वोकसारा, नलिनी, पावनी, सरस्वती, जम्बूनदी, सीतागंगा और सिन्धु हैं, [भीष्म, ६।२८-५०]। इनका भागीरथी नाम पड़नेका कारण, [द्रोण; ६०।६] इनका जह्नुकी पुत्रीके रूपसे प्रसिद्ध होना [अनु, ४।३]। गंगाजीमें स्नानका फल, [अनु. २५।३६]। इनकी महिमाका वर्णन, [अनु, २६।२६-६६]।

परशुरामजीसे युद्धके लिए उद्यत भीष्मजीको गंगाजीका डांटना, [उद्योग, १७८ ८६-८८]। परशुरामजीसे भीष्मकेलिए क्षमा मांगना, [उद्योग, १७८।६२]। परशुरामजीके साथ होनेवाले युद्धमें सारथीके मारेजानेपर गंगाका भीष्मका सारथी बनना, [उद्योग, १८२।१६]। इनका अम्बाको नदी होनेका शाप देना, [उद्योग, १८६।३६]। बाणशय्यापर पड़े भीष्मके पास महर्षियोंको भेजना, [भीष्म, ११६।६७-६८]। इनके द्वारा स्कन्दको कमंडलु-दान, [शल्य, ४६।५०]। अग्निद्वारा स्थापित किए गए शिवजीके तेजको इनका मेरुपर्वतपर छोड़ना, अग्निसे अपने गर्भके स्वरूप आदिका वर्णन, [अनु, ८५।६८;७२-७६] पार्वतीजीसे स्त्रीधर्मका वर्णन करनेकेलिए प्रार्थना, [अनु, १४६। २७-३२]। अपने पुत्र भीष्मकी मृत्यु पर शोक करना, [अनु, १६८।२३-२८]। भीष्मजीके धराशायी होनेपर वसुओंका गंगाजीके तटपर आकर अर्जुनको शाप देनेकी इच्छा प्रकट करना और गंगाजीद्वारा उनके इस विचारका अनुमोदन होना, [आश्व, ८१।१२-१५]।

रथस्था, (रामगंगा)—गंगाजीकी सात धाराओंमें से एक जिसके जल पीनेसे सभी पाप तत्काल नष्ट होजातेहैं, [आदि, १६६।२०-२१]।

इस प्रकार हम देखते हैं कि आज हिन्दुओंकी हिमालय, बदरीनाथ, भृगुतुंग (केदारनाथका उपरला शिखर), नन्दादेवी,

कैलास, मेरु, मन्दराचल आदि पर्वतों, गंगा, यमुना, रामगंगा, भागीरथी, जाह्नवी आदि नदियोंके सम्बन्धमें जो भावनाएं हैं, उनके सम्बन्धमें जो नाना प्रकारकी कल्पनाएं पाईजातीहैं, उनका सम्बन्ध, जिन देवताओं, ऋषि-मुनियों और महापुरुषोंसे जोड़ाजाता है, उस सबका निश्चय महाभारत-कालमें, आजसे २५०० वर्ष पहले होचुकाथा! आजके हिन्दुधर्ममें शिव, विष्णु, और दुर्गाकी, केदारनाथ, बदरीनाथ और नन्दादेवीके रूपमें, तथा द्रवित ब्रह्मकी गंगा-यमुनाके रूपमें उपासना सबसे अधिक महत्व रखतीहै। हिन्दुधर्मका सारा ढांचा इन्हींपर निर्भर है। वास्तवमें हिन्दु धर्म हिमालयकी ही देनहै।

२०. हिमालयमें पितृलोक और स्वर्गकी कल्पना—

"हिमालयके प्रति अत्यन्त प्राचीनकालमेंही देवत्वकी भावना बनजानेका कारण ढूंढना कठिन नहीं है। जब भारतीय आर्य उत्तर-पश्चिमके घाटोंसे धीरे-धीरे भारतमें प्रवेश कररहेथे और दक्षिणकी ओर सिन्धुउपत्यकामें और पूर्वकी ओर हिमालयके पादप्रदेशमें आगे बढ़रहेथे, तो उनके हृदयमें अपने उन ऊंचे पठारोंकी प्रेममयी स्मृति बनीरहीहोगी जिनके हिमशिखरोंकी छायामें वे रहाकरतेथे। हिन्दुस्थानके ऊष्ण अस्वास्थ्यकर मैदानोंसे जब उनकी दृष्टि हिमालयशिखरों पर पड़ीहोगी तो वे वहां अपनी जातिके प्राचीन निवासस्थानकी कल्पना करनेलगे और सोचनेलगे कि मृत्युके पश्चात हमें भी उत्तरके उसी पवित्र पितृलोकमें पहुँचनेका अवसर मिलेगा। उन्हें हिमालयपर्वत-शृंखलाएं प्रकृतिकी शक्तिकी सबसे महान विभूति प्रतीत हुई होंगी और शीघ्र ही वे उन्हें देवताओंके निवासस्थानोंके रूपमें पूजनेलगेहोंगे। जिस प्रकार भारतीय आर्योंके बन्धु यूनानी आर्य माउंट औलिम्पस पर देवलोककी कल्पना करतेथे, उसी

प्रकार भारतीय आर्योंने हिमालयमें अपने नये देवताओंका अपने प्राचीन इन्द्र, अग्नि और रुद्रदेवताओंसे तादात्म्य स्थापित किया। अत्यन्त प्राचीन कालसे ही साधु-महात्माओंने नीरवता और सौन्दर्यके इन महान भंडारोंतक पहुँचनेके मार्गोंका पता लगालियाथा। संस्कृत-धर्मग्रन्थोंमें उन सहस्रों ऋषि-मुनियोंकी गाथाएं बिखरीहैं जो हिमवन्त पर्वतपर जाबसेथे और जिनके नाम और स्मृतियां आजभी गिरिशिखरों, सरोवरों और नदतटोंसे जुड़ी मिलतीहैं" । [ओकले, होली हिमालय, १३०-३१]

२१. पुराणोंका हिमालय गढ़वाल हिमालय है—

पुराणोंसे ऐसा प्रकट होताहै कि महापर्वत हिमालयके विभिन्न भागोंमेंसे "हिमवन्त या हिमालय" गढ़वाल हिमालय-का नाम था। अनेक पौराणिक कथाओंसे यही सिद्ध होताहै। "कैलासके दक्षिण पार्श्व में स्थित नगाधिराज हिमालय है, जिसमें मन्दाकिनी, अलकनन्दा तथा नन्दा नामकी नदियां हैं। इसी पर्वत पर महादेव रुद्रका उमाके साथ विवाह हुआथा। वरांगना उमादेवीने यहीं कठोर तप कियाथा। किरातवेशमें महादेवने यहीं क्रीड़ा कीथी। इसी पर्वतपरसे महादेव-पार्वतीने समस्त जम्बूद्वीपका अवलोकन कियाथा।

"वहां, जो रुद्रदेवकी क्रीड़ाभूमि है, वह विविध भूतगणोंसे युक्त, विचित्र पुष्प-फल-सम्पन्न और आनन्दमय है। इस शैलदेशमें गिरिगुहानिवासनी, मनोहारिणी, प्रसन्नवदना, सुनयना, कृशोदरी, सुन्दरी किन्नरियां सदा रमण किया करतीहैं। यहां विशालाक्ष यक्ष, सुन्दर गंधर्व और अन्यान्य अप्सरायें सदा आनन्द मनातीरहतीहैं।

"यहीं सब लोकोंमें विख्यात उमावन है। जहां भगवान शंकरने आधे शरीरसे नर और आधे शरीरसे नारी रूप धारण कियाथा। यहीं शरवन भी है, जहां कार्तिकेय उत्पन्न हुयेथे। यहीं रहकर उन्होंने क्रौंच-शैलवनको विदारण करनेकेलिए उत्साह प्रकट कियाथा। चित्र-विचित्र पुष्पकुंजोंसे युक्त क्रौंच-पर्वत-प्रान्तमें देव शत्रुओंके संहारकर्त्ता कार्तिकेयने यहीं अपनी शक्ति छोड़ीथी। यहीं पर इन्द्रादि श्रेष्ठ देवों द्वारा कार्तिकेय देवताओंके सेनापति बनाएगएथे, और उनका अभिषेक हुआथा। हिमालयके मनोहर पृष्ठभागमें, जो नाना भूतोंसे संकुल हैं,कुमार कार्तिकेयकी पांडुशिला, नामक एक क्रीड़ाभूमि है। उसके रमणीय पूर्वीय प्रांतोंमें सिद्धोंका निवास-स्थान कहागयाहै, जिसका नाम विद्वानोंने 'कलापग्राम' रखाहै।

"मृकंड, वशिष्ठ, भरत, नल, विश्वामित्र, उद्दालक आदि विप्रर्षियोंके तथा कठोर तपस्या करनेवाले कितनेही पवित्रात्मा ऋषियोंके उस हिमालयपर सैकड़ों आश्रम हैं। [त्रिपाठी, वायुपुराण, अ० ४१, पृ० १११]

"हिमालयका महत्त्व मुख्यतया इसमें बदरी और केदारके महान् मन्दिरोंके कारण है, जो विष्णु और शिवके स्वरूप हैं और जिनका अधिकांश हिन्दु जनताके हृदयपर आज भी अटल अधिकार है। उनके लिए गढ़वाल (कुमाऊं) हिमालय उसी प्रकार देवभूमि है, जिस प्रकार फिलस्तीन ईसाइयोंकेलिए है। गढ़वाल हिमालयमेंही हिन्दुओंके पूज्य पुरुषोंने अपने जीवनका महत्वपूर्ण भाग बितायाथा,यहीं उनके महान् देवताओं-का निवासस्थल है, और यहींसे होकर मुक्तिके 'महापन्थ' का मार्ग जाताहै। यह विश्वास आज भी जीवित विश्वास है। और प्रति वर्ष सहस्रों [अब एक लाखसे अधिक] व्यक्ति इन

मन्दिरोंके दर्शन करके गढ़वाल हिमालयमें अपनी पूज्य भावनाका परिचय देतेहैं ।" [एटकिनसन, हिमालयन डिस्ट्रिक्टस]

अध्याय ३

सर्वतीर्थमयी गंगा

१. तीर्थकी कल्पना—

आरम्भमें 'तीर्थ' और 'तट' शब्द समानार्थक थे। प्राचीन-कालमें समुद्रतटपर स्थित बन्दरगाहोंके लिए तीर्थ शब्दका प्रयोग होताथा। उस कालमें ताम्रलिप्ति [तमलुक, जिला मेदिनीपुर] प्रधान "तीर्थ" था। दूसरे तीर्थ पलूरा [गोपालपुर, जिला गंजाम] के पास 'मछलीपट्टम आदि अनेक तीर्थ थे। जातकोंमें 'तीर्थ' शब्दका प्रयोग 'पत्तन' या नहानेका घाट' के लिए भी दिखाईदेताहै। महासुपिन जातक [जातक, १,५८४] में पुष्करिणी के चारों ओर तीर्थ (पत्तन) का उल्लेख है। इसी अर्थमें इस शब्दका प्रयोग मंगलजातक, [जातक, १,५२८] मे भी मिलताहै। इस प्रकार 'तीर्थ' का संबंध 'जल' और 'स्नान' से सदा बना-रहा और आज भी हिन्दु, बौद्ध, जैन और सिखोंके तीर्थोंका जल और स्नान से संबंध अविछिन्न चलआताहै।

२. देवस्थान—

तीर्थमें स्नान और देवस्थान दोनोंका समावेश होताहै। "जहां उत्तम जल और वायु हो, ऐसे स्थानों पर चाहे वे किसीके बनाएहों, अथवा प्रकृतिसे ही बनेहों, देवता निवास करतेहैं। जिन सरोवरोंमें कमल हों, जिनमें हंस कारंडव क्रौंच और चक्रवाक शब्द करतेहों, जिनके किनारोंपर निचल वृक्षोंकी

छाया में, जलके जीव विश्राम करतेहों, वहां देवताओंका वास होताहै। वनके निकट नदी, पर्वत और झरनोंके समीपकी भूमि में नित्य देवता रमण करतेहैं, और उपवनोंसे युक्त नगरोंमें भी देवता विहार करतेहैं।" [वराहमिहिर, बृहत्संहिता, अ० ५६ श्लोक ३ से ८, पृ० ३५०-५१]।

३. गंगामें तीर्थ—

तीर्थ-भावनाका सर्वोत्तम विकास गंगाजीके रूपमे दिखाई-दिया। भारत के वक्षस्थलपर उपवीतके समान गंगाजीने १५०० मीलतक, देशके एक छोरसे दूसरे छोरतक जितने विस्तृत क्षेत्रमे और जितनी अधिक जनसंख्याको 'तीर्थ'—तटपर स्नान करनेकी सुविधा दी, उतनी सिन्धु या ब्रह्मपुत्रके द्वारा, या भारतकी किसी अन्य सरिताके द्वारा संभव न होसकी। गंगाजीके तट पर पग-पग पर अति प्राचीन कालमे ही, इसीलिए तीर्थोंकी शृंखलाएं छागई। हिमालयकी इस पुत्रीने हिमालयको भी तीर्थ बना दिया, देवत्व प्रदानकरदिया।

"इसमे कोई सन्देह नहीं कि हिमालयके इस भाग [गढ़वाल-कुमाऊं] को पवित्र मानाजानेका कारण इसकी वह उपयोगिता है, जो इसे उस महान गंगाजीका स्रोत बननेसे मिलीहै जो हिन्दुस्थानके प्यासे मैदानोंको जल प्रदानकरतीहै। उष्णकटिबन्धीय देशोंमें जल सबसे दुर्लभ और बहुमूल्य वस्तु है। मनुष्यके जीवनमें जलका "जीवन" नाम सार्थक है। और अनुमान लगायागयाहै कि हिन्दुस्तान जैसे देशकी जनता-की बातचीतमें आधा भाग केवल जलकी चर्चासे संबंध रखता-है। इसलिए यह स्वाभाविकही है कि हिन्दुस्थानकी नदियों, विशेष कर गंगाजीकी उत्पत्ति और महत्ताके संबंधमें अनेक रोमांचकारी और अतिरंजित गाथाएं उठखड़ीहुईहैं। इस प्रदेश-

से अनेक गधेरे-नाले और नदिया अपना जल लेकर गगाजीका जल-भंडार बढातीहैं" (और उसकी-सी पवित्रता और 'गंगा' नाम प्राप्त करगईहै।) [ओक्ले, होली हिमालय, १३३]

४. गगा ससारकी पुनीततम सरिता—

सर विलियम हटरने हिन्दुस्थानके संबधमे अपने एक प्रसिद्ध लेखमें निम्नलिखित भावपूर्ण पंक्तिया लिखीथी जिनसे प्रकट होताहै कि हिन्दुस्थान निवासियोंके आर्थिक जीवनके लिए गंगाजी कितनी महत्वपूर्ण है। "धरतीकी समस्त प्रमुख नदियोंमेसे एक भी उस पवित्रताको नहीं प्राप्त करसकीहै, जो उस गगाजीको प्राप्त हुईहै, जिसे हिन्दूलोग प्रेमसे 'गंगामाता' कहतेहैं। हिमालयमे गगाके स्रोतसे लेकर बंगालकी खाडीमे उसके मुहाने तक, उसके तट पर पवित्र स्थल है। जहा-जहा उसमें उसकी सहायक नदिया मिलतीहैं, वहा-वहा और भी अधिक पवित्र स्थान, प्रयाग, मानेजातेहैं। प्राचीन गाथामे बतलायागयाहै कि नगाधिराज हिमालय और मेनका अप्सराकी पुत्रीने किस प्रकार सहस्रो वर्षोंकी प्रार्थना और तपस्यासे गंगाजीको मनालिया कि वे इस पापपूर्ण धरतीपर अपना पुनीत प्रभाव बरसानेकेलिए उतरपडे। उसके सारे मार्ग-प्रदेशके सबधमे बडी मधुर गाथाए गूंजतीहै। उसकी सहायक-नदियोंकी नामावली और उसके तटवर्ती ग्राम-नगरोकी नामावलीके आधारपर पुराण-गाथाओंकी बृहद सूची बनसकतीहै। अब भी अनेक व्यक्ति गगाजीकी प्रदक्षिणा करतेहैं, जिसमे वे गगाके स्रोतसे लेकर उसके मुहाने तक और मुहानेसे स्रोत तककी यात्रा छै वर्षमें पैदल चलकर पूरी करतेहैं और इनमेसे कुछ अधिक श्रद्धालु भक्त तो इस यात्रामें, कुछ मुख्य-मुख्य स्थानों पर लेटकर खिसकतेहुए यात्रा करतेहैं। मुख्य पर्वोंपर गंगाजीमे स्नान

करनेसे पाप धुलजातेहैं और जिन्हें यह सौभाग्य प्राप्त होजाता-है, वे अपने उन बन्धुबान्धवोंके लिए, जिन्हें यह सौभाग्य न मिलसकाहै, बोतलोंमें भरकर इस देशके कोने-कोनेमें गंगा-जल लेजातेहैं। लाखों-करोड़ोंकी केवल यही अभिलाषा होती-है कि गंगाजीके तटपर ही प्राण छूटें। [ओकले द्वारा होली हिमालय, १३३-३४ में उधृत]।

५. हमारी गंगाभक्ति पर विदेशी विस्मित—

यूरोपनिवासी जब हिन्दुस्थानमें आकर हिन्दुओंकी अपार गंगा-भक्ति देखतेहैं तो विस्मय-विमुग्ध होजातेहैं।' अगरेजीमें कभी-कभी कोई भावुक कवि समुद्रके लिए अपने सवारको पहचानने वाला घोड़ा, कहडालतेहैं, जिसे समझना अंगरेजों के मानसिक संस्कारके लिए बहुत कठिन नहीं है। किन्तु यह देखनेकेलिए कि करोड़ों जनसंख्यामेंसे किस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति एक नदीको जीवित 'माता' कहकर पुकारताहै, उसे 'महारानी' कहताहै तथा यह विश्वास करताहै कि वह नदी, जो कुछ वे कहतेहैं, सुनतीहै और समझतीहै तथा उनके सारे कार्यकलापोंमें उनकी रक्षाकरती है, हिन्दुस्थानमें आनाचाहिए। नदीकी मूर्ति के रूपमें मन्दिरमें पूजा नहीं होती और न जनताके इस अन्धविश्वासका लाभ उठानेकेलिए उन्हें कोई पुजारी प्रेरित करताहै। वास्तवमें ये लोग नदीको ही, जैसे गंगाजीको सम्बोधित करतेहैं, गंगानदीमें रहनेवाली अथवा गंगानदीकी अधिष्ठात्री किसी देवीको नहीं। नदीकी जलधाराकी ही देवीके रूपमें पूजा कीजातीहै। यही नदी उनकी प्रार्थना सुनतीहै"। [स्लीमैन, रैम्बल्स एँड रिकलेक्शन्स, खंड, १, पृ० १८-१६]

६. गंगाजीके स्मरण-मात्रसे—

"जो लोग नित्य गंगाजीमें स्नानकरनेका पुण्यावसर नहीं निकालपाते, वे केवल दर्शन करने अथवा स्पर्श एवं आचमन

करनेकेलिए थोड़ा-सा गंगाजल लेजाकर अपने घरोंमें रखतेहैं। और ऐसे लोगोंकी संख्या करोड़ोंमें है। यहां तक तो बात कुछ समझमें आतीहै, किन्तु उन लाखों-करोड़ों धार्मिक व्यक्तियोंकी अगाध श्रद्धापर विचार करते समय विस्मयविमुग्ध होनापड़ताहै जो स्नान-पूजादिके समय गंगाजलके अभावमें केवल गंगाजी का नामस्मरण करलेतेहैं। इस प्रकार प्रतिदिन इस विशाल देशमें करोड़ों व्यक्तियों द्वारा संस्मृत, ध्यानावस्थित, पूजित, मज्जित और पीत, गंगाजीकी महिमाकी समानता भला विश्वमें कौन नदी करसकतीहै? यही कारण है कि कल्पनातीत प्राचीन कालसे लेकर आजतक गंगाकी महिमासे हमारे साहित्यका जितना अंचल भरागयाहै, उतना किसी अन्य नदीकी महिमासे नहीं।" [दयाशंकर दुवे, पुराणोंमें गंगा, भूमिका, ख]

७. गंगा-संस्कृति—

सच पूछो तो हिन्दुस्थानकी संस्कृति गंगा-संस्कृति है। केवल इसीलिए नहीं कि गंगाजीने हिन्दुस्थानका महा मैदान बनायाहै और गंगाजीके तटपर भी आदिम सभ्यताका उदय हुआ, वरन् इसलिए भी कि कश्मीरसे लेकर कन्या कुमारी तक और पश्चिमी सागरसे लेकर पूर्वी सागर तक, सारे देशका जीवन, जन्मसे मृत्युतक गंगाजीसे सबंधित है। "भारतीय संस्कृति और सभ्यताके उत्कर्षकी चर्चा करतेहुए श्रीगंगाजीके महत्वको गौण कारण नहीं कहाजासकता। वह न केवल हमारे ही देशकी सबसे महान् और पवित्र नदी है, किन्तु विश्वकी सर्वश्रेष्ठ नदियोंमें अपने अनेक विशिष्ठ गुणोंके कारण वह सर्वप्रथम स्थान रखतीहै। जिस प्राचीन भारतीय सभ्यता और संस्कृतिकी चर्चाकरते हुए आज भी हम अपने अतीतका गौरवपूर्वक स्मरण करतेहैं, उस सभ्यता और संस्कृतिको सर्व-

लोकोपकारिणी बनानेमें श्रीगंगाजीकी लहरोंने ही सर्वप्रथम मानवहृदयको मंगल प्रेरणादीथी । हमारे इस विशालदेशके पावन जीवनमें गंगाजीकी निर्मल धारा कल्पनातीत प्राचीनकाल-से अपना महत्वपूर्ण स्थान रखतीहै । हिन्दुओंकेलिए तो वह धरतीपर बहकर भी आकाशवासी देवताओंकी नदी है और इस लोककी सुखसमृद्धियोंकी विधात्री होकर भी परलोकका संपूर्ण लेखाजोखा सवांरनेवाली है ।" [दयाशंकर दुबे, पुराणों मे गंगा, भूमिका, क]

८. नदी-रूप मे भी गंगाजीकी महत्ता—

यदि हम गंगाजीको केवल साधारण नदीरूप में ही देखें तो भी "गंगाजीके समान कोई ऐसी अन्य नदी नहीं है, जिसका इतना विशाल ऐतिहासिक, आर्थिक और वैज्ञानिक इतिहास हो । परम प्राचीनकालसे ही यह भारतकी राजधानियोंको बसाने-वाली नदी थी । कितने ही राज्योंके आविर्भाव, उत्थान और पतनमें, इसकी चंचल लहरोंका हाथ रहाहै । बड़े-बड़े साम्राज्यों का वैभव-विलास इसके पावनतटों पर ही संभव हुआहै, और इसीके कूल-कगारों पर आर्य-सभ्यताने अपनी उन्नतिके सुनहरे दिन देखेथे । हस्तिनापुर, कान्यकुब्ज, प्रतिष्ठानपुर, काशी, पाटलीपुत्र, चम्पा आदि प्राचीन ऐतिहासिक राजधानियोंने अपने गौरवपूर्ण दिन इसीके तटपर देखेहैं । इसी प्रकार इसीके तटपर वे सुप्रसिद्ध युद्ध भी हुए जो नवनिर्माणके कारण बने । गंगातटकी उर्वरता अति प्रसिद्ध है । साथ ही अनेक महानदियोंका संगमस्थल होने के कारण नौ-व्यवसायमें यह देशकी सबसे बड़ी उपकारक नदी रहीहै । रेलवेकी स्थापनाके पूर्व गंगाका महत्व व्यवसायिक दृष्टिसे भी सर्वोपरि था । इसके ३ लाख

६१ हजार १ सौ वर्गमीलके उपजाऊ कछारकी समानता संसारकी किसीभी अन्य नदीका कछार नहीं करसकता। यह बात ध्यान देने योग्य है कि समूचे भारतवर्षकी जनसंख्याका एक तिहाई भाग गंगाके तटवर्ती प्रान्तोंमें निवास करताहै। भारतवर्षकी चालीस करोड़ जनसंख्यामेंसे लगभग चौदह करोड़ व्यक्ति गंगाके कछारोंमें बसतेहैं। इसका परिणाम यह हुआहै कि नवीन वैज्ञानिक साधनोंका जितना जाल गंगातटपर बिछाहै, उतना देशकी किसी अन्य नदीपर नहीं। देशके अनेक प्रख्यात नगर, कलकत्ता, पटना, काशी, प्रयाग, कानपुर, मुरादाबाद, हरिद्वार इसीके तटपर अवस्थित हैं, जिनका आजके वैज्ञानिक युगमें बहुत महत्त्व है।" [दयाशंकर दुबे, पुराणोंमें गंगा, भूमिका, ज-झ]

९. नाम-सौन्दर्य—

हिन्दुस्थानकेलिए धार्मिक और आर्थिक, ऐतिहासिक और सांस्कृतिक, सभी दृष्टियोंसे इतनी महत्त्वपूर्ण गंगाजीके सम्बन्ध में अति सुन्दर भावनाओंकी सृष्टि स्वाभाविक थी। "हिमालयमें गंगाकी द्रोणीकी भौगोलिक छानबीन ईसासे सैकड़ों वर्ष पहले आर्यलोग करचुकेथे। उन्होंने नदीका नाम गंगा रखा और उसे हिमवंतकी पुत्री कहा। हिमालयमें गंगाकी दो शाखानदियोंको उन्होंने अलकनन्दा और भागीरथी नाम दिया। रामायणमें गंगाको समुद्र-पत्नी कहतेहुए अत्यन्त पवित्र और पापहारिणी कहागयाहै। हिमालयके भी किसी अन्य प्रदेशमें भौगोलिक नामोंका कहीं ऐसा काव्यमय सिलसिला नहीं मिलता और न संसारमें कहीं अन्यत्र भूगोलिक नामों की इतनी मूल्यवान और प्राचीन निधि पाईजातीहै। ये नाम प्राचीन भूगोल शास्त्रियोंकी कलाके अद्भुत उदाहरण हैं। अर्वा-

चीन भूगोल इन नामोंकी प्रशंसा तो करता ही है, इनसे ईर्ष्या भी करताहै।" बराडे-हेडन. ए स्केच ऑव दि ज्योग्राफी ऍंड दि ज्योलोजी ऑव दि हिमालय, भाग. ३, पृ० ८०]

१०. गंगाजीके प्रति पूज्य भावनाका इतिहास—

गंगाजीके प्रति पूज्य भावना वेदसे भी प्राचीन है। ऋग्वेद के नदीसूक्त (१०।७५।५) में हमें पहली बार गंगाका उल्लेख-मिलताहै। पर इससे शताब्दियों पहले ही गंगाजीमें पूज्यभावकी कल्पना करलीगईथी। क्योंकि इस सूक्तमें कहागयाहै "हे गंगा, यमुना, सरस्वती! हे शुतुद्रि! परुष्णीके सहित तुम मेरे स्तोत्रको सुनो! हे मरुद्वृधा और आर्जीकीया, असिक्नी, वितस्ता और सुषोमाके साथ मेरी स्तुति सुनो।"

इमं मे गंगे यमुने सरस्वति,
शुतुद्रि स्तोमं सचता परुष्ण्या।
असिक्न्या मरुद्वृधे वितस्तयार्जीकीये,
शृणुह्या सुषोमया ॥१०।७५।५॥

ऋग्वेदमें गंगाजीका उल्लेख दूसरी बार ६।४५।३१ में आता-है। वेदोंके अतिरिक्त वैदिक साहित्यके दूसरे अंगों में गंगाजीकी चर्चा कम नहीं है। शतपथ ब्राह्मणके १३।५।४।११, जैमिनीय ब्राह्मणके ३।१८३, और तैत्तिरीय आरण्यकके २।१०, मे गंगाजी-का उल्लेख कियागयाहै। वैदिककालमें केवल गंगा-यमुनाके प्रति पूज्यभावनाका ही विकास न हुआथा, वरन् इन पवित्र नदियोंके तटोंपर ऋषिमुनियोंने अपने आश्रम बनाने आरम्भ करदिएथे। श्रद्धालु जनता इन तीर्थोंमें जाने, ऋषि-मुनियोंका दर्शन करने और उनसे आशीर्वाद मांगनेलगगईथी, उसी प्रकार, जिस प्रकार आज। "नमो गंगायमुनयोर्मध्ये ये वसन्ति ते मे प्रसन्नात्मानश्चिरं जीवितं वर्धयन्ति। नमो गंगायमुनोर्-

निभ्वश्च नमो नम"। गंगा और यमुनाके मध्यमें निवास करनेवाले मुनियोंको नमस्कार है। वे हमारी आयु और जीवनकी वृद्धि करें। [तैत्तिरीय आरण्यक, द्वितीय प्रपाठक, २० अनुवाक]

११. रामायणमें गंगा-गौरव--

महाभारतमें हम गंगाजी-सम्बन्धी सारी भावनाओंका पूर्ण विकास देखचुके हैं। यही बात वाल्मीकि रामायणमें देखीजाती है।

गंगातट पर शृंगवेरपुर बसाथा [१।१।२६] उसके निकटही तमसा बहतीथी, [१।२।३]। गंगाजी और सरयूतटपर ऋषियोंके आश्रम थे। यह त्रिपथगा नदी है [१।२३।५-६]। महादेवजीने पहले गंगातटपर तपस्या कीथी। [१।२३।१०]। जब कंदर्प महादेवजीको उद्वेलित करनेलगा तो यहीं शिवजीने उसे भस्म कियाथा [१।२३।१०-१४] राम और लक्ष्मणने गंगाजीको पार करते समय प्रणाम किया [१।२४।११]। गंगातटपर विश्वामित्रके आश्रमसे उत्तरकी ओर सिद्धाश्रम था [१।३१।१५]। गंगाजी सरिताओंमें श्रेष्ठ, मुनिओंसे सेवित, पुण्यसलिला जाह्नवी है [१।३४।६-७]। विश्वामित्रने गंगाजीमें स्नान करके तर्पण किए, यज्ञकी अग्नि प्रज्वलित की और अमृतके समान हविका भोजन किया [१।३४।८-१०]। विश्वामित्रने रामचन्द्रजीको गंगा-उत्पत्तिकी कथा सुनाई [१।३४।१०-१२]। गंगाजी हिमवान और मेनाकी जेष्ठ पुत्री हैं और धरतीपर अनुपम सौन्दर्यवाली हैं, [१।३४।१३-१४]। अपने कल्याणकेलिए देवताओंने त्रिपथगा गंगाजीको हिमवानसे मांगा [१।३४।१६] हिमवानने लोकपावनी स्वच्छन्द पथगा गंगा लोकहितकेलिए देदी [१।३५।१७]। गंगाजी सर्वलोक नमस्कृता और विपापा

जलवाहिनी है [१।३५।२१-२२]। ब्राह्मणोंने कहा—गंगाजी देवताओंके सेनानीको जन्म देगी [१।३७।७-८]। अग्निने गंगाजीको देवताओंकी सन्तुष्टिकेलिए गर्भ धारण करनेकेलिए कहा [१।३७।१२]। अग्निने गर्भको गंगाजीको स्थान्तरित करदिया [१।३७।१३-१४] गंगाने अधिक समय तक उस गर्भको धारण करनेमें असमर्थता प्रकटकी तो अग्निने हिमवान्के निकट गंगाजीसे गर्भको निकालदिया। [१।३७।१५-१८]। गरुड़ने अंशुमानको कहा, अपने पितरोंके उद्धारकेलिए गंगाजलसे तर्पण करो [१।४१।१६-२०]। भगीरथने गगाजीको प्राप्त करनेकेलिए ब्रह्माकी उपासना की [१।४२।१२।१६]। केवल शिवजी ही उसे धरतीमें गिरनेसे रोकसकतेहैं [१।४२।२४]। "ज्योंही शिवजीने गंगाजीको अपने शिरमें रोकनेकी सोची, त्योंही वह परम दुर्धरा हैमावती बड़े वेगसे शिवजीके शिरपर कूदपड़ी और उन्हें अपने साथ पाताल वहालेजानेकी इच्छा करनेलगी [१।४३।३-६]। गगाजीकी ऐसी इच्छाको जान शिवजीने गंगाजीको बरसोंतक अपनी जटाओंमे रोकलिया [१।४३।७-६]। भगीरथकी प्रार्थनापर शिवजीने गंगाजीको विन्दुसरमें छोड़दिया [१।४३।१०-११]। वहांसे गंगाजी ७ धाराओं में बंटगई ह्लादिनी, पावनी, नलिनी बनकर पूर्वकी ओर, सुचक्षु, सीता और सिन्धु बनकर पश्चिमकी ओर बह गई और सातवीं दिव्य रथमें बैठकर भगीरथके पीछे चली [१।४३।१२-१४]। गंगावतरणको देवर्षि, गंधर्व, यक्ष, सिद्ध और देवताओंने अशान्त होकरदेखा [१।४३।१७-१६]। कभी गगाजी तीव्रवेगसे, कभी मन्दगतिसे, कभी ऊपर उछलकर, कभी नीचे धँसकर बहतीथी। कभी गंगाजी ऊपर उछलती और फिर नीचे गिरकर चलतीथी, [१।४३।२३-२५]। जो जल शिवके ऊपर गिराथा उसे ऋषि, गंधर्व आदिने पुनीत माना। जो पापी स्वर्गसे पतित

हो चुकेथे, वे गंगाजीमें गोता लगाकर पुनः स्वर्ग चलेगए। लोग पापोंसे मुक्त होगए और ज्योंही गंगास्नान करतेथे आनन्दमग्न होजातेथे [१।४३।२६-३०] । भगीरथीके पीछे-पीछे गंगाजी चलतीथी, उसके पीछे देव, ऋषि, दैत्य, दानव, राक्षस, गंधर्व, यक्ष, किन्नर, नाग, सर्प और अप्सराएं चलरहीथीं, उनके पीछे जीवजन्तु चलरहेथे। [१।४३।३१-३३] । गंगाजी द्वारा जह्नु का यज्ञस्थल बहादिएजानेके कारण जह्नु ने क्रोद्ध होकर गंगाजीको पीडाला [१।४३।३४-३५] । देव, गन्धर्व और ऋषियोंकी प्रार्थना पर जब जह्नु ने कानोंके मार्गसे गंगाजीको निकाला तो उसका नाम जाह्नवी होगया [१।४३।३८] । गंगाजी द्वारा सगर-पुत्रोंका उद्धार [१।४३।४१], गंगाजीका भगीरथी नामकरण [१।४४।५] सीता,राम और लक्ष्मणका गंगाजीको प्रणाम करना [२।५२। ७६], गंगा-यमुना-संगम पर भरद्वाज-आश्रम [२।५४।८] । आकाशमें बहनेवाली आकाशगंगा [७।२३।१३-१४]

वाल्मीकि रामायणसे भी स्पष्ट है कि गंगावतरण, गंगाजी द्वारा सगरपुत्रोंका उद्धार, गंगाजलमें पापियोंके उद्धारकी शक्ति, गंगाजल द्वारा तर्पण आदिके संबंधमें आज जो विश्वास हैं, वे वाल्मीकिसे पहिलेसे चले आरहेहैं।

१२. पुराणोंमें गंगा-गौरव---

पुराणोंमें तो गंगा-ही-गंगा है। मानों पुराणोंकी रचना ही गंगाजीके यशोगानके लिए कीगईहो। गंगाजीकी साधारण चर्चा तो प्रायः सभी पुराणों में मिलतीहै, पर निम्नलिखित पुराणोंमें विस्तृत चर्चा मिलतीहै।

ब्रह्मपुराण—अध्याय ८,७१, ७३ से ७८ तक, ६०,१०५,१०७, ११३,१७२ से १७५ तक।

पद्मपुराण—स्वर्गखंड १६, उ० खंड. २३।

विष्णुपुराण, ८, ४।
शिवपुराण, ज्ञानसंहिता, अध्याय ५३, ५४।
मत्स्यपुराण, अध्याय १०५।
श्रीमद्भागवत् पुराण, अध्याय, १६,१७।
देवीभागवत पुराण, अध्याय ३ से ७ तक, ११ से १४ तक
वृहन्नारदीय पुराण, अध्याय ६, से ११ तक १६,३८ से ४३ तक।
मार्कंडेयपुराण, अध्याय, ५६।
अग्निपुराण, अध्याय ७० से ७२ तक।
ब्रह्मवैवर्तपुराण, प्रकृतिखंड, अध्याय ६, १० से १२ तक।
गणेशखंड, ३, श्रीकृष्णजन्मखंड, ३४-३५।
लिंगपुराण, पूर्वभाग, ५२।
वराहपुराण, अध्याय, १७१।
भविष्यपुराण, प्रथम भाग, अध्याय २१-२२, द्वितीय भाग अध्याय, १७।

स्कन्दपुराण—देवकांड, दक्षखंड, २१-२५; पष्ठ सौर संहिता ६-३०; अम्बिकाखंड, १२६-१२८; काशीखंड २७ से २६; रेवाखंड, १२, ३४; अवन्तीखंड, ४६, ७३ नागरखंड, तीसरा परिच्छेद, २२, २३,५५,५६, प्रभासखंड, १६६, १८६।

ब्रह्मांडपुराण—अध्याय ४६।

वामनपुराण—अध्याय ३४।

वृहद्धर्मपुराण भी गंगाजीके गुण-गानसे भरा है।

[उमाशंकर दुबे,पुराणोंमें गंगा, भूमिका, प]

संक्षेपमें कहाजासकताहै कि हिन्दुओंका सारा धार्मिक साहित्य एक प्रकारसे गंगासाहित्य है, इनकी संस्कृति गंगा संस्कृति है और इनका जीवन गंगामय जीवन है।

१३. गंगाजीके भव्यदर्शन—

"यद्यपि गंगाजीका शान्त स्वरूप, जो मैदानमें दिखाईदेता है, कम मोहक नहीं है, पर उसके भव्यदर्शन उसकी हिमालय-वर्तिनी अलकनन्दा धारामेंही होतेहैं। एक प्रकारसे भारत गंगामाताका देश है। पर जब आप अलकनन्दाके तटसे होकर बद्रीनाथकी यात्रा करतेहैं, केवल उसी समय आपको यह ज्ञात होसकताहै कि देवता और मानव क्यों गंगाजीकी पूजा करतेहैं, क्यों प्राचीन साहित्यमें उसे सुरनदी कहागयाहै और क्यों शताब्दियोंसे गंगाजीकी विश्वतारिणीके नामसे स्तुति, पूजा और उपासना होतीरहीहै।" [मुंशी, टु बदरीनाथ, ६]।

"अलकनन्दाकी महिमा तीन प्रकारसे है। यह पवित्र नदी गंगाजीकी उद्गम है। यही पवित्र नदी पथप्रदर्शकके रूपमें यात्रीको बदरीनाथका मार्ग दिखातीहै, और ब्रह्मकपालमें यही पवित्र नदी हमारे पूर्वजोंके पास पिंड-तर्पण लेजातीहै।" [मुंशी, टु बदरीनाथ, ८]

१४. गंगाजीका नित्य नवीन सौन्दर्य—

"अलकनन्दा क्षण-क्षणमें नया रूप धारण करती और क्षण-क्षणमें नया सौन्दर्य प्रदर्शित करतीहै। कभी हम उसे कम गहरे और चौड़े प्रदेश में वेगसे बहतेपातेहैं, तो वह कभी अत्यन्त संकीर्ण घाटीसे होकर भीषणतासे दौड़ती दिखाईदेतीहै। कभी उसमें नवीन दूध जैसे उफान उठतेहैं तो कभी वह मटमैली और गंदली मिलतीहै। कभी वह दो गगनचुम्बी शिखरोंके पादप्रदेशसे संकीर्ण धारामें बहती दिखाईदेतीहै, तो कभी वह लजालू-सी छिपजातीहै। और केवल उसकी मन्द कलकल ध्वनिसे ही उसके छिपेहुए जलकी सूचना मिलतीहै। कभी उसमें हरे-नीले झरनेका जल गिरताहै। तो कभी दूध-जैसे ऊफान

वाली सरिताका। कभी वह भारी शिलाओंको लांघती, कभी उनके चारों ओर नाचती और कभी एक चट्टानसे दूसरी चट्टान तक उछलती-कूदती चलती है। कभी तो वह कोलोराडोके केनान जैसे गहरे गर्तोंमें डूबी मिलती है, तो कभी भारी हिमखंडोंके नीचे दबीहुई, अदृश्य होजातीहै।" [मुंशी, टु बदरीनाथ, ८]।

सचमुच जिसने पहले-पहल गंगाओंमें देवत्वकी कल्पनाकी होगी उसे अलकनन्दाके दर्शन करने और उसपर मुग्ध होनेका अवसर अवश्य मिलाहोगा।

१५. गंगाजीकी मूर्ति, मुद्राओंपर—

गंगाजीका सबसे प्राचीन अंकन राजस्थानकी प्राचीनतम मुद्राओंमें मिलताहै, जो आकारमें चौकोर या गोल हैं और नाना प्रकारके चित्रोंसे चित्रित हैं। इनमें कोई लेख नहीं है, पर मनुष्य, पशु, पक्षी, सूर्य, चन्द्र, धनुष, बाण, स्तूप, बोधिद्रुम, स्वस्तिक, वज्र, मेरुपर्वत और गंगानदीका अंकन मिलताहै। [ओझा, राजपूतानेका इतिहास, खंड १, पृ० ३८]

गुप्तकालकी मुद्राओंमें गंगाजीको मुद्राओंपर कलापूर्ण ढंगसे अंकन करनेका प्रयत्न पायाजाताहै। समुद्रगुप्तकी व्याघ्र-निहंता प्रकारकी मुद्राओंमें देवी मकरपर खड़ीहै। जिससे प्रकट होताहै कि कलाकार मुद्राओंमें पहलेसे आनेवाली देवीके चित्रके स्थानमें गंगाजीका चित्रण कररहाथा। [अलतेकर, गुप्तकालीन मुद्राएं, पृष्ठ, १०, फलक, ३,१३-१४]

१६. मन्दिरोंके द्वार गंगा-यमुना—

गुप्तकालके मन्दिरोंमें द्वारपट्टों पर गंगा-यमुनाका अंकन व्यापकरूपसे होनेलगाथा। "उदयगिरिकी वराहावतार गुफामें जो कि निश्चय ही गुप्त युगकी है, द्वारपट्टोंपर दाहिनी और बायीं ओर गंगा-यमुनाका अवतरण और उनका समुद्र तक

पहुँचना दिखायागयाहै। ऊपरकी ओर स्वर्गमें देवताओंको उड़ता दिखायागयाहै। उनके नीचे अप्सराएं गाती बजाती दिखाईगईहैं। दोनों नदियां दो देवियोंके रूपमें अंकितहैं। गंगाजी मगरपर और यमुनाजी कछुएपर खड़ीहैं। उनकी दोनों ओर टेढ़ी-मेढ़ी रेखाओं द्वारा नदियोंका बहना दिखायागयाहै। उसके पश्चात् दोनोंका संगम और फिर समुद्रमें पहुँचना दिखायागयाहै। वहां समुद्रदेव उनका स्वागत करता दिखाया-गयाहै। वह घुटनों तक पानी में खड़ाहै और अपने हाथोंमें जलकुंभ लिएहैं। [कनिंघम, आर्केलौजिकल सर्वे रिपोर्ट, खंड १० पृ० ४८-४६]

गढ़वालमें आदिबद्रीके मन्दिरोंकी द्वारशिलाओंपर, जो निश्चय ही गुप्त युगकी हैं, इसी प्रकार गंगा-यमुनाका अंकन है। [मेरा लेख आदिबदरीके प्राचीन मन्दिर कर्मभूमि [११।१२।५६] बैजनाथ (कांगड़ा) के शिवमन्दिरके द्वारपर जिसका रचना-काल कनिंघम महोदय शक ७२६ [८०४ ई०] तथा अन्य विद्वान शक ११२६ [१२०४ई०] मानतेहैं, गंगा-यमुनाकी अति सुन्दर मूर्तियां हैं, और इसका उल्लेख मन्दिरके ताम्रशिलालेखमें भी है। [कांगड़ा-गजेटियर, ए, ५०२, कनिंघम, आर्केलौजिकल सर्वे रिपोर्ट, १६०५-६, पृ० १६—]

१७. दक्षिणके मन्दिरोंकी द्वारशिलापर गंगाजी—

दक्षिणके प्राचीन मन्दिरोंमें द्वारपालके रूपमें नागराजका चित्रण मिलताहै। अनिरुद्धपुर (लंका) के मन्दिरके द्वारपर नागराज द्वारपालके रूपमें खड़ाहै। उसके एक हाथमें पूर्ण कलश है और दूसरेमें लम्बी नालवाला कमल है। आरम्भिक पल्लवकालके इस नागराजपर अमरावती—कलाकी झलक मिलतीहै। अमरावतीके पिछले मन्दिरोंमें द्वाररक्षकके रूपमें

नदीकी अधिष्ठात्रीदेवी [गंगाजी] मिलतीहैं, जिसमें मकरके ऊपर हाथमें लता लिएहुए देवी खड़ीहै। दक्षिणके मन्दिरोंके द्वारोंपर सर्वत्र यही मकरवाहिनी [गंगाजी] मिलतीहै। दक्षिणके पल्लव और चोल मन्दिरोंके समान लंकाके मन्दिरोंमें भी मकरके ऊपर हाथमें कमल लिएहुए देवीके द्वारा आनन्ददायक दृश्य उपस्थित करनेमें कलाकारको अपूर्व सफलता मिलीहै। [बापत, २५०० इयर्स ऑव बुद्धिज्म, ३००]

१८. गंगाजी द्वारा हिन्दुधर्ममें अनेकतामें एकता—

इसी गंगाने भारतके कोने-कोनेको, प्रत्येक जाति और सम्प्रदायके, हिन्दूको एक दूसरेसे जोड़दियाहै। हिन्दुओंमें कुछ मत और सम्प्रदाय वेद-शास्त्रों या पुराणोंको आर्ष नहीं मानते, और अधिकांश हिन्दुओंको वेदोंका अर्थ बिलकुल ज्ञात नहीं है, तथा ७५ प्रतिशत हिन्दू वेदमंत्रों को केवल विशेष अवसरों पर सुनतेहैं, प्रतिदिन उसका पाठ नहीं करते। गायत्री जपने वाले की संख्या अति अल्प है। हिन्दुओंकी कुछ जातियां आज भी गौ-मांस खालेतीहैं। इस प्रकार हिन्दुधर्ममें एकताके अन्दर अनेकता है। पर गंगाजीने सबको एक साथ जोड़ाहुआहै। गंगाने हिमालयको समुद्रसे, गंगोत्तरी गोमुखको रामेश्वरम्से जोड़ दियाहै। गंगोत्तरीका जल रामेश्वरम्में चढ़ताहै। केरलका नम्बूदरी गंगातटपर बदरीनाथमें पूजा करताहै। गंगाजीने हिन्दुधर्मकी अनेकतामें एकता उत्पन्न करदीहै।

१९. अफगानिस्तानमें गंगाकी उपासना—

भारतकी वर्तमान सीमा बाघा तक सीमित है, किन्तु किसी समय खैबरके पार भी भारतकी सीमा पहुंचीहुईथी। और आजसे डेढ़ सहस्र वर्ष पहले गंगा-यमुनाकी पूजाका प्रचार भारतमें नहीं, भारतकी सीमा पर स्थित अफगानिस्तानमें भी

पहुंचचुकाथा जहां उससमय हिन्दु रहतेथे। इसी प्रकार कम्बोज तक गंगाजीकी पूजाका प्रचार था। वेग्राम (अफगानिस्तान) की खुदाईमें डेढ़ हाथ लम्बी लकड़ीकी गंगा-यमुनाकी मूर्तियां मिली हैं। इनकी बनावट गुप्तकालीन या कुछ पीछेकी-सी प्रतीत होती है। लकड़ी यद्यपि कई स्थानों पर सड़-गल गईहै, तो भी उनमें नारीका आकार और मकर (गंगा-वाहन) तथा कछुआ (यमुना-वाहन) का ढांचा साफ दिखलाईपड़ताहै। [राहुल, एशियाके दुर्गम भूखंडोंमें, पृ०,२६४]

२०. बृहत्तर भारतमें गंगा-उपासना—बाली द्वीपकी नदियोंके नाम हमारी नदियोंके नाम पर गंगा, सिन्धु,कावेरी,सरयू,नर्मदा रखेगयेहैं। चम्पा और कम्बुजके संस्कृत शिलालेखोंमें बार-बार गंगाजीका उल्लेख है। इन देशोंमें गंगा-पूजा प्रचलित है। [राहुल, बौद्ध-संस्कृति, पृष्ट १३१, १४४, १७०, १६०]

२१. गंगा-उपासना गंगाजीके समान अविचल—

गंगाजीकी उपासना निरन्तर गंगाजीके समान चल रहीहै। श्रीनेहरूने लिखाहै"वे चलते-चलते गाते जातेथे। और कभी-कभी गंगामाताकी जय पुकारतेथे। 'गंगामाई की जय!' इनकी यह आवाज नैनी-जेलकी दीवारोंको उलांघ कर मेरे कानोंमें पहुँच रहीथी। इन्हें सुनकर मुझे यह खयाल आगया कि देखो श्रद्धामें कितनी शक्ति है कि वह इन बेशुमार लोगोंको नदीके किनारे खींचलाईहै और ये लोग थोड़ी देरकेलिए अपनी गरीबी और मुसीबतोंको भूल गएहैं। और मैं यह सोचनेलगा कि देखो सैकड़ों और हजारों वर्षोंसे हरसाल यात्री लोग किस तरह त्रिवेणीको यात्राको आतेहैं। आदमी पैदा हों या मरजाएं सरकारें और साम्राज्य कुछ दिनोंके लिए आए जमानें और

फिर अतीतमें गायब होजाए, लेकिन पुरानी परम्पराएं बराबर जारी रहतीहैं और पुश्तके बाद पुश्त, उसके सामने शिर झुकातीरहतीहै। [जवाहरलाल नेहरू—विश्व इतिहासकी झलक, पृ० २३]

अध्याय ४

महाभारतमें उत्तराखण्ड की तीर्थयात्रा

१. देशप्रेमकी सर्वोत्तम अभिव्यक्ति, तीर्थयात्रा–

शिव, शक्ति, हिमालय, गंगाजी और तीर्थोंके साथ आर्योंने तीर्थयात्रा भी सिन्धुवासियोंसे सीखीथी। अथर्ववेदके पृथ्वी-सूक्त [१२।१।११-६३] में "माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः" भूमि माता है और मैं इस पृथ्वीका पुत्र हूँ—कहकर भूमि के कण-कण के प्रति पूज्य भावना प्रदर्शित कीगईहै। यही भावना तीर्थ और तीर्थयात्राकी मूल है।" नदियों, पर्वतों और जंगलोंसे भरेहुए विशाल देशमे भूमिके साथ आत्मीयता स्थापित करनेकेलिए सबसे सुन्दर और स्थायी युक्ति तीर्थ-निर्माणके रूपमें स्वीकृत हुई। प्रत्येक नदी, जलधारा, झरना, कुंड, जलाशय और पर्वतका नामकरण करना, और उसके साथ किसी-न-किसी देवता, पूर्वज, ऋषि एवं तपस्वीका संबंध जोड़ना यह तीर्थ-निर्माणका आवश्यक अंग है।" [अग्रवाल, भारतकी मौलिक एकता, ८६]

"हमारे भारतीय पूर्वजोंने जीवनसाधनाके किसी शुभग क्षणमें जीवनशुद्धि और जीवन-समृद्धिका समन्वय करनेकी सोची और वे पवित्र स्थानोंकी यात्रा करने चलपड़े।" [यशपाल जैन कृत, जय अमरनाथ की भूमिका में काका कालेलकर]

"तीर्थयात्रा मातृभूमिके प्रति उत्कट प्रेमकी सर्वोत्तम अभिव्यक्ति है। यह देशपूजाकी ऐसी विधि है, जिससे धार्मिक भावोंको बल मिलताहै और साथही भौगोलिक चेतना बढ़तीहै। तीर्थयात्रासे मिलनेवाले पुण्यलाभके पीछे और भी कितने ही लाभ छिपेहैं, जैसे स्थानोंके प्राकृतिक सौन्दर्यका परिचय, वहांके अद्भुत शिल्प, स्थापत्य, कला और देवमन्दिरोंके दर्शनसे कलात्मक शिक्षण, एवं भूगोलका साक्षात ज्ञान।

"मथुरा, काशी, कांची किसी समय कलाके प्रसिद्ध केन्द्र थे। लाखों मनुष्य उनकी धार्मिकयात्रा करते और उस अद्भुत कलाकी सामग्रीको अपनी आंखोंसे देखतेथे। आज उस सामग्रीके कुछ टूटे-फूटे भाग हमारे संग्रहालयोंमें रहगएहैं, किन्तु वे जनताके जीवनका भाग नहीं बनेहैं। तीर्थ, कलाके सार्वजनिक संग्रहालय थे, जहां प्रति वर्ष दर्शकोंका तांता निश्चित था। काशी-जैसे तीर्थोंमें विद्याकी भी राजधानी थी। कितने ही तीर्थस्थान प्राकृतिक सौन्दर्यके विलक्षण स्थल हैं। वस्तुत: हम अपनी नई आंखसे भी प्राकृतिक-सौन्दर्यका शायदही कोई ऐसा स्थान ढूंढसकें जिसे पहलेसेही पहचानकर तीर्थ न बनालियागयाहो। [अग्रवाल, भारतकी मौलिक एकता, ८७-८८]

२. पर्वतोंके शिखर और नदियोंकेसंगम—

दैनिक, सांसारिक जीवनके रागद्वेष, भीड़-भाड़ और संघर्ष से दूर पर्वतोंके एकान्त शिखरों और नदियोंके सुन्दर संगमपर चित्तको शान्ति और आनन्द तथा शरीरको सुख और स्वास्थ्य प्राप्त होतेहैं। इन तक पहुँचनेपर जिस अद्भुत उल्लासकी लहर अंग-अंगमें फैलजातीहै, वह अनुभवकी वस्तु है, उसे शब्दोंसे व्यक्त नहीं कियाजासकता। ऋक्० ८।६।२८ में "उपह्वरे गिरीणां संगमे च नदीनां" तथा यजु० २६।१५ में "धियाविप्रो

ञ्जायत" कहकर व्यक्त कियागयाहै कि पर्वतोंकी गोदमें और नदियोंके संगमपर ज्ञानीकी बुद्धि प्रस्फुटित होतीहै। इसीलिए ने हमारे तीर्थ हिमाच्छादित पर्वत-शिखरों, हरी-भरी बुग्यालों, लकल करनेवाली सरिताके तटों और संगमोंपर स्थित हैं, हां नास्तिक मानव-हृदय भी आनन्दसे उमड़ पड़ताहै।

३. भारतीय जीवनका प्राण, तीर्थयात्रा—

तीर्थयात्रा भारतीय जीवनका प्राण है। आबल-वृद्ध और र-नारी सभी तीर्थ-गंगामें डुबकी लगातेहैं। सक्रान्ति, ग्रहण, कादशी, पूर्णमाशी आदि नाना पर्वोंके आते ही देशके कोने-ोनेमें, गांव-गांव, नगर-नगरमें, एक नवीन लहर उठजातीहै, जो लाखों व्यक्तियोंको उनके घरोंसे उठाकर आनन्दसे गाते-झूमते तीर्थों तक पहुंचादेतीहै। बड़े-बड़े मेलोंके अवसर पर तो सारा भारतही जैसे गंगाजीकी गोदमें आ उतरताहै। और तब पता लगताहै कि भारतका जीवनही तीर्थयात्राहै।

४. तीर्थयात्रा सर्वसुलभ और सरल—

तीर्थयात्राके लिए कोई प्रतिबन्ध नहीं। वह धनी-दरिद्र सबके लिए एकसी है। केवल सदाचारका प्रतिबन्ध है। "जिसके हाथ-पैर या मन अपने वस हों तथा जो विद्या, तप और कीर्तिसे सम्पन्न हों, वही तीर्थसेवनका फल पाताहै। जो प्रतिग्रहसे दूर रहे तथा जो कुछ अपने पास हो, उसीसे संतुष्ट रहे और जिसमें अहंकारका अभाव हो, वही तीर्थका फल पाताहै। जो दम्भ आदि दोषोंसे दूर, कर्तृत्वके अहंकार से शून्य, अल्पाहारी और जितेन्द्रिय हो, वह सब पापोंसे विमुक्त हो, तीर्थके वास्तविक फलका भागी होताहै। जिसमे क्रोध न हो, जो सत्यवादी और दृढ़तापूर्वक व्रतका पालन करनेवाला हो तथा जो सब प्राणियोंके प्रति आत्मभाव रखताहो, वही

तीर्थके फलका भागी होताहै। [वन, ८२।६-१२] बस, इसमें ऊँच-नीच, नर-नारी, सम्पन्न-अकिंचन सभी भाग लेसकतेहैं।

५. यज्ञोंकी जटिलता—

ऋषियोंने देवताओंके उद्देश्यसे यथायोग्य यज्ञ बताएहैं और उन यज्ञोंका यथावत् फल भी बतायाहै, जो इहलोक और परलोकमें भी सर्वथा प्राप्त होताहै। परन्तु दरिद्र मनुष्य उन सब यज्ञोंका अनुष्ठान नहीं करसते। जिनके पास धनकी कमी और सहायकोंका अभाव हो, जो अकेले और साधनशून्य हैं, उनके द्वारा यज्ञोंका अनुष्ठान नहीं होसकता। जो सत्कर्म दरिद्र लोग भी करसकें, और जो अपने पुण्यों द्वारा यज्ञोंके समान फलप्रद होसके, वह तीर्थयात्रा है। यह कार्य यज्ञोंसे बढ़कर है। मनुष्य तीर्थयात्रासे जिस फलको पाताहै उसे प्रचुर दक्षिणावाले अग्निष्टोम आदि यज्ञोंद्वारा भी नहीं पासकता। [वन, ८२।१३-१६]

६. उपनिषदोंकी दुर्बोध चिंतन-पद्धति—

हिन्दुओंकी धार्मिक पद्धतियोंके विकासकी दृष्टिसे उपरोक्त उद्धरण बहुत महत्वपूर्ण है। वैदिक यज्ञोंमें जटिलताके अतिरिक्त प्राणिहिंसा, धनका प्रभूत अपव्यय, नाना प्रकारके बन्धन, आदिके कारण भारतीय जनता उनसे विरत होनेलगीथी। उनमें जो विद्वान, विचारशील और ऊँचे मानसिक स्तरवाले थे, उन्होंने उस ज्ञानमार्गको अपनाना आरम्भ किया, जिसका विकास उपनिषदोंमें और आगे चलकर बौद्ध, जैनमतों तथा बुद्ध और महावीरके समकालीन अनेक चिंतकोंके उन मतोंके रूपमें दिखाई दिया जो आज हिन्दुधर्ममें विलीन होचुकेहैं। उपनिषदोंकी यह चिन्तन-पद्धति जनसाधारणके उपयुक्त न थी। अस्तु जनसाधारण ने इस दुर्बोध मार्गको न अपनाकर तीर्थ-यात्राका मार्ग अपनाया।

ो यज्ञोंके समान ही फलदायी मानागया। गृहस्थी जनता :पनिषदोंकी चिन्तन-पद्धतिवाले ज्ञानियोंके प्रति श्रद्धा प्रकट :रसकतीथी, उनके निवासस्थानोंको भी तीर्थके रूपमें पूज्य :ष्टिसे देखसकतीथी, पर उनकी चिन्तन-पद्धतिको न प्रपना सकतीथी ! ज्यों-ज्यों एक ओर उपनिषद्-चिन्तन-पद्धति, राजयोग, गुह्ययोग आदि चिन्तन-पद्धतियोंका विकास और प्रचार बढ़तागया दूसरी ओर गृहस्थियोंमें तीर्थयात्राका प्रचार बढ़ताचलागया।

७. बौद्ध और जैनधर्मों का लोक-बाह्य रूप—

आगे चलकर जब राजकुलोंमें बौद्ध और जैन मतोंका प्रचार बढ़ा, साधारण जनताको उनसे वह सन्तुष्टि न मिल-सकी जो तीर्थयात्रासे मिलसकतीथी। सच पूछो तो अपने मूलरूपमें बौद्ध या जैन मत भारतीय जनसाधारणके मस्तिष्कके अनुकूल न थे। बौद्धोंके सर्वस्व त्याग और जैनियोंके त्यागपूर्ण कठोर जीवन गृहस्थियोंके लिए आकर्षक न थे और उनमें आरम्भमें किसी देवता, तीर्थ आदि पूज्य आधारोंका अभाव होनेके कारण वे जनसाधारणके हृदय और मस्तिष्कसे बाहरकी वस्तु थे। इसलिए प्राचीन कालसे चलाआताहुआ लोकधर्म, जिसमें तीर्थ और देवताओंकी पूजाका भाव निहित था, वसी प्रकार चलतारहा और उसने आगे चलकर बौद्ध और जैनमतों का चोला ही बदल दिया। बौद्धमतका यही बदलाहुआ चोला महायान था।

८. उत्तराखण्डकी यात्राका प्राचीनतम वर्णन—

वनपर्वके अन्तर्गत तीर्थयात्रा पर्वमें गंगाद्वार [हरिद्वार] से

भृगुतुंग [केदारनाथ] तककी यात्राका वर्णन है, जो अत्यन्त प्राचीनतम होनेके अतिरिक्त कई दृष्टिसे रोचक है। इसमें कुछ तीर्थोंके नाम तबसे आज तक उसी प्रकार चले आरहेहैं। उनसे प्रकट होताहै कि २५०० वर्ष पूर्व हरिद्वारसे केदारनाथ जानेका मार्ग किन-किन स्थानोंसे होकर जाताथा। इस तीर्थयात्रा के वर्णनमें तीर्थोंसे प्राप्त पुण्यकी कल्पना भी पूर्णविकसित मिलतीहै। बीचकी कुछ कड़ियां लुप्त होगईहैं। पर यह निश्चय है कि 'प्रयाग' नामक तीर्थोंका नामकरण तबतक बिलकुल नहीं हुआथा।

१. गंगाद्वार-यमुनोत्री-भृगुतुंग—

धर्मज्ञ ! वहांसे महापर्वत हिमालयको नमस्कार करके गंगाद्वार (हरिद्वार) की यात्रा करे, जो स्वर्गद्वारके समानहै, इसमें संशय नहीं है। यहां एकाग्रचित्त हो कोटितीर्थमें स्नान और एक रात निवास करनाचाहिए। सप्तगग, त्रिगग और शक्रावर्ततीर्थमें विधिपूर्वक देवताओं और पितरोंका तर्पण करना चाहिए।

तदनन्तर कनखलमें स्नान करके तीन रात उपवास करना चाहिए।

उसके पश्चात् तीर्थसेवी मनुष्य कपिलावट तीर्थमें जाकर रातभर उपवास करे। वहीं नागराज महात्मा कपिलका तीर्थ है। वहां नागतीर्थमें स्नान करनाचाहिए।

तत्पश्चात् शान्तनुके उत्तम तीर्थ ललितकमें आवे। जो मनुष्य गंगा-यमुनाके बीच (के प्रदेशमें स्थित) संगम (दो नदियोंके मिलने वाले स्थान) में स्नान करताहै, उसे दस अश्वमेध यज्ञोंका फल मिलताहै और वह अपने कुलका उद्धार करदेताहै।

राजेन्द्र ! तदनन्तर लोकविख्यात सुगंधातीर्थकी यात्रा करे। तदनन्तर तीर्थसेवी पुरुष रुद्रावर्त तीर्थमें जावे। गंगा और सरस्वतीके संगममें स्नान करनेसे मनुष्य अश्वमेधका फल पाताहै। भद्रकर्णेश्वरके समीप जाकर विधिपूर्वक उनकी पूजाकरे। नरेन्द्र ! तत्पश्चात् तीर्थसेवी पुरुष कुब्जाम्रकतीर्थमें जावे। नरपते ! तत्पश्चात् तीर्थसेवी अरुन्धतीवटके समीप जावे और सामुद्रक तीर्थमें स्नान करे।

तदन्नतर चित्तको एकाग्रकरके ब्रह्मावर्ततीर्थमें जावे। यमुना-प्रभव तीर्थमें जाकर यमुनाजलमें स्नान करे। [वन, ८४।२६-४४]

यहां तकके क्रमसे प्रतीत होताहै कि प्राचीन यात्रामार्ग हरिद्वार-कनखल-कुब्जाम्रक होकर यमुनोत्तरी पहुँचताथा। इससे आगे भृगुतुंग (केदारनाथ-शिखर) पहुंचनेके लिए क्रमशः दर्वीसंक्रमण, सिन्धु-प्रभव, वेदीतीर्थ, वासिष्ठतीर्थमें वासिष्ठी नदीको पारकरके ऋषिकुल्यातीर्थ होकर भृगुतुंगको मार्गजाताथा। [वन, ८४।४५-५०] । इन तीर्थोंकी पहचान अनिश्चितहै। इनमें गंगोत्तरी या गोमुखका उल्लेख नहीं है। न गंगाजीको पार करनेका उल्लेख है। पर यमुनोत्तरीसे केदारनाथ जानेके लिए गंगाजी अवश्य पार करनीहोतीहै। भृगुतुंगसे बदरिकाश्रम-यात्राका भी उल्लेख नहीं है।

०. गंगाद्वार—भृगुतुंग—बद्रीकाश्रम—

वनपर्वके तीर्थयात्रापर्वमें (अ० ९०) में धौम्यने उत्तरदिशाके तीर्थोंका जो उल्लेख कियाहै वह उपरोक्त सूचीमें बदरिकाश्रमको जोड़ताहै। उसका क्रम इस प्रकारहै—गंगाद्वार-कनखल-भृगुतुंग—बदरिकाश्रम। इसमें यमुनोत्तरी तथा गंगोत्तरीका उल्लेख नहीं है। और न बीचके तीर्थोंका उल्लेख है। पर बदरिकाश्रमकी महिमा ८ श्लोकोंमें वर्णित है। [वन, ९०।२१-३१]

११. पांडवोंकी नंदा देवी (तीर्थ) की यात्रा—

इसी तीर्थयात्रापर्वके अन्तर्गत लोमश तीर्थयात्रा-प्रसंग आताहै जिसमे लोमश ऋषिके साथ अर्जुन के अतिरिक्त अन्य पांडवोंकी तीर्थयात्राका उल्लेख है। उसमें ११०वें अध्यायमें पांडवोंकी नन्दा, अपरनन्दा, हेमकूट आदि तीर्थोंकी यात्राका उल्लेख है। पर वे गंगाद्वारसे वहां किस मार्ग होकर आएथे, इसका उल्लेख नहीं है।

वे नन्दा अपरनन्दा, हेमकूट, ऋषभकूट तीर्थोंसे होकर कौशिकीके तट पर गएथे। नन्दा, अपरनन्दा, हेमकूट और ऋषभकूट, सब नन्दादेवी शिखरके तीर्थ प्रतीत होतेहैं। यहां नन्दा नदीमे स्नान करनेकी महिमा गाईगईहै। [वन, ११०।१-१६] यह अंश भी उपरोक्त पहिली यात्राका पूरक प्रतीत होताहै। इन तीनोंको मिलाकर गंगाद्वार-बहुनाप्रभ-भृगुतुंग—बदरिकाश्रम और नन्दातीर्थका यात्रा-मार्ग बनताहै जिसमे गंगोत्तरीका उल्लेख नहीं है।

१२. पांडवोंकी कनखलसे बद्रीकाश्रम यात्रा—

इन तीन तीर्थयात्राओंके वर्णनके पश्चात् इसी तीर्थयात्रा पर्वमे १३६वें अध्यायसे फिर पांडवोंकी उत्तराखण्डयात्राका वर्णन आताहै, जिसमे यात्रामार्गकी कठिनाइयों, हिमालयमे रहनेवाली यक्ष, राक्षस, किन्नर, नाग, सुवर्ण,गन्धर्व, किरात आदि जातियों, यात्रामार्गमे भारवहन और मानव-वहनके साधनों आदिका रोमांचकारी वर्णन है। इस यात्रामे गंगाद्वारसे कुलिंदनरेश सुबाहुके राज्य (गढ़वाल-श्रीनगर) होकर गन्धमादन बदरिकाश्रम और कैलास जानेका वर्णन तो है, किन्तु मार्गके स्थानोंका निर्देश नहीं है। पर यह निश्चित है कि यह मार्ग प्रायः गंगाजी (अलकनन्दा) के तटसे होकर गयाहोगा।

शंकराचार्य ज्योतिपीठ
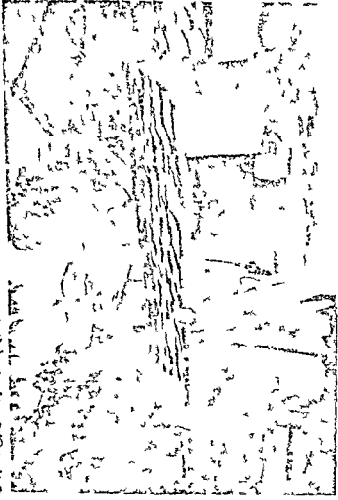
करतेहैं। राजन्! यहां तीव्रगतिसे चलनेवाले अट्ठासी सहस्र गन्धर्व और उनसे चौगुने किन्नर तथा यक्ष रहतेहैं। उनके रूप एवं आकृति अनेक प्रकारकी हैं। वे भांति-भांतिके अस्त्र-शस्त्र धारण करतेहैं और यक्षराज- माणिभद्रकी उपासनामें लग्न रहतेहैं। यहां उनकी समृद्धि अतिशय बढ़ीहुईहै। तीव्रगतिमें वे वायुकी समानता करतेहैं। वे चाहें तो देवराज इन्द्रको भी निश्चय ही अपने स्थानसे हटासकतेहैं। तात युधिष्ठिर! उन बलवान् यक्ष और राक्षसोंसे सुरक्षित रहनेके कारण ये पर्वत बड़े दुर्गम हैं। अतः तुम विशेषरूपसे एकाग्रचित्त होजाओ। कुबेरके सचिवगण तथा अन्य रौद्र और मैत्र नामक राक्षसों का सामना करना पड़ेगा, अत. तुम पराक्रमकेलिए तैयार रहो।" [वन, १३६।५-१०]

ऊंचे पर्वतोंपर रक्ष-यक्ष-गन्धर्वोंके भयकी कल्पना प्राचीन कालके सभी यात्रा-वर्णनोंमें पाईजातीहै। चीनसे भारत आने वाले यात्री भी इनसे भयभीत हुयेथे।

"राजन्! उधर छै योजन ऊंचा कैलाशपर्वत दिखाईदेताहै, जहाँ देवता आयाकरतेहैं। भारत! उसीके निकट विशालापुरी (बदरिकाश्रम तीर्थ) है। [वन, १३६।११]

"कुन्तीनंदन! कुबेरके भवनमें अनेक यक्ष, राक्षस, किन्नर, नाग, सुपर्ण तथा गन्धर्व निवास करतेहैं। तुम भीमसेनके बल और मेरी तपस्यासे सुरक्षित हो। तप एवं इन्द्रियसंयमपूर्वक रहतेहुए आज इन तीर्थोंमें स्नान करो।

"राजा वरुण, युद्धविजयी यमराज, गंगा-यमुना तथा यह पर्वत तुम्हें कल्याण प्रदान करें। महाद्युते! मरुद्गण, अश्विनिकुमार, सरितायें और सरोवर भी तुम्हारा मंगल करें। देवताओं, असुरों तथा वसुओंसे [illegible] कल्याणकी प्राप्ति

हो। देवि गंगे ! मैं इन्द्रके सुवर्णमय मेरु पर्वतसे तुम्हारा कलकलनाद सुनरहाहूँ। सौभाग्यशालिनि ! ये राजा युधिष्ठिर अजामीढ़वंशी क्षत्रियोंकेलिए आदरणीय हैं,तुम पर्वतोंसे इनकी रक्षा कराओ। शैलपुत्रि ! ये इन पर्वतमालाओंमें प्रवेश करनाचाहतेहैं, तुम इन्हें कल्याण प्रदान करो।" [वन, १३६।१२-१७]

इस भीषण प्रदेशमें प्रवेश करनेसे पूर्व लोमश ऋषिने इस-प्रकार पांडवोंके कल्याणकेलिए देवताओंसे प्रार्थना की और आदेश दिया, "अब तुम एकाग्रचित्त होजाओ"।

युधिष्ठिर बोले,—"बन्धुओ ! आज महर्षि लोमशको बड़ी घबराहट होरहीहै। यह एक अभूतपूर्व घटना है। अतः तुम सब लोग सावधान होकर द्रौपदीकी रक्षा करो। प्रमाद न करना। लोमशजीका मत है कि यह प्रदेश अत्यन्त दुर्गम है। अतः यहां अत्यन्त शुद्ध आचार-विचारसे रहो। भय्या भीमसेन ! तुम सावधान रहकर द्रौपदीकी रक्षा करो। तात ! किसी निर्जन प्रदेशमें जब कि अर्जुन हमारे समीप नहीं हैं, भय का अवसर उपस्थित होनेपर द्रौपदी तुम्हारा ही आश्रय लेतीहै।"

तत्पश्चात् महात्मा राजा युधिष्ठिरनेन कुल-सहदेवके पास जाकर उनका मस्तक सूँघा और शरीरपर हाथ फेरा। फिर नेत्रोंसे आंसू बहातेहुए कहा; "भैया ! तुम दोनों भय न करो और सावधान होकर आगे बढ़ो। भीमसेन ! यहां बहुतसे बलवान् और विशालकाय राक्षस छिपे रहतेहैं; अतः अग्निहोत्र एवं तपस्याके प्रभावसे ही हम लोग यहाँसे आगे बढ़सकतेहैं। वृकोदर ! तुम बलका आश्रय लेकर अपनी भूखप्यास मिटादो। फिर शारीरिक शक्ति और चतुरताका आश्रय लो।" [वन, १३६।१८-२०; १४०।१-२]

१३. प्रत्यक्षद्रष्टाके रूपमें लोमशका वर्णन—

अनेक दृष्टिसे यह यात्रावर्णन इतना मनोरंजक, और महत्वपूर्ण है कि इसका संक्षिप्त उद्धारण देना आवश्यक है। प्रत्यक्षद्रष्टाके रूपमें लोमश कहतेहैं।

"भरतवंशके श्रेष्ठ पुरुषो ! इस पर्वतराज हिमालय पर आरूढ़ होकर तुम सब अयश फैलानेवाली और नाम लेनेके अयोग्य अपनी श्रीहीनताको शीघ्र ही दूर भगादोगे।

युधिष्ठिर ! ये कनखलकी पर्वतमालायें हैं। जो ऋषियोंको बहुत प्रिय लगतीहैं। ये महानदी गंगाजी सुशोभित होरहीहैं। जानीदनन्दन ! इस गंगामें स्नान करके तुम सब पापोंसे छुटकारा पाजाओगे।" [वन, १३५।५-६]

इसके पश्चात् रैभ्य और यवक्रीतका उपाख्यान सुनातेहुए, किन्तु मार्गके किसी तीर्थ आदिका उल्लेख किये बिना, लोमश-ऋषि पांडवोंके साथ बदरिकाश्रमके निकटके भूखंडमें [चन्दर नेलमें ?] पहुँचजातेहैं, और कहतेहैं—

"भरतनन्दन युधिष्ठिर ! अब तुम उशीरध्वज, मैनाक, श्वेत और कालशैल नामक पहाड़ोंको लांघकर आगे बढ़आए। यह देखो, गंगाजी सात धाराओंसे सुशोभित होरहीहैं। यह (काल-शैल) रजोगुणरहित पुण्य तीर्थ है,जहां सदा अग्निदेव प्रज्वलित रहतेहैं। यह देवताओंकी क्रीड़ास्थली है, जो उनके चरणचिन्हों से अंकित है। एकाग्रचित्त होनेपर तुम्हें इसका भी दर्शन होगा।" [वन, १३६।१-४]

१४. मानवेतर शक्तियोंका भय—

"कुन्तीकुमार ! अब तुम कालशैलपर्वतको लांघकर आगे बढ़ आए। इसके पश्चात् हम श्वेतगिरि तथा मन्दराचल पर्वतमें

जब वे ऐसे स्थान पर पहुंचगयेथे, जहांसे आगे रथ नहीं चलसकतेथे। भीमसेनने कहा,—"राजन्! अनेक कन्दराओंसे युक्त इस पर्वतपर यदि रथोंके द्वारा यात्रा संभव न हो तो हम पैदलही चलेंगे। आप इसकेलिए उदास न हों। जहां-जहां द्रौपदी नहीं चलसकेगी, वहां-वहां मैं स्वयं उन्हें कन्धेपर चढ़ालेजाऊंगा। जहां-जहां सुकुमार नकुल-सहदेव दुर्गम स्थानमें असमर्थ होजावेंगे वहां मैं पार लगाऊंगा"। [वन,१४०।१५-१७]

१५. कुलिन्दराज सुबाहुके राज्यमें—

इस प्रकार बातचीत करते हुये वे सब लोग आगे बढ़े। कुछ दूर जाने पर उन्हें कुलिन्दराज सुबाहुका विशालराज्य दिखाईदिया। जहां हाथी-घोड़ोंकी बहुतायत थी और सैंकड़ों किरात,तगण एवं कुलिन्द आदि जंगली जातियोंके लोग निवास करतेथे। वह देवताओंसे सेवित देश हिमालयके अत्यन्त समीप था। वहां अनेक प्रकारकी आश्चर्यजनक वस्तुयें दिखाईदेतीथीं। राजा सुबाहुने पांडवोंका स्वागत किया।

दूसरे दिन इन्द्रसेन आदि सेवकों,रसोइयों, और पाकशाला-के अध्यक्षको तथा द्रौपदीके सारे सामानोंको कुलिन्दराज सुबाहुके यहां सौंपकर वे महापराक्रमी पांडव द्रौपदीके साथ धीरे-धीरे पैदल ही चलदिए। [वन, १४०।२७-२९]

१६. बदरिकाश्रम और अलकनन्दा—

मार्गमें लोमशजीने कहा—पांडवो! यह मार्ग दिव्य मंदराचलकी ओर जाएगा। अब तुम लोग उद्वेगशून्य और एकाग्रचित्त होजाओ। यह देवताओंका निवासस्थान है जिस पर तुम्हें चलनाहोगा। यह कल्याणमय जलसे भरी पुण्यस्वरूप महानदी (अलकनन्दा) है, जो देवर्षियोंके समुदायसे सेवित

है। इसका प्रादुर्भाव बदरिकाश्रमसे ही हुआहै। आकाशचारी महात्मा वालखिल्य तथा महामना गन्धर्वगण भी नित्य इसके तटपर आतेजातेहैं और इसकी पूजाकरतेहैं। सामगान करनेवाले विद्वान वेदमन्त्रोंकी पुण्यमयी ध्वनि करतेहैं। मरीचि, पुलह, भृगु तथा अंगिरा भी यहां जप एवं स्वाध्याय करतेहैं। देवश्रेष्ठ इन्द्र भी मरुद्गणोंके साथ यहाँ आकर प्रतिदिन नियम पूर्वक जप करतेहैं। उस समय साध्य तथा अश्वनिकुमार भी उनकी परिचर्यामें रहतेहैं। तात ! तुम लोग इस दिव्य नदीके तटपर चलकर इसे प्रणाम करो।" महात्मा लोमशका वचन सुनकर सब पांडवोंने संयतचित्तसे भगवती आकाशगंगा (अलकनन्दा) को प्रणाम किया। [वन, १४२।२-११]

इसके पश्चात् उन्होंने मेरुगिरिके समान दूरसे ही प्रकाशित श्वेतपर्वत-सा देखा, जो सम्पूर्ण दिशाओंमें बिखरा-सा जानपड़ताथा। [वन, १४२।१३]

तदनन्तर पांडव श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको आगे किए, द्रौपदीके साथ गन्धमादनपर्वतकी ओर प्रस्थित हुए। पर्वतके शिखर पर उन्होंने बहुत-से सरोवर, सरितायें, पर्वत, वन तथा घनी छाया वाले वृक्ष देखे। फल-फूलों और मृगोंसे भरे प्रदेशसे होकर महात्मा पांडवोंने गन्धर्वों और अप्सराओंकी प्रिय भूमि, किन्नरोंकी क्रीड़ास्थली तथा ऋषियों, सिद्धों और देवताओंके निवासस्थान गन्धमादन पर्वतकी घाटीमें प्रवेश किया। [वन, १४३।१-६]

१७. उच्च हिमालयके झंझावत—

वीर पांडवोंके गन्धमादन पर्वतपर पदार्पण करतेही प्रचण्ड आंधीके साथ बड़े जोरकी वर्षा होनेलगी। फिर धूल और

पत्तोंसे भराहुआ बड़ा भारी ववंडर उठा। जिसने पृथ्वी, अन्तरिक्ष और स्वर्गकोभी सहसा आच्छादित करदिया। धूलसे आकाशके ढकजानेसे कुछ भी सूझ नहीं पड़ताथा। इसलिए वे एक-दूसरेसे बातचीत भी नहीं करपातेथे। अन्धकारने आंखोंपर पर्दा डालदियाथा। जिससे पांडवलोग एक-दूसरेके दर्शनसे भी वंचित होगये। पत्थरोंका चूर्ण विखेरतीहुई वायु उन्हें कहीं-से-कहीं खींच लिए जातीथी। प्रचंड वायुके वेगसे टूटकर निरन्तर धरतीपर गिरनेवाले वृक्षों तथा अन्य झाड़ोंका भयंकर शब्द सुनाईपड़ताथा। वहां वायुके झोंकेसे मोहित होकर वे सब-के-सब मन-ही-मन सोचनेलगे कि आकाश तो नहीं फटपड़ाहै। पृथ्वी तो नहीं विदीर्ण होरही है। अथवा कोई पर्वत तो नहीं फटा जारहाहै। [वन. १४३।७-१३]

तत्पश्चात् वे रास्तेके आसपासके वृक्षों, मिट्टीके ढेरों और ऊंचे-नीचे स्थानोंको हाथोंसे टटोलतेहुए वायुसे डरकर यत्र-तत्र छिपनेलगे। उस समय महाबली भीमसेन हाथमें धनुष लिए द्रौपदीको अपने साथ रखकर एक वृक्षके सहारे खड़ेहोगये। धर्मराज युधिष्ठिर और पुरोहित धौम्य अग्निहोत्रकी सामग्री लिए उस महान् वनमें कहीं छिपगये। नकुल, अन्यान्य ब्राह्मण लोग तथा महातपस्वी लोमशजी भी भयभीत होकर जहां-तहां वृक्षोंकी आड़ लेकर छिपेरहे। [वन, १४३।१३-१६]

थोड़ी देरमें जब वायुका वेग कुछ कम हुआ और धूल उड़नी बन्दहोगई, उस समय बड़ी भारी जलधारा बरसने लगी। तदनन्तर वज्रपातके समान मेघोंकी गड़गड़ाहट होने लगी और मेघमालाओंमें चारों ओर चंचल चमकवाली बिजलियां संचरण करनेलगीं। तत्पश्चात् तीव्र वायुसे प्रेरित

हो समस्त दिशाओंको आच्छादित करतीहुई ओलों सहित जलकी धारायें अविराम गतिसे गिरनेलगीं। वहां चारों ओर बिखरी हुई जलराशि समुद्रगामिनी नदियोंके रूपमें प्रकट होगई, जो मिट्टी मिलजानेसे मलिन दीखपड़तीथी। उसमें झाग उठरहेथे। फेनरूपी नौकासे व्याप्त अगाध जलसमूहको बहातीहुई सरितायें गिरेहुए वृक्षोंको अपनी लहरोंसे समेटकर जोर-जोरसे 'हरहर' ध्वनि करतीहुई बहरहीथीं। [वन, १४३।१७-२१]

थोड़ी देर पश्चात् जब तूफानका कोलाहल शान्त हुआ, वायुका वेग कम एवं सम होगया, पर्वतका सारा जल बहकर नीचे चलागया और बादलोंका आवरण दूर होजानेसे सूर्यदेव प्रकाशित होउठे; उस समय वे समस्त वीर पांडव धीरे-धीरे अपने स्थानसे निकले और गन्धमादन पर्वतकी ओर प्रस्थित हुए। [वन, १४३।२२-२३]

१८. ऊंची चढ़ाई पर थकावट—

महात्मा पांडव अभी कोसभर ही गयेहोंगे कि पांचालराजकुमारी तपस्विनी द्रौपदी सुकुमारताके कारण थककर बैठगई। वह पैदल चलनेयोग्य कदापि नहीं थी। उस भयानक वायु और वर्षामें पीड़ित हो, दुःखमग्न होकर वह मूर्छित होनेलगीथी। घबराहटसे कांपतीहुई कजरारे नेत्रोंवाली कृष्णाने अपने गोल-गोल और सुन्दर हाथोंसे दोनों जाँघोंको थामलिया। केलेके वृक्षकी भांति कांपतीहुई वह सहसा पृथ्वीपर गिरपड़ी। [वन, १४४।१-५]

धर्मात्मा युधिष्ठिरने देखा, द्रौपदीके मुखकी कान्ति फीकी पड़गईहै और उसका शरीर [illegible] होगयाहै। तब वे उसे अंकमें लेकर शोकातुर हो विलाप करनेलगे। उसी समय धौम्य आदि श्रेष्ठ ब्राह्मण भी वहां आपहुंचे। उन्होंने महाराज-

को आश्वासन दिया तथा राक्षसोंका विनाश करनेवाले मंत्रोंके जप और शान्तिकर्म किए। पांडवोंने अपने शीतल हाथोंसे बार-बार द्रौपदीके अंगोंको सहलाया। जलका स्पर्श करके बहतीहुई वायुने भी उसे सुख पहुँचाया और उसे धीरे-धीरे कुछ चेत हुआ। [वन, १४४।६-१८]

चेतमें आनेपर दीनावस्थामें पड़ीहुई तपस्विनी द्रौपदीको पकड़कर पांडवोंने मृगचर्मके बिस्तरपर सुलाया और उसे विश्राम कराया। नकुल और सहदेवने उसके लाल तलुओंसे युक्त और उत्तम लक्षणोंसे अलकृत दोनों चरणोंको धीरे-धीरे दबाया। [वन, १४४।१६-२०]

१९. नर वाहन—

इन प्रदेशोंमें नरवाहन कुवेरकी कल्पना निराधार नहीं है। आजके समान प्राचीनकालमें भी इस दुर्गम मार्गपर अशक्त व्यक्तियोंको पीठपर उठाकर ढोयाजाताथा। भीमसेनने द्रौपदीको और युधिष्ठिरको आश्वासन देतेहुए कहा—"आप मनमें खेद न करें। मैं स्वयं राजकुमारी द्रौपदी, नकुल-सहदेव और आपको भी लेचलूंगा। हिडिम्बाका पुत्र घटोत्कच भी महान् पराक्रमी है। यह मेरे ही समान बलवान है, और आकाश (जैसे ऊंचे पर्वतों) पर चलफिर सकताहै। आपकी आज्ञा होनेपर वह हम सबको अपनी पीठपर बिठाकर लेचलेगा।" युधिष्ठिरकी आज्ञा पाकर भीमसेनने अपने राक्षस पुत्रको स्मरण किया। स्मरण करतेही धर्मात्मा घटोत्कच हाथ-जोड़ेहुए वहां आ उपस्थित हुआ। उस महाबाहु वीरने पांडवों तथा ब्राह्मणोंको प्रणाम करके, उनके द्वारा सम्मानित हो, अपने भयंकर पराक्रमी पितासे कहा—"महाबाहो! आपने मेरा स्मरण कियाहै और मैं शीघ्रही सेवाकी भावनासे आयाहूँ।
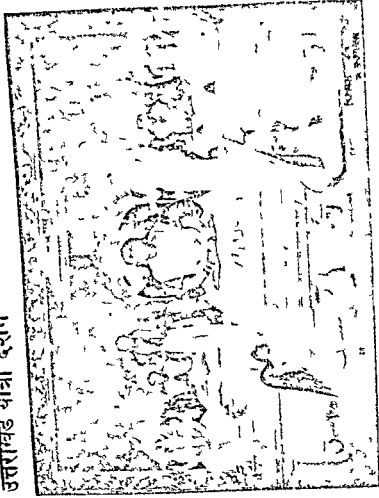
आज्ञा कीजिए।

भीमसेन बोले—"हिडिम्बानन्दन ! तुम्हारी माता द्रौपदी बहुत थकगईहै। तुम इसे कन्धेपर बैठाकर हम लोगोंके बीच रहतेहुए आकाश [को छूनेवाले ऊंचे पर्वतीय] मार्गसे इस प्रकार धीरे-धीरे लेचलो, जिससे इसे तनिक भी कष्ट न हो।"

घटोत्कच बोला—"अनघ ! मैं अकेला ही धर्मराज युधिष्ठिर, पुरोहित धौम्य, माता द्रौपदी और चाचा नकुल-सहदेव को भी वहन करसकताहूं। फिर आज तो मेरे और भी बहुत से संगी-साथी उपस्थित हैं। आप लोगोंको ले चलना हमारेलिए कौन-सी बड़ी बात है ?"

ऐसा कहकर वीर घटोत्कच तो द्रौपदीको चढाकर तथा उसके अन्य राक्षस पांडवों और ब्राह्मणोंको उठाकर साथ-साथ चलनेलगे। अनुपम परम तेजस्वी महर्षि लोमश अपने ही प्रभावसे दूसरे सूर्यकी भांति सिद्धमार्ग (ऊंचे पर्वतीय मार्ग) से चलनेलगे। [वन, १४४।२३-२८, १४५।१-१०]

२०. बदरिकाश्रम—मार्गका दृश्य—

अत्यन्त रमणीय वन और उपवनोंका अवलोकन करतेहुए वे सब लोक विशाला बदरी (बदरिकाश्रम) की ओर प्रस्थित हुए। उन महावेगशाली और तीव्र गतिसे चलनेवाले राक्षसोंपर सवार हो वीर पांडवोंने उस विशाल मार्गको इतनी शीघ्रतासे पूर्ण करलिया मानो वह बहुत छोटा हो।

उस यात्रामें उन्होंने म्लेच्छोंसे भरे बहुतसे देश देखे, जो नाना प्रकारकी रत्नोंकी खानों और धातुओंसे व्याप्त थे। उन पर्वतीय शिखरों पर बहुतसे विद्याधर, वानर, किन्नर, किम्पुरुष और गन्धर्व चारों ओर निवास करतेथे। मोर, चमरीगाय, बन्दर, रुरुमृग, सुअर, गवय (नीलगाय) और भैंस आदि पशु

विचररहेथे। वह पर्वतीय प्रदेश अगणित वृक्षोंसे युक्त था। [वन, १४५।११-२०]

२१. कैलासके पास नर-नारायण-आश्रम—

तब पांडवोंने भांति-भांतिके आश्चर्यजनक दृश्योंसे सुशोभित पर्वतश्रेष्ठ कैलासका दर्शन किया। उसीके निकट उन्हें भगवान नर-नारायणका आश्रम दिखाईदिया जो नित्य फल-फूल देनेवाले दिव्य वृक्षोंसे अलंकृत था। वहां उन्होंने "गोल तने वाली विशाल और मनोरम बदरी भी देखी, जो स्निग्ध, घनी छायासे युक्त, उत्तम शोभासे सम्पन्न तथा सघन, कोमल और स्निग्ध पत्रोंसे युक्त थी। वह दीर्घ शाखावाली, अत्यन्त स्वादिष्ट बेरे फलोंसे युक्त थी जिनसे मधुकी धारा बहतीथी।" वह अनेक ब्राह्मणोंसे युक्त और महर्षिगणोंसे सेवित थी। उस प्रदेशमें डाँस और मच्छरोंका नाम नहीं था। फल, मूल (कन्द) और जलका बाहुल्य था। वहांकी भूमि हरी-हरी घास (दुग्याल) से ढकीहुईथी। देवता और गन्धर्व वहां वास करतेथे। उस प्रदेशका भूभाग स्वभावतः समतल और मंगलमय था। उस हिमाच्छादित भूमिका स्पर्श अत्यन्त मृदु था। उस प्रदेशमें कांटोंका कहीं नाम नहीं था।

उस विशाला बदरीके पास पहुँचकर सब महात्मा पांडव उन श्रेष्ठ ब्राह्मणोंके साथ राक्षसोंसे धीरे-धीरे उतरे। [वन, १४५।११-२५]

२२. भीमसेनके वर्तमान पुत्र आज भी उपस्थित !—

बदरी-केदारकी ऊंची चढ़ाईपर आज यदि तीर्थयात्री घटोत्कचका स्मरण करें तो वह अपने राक्षसों सहित उनकी सेवा करनेकेलिए नहीं पहुंचता। पर भीमसेनके अनेक छोटे पुत्र गढ़वाली और डोटियाल आज भी अपनी कंडी, झिंपाण

या डांडी लिए यात्रियोंको दुर्गम मार्गोंपर उठालेजानेके लिए प्रस्तुत रहतेहैं। ये सब अपने पूर्वज भीमसेनके उपासक हैं और घटोत्कचके समान अकेले ही एक मनुष्यको पीठपर बिठा आकाश (चुम्बी) मार्गोंपर लेचलतेहैं।

'२३. नर-नारायण-आश्रम [बदरिकाश्रम] का दृश्य-

ब्राह्मणों सहित पांडवोंने नर-नारायणके रमणीय आश्रमका दर्शन किया। वह अन्धकार तथा तमोगुणसे रहित तथा पुण्यमय था। वहां धूप नहीं पहुँचतीथी। वह स्थान भूख-प्यास, ताप-शीत आदि दोषोंसे रहित और सम्पूर्ण शोकोंका नाश करनेवाला था। वह पावन तीर्थ मनुष्योंके समुदायसे भराहुआ और ब्राह्मीश्रीसे सुशोभित था। धर्महीन मनुष्यों को वहाँ प्रवेश पाना अत्यन्त कठिन था। वह दिव्य आश्रम देवपूजा और होमसे अर्चित था। उसे झाड़बुहारकर भली-भांति लीपागयाथा। दिव्य पुष्पोंके उपहार सब ओरसे उसकी शोभा बढ़ारहेथे। विशाल अग्निहोत्रगृहों और स्रुक्, स्रुवा आदि सुन्दर यज्ञपात्रोंसे व्याप्त वह पावन आश्रम जलसे भरेहुए बड़े-बड़े कलशों और वर्तनोंसे सुशोभित था। वह सब प्राणियोंके शरण लेने योग्य था। वहां वेदमन्त्रोंकी ध्वनि गूंजतीरहतीथी। वह दिव्य आश्रम सबके रहनेयोग्य और थकावटको दूर करने वाला था।

वह शोभासम्पन्न आश्रम अवर्णनीय था। देवोचित कार्यों-का अनुष्ठान उसकी शोभा बढ़ाताथा। उस आश्रममें फलमूल खाकर रहनेवाले, कृष्णमृगचर्मधारी, जितेन्द्रिय, अग्नि तथा सूर्यके समान तेजस्वी और तपःपूत अन्तःकरण वाले महर्षि मोक्षपरायण; इन्द्रियसंयमी, यति; तथा महान् सौभाग्यशाली ब्रह्मवादी, ब्रह्मभूत महात्मा निवास करतेथे। [वन, १४५।२६-३४]

धर्मपुत्र युधिष्ठिर पवित्र और एकाग्रचित होकर भाइयोंके साथ इन आश्रमवासी महर्षियोंके पास गए। युधिष्ठिरको आश्रममें आया देख वे दिव्यज्ञान-सम्पन्न सब महर्षि अत्यन्त प्रसन्न होकर उनसे मिले और उन्हें अनेक प्रकारके आशीर्वाद देनेलगे। उन्होंने युधिष्ठिरका विधिपूर्वक सत्कार किया और उनकेलिए पवित्र फल-मूल, पुष्प और जल आदि साम प्रस्तुत की।

युधिष्ठिरने भाईयों और द्रौपदीके साथ इन्द्रभवनके सम मनोरम और दिव्य सुगंधसे परिपूर्ण उस स्वर्ग सदृश शोभ शाली, पुण्यमय नर-नारायण-आश्रममें प्रवेशकिया। उनके सा ही वेदवेदांगोंके पारागत विद्वान् सहस्रों ब्राह्मण [जो साथ आ थे तथा जो नर-नारायण-आश्रमके विभिन्न भागोंमें रहते और अभी उन्हें मिलेथे] भी प्रविष्टहुए।

धर्मात्मा युधिष्ठिरने वहां भगवान नर-नारायणका आश्र देखा जो देवताओं और देवर्षियोंसे पूजित तथा भागीरथी गंगा से सुशोभित था। वहां सुवर्णमय शिखरोंसे सुशोभित और अनेक प्रकारके पक्षियोंसे युक्त मैनाकपर्वत था। वहीं शीतल जलसे सुशोभित बिन्दुसर नामक सरोवर था। उस वनमें सब ओर सुरम्य वृक्ष दिखाईदेतेथे। उनकी शाखाएँ फलोंके भारसे झुकीथीं और अगणित पुंस्कोकिल (मोनाल) पक्षियोंसे सुशोभित थीं। इन वृक्षोंके पत्ते स्निग्ध और सघन थे। उनकी छाया शीतल थी। वे बड़े रमणीय थे। उस वनमें स्वच्छ जलसे भरे अनेक विचित्र सरोवर भी थे। खिले हुए उत्पल और कमल सब ओरसे उनकी शोभाका विस्तार करतेथे।' इन मनोहर सरोवरोंका दर्शन करके पाडव सानन्द विचरनेलगे। गन्दमादन पर्वतपर पवित्र सुगन्धसे वासित, सुखदायिनी वायु

चलरहीथी, जो द्रौपदी-सहित पांडवोंको आनन्दनिमग्न किए-देतीथी। इन्होंने विशाला बदरीके समीप उत्तम तीर्थोंसे सुशोभित शीतल जलवाली भागीरथीके पवित्र जलमें स्थित हो परम पवित्रताके साथ देवताओं, ऋषियों तथा पितरोंका तर्पण किया। इस प्रकार प्रतिदिन तर्पण और जप आदि करतेहुए वीर पांडव वहां ब्राह्मणोंके साथ रहनेलगे। [वन, १४५।३६-४४]

२४. कदली-वनकी यात्रा—

कदली-वनकी कल्पना सिद्धोंके साहित्यमें विशेष रूपसे मिलतीहै। २५०० वर्ष पूर्वही यह कल्पना होचुकीथी कि बदरीनाथके पासके गन्धमादन [सुगन्धिसे मुग्ध करदेनेवाले] पर्वतपर कदली-वनसे आगे सौगन्धिक वनमें दिव्य सरोवरमें सौगन्धिक कमल हुआकरतेहैं। महाभारतमें इसका उल्लेख इस प्रकार है—

नरनारायण आश्रम में रहतेहुए जब पांडवोंको ६ रात्रियां बीतगईं तो सातवें दिन ईशानकोणसे चलनेवाली वायुके झोंकेसे एक दिव्य सहस्रदल कमल द्रौपदीके सामने आ गिरा। वे उसे भीमको दिखातेहुए बोलीं—"कुन्तीनन्दन ! यदि मेरे ऊपर तुम्हारा (विशेष) प्रेम है तो मेरे लिए ऐसे ही बहुतसे फूल लेआओ।" महाबली भीम अपनी रानीकी संतुष्टिके लिए पुष्प लाने चलदिए।

२५. गंधमादनशिखर—

ईशानकोणमें आगे बढ़कर वे गन्धमादनशिखर पर चढ़-गए। वह पर्वत वृक्षों, लताओं और झाड़ियोंसे आच्छादित था। उसकी शिलायें नीले रंगकी थीं। वहां किन्नर लोग भ्रमण करतेथे। वह देखनेमें ऐसा जानपड़ताथा, मानों पृथ्वी के समस्त आभूषणोंसे विभूषित ऊंची उठीहुई भुजा हो।

गन्धमादनके शिखर सब ओरसे रमणीय थे। वहां पुंस्कोकि (मोनाल) पक्षियोंकी शब्दध्वनि होरहीथी। और कुँद-के-कुँ भौंरे मंडरारहेथे। [वन, १४६।१-१८]

वहांसे आगे गन्धमादनका वह विस्तृत वर्णन आरम्भ होताहै जिसकी छाप कालिदासके हिमालय-वर्णनमें कुमारसंभव और मेघदूत तथा अन्य ग्रन्थोंमें स्पष्ट दिखाईदेतीहै। कालिदास ने *केवल भावही यहांसे नहीं ग्रहण किए वरन शब्दावली और* उपमायें भी यहांसे लीहैं।

भीमसेनने यक्ष, गन्धर्व देवताओं और ब्रह्मर्षियोंसे सेवित विशाल गन्धमादनपर नव ओर दृष्टिपात किया। उस पर्वत-शिखरके उभय पार्श्वमें लगेहुए मेघोंसे उसकी ऐसी शोभा होरहीथी मानो वह पुनः पंखधारी होकर नृत्य कररहाहो। निरन्तर झरनेवाले झरनोंके जल उस पर्वतके कंठदेशमें अव-लम्बित मोतियोंके हार-से प्रतीत होरहेथे। उस पर्वतकी गुफा, कुँज, निर्झर-सलिल और कन्दरायें, सभी मनोहर थे। वहां अप्सराओंके नूपुरोंकी मधुर ध्वनिके साथ सुन्दर बहु-बर्हिए (श्रेष्ठ मोर) नाचरहेथे। उस पर्वतके एक-एक रत्न और शिलाखंडपर दिग्गजोंके दांतोंकी रगड़का चिन्ह अंकित था। निम्न गामिनी नदियोंसे निकलाहुआ जल नीचेकी ओर इस प्रकार बहरहाथा मानो उस पर्वतका वस्त्र खिसककर गिरा जाताहो। भयसे अपरिचित और स्वस्थ हरिण मुंहमें हरे घासका कौर लिए पासही खड़े होकर भीमसेनकी ओर कौतूहल भरी दृष्टिसे देखरहेथे। [वन, १४६।१०-२४]

गन्धमादनके शिखरोंपर महाबाहु भीमने कई योजन तक कदली-षंड (कदली-वन) देखा, जो एक सरोवरके तटपर था। इसी कदली-वनमें भीमसेनको हनुमानजीके दर्शन

हुयेथे। और हनुमानजीने भीमसेनको अपना विराट रूप दिखायाथा। और उन्हें सौगन्धिक वनका मार्ग बतलायाथा।

आगे बढ़नेपर कैलासपर्वतके निकट भीमसेनने कुबेरभवनके समीप एक रमणीय सरोवर देखा, जिसमें सुवर्णमय कमल खिलेथे। यह दिव्य सरोवर कुबेरका क्रीड़ास्थल था। जब भीमसेन यहासे कमल तोड़नेलगे तो सरोवरके रक्षक क्रोधवश राक्षसोंने उसे रोका। उसपर भीमसेनने उन्हें मारभगाया और इच्छानुसार पुष्प तोड़े। घटोत्कचकी सहायतासे युधिष्ठिरादि भी वहीं सौगन्धिक सरोवरके तटपर पहुंचगए। वे कुबेर भवनमे जानाचाहतेथे पर उन्हें आकाशवाणीने वापिस "विशाला बदरीके नामसे विख्यात नारायणके स्थानको," लौटजानेका आदेश दिया। अस्तु वे बदरिकाश्रम लौट आये। [वन, अ० १५४-५६]

२६. आर्ष्टिषेणका आश्रम—

कैलास, मैनाकपर्वत, गन्धमादनकी घाटियों और श्वेतपर्वत का दर्शन करतेहुए उन्होंने पर्वतमालाओंके ऊपर बहुत-सी कल्याणमयी सरितायें देखीं तथा सत्रहवें दिन वे हिमवंतके पवित्र पृष्ठभागपर जापहुँचे। वहां पांडवोंने गन्धमादन पर्वतका निकटसे दर्शन किया। हिमवंतका यह पृष्ठभाग नाना प्रकारके वृक्षों और लताओंसे आवृत था। वहीं वृषपर्वाका आश्रम था। यहां अपने यज्ञपात्र, रत्नमय आभूषण, शेष सामग्री और साथी ब्राह्मणोंको वृषपर्वाऋषिके पास सौंपकर तथा उनके आश्रमसे गन्धमादनका मार्ग जाननेवाले नए ब्राह्मणोंको साथ लेकर वे सभी पांडव नानाप्रकार के वृक्षोंसे हरेभरे पर्वतीय शिखरोंपर डेरा डालतेहुए चौथे दिन श्वेतपर्वतपर जापहुँचे। वहांसे आगे बढ़तेहुए पुण्यमय माल्यवान पर्वतपर पहुँचे।

वहांसे उन्हें गन्धमादन पर्वत दिखाईदिया, जो किम्पुरुषोंका निवासस्थान है। सिद्ध और चारण इसका सेवन करतेहैं। इसे देखकर पांडवोंका रोम-रोम हर्षसे खिलउठा। इस वनमें विचरतेहुए वे आर्ष्टिषेणके आश्रममें पहुँचगए। [वन, अ० १५७-५८]

२७. सारा वर्णन गड़बड़झाला—

नर-नारायण-आश्रमसे सौगन्धिक सरोवरका मार्ग और नर-नारायण आश्रमसे गन्धमादनके मार्गका सारा वर्णन गड़बड़झाला है। गन्धमादनपर जो पशु-पक्षी और वनस्पति बताएगएहैं, उनमेंसे अधिकांश मावर-वनोंके हैं ३०°-३१° उत्तरी अक्षांशपर स्थित १०,००० फीटसे अधिक ऊंचाई वाले पर्वत पर आज' कदापि नहीं मिलसक्ते और न २५०० वर्ष पूर्व ही मिलसकतेथे। यह वर्णन महाभारतमें उस कविने घुसेड़ाहै जिसका परिचय केवल हिमालयकी निचली शृंखलाओंसे था और जिसने महाहिमालयके वन नहीं देखेथे। जैसा निम्न वर्णनसे स्पष्ट है। वहा झुन्ड-के-झुन्ड हाथी (गजसंघ), सिंह और व्याघ्र निवास करतेथे। वहा आम, आमड़ा, भव्य नारियल, तेंदू, मुँजातक, अजीर, अनार, नींबू, कटहल, लकुच (बड़हर), मोच (केला), खजूर, अम्लवेत, पारावत, चौद्र, सुन्दर कदम्ब, बेल, कैथ, जामुन, गम्भारी, बेर, पाकड़, गूलर, बरगद, पीपल, पिंडखजूर, भिलावा, आवला, हैड़, बेहड़ा, इंगुद, करौंदा तथा बड़े-बड़े फलवाले तिंदुक—ये और दूसरे भी नाना प्रकारके वृक्ष लहलहा रहेथे। इसी प्रकार चम्पा, अशोक, केतकी, बकुल (मौलसिरी), पुन्नाग, सप्तपर्ण, कनेर, केवड़ा, पाटल, कुटज, सुन्दर मंदार, इन्दीवर, पारिजात, कोविदार, देवदार, शाल, ताल, तमाल, पिप्पल, हिंगुक, सेमल,

पलाश, अशोक, शीशम तथा सारल आदि वृक्षोंको देखतेहुये पांडव आगे बढरहेथे। चकोर, मोर, भृंगराज, तोते, कोकिल कलविक (गौरैया), हारील (हारिल) चकवा, प्रियक, चातक आदि पक्षी बोलरहेथे। [वन, १५८।३६-५६]

२८. मेरु और मन्दर आदि पर्वत—

आर्ष्टिषेणके आश्रमसे, जो कि गन्धमादनपर था, पूर्वकी ओर मन्दराचल था और वहांसे देखाजासकताथा। उस आश्रमसे उत्तरकीओर महामेरु दिखाईदेताथा। पूर्वदिशामें मेरुपर ही भगवान नारायणका स्थान है। मन्दराचलपर इन्द्र और कुवेरका स्थान तथा मेरुपर ब्रह्मा और नारायणका स्थान है। [वन, १६३।३-४-५; १२-१३; २०-२१] इस वर्णनसे भी सिद्ध होताहै कि आर्ष्टिषेणका आश्रम नीची घाटीमें नहीं होसकता। दूसरी बात यह है कि इस वर्णनके अनुसार कैलास, गन्धमादन, मेरु और मन्दर सब गढ़वाल-हिमालयमें बद्रीनाथ शिखरोंसे पूर्व और उत्तरमें आगएहैं। नन्दादेवीसे, जिसपर महाभारतका हेमकूट है, लेकर भृगुतुंग तक हिन्दुओंकी देवभूमि है।

२९. पांडवोंका गन्दमादनसे लौटना—

गन्धमादनसे लौटते समय उन्होंने गन्धमादनपर आर्ष्टिषेणके आश्रमसे क्रमश कैलास, वृषपर्वाका आश्रम, विशाला-पुरीका पवित्र आश्रम, नरनारायण-स्थान, कुवेरकी पुष्करिणी, होकर सुवाहुके राज्यकी ओर प्रस्थान कियाथा। कुलिन्दराज्यके मोटे-तकडे तुषार और दरद जातिके लोगोंको तथा धनरत्नोंसे सम्पन्न उस राज्यके विभिन्न भागोंको देखतेहुए, हिमालयके दुर्गम स्थानोंको पारकरके उन नर-वीरोंने राजा सुवाहुका नगर देखा। राजा सुवाहुने उनका स्वागत किया। तब वे अपने

विशोक आदि सारथियों, इन्द्रसेन आदि परिचारकों, अग्रगामी सेवकों तथा रसोइयोंसे भी मिले। अगले दिन उन्होंने अपने सारे सारथियों और रथोंको साथ लेलिया और अनुचरों सहित घटोत्कचको विदा करके वहांसे उस पर्वतराजको प्रस्थान किया, जहां यमुनाका उद्‌गम स्थान है।

३०. यमुनोत्तरी पर्वत—

झरनोंसे युक्त हिमराशि उस पर्वतरूपी पुरुषकेलिए उत्तरीय-का काम करतीथी और उसका अरुण एवं श्वेत रंगका शिखर बालसूर्यकी किरणें पड़नेसे श्वेत एवं लाल पगड़ीके समान शोभा पाताथा। यमुनोत्तरी-शिखरका यह सुन्दर वर्णन अद्‌भुत है।

> तस्मिन गिरौ प्रस्रवणोपपन्न-
> हिमोत्तरीयारुणपांडुसानौ

यमुनोत्तरी पर्वतपर पांडव विशाखयूप नामक वनमें एक वर्ष तक रहे। उसके पश्चात मरुभूमिके पास सरस्वतीके तट पर द्वैतवनमें चलेगये। [वन, १७६।१-२१]

३१. यात्रामार्ग और विश्राम-स्थल—

पांडवोंकी यात्रामें लौटनेका वर्णन एक दृष्टिसे महत्वपूर्ण है। बदरिकाश्रमकी ओर जाते समय कविकी दृष्टि मार्गमें राक्षस आदिके उत्पातों और तूफानोंपर रही, उसने ऊंची चढाइयोंके कष्ट और थकावट तथा नर-वाहनोंकी आवश्यकता-का वर्णन तो किया किन्तु मार्ग कैसा था, उसमें ठहरनेके स्थान, पड़ाव कैसे थे, नदियां पार करनेके क्या साधन थे, मार्ग-में भोजनकी क्या व्यवस्था थी, आदि रोचक और आवश्यक बातोंका उल्लेख नहीं किया, जो वर्तमान यात्रीकी दृष्टिमें राक्षसोंके उत्पातोंके वर्णनकी अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण है।

क्योंकि प्राचीन कालके यात्रियोंको राक्षस आदि मनुष्येतर शक्तियां पीड़ित जितना करतीथीं, उतना आजके-नास्तिक मनुष्योंको नहीं करतीं। इनका उल्लेख लौटती यात्राके वर्णनमें कियागयाहै। इस प्रकार यह वर्णन मुख्य यात्रावर्णनका पूरक है।

नरश्रेष्ठ पांडव अपने हाथोंमें खड्ग और धनुष लिएहुएथे। वे ऊँची चढ़ाई, और पर्वतोंकी संकरी घाटियोंमें होकर आगे बढ़रहेथे। उनके मार्गमें सिंहोंकी मांदें, पड़तीथीं। पर्वतीय नदियोंको वे रस्सियोंके झूलों (सेतु) से पार करतेथे। उन्हें बहुतसे झरने और ऊँची-नीची भूमि मिलतीथी। मार्गमें ऐसे विशाल वन भी थे, जो मृग, पक्षी एवं हाथियोंसे भरेथे। वे ऐसे मार्ग पर धीरता पूर्वक आगे बढ़े। कभी रमणीय वनों, कभी सरोवरोंके किनारे, कभी नदियोंके तटपर और कभी पर्वतोंकी छोटी-बड़ी गुफाओंमें दिन या रातके समय ठहरजातेथे। सदा ऐसे ही स्थानोंमें उन्हें टिकना पड़ताथा। अनेक बार दुर्गम स्थानोंमें टिककर उन्होंने मार्ग पार कियाथा। [वन, १७७।३-६]

वे सबके सब तपस्या, इन्द्रिय-संयम, और समाधिमें तत्पर रहनेवाले थे। बांस-रिंगाल [तृण] की चटाई, लकड़ीके पानी रखनेके बर्तन, ओढ़नेके वस्त्र और सिल-लोढ़े [कूटने-पीसनेके लकड़ी-पत्थरके पात्र, सिल-बट्टा] यही उनकी सामग्री थी। [वन, १७७।२२]

यात्रियोंकी सामग्रीका यह वर्णन अत्यन्त रोचक और महत्वपूर्ण है। इसमें तृण (बांस-रिंगाल) की चटाई आज भी इस प्रदेशमें केवल यात्रियोंकी ही नहीं, बुग्यालोंमें जाकर पशु चरानेवालोंके लिए भी तम्बू और छतरीका काम देतीहै। हिन्दुस्थान की सैकड़ों घुमन्तू जातियोंका चलता-फिरता घर चटाई-सिरकी का होताहै।

विवाहका वर्णन आयाहै। स्वर्गखंडके अध्याय १-६ मे कण्वाश्रम और शकुन्तलाका वर्णन आताहै। १६ वे अध्यायमे भागीरथका गंगानयन वर्णित है। उत्तरखंडके अध्याय २-३में बदरिकाश्रमका वर्णन है। २१ वें और २२ वें अध्यायमे हरिद्वार-माहात्म्य और १३ वें अध्यायमे गंगामाहात्म्य वर्णित है। ८२ वें अध्यायमें फिर गंगामाहात्म्य है।

४. विष्णु पुराण—

प्रथम अंशमे ध्रुवका यमुनातट पर तपस्या करनेका वर्णन है।

५. शिव पुराणमें—

रुद्रसंहिताका सारा कार्यक्षेत्र हिमालयके इसी भागमें है। कनखलमे सतीदाह, हिमालयमे उमा-जन्म, वहीं उमा-शिव विवाह और कुमार-जन्म, दैत्य-विनाश, बाणासुर-पराजय, उषा-अनिरुद्ध-विवाह आदिका वर्णन है जो सब केदार-खंडमे हुईहैं। कोटिरुद्रसंहिताके १६वें अध्यायमे केदारेश्वर ज्योतिर्लिंगका वर्णन है। इसमें कहागयाहै :—

नर-नारायण नामक विष्णु के अवतार भारतखंडमे बदरिकाश्रममे तपस्या करतेथे। उन्होंने शिवजीको अपनी तपस्यासे संतुष्ट करके यह वर मांगा कि वे उसी स्थान पर स्थित होजाऍ जिससे नर-नारायण उनकी पूजा करतेरहें। तबसे शिवजी वहीं रहतेहैं, [कोटिरुद्रसंहिता अ० १६।१-६]। "पांडवों द्वारा शिव दर्शन करनेका प्रयत्न करना और शिवजीका महिष बनजाना" यह कल्पना महाभारतमें नहीं मिलती। महाभारतमें पांडवोंके केदारनाथ जानेका उल्लेख नहीं है। केवल अर्जुन भृगुपंथ गयेथे। किन्तु शिव-पुराणकी कोटिरुद्रसंहितामे यह

कल्पना मिलतीहै। पांडवोंको देखकर वहां शिवजीने महिष रूप धारण करलिया और मायासे वहांसे भागे। तब पांडवों ने उस महिषरूपकी पूँछ पकड़ली और बारम्बार प्रार्थना की। भगवान् वहां नीचेकी ओर मुख किएहीरहे और उनका शिरोभाग नेपालमें प्रकट हुआ। [उपरोक्त अ०१६।१३-१५] उमा-संहितामें उसी देवी-माहात्म्यका वर्णन है जो मारकंडेय पुराणमें है। इसका क्षेत्र गढ़वालका रुद्र हिमालय है। वायवीय संहिताके पूर्वखंडमें सती-जन्म, दक्षयज्ञ-विध्वंस, काली-जन्म आदिका वर्णन है, जिनका क्षेत्र केदारखंड है।

६. श्रीमद्भागवत पुराणमें—

चतुर्थस्कन्धके अध्याय २ से ७ तक सतीचरित्रकी भूमि हिमालय और कनखल है। नवम स्कन्धके ६वें अध्यायमें भगीरथ द्वारा गंगा लानेका वर्णन है। दशम स्कन्धके ६२-६३ वें अध्याय में बाणासुरके शोणितपुरमें ऊषा-अनिरुद्ध प्रसंग आताहै, पर यह प्रकट नहीं होता कि शोणितपुर हिमालयमें था।

७. वायु पुराणमें—

३० वें अध्यायमें हिमवंतमें मेनाके गर्भसे मनाककी उत्पत्ति तथा कनखलमें सतीदाह और दक्षयज्ञविध्वंशका वर्णन है। ४१ वें अध्यायमें कैलास-वर्णन है। ४७ वें अध्यायमें कैलास, चैत्ररथवन, मानसरोवर, गंगा-उत्पत्ति और गंगाजीकी सप्त धाराओं का वर्णन है। १११ वें अध्यायमें उत्तरके तीर्थोंका वर्णन है, जिसमें कनखलादि तीर्थोंमें श्राद्ध करनेकी महिमा बतलाईगईहै।

८. नारदीय पुराणमें—

पूर्वार्द्धके १० वें अध्यायमें गंगा-उत्पत्ति, उत्तरार्द्धके अध्याय ३६ से ४३ तक गंगा-महिमा गाईगईहै। ६७ वें अध्यायमें

अध्याय ५

पुराणोंमें उत्तराखण्डकी पावन भूमि

१. पुराणोंमें तीर्थयात्राको चरम प्रोत्साहन—

महाभारतमें हम तीर्थयात्राके प्रति जो उत्साह देखतेहैं वह पुराणोंमें चरम सीमाको पहुँचगयाहै। मानो पुराणोंकी रचना तीर्थोंका माहात्म्य गानेकेलिए ही कीगईहो। ज्यों-ज्यों पुराणोंकी कथाश्रवणका प्रचार बढ़ा त्यों-त्यों तीर्थयात्राका भी। तीर्थ-यात्राने पुराणोंका प्रचार और पुराणोंने तीर्थयात्राका प्रचार बढ़ाया। तीर्थोंमें पुराणश्रवणका माहात्म्य अत्यधिक मानागया। भौम तीर्थोंकी प्रशंसामें महाभारतमें भीष्म पहले ही कहचुके थे—

> एतत्ते कथितं राजन् मानसं तीर्थलक्षणम्।
> भौमानामपि तीर्थानां पुण्यत्वे कारणं शृणु॥
> यथा शरीरस्योद्देशाः केचिन्मेध्यतमाः स्मृताः।
> तथा पृथिव्या उद्देशाः केचित्पुण्यतमाः स्मृताः॥
> प्रभावादद्भुताद्भूमेः सलिलस्य च तेजसः।
> परिग्रहान्मुनीनां च तीर्थानां पुण्यता स्मृता॥

धरतीके अद्भुत प्रभाव, जलकी पवित्रता अथवा ऋषि-मुनियोंके कारण विभिन्न तीर्थोंमें अन्य स्थानोंकी अपेक्षा

अधिक पवित्रता आगई। (मित्रमिश्र, वीरमित्रोदय, तीर्थप्रकाश, पृ० १०)। पुराणोंने धरतीके अद्भुत प्रभाव, जलकी पवित्रता और ऋषि-मुनियों या अवतारोंके जीवनसे तीर्थोंका संबंध जोड़नेके यत्नमें होड़ लगादी। वास्तवमे पुराणोंमें, सर्ग प्रतिसर्ग, वंश, मनंतर तथा वंशानुचरित, जो पुराणोंके पंचलक्षण मानेगयेहैं, *नाम-मात्रको और सर्वथा अव्यवस्थित रूपमें मिलते-हैं*। ऐसा दिखाईदेताहै जैसे पुराणोंका एक और सबसे महत्वपूर्ण लक्षण तीर्थ-महिमा-कथन रहाहो। पुराणोंमे अन्य भागोंके तीर्थोंकी अपेक्षा उत्तराखंडके तीर्थों का विशद वर्णन मिलताहै। भुवनकोशको छोड़कर पुराणोंमे उत्तराखंडकी पुनीत भूमिका उल्लेख इस प्रकार मिलताहै।

२. ब्रह्म पुराणमें—

इस पुराणके आठवें अध्यायमें सगर और भागीरथका विवरण तथा गंगाका "भागीरथी" नामकरण होनेका वर्णन है। ३४ से ३६ अध्याय तक सतीदाह, तथा पार्वती विवाह का वर्णन है जिसका क्षेत्र कनखलसे कैलास तक है। ७१वें अध्यायमे गंगोत्पत्ति, तथा ७३, ७४ और ७५ अध्यायोंमे गंगाजीके माहात्म्यके अतिरिक्त गौतमके कैलासगमनका वर्णन है। २०४, ५ और ६ अध्यायोंमे ऊषा-अनिरुद्ध-विवाहका वर्णन है, जिसका क्षेत्र गढ़वाल-हिमालय है। इसी पुराणमे महापंथयात्राकी प्रशंसा करतेहुए कहागयाहै, सत्य और धैर्यका आश्रय लेकर महापंथ-की यात्रा करनीचाहिए, उससे तुरन्त स्वर्गकी प्राप्ति होतीहै। यदि वहां अपघातसे इन्द्रलोककी प्राप्ति न होती, तो वहां आत्म-हत्याका साहस कौन करता। [वीरमित्रोदय पृ० ६०६ में उद्धृत]

३. पद्म पुराणमें—

सृष्टिखंड अ० ४० में हिमालयमे पार्वती-जन्म और

बदरीक्षेत्रमें प्रतिष्ठित नर-नारायणाश्रमका महात्म्य और वहांकी यात्राका वर्णन दियागयाहै। इसमें गंगाद्वार (हरिद्वार) के हरिपदतीर्थ (हरिकी पैड़ी), त्रिगंगक्षेत्र, कनखलतीर्थ, कोटितीर्थ सप्तगंगतीर्थ, कपिलाह्रद, ललित, भीमस्थल (भीमगोड़ा) तीर्थोंका उल्लेख कियागयाहै। बदरिकाश्रममें वह्नितीर्थ, और पांच शिलाओंका माहात्म्य और कथायें दीगईहैं। सत्ययुग में भोग-मोक्ष देनेवाले भगवान् नर-नारायण श्रीहरि सबके सामने प्रत्यक्ष निवास करतेथे, त्रेता आनेपर वे केवल मुनियों देवताओं और योगियोंको दिखाईदेतेथे, द्वापर आनेपर केवल ज्ञानयोगसे उनका दर्शन होनेलगा। तब ब्रह्मा आदि देवताओं और तपस्वी ऋषियोंकी प्रार्थनापर आकाशवाणीने कहा, "देवेश्वरो ! यदि तुम्हें मेरे स्वरूपके दर्शनकी श्रद्धा है तो नारदकुंडमें मेरी जो शिलामयी मूर्ति पड़ीहै, उसे लेलो।" तब उन्होंने नारदकुंडमें पड़ीहुई उस शिलामयी दिव्य प्रतिमाको निकालकर वहां स्थापित करदिया। और पूजा करके अपने धाम चले गए। वे देवगण प्रति वर्ष कार्तिक मासमें आकर पूजा आरंभ करतेहैं और वैसाखमें अपने धाम चलेजातेहैं। छः महीने देवताओं और छः महीने मनुष्यों द्वारा भगवद्-विग्रहकी पूजा कीजातीहै। [कल्याणका संक्षिप्त नारद-विष्णु-पुराणांक, पृ० ५८८-८६]

९. अग्नि पुराणमें—

१०८-६-१० अध्यायोंमें मेरु तीर्थ और गंगाका माहात्म्य कहागयाहै।

१०. ब्रह्मवैवर्त पुराणमें—

प्रकृतिखंडके अध्याय १० में गंगोपाख्यान आयाहै। उत्तरार्द्ध के १०४ से १२० अध्याय तक ऊषा-अनिरुद्ध-उपाख्यान आयाहै।

गणपतिखंडमें १ अध्यायसे कुमार जन्मका वर्णन है। श्री कृष्णजन्म खण्डके अध्याय ३४ में जान्हवी-जन्माख्यान, तथा अध्याय ३८ से ४६ तक सतीदाह, पार्वती-जन्म तथो मदन-दहन तकका वर्णन है। उत्तरार्द्धमें अध्याय ११४ से ११८ तक उषा-अनिरुद्ध विवाह तथा बाणासुरसे कृष्णके युद्धका वर्णन है।

११. वाराह पुराणमें—

अध्याय २१, २२, २३ में गौरीकी उत्पत्ति, विवाह तथा गणेश उत्पत्तिका वर्णन है। अध्याय २५ मे कार्तिकेयोत्पतिका वर्णन है। १२६वे अध्यायमें कुब्जाम्रकतीर्थका माहात्म्य, १४१वें अध्यायमें बदरिकाश्रम-माहात्म्य दियागया है, जिसमें ब्रह्मकुण्ड अग्निसत्यपदतीर्थ, विष्णुवाश्रम, पंचस्रोततीर्थ, चतुस्रोत-तीर्थ, वेदधारातीर्थ, द्वादिशादित्यकुण्ड, लोकपालतीर्थ, सोमा-भिषेकतीर्थ और लक्ष्मीकुण्डका वर्णन है। वराह कहतेहैं— "उस हिमवतकी पीठपर मेरा गुप्त स्थान है वहां मैंने तपस्या कीहै। यहा अग्निके समान दुष्कर कार्य करके मेरे भक्त मुझे प्राप्त करतेहैं। यह मेरा अत्यन्त दुर्लभ क्षेत्र हिमकूट शिलाके पादप्रदेशमे है। [वराह पुराण, १४१] इसी पुराणके १४६ अध्यायमें-हृषीकेष माहात्म्य, तथा १५४वें अध्यायमे यमुना-तीर्थका वर्णन है।

१२. स्कन्द पुराणमें—

माहेश्वरखंडके अन्तर्गत केदारखण्डमें दक्षयज्ञमें सतीदाह, पार्वती-अवतार, कुमार-उत्पत्ति और तारकवधका वर्णन है। इसीके वैष्णवखंडमे बदरिकाश्रम माहात्म्य तथा गरुड़ादिशिलाओंका वर्णन है। इसमें बदरीक्षेत्रके संबंधमे कुछ महत्त्वपूर्ण बातें कहीगईहैं।

"यह बदरीक्षेत्र अनादि सिद्ध है। जैसे वेद भगवानके शरीर हैं, उसी प्रकार यह भी है। इस क्षेत्रके अधिपति साक्षात् भगवान नारायण हैं। नारद आदि महर्षियोंने इस तीर्थका सेवन कियाहै। काशीमें श्रीपर्वतके शिखरपर तथा कैलाशमें पार्वती-सहित मेरी जैसी प्रीति है, उससे अनन्त गुनी अधिक बदरी-क्षेत्र में है।"

"जहां भगवान नारायणका सान्निध्य है, जहां साक्षात् अग्निदेवका निवास है, और केदाररूपसे मेरा लिंग प्रतिष्ठित है, वह सब बदरीक्षेत्रके अन्तर्गत है।"

"केदारके दर्शन, स्पर्श तथा भक्तिभावसे पूजन करनेपर कोटि-कोटि जन्मोंका पाप तत्काल भस्म होजाताहै। उस क्षेत्रमें मैं अपनी सम्पूर्णकलासे स्थित रहताहूं।"

"वहां (बदरीमें) जो पांच शिलायें हैं, उनमें सदा भगवान विष्णुकी स्थिति है, वहींपर सब पापोंका नाश करनेवाला अग्नितीर्थ है।"

"सत्ययुगमें भगवान विष्णु सब प्राणियोंका हितकरनेके लिए मूर्तिमान होकर रहतेथे। त्रेतायुगमें ऋषिगणोंको केवल योगाभ्याससे दृष्टिगोचर होतेथे। द्वापर आने पर भगवान सर्वथा दुर्लभ होगए, उनका दर्शन कठिन होगया। तब देवता, मुनि, बृहस्पति और ब्रह्माजीने विष्णुकी स्तुतिकी। भगवान-विष्णुका उत्तर सुनकर ब्रह्माने देवताओंको समझाया 'देवताओ! अब लोगोंकी बुद्धि खोटी होगयीहै, यह देखकर भगवान उनकी दृष्टिसे छिपगएहैं। "यह सुनकर सब देवता लोग स्वर्गको चलेगए।"

"तब मैंने (शिव) सन्यासीका रूप धारण करके नारद-तीर्थसे भगवान विष्णुको उठाया और समस्त लोगोंके हितकी इच्छासे विशालापुरीमें स्थापित करदिया। विष्णुके समान

कोई देवता नहीं, विशालाके समान कोई पुरी नहीं, सन्यासीके समान कोई सेवाका पात्र नहीं और ऋषितीर्थ (बदरीक्षेत्र) के समान कोई तीर्थ नहीं ।"

न विष्णुसदृशो देवो, न विशालासमा पुरी ।
न भिक्षुसदृशं पात्रमृषितीर्थं सम नहि ॥

[स्कन्दपुराण, वैष्णवखण्ड, बदरिकाश्रम माहात्म्य, ५।५८; (कल्याणका संक्षिप्त) स्कन्दपुराणांक, पृ०३०२ से ३०६]

स्कन्दपुराणके ऊपरोक्त बदरिकाश्रम-माहात्म्यमें पंचतीर्थ, सोमतीर्थ, द्वादशादित्यतीर्थ, चतुःस्त्रोततीर्थ, सत्यपदतीर्थ, मेरुतीर्थ, लोकपालतीर्थ, दण्डपुष्करिणी, गंगासंगम तथा धर्मक्षेत्र आदिका माहात्म्य भी वर्णित है।

१३. मार्कण्डेय पुराणमें—

अध्याय ५१, ५२, ५४, ५५, ५६, ५७ मे वर्णित भुवनकोष के अतिरिक्त अध्याय ५३ में गंगावतारका वर्णन है। मार्कंडेय-पुराणमें वर्णित प्रसिद्ध देवी-माहात्म्यकी घटना कहां हुई, कहना कठिन है। इस माहात्म्यके पांचवें अध्यायमें ये पंक्तियां आई हैं —

तस्यां विनिर्गतायां तु कृष्णाभूत् साऽपि पार्वती ।
कालिकेति समाख्याता हिमाचलकृताश्रया ॥८८॥
ततोऽम्बिकां परं रूपं बिभ्राणा सुमनोहरम् ।
ददर्श चण्डो मुंडश्च भृत्यौ शुम्भनिशुम्भयोः ॥८९॥
ताभ्यां शुम्भाय चाख्याता अतीव सुमनोहरा ।
काप्यास्ते स्त्री महाराज भासयन्ती हिमाचलम् ॥९०॥

कौशिकीके प्रकट होनेके पश्चात् पार्वतीदेवीका शरीर काले रंगका होगया, अतः वे हिमालयपर रहनेवाली कालीदेवीके नामसे विख्यात हुई । तदनन्तर शुम्भ-निशुम्भके भृत्य चण्ड-मुण्ड वहां आए और उन्होंने परम मनोहर रूप धारणकरने-

वाली अम्बिकादेवीको देखा, फिर वे शुम्भके पास जाकर बोले—'महाराज ! एक अत्यन्त मनोहर स्त्री है, जो अपनी दिव्यकांतिसे हिमालयको प्रकाशित कररहीहै ।" [मार्कंडेय-पुराण, देवी-माहात्म्य ५।८८-६०]

इसी अध्यायके १०४वें श्लोकसे प्रकट होताहै कि देवीपर्वत के अत्यन्त रमणीय प्रदेशमें [शैलोद्देशेऽति शोभने] थीं। यह अधिक संभव प्रतीत होताहै कि हिमवानके उसी भागमें जहां पार्वतीका अवतार हुआ, देवी माहात्म्यकी घटना हुईहो।

१४. वामन पुराणमें—

अध्याय १७ से २१ तक देवी माहात्म्य तथा पार्वती-उत्पत्ति, ३४ से ३७ अध्यायमें अनेकों तीर्थोंका वर्णन है तथा अध्याय ८३ ,८४ मे प्रह्लादकी तीर्थयात्राका वर्णन है।

१५. कूर्म पुराणमें—

इस पुराणके उत्तरार्द्धके ३७वें अध्यायमें महालय, केदारादि तीर्थोंका वर्णन है।

१६. मत्स्य पुराणमें—

११६वें अध्यायमें पुरुरवा द्वारा हिमवानका वर्णन, ११७वें अध्यायमें हिमवान्की नदियोंकी शोभा, ११८वें अध्यायमें हिमवानपर एक अद्भुत आश्रममें पुरुरवाका पहुंचना और ११९वें अध्यायमें अप्सराओंकी क्रीडा और १२० अध्यायमें कैलाश और अलकापुरीका वर्णन है।

१७. देवीभागवत पुराणके—

पंचम स्कन्धके देवी माहात्म्यकी कथा इसी प्रदेशसे सम्बन्धित प्रतीत होतीहै । नवम स्कन्धके ८वें और ११वें अध्यायमें गंगाकी उत्पत्तिका वर्णन है, जो इसी प्रदेशसे संबन्धित है।

१८. लिंग पुराणके—

४८, ४९ और ५०वें अध्यायमें सुमेरु और निकटके अन्य पर्वतों और उनके निवासियोंका वर्णन है। अध्याय ९९ से ०६ तक सतीदाह और पार्वती-जन्मका उपाख्यान है।

१९. हरिवंश पुराणके—

भविष्यपर्वके अध्याय ७३ से ८४ तक श्रीकृष्णकी कैलास-यात्रा, तथा घंटाकरणकी समाधिका वर्णन है।

२०. देवी पुराणमें—

केदार-माहात्म्यके प्रसंगमें कहागया है :—केदारके जलको पीकर पुनर्जन्म नहीं होता, न विभिन्न योनियों में जन्ममरण होताहै। श्वाश्वत पदकी प्राप्ति होतीहै।

अध्याय ६

केदारखंड ग्रंथ : समीक्षा और वर्णित तीर्थ

१. केदारखंड ग्रन्थका प्रभाव—

केदारखंड (उत्तराखंड) के तीर्थोंका विशद वर्णन और माहात्म्य एक संस्कृत ग्रन्थ केदारखंडमें मिलताहै जिसे स्कन्द पुराणका खंड मानाजाताहै। गढ़वालके भूगोल, इतिहास, तीर्थयात्रा आदिके सबंधमें लिखनेवाले प्रत्येक लेखकने "केदार-खंड ग्रन्थ" से कुछ न कुछ सहायता अवश्य लीहै, और प्रायः सभी लेखक इस ग्रन्थको प्रामाणिक मानतेरहेहैं। हरिकृष्ण रतूड़ीने लिखाहै,—"इस देशका भूगोल महर्षि वेदव्यासने लिखाहै जो स्कन्दपुराणके अनेक खंडोंमेंसे एक खंड "केदार खंड" के नामसे प्रसिद्ध है। महर्षि वेदव्यासने इस "खंडमें" यहांके प्रत्येक तीर्थ और स्थानका सुविस्तीर्ण रूपसे वर्णन किया है। परन्तु सहस्रों वर्ष व्यतीत होजानेसे मुख्य-मुख्य स्थानों और तीर्थोंके अतिरिक्त अन्य तीर्थोंका रूपान्तर होजानेसे अब केवल अनुमानसे ही उनका पता लगायाजासकताहै।......" [रतूड़ी गढ़वालका इतिहास, पृ० ८]। डा० पातीरामने अपनी पुस्तक "गढ़वाल एनशिएन्ट एँड मौडर्न" में पृ०७८ पर, महीधरशर्माने अपनी पुस्तक "गढ़वालमें कौन कहां ?" के पृ०१०पर इसी प्रकारके

विचार प्रकट किएहैं। राहुलने भी हिमालयमें विभिन्न खंडोंकी कल्पना तथा किरातभूमि आदिका उल्लेख करतेहुए इसी ग्रन्थका आश्रय लियाहै, [राहुल, गढ़वाल, पृ० ३, ४०, ५१, ५१ आदि] अस्तु इस ग्रन्थके सम्बन्धमें कुछ विचार करलेना आवश्यक है।

२. केदारखंडकी कल्पना—

केदारखंड ग्रन्थके अनुसार श्वेतपर्वत [हिमालय] में पांच खंड हैं:—

तीर्थानि प्रथरारायेच श्वेताख्ये पर्वतोत्तमे।
अग्रे मानसप्रस्तावे तथा नेपालके मुनि॥
कश्मीरे चैव प्रस्तावे जालंध्रे वै तथा पुनः।
तथा केदारप्रस्तावे कथितानि मयाद्य ते॥

[केदारखंड, अ० २०४-२६-७]

मैंने हिमालयके तीर्थोंका वर्णन तुमसे "मानस, नेपाल, कश्मीर, जालंधर और केदार" नामवाले प्रस्तावोंमें कहाहै। नेपाल खंडकी पश्चिमी सीमामें कुछ परिवर्तन होचुकाहै, पर फिरभी नेपालका बहुत बड़ा भाग नेपालखंडमें आताहै। इसी प्रकार "मानसखंड"में कूर्माचल (कुमाऊं) "केदारखड"में टेहरी और गढ़वाल तथा "जालंधरखंड" मे हिमाचलप्रदेश और "कश्मीरखंड" मे कश्मीर आतेहैं। "केदारखंड" ग्रन्थमें केदारखंडकी सीमाका उल्लेख इस प्रकार कियागयाहै:—

इति तत्परमं स्थानं देवानामपि दुर्ल्लभम्।
पंचाशद्योजनायामं त्रिंशद्योजनविस्तृतम्॥
इदं वै स्वर्गगमनं न पृथ्वी तामहो विभो।
आगंगाद्वारमर्यादं श्वेतांतं वरवर्णिनी!
तमसातटतः पूर्वमर्वाग्बौद्धाचलं शुभम्।
केदारमंडलं स्यातं भूम्यारतद्विभकं स्थलम्॥

देवताओंको भी दुर्लभ यह महान स्थल पचास योजन लम्बा और तीस योजन चौडा है। यह पृथ्वी नहीं स्वर्गभूमि है। गंगाद्वार (हरिद्वार) से लेकर श्वेत (महाहिमालय) पर्वत तक और तमसा (टौंस) के तटसे लेकर बौद्धाचल (बधाण) तक केदारमंडल है। [केदारखंड अध्याय, ४०।२७-२९]

आगे चलकर कहागयाहै—

नन्दापर्वतमारभ्य यावत्काष्टगिरिर्भवेत ।
तावत्केदारकंक्षेत्र शिव मन्दिरमुत्तमम् ॥

[केदारखंड, अध्याय, १०१।३०] । इसी ग्रन्थके अन्तमें कहागयाहै —

गंगाद्वारमसमारभ्य यावच्छ्वेतगिरिर्भवेत् ।
तमसातटत पूर्वं तथा काष्टगिरिर्भवेत् ॥

[केदारखंड, अध्याय, २०६।२०-२१]

इस प्रकार केदारखंड ग्रन्थमें २०६ अध्यायों और २५१×२+१=५०३ पृष्ठोंमें टेहरी और गढवालके तीर्थोंका माहात्म्य गायागयाहै और यहांके एक-एक नदी-नाले, जल-सोते और पानीके गड्ढोंकी, पर्वतशिखरों और गुफाओंकी तथा पाषाण-शिलाओंकी पवित्रता सूचित करनेकेलिए नाना प्रकारकी कथाओंका सृजन कियागयाहै।

४. केदारखंड ग्रन्थमें वर्णित मुख्य तीर्थक्षेत्र—

इस ग्रन्थमें हरिद्वारसे बदरी-केदारकी यात्राका क्रमबद्ध वर्णन नहीं है और आरम्भसे १०० अध्याय तक तीर्थोंका वर्णन उतना सबद्ध नहीं है, जितना १०१ से अन्त तक मिलता है। ऐसा प्रतीत होताहै जैसे १०१ अध्यायसे एक नया ग्रन्थ आरम्भ होरहाहै। इस सम्बन्धमें आगे विस्तारपूर्वक लिखा-जाएगा। सारे ग्रन्थमें केदारखंडको कुछ क्षेत्रोंमें बांटागयाहै,

जिनमें मुख्यत: इन तीर्थोंका माहात्म्य कहागयाहै:—हरिद्वार, कनखल-मायापुरी, कुब्जाम्रतीर्थ (ऋषिकेश) लक्ष्मणझूला, देवप्रयाग, श्रीनगर, कर्णप्रयाग, रुद्रप्रयाग, केदारनाथ, गोपेश्वर विष्णुप्रयाग, बदरीनाथ, भिल्लांगण, गंगोत्तर, उत्तरकाशी, यमुनोत्तरी, नन्दादेवी कालीमठ और पंचकेदार। इनमें अनेक पवित्र शिलाओं, धाराओं, कुण्डों औरनदियोंका उल्लेख किया गयाहै। अनेक तीर्थोंमें गुफायें भी बतलाईहैं। प्रायः प्रत्येक तीर्थमें वर्णित नदी, पर्वत आदिपर उमके अधिपति किसी—ईश्वर और—ईश्वरी देवीका उल्लेख कियागयाहै। कुछ तीर्थोंके भैरवभी बतलाएगएहैं। अनेक तीर्थोंके वर्णनमें वहां एक या अधिक रात्रि तक रहने, यथासंभव भूमि और सुवर्ण-दान करनेकी बड़ी प्रशंसा कीगईहै। कई तीर्थोंमें आत्महत्या करनेकी भूरि-भूरि प्रशंसा कीगईहै।

नदियोंमें भागीरथी, जाह्नवी, अलकनन्दा, यमुना, नवालका (दोनों नयार), विरही, पिंडार, नन्दाकिनी, धौली, मन्दाकिनी और भिल्लंगणाका उल्लेख है। इनके अतिरिक्त अनेक तीर्थोंपर अनेक काल्पनिक नाम वाली धारायें और नदियां बतलाईगईहैं जिनकी संगति बिठाना कठिन है।

जातियोंमें भिल्ल-किरातोंका बार-बार उल्लेख है। ब्राह्मण और वैश्योंका भी उल्लेख है, पर खस, और गढ़वालकी हरिजन जातियोंका उल्लेख नहीं है। वनस्पति, पशुपक्षी, मनुष्यों के विविध प्रकारके जीवन-यापनके ढंग आदिके सम्बन्धमे इस ग्रन्थसे विशेष कुछ ज्ञात नहीं होता।

५. केदारखंड ग्रन्थमें केदार-बदरी-यात्रा—

इस ग्रन्थमें, पंडे या फिकाल किस प्रकार यात्रियोंकोकेदार-बदरी-यात्राके लिए प्रेरित करतेथे और प्राचीन कालमे किस

प्रकार केदार-बदरीकी यात्रा कीजातीथी, इसका मनोरंजक उल्लेखहै।

अवन्ती नगरीमें एक धर्मात्मा तथा धन-सम्पत्ति-सम्पन्न चन्द्रगुप्त नामक वैश्यसे कैलासके निकट बदरीवनमें रहनेवाले कण्वगोत्रके धर्मदत्त नामक ब्राह्मणने कहाथा—"गंगाद्वारसे तीस योजनकी दूरीपर भुक्ति-मुक्ति देनेवाला बदरिकाश्रम महाक्षेत्र है, जहां देवता, गन्धर्व तथा उत्तम व्रत वाले मुनि तपस्या करतेहैं। वहां पाप नष्ट करनेवाले अनन्त तीर्थ हैं। वहां त्रिलोकीको पवित्र करनेवाली गंगा है। जो बदरीनाथको प्रणाम करताहै, वह विष्णु-धाम प्राप्त करताहै। बदरीनाथका एक बार दर्शन करलेनेपर बार-बार जन्म नहीं लेनापड़ता। बदरीनाथका प्रसाद खालेनेसे अभक्ष्यभक्षणका दोष दूर होजाताहै। जो बदरीनाथ जाताहै, उसका जीवन सफल होजाताहै।

"संसारके बन्धनसे मुक्तिपानेके इच्छुक व्यक्तिको बदरीनाथकी यात्रा करनीचाहिए। गणेशपूजन, स्वस्तिवाचन, बदरीनाथके उद्देश्यसे पुरायाह्वाचन करवाकर और ब्राह्मणोंकी पूजा करके और उनका आशीर्वाद लेकर दर्पटि [साधु,कांवर लेजानेवाला] का वेष धारण करे। जितेन्द्रिय, शुद्ध-हृदय, भूमि पर शयन करनेवाला और शुद्ध विचारोंवाला बनकर एक बार फलाहार करताहुआ तीर्थयात्रा करे। उत्तम धर्म प्राप्त करनेके लिए स्वयं अपने पैरोंसे चले। गोयानपर चढ़कर तीर्थयात्रा करनेसे गोहत्याका पाप लगताहै। घोड़ेपर तीर्थयात्रा करनेसे फल नष्ट होता है। मनुष्यपर चढ़कर यात्रा करनेसे केवल आधा फल प्राप्त होताहै। इसलिए पैदल ही चलनाचाहिए।"

"तीर्थयात्रा में किसीका अन्न न खानाचाहिए। तीर्थयात्रामें पराश्रसे पुण्य तो अन्नदाताको मिलजाता है और उसके पाप

अन्न खानेवालेके सिर चढ़जातेहैं । मार्गमें आध्यात्मचिन्तन करतेहुए तथा तीर्थोंका माहात्म्य सुनतेहुए बदरीनाथ क्षेत्रकी यात्रा करनीचाहिए ।

"गंगाद्वार पहुँचकर नील भैरबकी पूजा करनीचाहिए। और उनसे तीर्थयात्रा करनेकी अनुमति मांगनीचाहिये। इसके पश्चात कण्वाश्रम जानाचाहिए और बदरीनाथ क्षेत्रके सब तीर्थों में यथा विधिपूर्वक स्नान करनाचाहिए। पापसे मुक्त होनेकेलिए पहले केदारनाथकी यात्रा करनीचाहिए। केदारनाथकी पूजा करके और केदारनाथकी आज्ञा लेकर बदरीनाथके दर्शन करनेचाहिए। जो केदारनाथके दर्शन न करके सीधे बदरीनाथकी यात्रा करताहै, उसकी यात्रा निष्फल होतीहै। शिव और कृष्ण (विष्णु) में अन्तर नहीं समझनाचाहिए।"

"तब ऋषिगंगाके उत्तरकी ओर सूक्ष्मक्षेत्रमें एक दिन जितेन्द्रिय होकर निवास करनाचाहिए। [बदरीनाथ पहुँचकर] प्रातः गंगातट पर नारदकुण्डमें स्नान करनाचाहिए। वह्नितीर्थ (तप्तकुण्ड) मे स्नान करके भगवानका स्मरण करतेहुए बदरीनाथके मन्दिरमे जानाचाहिए। यथाशक्ति भेट चढ़ानी चाहिए भगवान नारायणके किरीटसे लेकर चरणतकके दर्शन करनेचाहिए। यथाशक्ति ब्रह्मणोंको दान देनाचाहिए। भक्तिसे प्रदक्षिणा करनीचाहिए। तीर्थोंसे घर लौटनेपर यथाशक्ति दान करनाचाहिए। इस प्रकार यात्रा करनेवालेको दूसरी बार जन्म नहीं लेनापड़ता, उसे पग-पगमे अश्वमेधका फल प्राप्तहोताहै।"

ब्रह्मदत्तसे बदरीनाथकी यात्राका वर्णन सुनकर चन्द्रगुप्तने विधिपूर्वक बदरीनाथकी यात्रा की। [केदारखण्ड, अ०६२]।

केदारखण्डग्रंथमें अनेक स्थानोंमे ब्रह्मणोंके नामान्तमें 'दत्त' शब्द आया है, जैसा गढ़वालमें आजतक प्रचलित है।

गढ़वालमें ब्राह्मणोंके नामान्तमें दत्त शब्द कैत्यूरी-युगमें भी लगताथा जैसा कि पद्मटके पांडुकेश्वर ताम्रशासनमें नारायणदत्त, सुभिक्षराजके पांडुकेश्वर ताम्रशासनमें ईश्वरीदत्त नाम सूचित करतेहैं।

६. केदारखंड ग्रन्थमें केदार-मंडलका माहात्म्य—

इस ग्रन्थमें कहागयाहै, 'गंगाद्वार (हरिद्वार) से लेकर जहां तक श्वेतगिरि है, तथा तमसा [टोंस] से लेकर काष्ठगिरि तक और नन्दापर्वत तक शिवधाम है। यहां जो निर्झर, नदियां, सोते और तलाव हैं इन सबको गंगाजलसे पूर्ण समझना चाहिए। क्योंकि यहींसे गंगा निकलीहै। उस जलके स्पर्शसे ही मनुष्य तत्काल शुद्ध होजाताहै। यहां जो एक बार शिवका उच्चारण करलेताहै, उसे सम्पूर्ण पुरश्चरणका फल मिलताहै। यहां बार-बार स्नान करनेकी क्या आवश्यकता है। जो दिन भरमें एक बार भी उस जलका स्पर्श करलेताहै, उसे सारे तीर्थोंमें स्नान करनेका फल मिलजाताहै। इस भू-भागके समान पवित्र भूभाग सारी धरतीपर दूसरा नहीं है। इसलिए मैंने [वशिष्ठने] विधिपूर्वक संध्या-वन्दना आदि नहीं किए। यह धरती अन्यत्र तो पृथ्वी कहलातीहै किन्तु केदारमण्डल तो साक्षात् स्वर्गभूमि है। इसलिए जबतक कोई इस प्रदेशमें रहताहै तब तक वह देवताके समान पवित्र है।" [केदारखण्ड २०६।७१-७६]। कण्वाश्रमसे लेकर नन्दापर्वत-तक अत्यन्त पवित्र तथा भुक्ति-मुक्ति देनेवाला क्षेत्र है। कण्व-नामक प्रसिद्ध महर्षिके आश्रममें भगवान रमापतिको भक्ति-पूर्वक नमस्कार करनेसे दुरात्माओंको भी मुक्ति प्राप्त होती है। नन्दप्रयागमें स्नान करके और विष्णुकी पूजा करके मुक्ति हाथपर रक्खीरहतीहै। [केदारखण्ड

७. केदारखंड ग्रन्थकी प्रामाणिकता—

इस ग्रन्थके प्रत्येक अध्यायके अन्तमें "इति स्कान्दे केदार-खंडे एकाशीतिसाहस्रे......" शब्दोंमें अध्यायका नाम दिया गयाहै। स्कन्दपुराणका पहला खंड माहेश्वरखंड कहलाताहै जिसमें केदारखंड, कुमारिकाखंड और अरुणाचल माहात्म्यखंड नामक तीन उपखंड हैं। मूल स्कन्दपुराणके अबतक दो मुद्रित संस्करण बम्बई और *लखनऊवाले मिलतेहैं* और दोनोंमें माहेश्वरखंडका उपखंड केदारखंड आयाहै। पर उनमें केदारखंडके अन्तर्गत जो वर्णन दियागयाहै, वह हमारे तीर्थ वर्णनवाले केदारखंड ग्रन्थके वर्णनसे सर्वथा भिन्न है। उसमें हरी-गढ़वालके तीर्थोंके माहात्म्यका तनिक भी उल्लेख नहीं है। रन् मेंत्रीका दक्षके यज्ञमें भस्म होना, समुद्रमथन, मोहिनी बतार, विश्वरूपवध, वृतासुरके वधकेलिए दधीचिका अस्थि-ान, वृतासुरवध, वामनावतार, तारकासुरको ब्रह्माजीका वरदान ार्वतीका अवतार, पार्वतीकी तपस्या, शिव-पार्वती-विवाह, मारजन्म, कुमारद्वारा तारकासुरका वध और शिवरात्रि तकी महिमाका वर्णन कियागयाहै।

कल्याणके विशेषांकके रूपमें जो संक्षिप्त स्कन्द महापुराण काशित हुआहै, उसके सम्पादकोंने भी बंबई और लखनऊसे पे स्कन्द पुराणको प्रामाणिक मानाहै और इसके माहेश्वरखंड-के अन्तर्गत केदारखंडमें सती-पार्वती-कुमारकी उपरोक्त कथायें ही प्रकाशित कीहैं, जिनमें कहीं हमारे आलोच्य केदारखंड ग्रंथ-के वर्ण्य विषय नहीं आएहैं।

८. नारद पुराणका प्रमाण—

नारद-पुराण यद्यपि अन्य पुराणोंसे अर्वाचीनहै, पर उसमें दीगई विभिन्न पुराणोंकी विषय सूची बड़े महत्वकी है। पुराणों-

समय निश्चित उचित करना कहाजासकताहै। [डा० मोहनसिंह, गोरखनाथ ऐंड मिडीवियल हिन्दू मिस्टिसिज्म, पृ० ३०-३१, [परशुराम चतुर्वेदी, उत्तर भारतकी संत परम्परा, पृ० ६०]

ज्ञानदेवके लेखके आधारपर गोरखनाथका समय १२ वीं शताब्दी ईसवीं ठहराताहै। यह कथन उस परम्परामें मिलताहै जिसके अनुसार गोरख और धर्मनाथ गुरुभाई और समकालीन मानेगएहैं। धर्मनाथका समय बारहवीं शताब्दी है। कुछ लोग गोरखनाथको ५०० ई० से ७०० या १००० ई० का मानते हैं। गोपीनाथ कविराज, सरस्वती भवन स्टडीज भाग ६,पृ० २४]

११. सत्यनाथका उल्लेखः—

रचनाकालका निर्णय करनेके लिए केदारखंडकी निम्न पंक्तियां महत्वपूर्ण हैं—

> नवनाथाः समाख्यातास्तत्र श्री आदिनाथकः ।
> अनादिनाथ कूर्माख्यौ भवनाथस्थैव च ॥
> सत्य संतोषनाथौ तु मत्स्येन्द्रो गोपिनाथक ।
> नव नाथास्तु मे ख्याता नादब्रह्मरता सदा ॥
> [केदारखंड, अध्याय ७४।७८-७६]

नवनाथोंमें सत्यनाथकी गिनती अधिक प्राचीन नहीं है। हजारीप्रसादने नाथ सम्प्रदाय नामक पुस्तकमें और कल्याणी मल्लिकने नाथ सम्प्रदायेर इतिहास, दर्शन और साधन-प्रणाली नामक बंगला ग्रन्थमें नवनाथोंका विभिन्न सूचियोंमें सत्यनाथके सबंधमें मतभेद है। किन्तु गोरक्ष-सिद्धान्त-संग्रह (पृ० ४०) में सत्यनाथका उल्लेख है।

श्री सत्यनाथ नामक योगी अजयपालके समय [१५०० ई० से १५१६ ई०] देवलगढ़ पहुँचेथे, जहां उनकी गद्दी अभी तक चली आतीहै।

कुमाऊं और गढ़वालके इतिहासोंसे पता चलताहै कि १५०० ईसवींके आस-पास गढ़वाल और चम्पावत (अल्मोड़ा) में सत्यनाथ और नागनाथ नामक दो गोरखपंथी जोगियोंने अपने डेरे जमाए। इनमें नागनाथ सत्यनाथका शिष्य था। ये दोनों जोगी बड़े महत्वाकांक्षी थे।

कीर्तिचन्द (१४८८-१५०३) के राज्यकालमें नागनाथ सिद्ध बाबाके नामसे एक योगीश्वर चम्पावतमें आए और राजबुंगाके आगे डेरा किया। उन दिनों डोटीके राजाने चम्पावत पर आक्रमण कियाथा जो नागनाथके आशीर्वादसे विफल होगया। नागनाथ बाबाका प्रभाव राजाके ऊपर अच्छी तरह छागया। उनका मंदिर अभी तक चम्पावत किले के सामने है। बाबाने राजासे कहा—"यह समय युद्धके लिए अच्छा है। पश्चिमकी ओर युद्ध करनेसे विजय होगी। हमारे गुरु श्री सत्यनाथजी गढ़वालमे गयहैं। वहां तक अपने मुल्कको फैलावे और निर्भय होकर राज्य करें"। [पांडे, कुमाऊँका इतिहास, पृ० २५२]

गढवालके इतिहाससे ज्ञात होताहै कि १५०० ईसवींमें गढ़वालका पंवार नरेश अजयपाल चांदपुरके सिंहासन पर बैठा। उन्हीं दिनों चम्पावत (अल्मोड़ा) के राजा कीर्तिचन्दने गढ़वालके बधाण प्रान्त पर आक्रमण करदिया। युद्धमें गढ़वालका राजा अजयपाल हारा और देवलगढ़की ओर भागगया। सत्यनाथके आशीर्वादसे गढ़वालके नरेशने पुनः कुमाऊँके नरेशको हराकर अपना राज्य प्राप्त किया। [रतूड़ी, गढ़वालका इतिहास, पृ. ३६४-६५]

कुमाउंके इतिहासमें पर्वतीय भाषाके एक लेखका निम्न उद्धरण दियागयाहै.—

नागनाथ जोगी द्वारा बैठियो छियो। जोगी लै अपनो थानो सेलीनाद भगवा कपड़ा करी कीर्तिचन्दका ७०० कटक

में आएहुए प्रसंगोंका निर्णय करनेकेलिये इससे अधिक प्रामाणि दूसरा साधन नहीं है। इसमें स्कन्दपुराणके केदारखंड विषय सूची इस प्रकार दीगईहैः—

ब्रह्मोवाच—शृणु वत्सः प्रवक्ष्यामि पुराणं स्कान्दसंज्ञकम्।
यस्मिन् प्रतिपदं सक्षात महादेव व्यवस्थितः॥
यत्र माहेश्वराधर्माः षण्मुखमुखेन प्रकाशिताः।
कल्पे तत्पुरुषे वृत्ताः सर्वसिद्धिविधायकाः॥
तस्य माहेश्वरस्याद्य खंडः पापप्रणाशनः।
किञ्चन्न्यूनार्क साहस्रो वहुपुण्योबृहत्कथः॥
सुचरित्र शतैर्युक्तः स्कान्दमाहात्म्यसूचकः।
यत्र केदारमाहात्म्ये पुराणोपक्रमः पुरा॥
दक्ष यज्ञ कथा पश्चात् शिवलिंगार्चने फलम्।
समुद्रमथनाख्यानं देवेन्द्रचरितं महत्॥
पार्वात्यासमुपाख्यानं विवाहस्तदनन्तरम्॥
कुमारोत्पत्तिकथनं ततस्तारकसंगरः॥
ततः पाशुपताख्यानं चंडाख्यानसमन्वितम्।
द्यूत प्रवर्तनाख्यानं नारदेन समागम.॥
तत. कुमारमाहात्म्ये······[नारदपुराण, अ० १०४]

बंबई और लखनऊके स्कन्दपुराणोंके केदारखंडमें वे समस्त वर्णन मिलतेहैं जो नारदपुराणकी सूचीमें गिनाएगएहैं। अस्तु तीर्थोंके माहात्म्यवाला "केदारखंड" ग्रन्थ स्कन्द-पुराणके माहेश्वरखंडके अन्तर्गत आयाहुआ केदारखंड किसी प्रकार नहीं होसकता,जिसमें ये विषय हैं ही नहीं।

९. केदारखंड ग्रंथकी निर्माण-तिथि–

स्कन्द पुराणकी आड़में बनाहुआ यह जाली ग्रन्थ कब बना, कहना कठिन है। अन्तर्साक्ष्यके अनुसार कुछ अनुमान लगाया

१५७० । इस ग्रन्थमें सौम्यकाशी [उत्तरकाशी] का माहात्म्य बतातेहुए कहागयाहै,—"जब धरती पर यवन फैलजायेंगे और पाप फैलजायेंगे तो मैं [शिव] सब तीर्थों सहित हिमवत्-गिरिकी काशीमें निवास करूंगा । जहां श्वेत वाहिनी गंगा उत्तरकी ओर बहतीहै । जहा असी और वरणाका सगम है वहा [मैदानकी] काशीके सभी तीर्थ रहतेहैं । जिस प्रकार मेरी पुरी काशी है, उसी प्रकार यह मेरी पुरी उत्तरकाशी है । जो कोई इनमें भेद करताहै, वह अवश्यही नरकमें जाताहै। [केदारखंड,अ० ६३।५०-५७] यहा देवासुर-संग्राममें जो धातुमयी शक्ति फेंकीगईथी, वह अभी तक वहां दिखाईदेतीहै । [उपरोक्त ६३।१७]। इससे स्पष्ट है कि "केदारखंड ग्रन्थ" की रचना उस समय हुई जब काशी तक यवन [मुसलमान] छागयेथे। और जब यह भूल गयेथे कि बारहवीं शताब्दीके अन्तमें अशोकचल्लने उस शक्तिपर लेख खुदवायाथा जिसे केदारखंड-ग्रन्थमें देवासुर संग्राम वाली शक्ति कहागयाहै ।

१०. गोरक्षका उल्लेख—

केदारखंड ग्रन्थके अध्याय ४२ के ५२-५३ श्लोकोंमें कहा गयाहै, मन्दाकिनीके तटपर गौरी तीर्थके पास दक्षिणकी ओर गोरक्षका आश्रम है जहां सिद्ध गोरक्ष रहाकरताहै। एक अन्य तीर्थके माहात्म्यमें भी गोरक्षादिसिद्धोंका वहा सिद्धि प्राप्त होनेका उल्लेख कियागयाहै । इससे निश्चत है कि केदारखंड ग्रन्थकी रचना गोरखनाथके पीछे कभी हुई। गोरखनाथके समयके संबधमें विद्वानोंकी विभिन्न धारणायें हैं। डाक्टर मोहनसिंहके आधारपर परशुराम चतुर्वेदीका कहनाहै,—कि गोरखनाथके जीवनकालके लिए ईसाकी दशवीं शताब्दी या अधिकसे अधिक ग्यारहवींके प्रारम्भिक भाग अर्थात् विक्रमकी ११ वीं शताब्दीमें ही कोई

मरा। यो कयो कि जां तक नाद को शब्द सुनाले तां मुल्क फतह होई, तेरो राज्य होईजालो। राजा मुल्क करणासूं लगाई दियो। राजा लै पैली चौभैंसी मारी, सालम मारो, फल्दाकोट, बचाकोट, धनियांकोट मा कोटौली,छखाता, कोटा मारी,बारामंडल पछीं मारी। गढ़ गढ़को राजा भाजी' बेर दुमाक गयो। जोगी का प्रभा कैले ठाड़ी नी करी। फिर गढ़को राजा बुलाई चौको दियो और चौका सिर सूनूको कर ठहरायो। [पांडे, कु का इतिहास, पृ० २५२]

दोनों इतिहासोंसे पता लगताहै कि १५०० ई० के आस-गढ़वाल और चम्पावत दोनों राज्योंमें सत्यनाथी नाथोंने अ प्रभुत्व स्थापित कर लियाथा।

देवलगढ़के आस-पासके क्षेत्रमें सत्यनाथकी गद्दीका मान है। सत्यनाथके वंशज वहां आज तक चलेआतेहैं। गृहस्थी हैं। पिता अपने पुत्रको नाथ बनाताहै। उसके कान मुद्रा पहनाताहै। उसकी शिखा नहीं रहती। वह दा रखताहै, तहमद पहनताहै और सत्यपीर कहलाताहै। समाधि दीजातीहै। वह गृहस्थी होताहै और संतान उत्प करताहै। पीरके अतिरिक्त अन्य पुत्र जलायेजातेहैं।

इससे पता चलताहै कि सत्यनाथका आगमन १६ शताब्दीके आरम्भमें हुआ। इसलिये केदारखंड ग्रन्थ अवश सोलहवीं शताब्दीके पीछे बनाहै।

१२. कुलार्णव आदिका उद्धरण–

केदारखंड ग्रन्थके ३३ वें अध्यायमें कुलार्णव तन्त्रसे अने पंक्तियां उद्धृत कीगईहैं। ३५ वें अध्यायसे स्पष्ट है कि इस ग्रन्थके निर्माताको महिम्न स्तोत्र ज्ञात था। इस ग्रन्थके ७४ वें

अध्यायमें श्लेषसे दोहा, कुंडलियां, सोरठा तथा राग-रागनियोंके नामका उल्लेख करतेहुए रामकली, केहरी, गुर्जरी और पदुमंजरीको गिनायागयाहै तथा गुर्जरीको दीपकरागकी परांगना बतलायागयाहै। गुर्जरी रागिनीका निर्माण ग्वालियर नरेश मानसिंहने अपनी गूजरी राणी मृगनयनीके नामपर कियाथा। मानसिंहका समय विक्रमकी सोलवीं शताब्दी माना जाताहै। [ओझा, राजपूतानेका इतिहास, भाग १, पृ० ३६]

१३. नवीन मन्दिरोंका उल्लेख--

केदारखंड ग्रन्थमें क्यूँकलेश्वर, किल्किलेश्वर, ज्वालपा जैसे नवीन मन्दिरोंका उल्लेख है, जो दो-तीन सौ वर्षसे अधिक प्राचीन नहीं होसकते।

केदारखंड ग्रन्थमें वास्तवमें दो ग्रन्थोंको एकमें मिलादिया गयाहै। पहले १०० अध्याय समाप्त होजानेपर मानो ग्रन्थ फिरसे आरम्भ होरहाहै। इसमें १०१ अध्यायमें फिर देश-प्रशंसाका वर्णन आयाहै। वही तीर्थ जो पहले आचुकेहैं, फिरसे नए क्रमसे अधिक विस्तार पूर्वक वर्णित हैं। अध्याय१०१ से जो भाग आरम्भ होताहै वह अधिक सुगठित है।

१४. मानसखंडके पश्चात् रचागया—

१०१ वें अध्यायमें निम्नलिखित महत्वपूर्ण पंक्तियां आईहैं—

सूत उवाच--साधु, साधु महाभागा पृष्ट यन्मुनिभिः परम।
तद्धं सम्प्रति वक्ष्यामि नमस्कृत्य गजाननम्॥
श्रुत्वा वै मानसे खंडे तीर्थानि सुबहून्यपि।
देवागाराणि बहुशः कथाश्च मुनिसत्तमा॥

× × ×

स्कन्द उवाच--मानसादिषु क्षेत्रेषु तीर्थानि प्रवराणि मे।
कथितानि महासेन भवमुक्तिप्रदानिच॥

[केदारखंड, १०१।१०-११; १३]

इससे स्पष्ट है कि केदारखण्डमें पूर्व मानसखंडकी रचना होचुकीथी। केवल मानसखण्ड ही नहीं हिमालयके अन्य स्थलों पर भी ग्रन्थरचना होचुकीथी।

तीर्थानिप्रवराण्येव श्वेताख्ये पर्वतोत्तमे ।
अग्रे मानसप्रस्तावे तथा नेपालके मुने ॥
कश्मीरेचैव प्रस्तावे जालन्धे वा तथा पुन ।
तथा केदारप्रस्तावे कथितानि मयाद्य ते ॥

श्वेत पर्वतके श्रेष्ठ तीर्थोंका वर्णन मैं तुमसे मानस-प्रस्ताव, नेपाल-प्रस्ताव, काश्मीर-प्रस्ताव और जालधर-प्रस्तावमें सुनाचुकाहूँ और अब मैंने [केदारप्रदेशके तीर्थोंका वर्णन] तुम्हें केदार-प्रस्ताव में सुनादियाहै। [केदारखण्ड, २०४।५६-५७]

१५ *मानसखंडका निर्माणकाल —*

उनका कहनाहै :—"मुझे अलमोड़ा जिलेसे मानसखंडकी एक हस्तलिखित प्रति मिलीहै। यद्यपि यह स्कन्दपुराणका भाग होनेकी घोषणा करताहै, पर वास्तवमें यह नहीं है। यह दो-तीन सौ वर्षोंसे अधिक पुराना नहीं है। इसे अलमोड़ाके किसी पंडितने रचाहै। [प्रणवानन्द, एक्सप्लोरेशन इन तिब्बेट, पृ० ११ टि०]

१६. भृगुपतनकी प्रशंसा—

केदारखंड ग्रन्थमें बार-बार भृगुपतनकी प्रशंसा कीगईहै, केवल भृगुपंथके संबंधमें ही नहीं, वरन अनेक और तीर्थोंके संबंधमें भी यह ग्रन्थ निशंक कहताहै:—

श्री शिलायां पतेद्यस्तु भृगुतुंगान्महोनवात् ।
प्राणांस्त्यजति देवेशि ! स परब्रह्मतामियात् ॥

भृगुतुंग [भैरवझाप] से श्रीशिलापर कूदकर टुकड़े-टुकड़े होकर परब्रह्ममें मिलनेका मार्ग सवा-सौ वर्ष पहले ही अंग्रेजोंने बन्द करदियाथा। इसलिये केदारग्रन्थ अंग्रेजोंके अधिकारसे पूर्व कभी रचागया प्रतीत होताहै।

१७. मराठोंको तीर्थोंका स्वामित्व प्राप्त होना—

बालाजीरावके समयसे मराठे उत्तर भारतमें आने और अपनेको हिन्दु धर्म और मन्दिरोंका रक्षक कहनेलगेथे। सन् १७४१,४२ और ४३ में [सम्वत् १७६८ से १८००] मध्यभारतमें अपना प्रभाव जमाकर बालाजीराव (नाना साहेब) ने धर्म स्थानों और तीर्थोंकी रक्षा करनी आरम्भ करदीथी। नाना-साहिब समझताथा कि जबतक हिन्दुओंके तीर्थस्थान सुरक्षित नहीं हैं, उन्हें आराम नहीं मिलसकता। [भीमसेन विद्यालंकार, वीर मराठे, पृ० १५०]

है, कहना कठिन है। [रामदासगौड़, हिन्दुत्व, पृ० २०८] केदारखंड ग्रन्थ और "केदारकल्प" अलग और स्वतन्त्र ग्रन्थ हैं। केदारकल्पमें मन्दाकिनी उपत्यकाके पंचकेदारतीर्थोंके जलका बड़ा महत्व गायागया है। इन कुंडोंके तथा तीर्थादिके नाम जो केदारकल्पमें आए हैं, केदारखंड ग्रन्थमें भी मिलते हैं।

२०. केदारखंड ग्रंथका महत्व—

यद्यपि केदारखंड, ग्रन्थ अर्वाचीन है, पर इसमें प्राचीन कथाओंको लेकर इस प्रकार बिठायागया है कि जिससे केदारखंड के तीर्थोंकी महत्ता सिद्धकीगई है। टेहरी और गढ़वालके तीर्थों, नदी-नालों, पानीके गड्ढों, कुंडों-सरोवरों, शिखरों और शिलाओंका यह अद्भुत भुवनकोष है। इसमे जितने नाम आए हैं, उतने इस प्रदेशके किसी मानचित्र और सरवे मानचित्रोंमें भी नहीं मिलते। ऐसा प्रतीत होता है कि लेखकने विभिन्न नदियोंकी घाटीमें पहुंचकर छोटे-बड़े नदी-नालों, कुंडों-शिलाओं आदिका अवलोकन कियाथा। पर उसने जो नाम दिए हैं, उनमेंसे अनेक अब नहीं रहे। यह भी संभव है कि अनेक शिला और कुंडों तथा सरिताओंके नाम उसने स्वय कल्पित किए हों। पीछे जब तीर्थ-यात्रा चलपड़ी तो पंडोंने उनमेंसे कुछको उन्हीं नामोंसे बनानेकी चेष्टा कीहो। केदारखंडकी महत्वपूर्ण वस्तु उसके तीर्थ नहीं, वरन् उसमें मिलने वाले अद्भुत प्राकृतिक सौंदर्य वाले स्थान हैं उन्हींमें से कुछ आज तीर्थ बनगए हैं। पर जहां तक प्राकृतिक दृश्य, वन प्रदेश, बुग्याल और हिमालयकी मनोहारिणी छटाका संबंध है, यह ग्रंथ उनसे सर्वथा शून्य है। लेखककी दृष्टि प्राकृतिक दृश्यावलीकी ओर न जाकर तीर्थोंका माहात्म्य गढ़ने और उनमें सुवर्ण तथा भूमिदान करने, गोता लगाने, उपवास करने, निवास करने [illegible] ही लगीरही। इतिहासकी

दृष्टिसे तो इस ग्रंथका कुछ भी महत्त्व नहीं। इन सब बातोंको देखकर अनुमान लगाना कठिन नहीं है कि इस ग्रंथके निर्माणमें किसका हाथ या परामर्श है।

१९. केदारखंड-ग्रन्थमें भौगोलिक-सूचना (नदी, पर्वत, सरोवर और तीर्थ)

अध्याय श्लोक संख्या

१. ब्रह्मस्वरूप वर्णन ॥३३॥
२. गंगोत्पत्ति ॥५५॥
३. ब्रह्मांडनिरूपण ॥१५॥
४. आदि सर्ग ॥२१॥
५. ध्रुवचरित्र ॥७६॥ कैलास, हिमावत्, पिंडारक।
६. प्रजासर्ग ॥४१॥
७. सप्तम अध्याय ॥६॥
८. अष्टम अध्याय ॥३४॥
९. मन्वन्तरस्थिति-वर्णन ॥१०४॥ उत्तर कुरु, यमुना, यमुनोत्तर पर्वत
१०. कालसंख्या ॥२४॥
११. श्लोत्पत्ति ॥३६॥
१२. सुद्युम्नचरित ॥२२॥ गंगोत्तर-क्षेत्र या पर्वत, अलकनन्दोत्तर क्षेत्र
१३. मन्दुराश्वयंवर ॥४८॥
१४. " ॥२७॥
१५. मन्दुराश्वयंवरमें धौम्यवध ॥२८॥
१६. मन्दुराश्वयंवर ॥६॥
१७. कुवलाश्वनिर्गमन ॥३२॥ केदारेश्वर, मंदाकिनी
१८. धुंधुवध ॥२५॥

कुछ समय तक मराठे उत्तर भारतके सभी तीर्थोंकी रक्षाका यत्न करतेरहे। आगे चलकर अहल्याबाईने भारतके अनेक प्रमुख मन्दिरोंका जीर्णोद्धार या पुनर्निर्माण करवाया। उस समय भारतमें तीर्थयात्राको फिर अधिक प्रोत्साहन मिलाहोगा। यदि उस समय दक्षिणसे 'भट्ट' आदि उत्तरके तीर्थोंमें पहुंचेहों तो आश्चर्य नहीं। संभव है उस समय स्कन्दपुराणमें तीर्थोंके प्रकरण चढ़ेहों। केदारखंड ग्रन्थका कुछ प्राचीन आधार अवश्य प्रतीत होताहै। उस समय उसका पुनर्निर्माण हुआहो तो आश्चर्य नहीं।

१८. केदारभूमि नामकी प्राचीनता—

ऊपर हम देखचुकेहैं कि केदारखंड ग्रंथ इतना प्राचीन नहीं है। हिमालयके अन्य खंडोंपर लिखे ग्रंथोंमें से केवल मानसखंड मिलताहै। नेपाल-खंड, कश्मीरखंड और जालंधरखंड नहीं मिलते। ये ग्रंथ कब रचेगयेथे यह भी कहना कठिन है। केदारखंड ग्रंथकी अपेक्षा इस भागका केदारभूमि नाम अधिक प्राचीन है। गोपेश्वरके त्रिशूलपर अशोकचल्लके अभिलेखमें इस क्षेत्रको केदारभूमि कहागयाहै। यह लेख शक ११९३ (ई०११६१) का है। राहुलने लिखाहै—"केदारनाथ भारतके अत्यन्त प्राचीन तीर्थोंमें है। यद्यपि आजकल बदरीनाथ कहनेका बहुत रवाज होगयाहै, लेकिन हिमालयके जो पांच खंड अत्यन्त प्राचीन कालसे मानेजातेथे, उनमें गंगा और जमुनाके बीच हिमालय के भीतरकी भूमिको बदरीखंड नहीं, बल्कि हमेशा केदारखंड कहाजाता था। [राहुल, गढ़वाल, पृ०८ और विषयसूची के बीच]।

इस संबन्धमें इतना ही उल्लेख करदेना पर्याप्त होगा कि हिमालयमें केदारनाथ या केदारका उल्लेख महाभारतमें कहीं

नहीं है। वनपर्वके ८३अध्यायके ७२वें श्लोकमें केवल एक स्थान पर केदारतीर्थका नाम आयाहै, जो कुरुक्षेत्रमें है। इसके विपरीत बदरीवन, बदरिका, विशाला और बदरी शब्दों का प्रयोग बदरिकाश्रम या बदरीनाथ तीर्थके लिए वनपर्व,४०।१, ८४।१३, ६०।२५ मे और इसकी प्राकृतिक शोभाका विस्तृत वर्णन वन पर्वके १४५अ० में आयाहै। हमारे समस्त पुराण-साहित्यसे महाभारत अति प्राचीन है, इसे कौन नहीं मानता? पर संभवतः ईसा-विक्रमकी पहली शताब्दीमें केदार नाम चलपड़ाथा। कुषाणोंमें किदार कुषांण नाम मिलताहै। परन्तु किदार और केदारका क्या संबंध है,कहा नहीं जासकता। कुशाण शैव थे,यह निश्चितहै।

१९. केदारकल्प—

केदारकल्प एक तंत्र ग्रंथ है जिसमें केदारनाथ और भृगुपंथ तथा केदारशिखर पर उत्तरोत्तर बढ़नेकी प्रशंसा कीगईहै। इसमें केदारमें "शिवके रेत [वीर्य] पानका बड़ा माहात्म्य गाया गयाहै। योगी अपनी साधनामें जब अग्रसर होतेहैं तो उन्हें मार्गमें अनेक सुन्दरी [कन्यका] मिलतीहैं जो उन्हें पथभ्रष्ट करना चाहतीहैं। जो योगी इन प्रलोभनोंसे बचकर अग्रसर होतारहताहै उसे अतमे शिवजीके दर्शन मिलतेहैं और कैलास-धाम प्राप्त होताहै। इस ग्रंथका तीर्थयात्रासे विशेष संबन्ध नहीं है। पर इसके द्वारा भृगुतुंग जाकर आत्मघात करनेवालों तथा उच्च हिमशिखरों पर सिद्धि और कन्यकाओंकी प्राप्तिके चक्करमें भटकने वालोंको अवश्य प्रोत्साहन मिलाहोगा।

आत्मान घातयेद् यत्तु भृगुपृष्ठेपु मानव:।
इन्द्रेण धारिते छत्रे रुद्रलोकं स गच्छति॥

इसी ग्रन्थका वचन है। [केदारकल्प, ३।४]। केदारकल्पको रामदासगौड़ने पद्मपुराणका भाग मानाहै। इसमें कितना तथ्य

१९. निरांकुचरित ॥३७॥ हेमवतीस्थल,
२०. „ ॥३७॥
२१. हरिश्चन्द्रोपाख्यान ॥२५॥
२२. „ ॥६८॥
२३. „ ॥२५॥
२४. „ , दंपविविलाम ॥४५॥
२५. „ ॥२४॥
२६. बाहुवनप्रयाण ॥३६॥
२७. सगरोपाख्यान ॥२४॥
२८. „ सगरोत्पत्ति ॥३६॥
२९. „ ॥६८॥केदारेश्वरमंडल,सरस्वती नदी, तुंगेश शिव (तीर्थ)
३०. भागीरथोपाख्यान, पितृकल्प ॥३३॥ गंगोत्तर महाक्षेत्र, जो उत्तम कैलास पर्वतपर है।
३१. भागीरथोपाख्यान, पितृकल्प ॥२६॥
३२. „ गंगानयन, ॥८०॥ हिमवत, मैनाक और क्रौंच पर्वत, अच्छोद सरोवर।
३३. भागीरथोपाख्यान ॥७२॥ गंगानदी,तीर्थ,हिमालय पर्वत।
३४. „ ॥४६॥ श्रीमुखपर्वत
३५. „ गंगासम्प्रदान ॥ ४४ ॥ स्वर्णगिरि (नन्दनपर्वत), सीता, अलकनन्दा, चक्षु और भद्रा नदियां, अलका (पुरी), श्रीमुख पर्वत।
३६. „ मनोहारीलाभ ॥६१॥ भागीरथी श्रीमुख पर्वतके उत्तरकी ओर बहनेवाली धारा, बदरी, विपिनमें अलकनन्दा धारा, कुरुवर्षमें कुमुद्वती धारा, मेरुशृंग चन्द्रपुरशैल, स्वच्छोदसर।

३७. ,, जह्नुपाख्यान ॥४०॥ हिरण्यमयी भूमि, सोमकूट गिरि, जह्नु-आश्रम,
३८. ,, गंगासहस्रनाम ॥१६८॥ नन्दनाद्रि ।
३९. ,, गंगावतरण ॥५१॥ गंगोत्तरतीर्थ, यमुनोत्तरतीथ ।
४०. चत्वारिंश अध्याय ॥३८॥ केदारभवन (तीर्थ), महापंथ कैलाश पर्वत, गंगाद्वार (हरिद्वार), श्वेत (पर्वत), तमसा नदी, चौद्धाचल, केदारमंडल, मधुगंगा, क्षीरगंगा, स्वर्गद्वारा, मन्दाकिनी, केदारगंगा ।
४१. व्याधवृत्त ॥५५॥ बदर्य्यारय ।
४२. केदारमाहात्म्य ॥७०॥ रेतकुण्ड, शिवकुण्ड, कपिलशिवलिंग, भृगुतुंग, श्रीशिला, हिरण्यगर्भतीर्थ, वह्नितीर्थ, महापंथ (भृगुतुंग), स्वर्गारोहगिरि, माध्वीगंगा, मंदाकिनी, क्रौंचहतुतीर्थ, क्षीरगंगा, ब्राह्मतीर्थ, सामुद्रजलतीर्थ, पौंरदर शैल, हंसकुंड, भीमसेनशिला, गौरीतीर्थ गौरचाश्रम, महातप्तजल (कुंड), देविका, भद्रदा, शुभ्रा और मातंगी नदियां, चीरवासा भैरव, (स्थान) काली(स्थान), वैनायक(तीर्थ), कालिका नदी, शेषेश्वर,
४३. नारायणाश्रमाहात्म्य॥२६॥त्रिविक्रमानदी, नारायणतीर्थ-क्षेत्र, जो गौरीशंकरका विवाहस्थान है । सरस्वतीधारा, सरस्वतजल (कुंड), ब्रह्मकंड, विष्णुतीर्थ, जलेश्वर, हरिदा नदी ।
४४. भिल्लांगण-महात्म्य ॥२७॥ भिल्लक्षेत्र, भिल्लांगण, भिल्लांगणगंगा, भिल्लेश्वरतीर्थ-क्षेत्र-पीठ, कामेश्वरीतीर्थ, सुरसुतानदी, मातिलका शिला, षष्टीधारा ।
४५. बगलाक्षेत्रमाहात्म्य ॥२४॥ बगलाक्षेत्र, पुण्यप्रमोदिनीधारा, विष्णुस्थान, त्रिशीर्षदेवी, वैष्णवकुंड, ताम्रवर्णी नदी ।

४६. शाकम्बरी क्षेत्र माहात्म्य ॥१७॥ शाकम्बरी पीठ, शकर-पर्वत, मारकतलिंग, नन्दिनीनदी, रुरुभैरव, शुक्राश्रम, (शुक्रपर्वत),

४७. मध्यमेश्वरमाहात्म्य ॥४६॥ शिवक्षेत्र, केदार, मध्यम. तुँग, रुद्रालय तथा कल्पकतीर्थ या क्षेत्र, जहां पहुंचने केलिए गंगाद्वार, कुब्जाम्रतीर्थ, भरततीर्थ, वशिष्ठा-श्रम, भागीरथी गंगा, अलकनन्दा, देवतीर्थ, श्रीक्षेत्र, मन्दाकिनी-तटपर नाना मुनिजनके आश्रम, अगस्त्य-तीर्थ, राजराजेश्वरीदेवी, सरस्वती-तटपर कालीक्षेत्र होकर जानापड़ताहै; ऋषिकुंड, शिवकुंड।

४८. मध्यमेश्वरमाहात्म्य ॥४७॥ सरस्वतीनदी।

४६. तुँगेश्वर माहात्म्य ॥४७॥ तुँगेश्वर महाक्षेत्र, मानधातृ क्षेत्र, तुँगनाथ।

५०. तुँगक्षेत्र माहात्म्य ॥१८॥ आकाशगंगा, तुंगोच्चशिखर, जहांसे प्राण त्यागनेपर शिव बनजातेहैं; गारुड़तीर्थ, मानसर (सरोवर), मर्कटेश्वरतीर्थ।

५१. महालय (रुद्रालय) माहात्म्य ॥४७॥ रुद्रालय महातीर्थ।

५२. कैलास माहात्म्यमें रुद्रालयमाहात्म्य ॥३१॥ वैतरणी नदी मानसतीर्थ, केदारपृष्टतीर्थ, सारस्वत सरोवर।

५३. कल्पेश्वरोत्पत्ति ॥६६॥ कल्पस्थल, क्षीरोद्सरोवर, कैलासपर्वत, अलकनन्दाके उत्तर तीरपर श्रीक्षेत्र, इन्द्रकीलगिरि।

५४. कल्पेश्वरोत्पत्ति ॥६३॥ कल्पेश्वरतीर्थ (कल्पनाथ)।

५५. कल्पेश्वरमाहात्म्य ॥१७॥ कापिललिंग तीर्थ, हैररामती नदी, भृंगीश्वरतीर्थ, अग्नितीर्थ, गोस्थलक जहां पशुपतीश्वर शिव हैं (गोपेश्वर) जहां शिवका त्रिशूल बलपूर्वक हिलानेसे नहीं हिलता, कनिष्ठा अंगुलीसे

हिलानेसे हिलता है, धूपकेतुहरतीर्थ, रतीश्वरतीर्थ, (रतिकुंड), कल्पक्षेत्र।

५६. पचकेदार माहात्म्य ॥७॥ केदार, मध्यम, तुंग, कल्पेश्वर और महालय तीर्थ, यही पचकेदार हैं।

५७ बदरी माहात्म्य ॥४१॥ बदरीवन, विशाला बदरी, (बदर्यांश्रममडल) कण्वाश्रम, नन्दगिरि, नन्दप्रयाग गधमादन, नरनारायणाश्रम, कुबेरशिला, बह्नितीर्थ।

= बदरी माहात्म्य ॥१६६॥ नन्दप्रयाग, नन्दा नदी, वशिष्ठेशतीर्थ, विरहीनदी (विरहवती नदी), कैलास, विरहेश्वरतीर्थ, मणिभद्रसर, सूर्यतीर्थ, गणेश्वरतीर्थ, दण्डाश्रम, दड नामक रविकुंड, बिल्वेश्वर, गरुडगगा, गरुडगगा शिला, जो सर्पोपधि है, गणेश नदी, चर्मरावती नदी, अनगधी-आश्रम, मेघाद्रि, गौर्य्याश्रम, पर्णगंडाशनादेवी तीर्थ, विष्णु-कुड, ज्योतिर्धाम, विष्णुप्रयाग, ब्रह्मकुड, विष्णुकुंड, शिवकुड, गणेशकुड भृगिकुड, ऋषिकुड, सूर्यकुड, दुर्गाकुंड, धनदाकुड, प्रह्लादकुड, धवलगगा, विष्णु-प्रयाग, विष्णुप्रयागमे ब्रह्मकुड, शिवकुड, गणेशतीर्थ, अलकनन्दाके तटपर विष्णुकुड, भृंगिकुड, परकुंड, सूर्यकुड, दुर्गाकुड, प्रह्लादकुड, वह्निस्थल, घटोद्भव आश्रममे (भविष्य) बदरी, ऊष्णधारा, घंटाकर्णमुनि-आश्रम, पाडुस्थान, पाडीश्वरतीर्थ, नरपर्वत, उत्तर-पर्वत, विदुमती नदी, विदुमर, वैखानसमुनिस्थल, होतृस्थान, योगीश्वर भैरवका स्थान, कुबेरशीला, नर-नारायण नामक दो पर्वत, नरनारायण-आश्रम बदरिकाश्रम, कूर्मधारा, पंचशिला, नारदशिला, नारदह्रद, वाराहीशिला, वाराहकुड, नारसीहशिला,

८७. ,, ,, चंडमुंडादिवध ॥३७॥

८८. ,, ,, रक्तबीजवध ॥६२॥ गंगाद्वार, कश्मीर, नीलकंठेश्वर, मानससर, कुंभोदक तीर्थ, कुरुवर्ष;गंडकीतीर्थ।

८९. कालीक्षेत्र तीर्थाभिधान ॥४६॥ कालीश्वर तीर्थ, सिद्धेश्वर तीर्थ, कोटिमाहेश्वरीतीर्थ।

९०. कोटिमाहेश्वरी माहात्म्य ॥२८॥ रामेश्वरी महादेवीका स्थान।

९१. राकेश्वरी माहात्म्य ॥५४॥ राकेश्वरी तीर्थ ।

९२. चान्द्रवंश कथन ॥५७॥ श्रीक्षेत्रमें क्षीरपुत्र पर्वत।

९३. सौम्यवाराणसी माहात्म्य ॥१०२॥ सौमकाशी (उत्तर-काशी) जो वारणावत पर्वतपर है, जहां धातुकी शक्ति (त्रिशूल) है। असी नदी, वरुणा नदी, जमदग्नि सुत-आश्रम, उत्तरकाशी (वाराणसी) भागीरथी गंगा, श्वेतवाहिनी गंगा, मणिकर्णिका-केदारमंडल।

९४. सौम्यवाराणसी माहात्म्य ॥४६॥ रामाश्रम,रेणुकातीर्थ।

९५. सौम्यवाराणसी माहात्म्य समाप्ति ॥१००॥ वारणावत तीर्थ, ब्रह्मकुंड, रुद्रकुंड, रुद्रेश्वर। उत्तरकाशी, कुरु-क्षेत्र, प्रयाग, वाराणसी, सागर, बदरिकाश्रम, देव-प्रयाग, श्रीक्षेत्रसे अधिक फलदायक है। यहां गंग-द्वार, दक्षेश्वर, कुब्जाम्रक, भरततीर्थ, लक्ष्मणाश्रम, वशिष्ठाश्रम,देवप्रयाग,भिल्लगना-गंगा होकर आते हैं। जातुकगृह, वायुतीर्थ, वायव्यानदी, यमतीर्थ, विष्णुकुंड शालग्रामाख्यतीर्थ, गंडकीनदी, मुक्तिक्षेत्र।

नानातीर्थमाहात्म्य-॥५५॥ ब्रह्मधारा, यमुना, हिरण्य-वाहनदी, तामसानदी, [illegible] विष्णुतीर्थ. महाया-

नुगिरि, ज्योतीश्वर, हेमशृंग, सिद्धधारा, हिरण्य-सैकतानदी, काश्यपतीर्थ,ब्रह्मपुत्रनद,ब्रह्मेश्वर,गर्वीश्वरी, शतद्रू, पंचनादेश्वर, जम्बूशैल, कामाख्या, कामधारा नदी, सुन्दरीतीर्थ, हयग्रीव, विष्णुप्रयाग।

९७. समुद्रतीर्थाभिधान-॥२२॥ हिमवत् गिरि।

९८. नानातीर्थमाहात्म्य-॥१५॥ तमसानदी, रुद्रतीर्थ. विष्णु-तीर्थ, ब्रह्मतीर्थ, शक्रतीर्थ।

९९. तामसोत्पत्तिमाहात्म्य-॥१६॥ वारणावतक्षेत्र, बाल-खिल्यशैल।

१००. सोमेश्वर माहात्म्य-॥१६॥ सोमेश्वर. धर्मनदी, धर्म-कूटगिरि, धर्मेश्वरी, अप्सरागिरि, यक्षकूटमहागिरि।

१०१. देशप्रशंसा वर्णन-॥५०॥ गंगाद्वार, मायाक्षेत्र, कैलास शिखरपर केदारतीर्थ, नन्दापर्वत, काष्टगिरि, केदारक्षेत्र, हिमालयपद, हिमवद्देश।

१०२. मायाक्षेत्रमाहात्म्य-॥३५॥ गंगाद्वार, रत्नशृंग, मायाक्षेत्र, द्रोणाश्रम, कुशावर्त, विल्वक, नीलपर्वत, कनखल, चण्डिकातीर्थ, दक्षेश्वर, द्रोणतीर्थ, रामतीर्थ, हृषीकेश, रामतीर्थ,प्रयाग,तपोवन,लक्ष्मणस्थान,(सौमित्रितीर्थ)।

१०३ मायाक्षेत्रेसतीदेहोत्सर्ग॥५५॥

१०४. मायाक्षेत्रमाहात्म्य-॥६८॥

१०५. मायाक्षेत्रेयज्ञसंधानतीर्थोत्पत्ति ॥६१॥ कैलास, मायाक्षेत्र, दक्षेश्वर।

१०६. नीलपर्वतमाहात्म्य-॥८६॥ महागिरि,नीलेश्वर,महत्कुंड।

१०७. विल्वतीर्थमाहात्म्य-॥५३॥ नीलपर्वत, विल्वपर्वत, शिवधारा, मायाक्षेत्र, ब्रह्मपुर, विल्वेश्वर, भ्रमरीतीर्थ।

नारसिंहकुंड, मार्कंडेय शिला, गारुड़ीशिला, वह्नि ब्रह्मकपाल, नारायणकुंड, उर्वशीकुंड, स्वर्णधारा कुबेरतीर्थ, शेषतीर्थ, इन्द्रधारा, वेदधारा, वसुधा धर्मशिला, सोमतीर्थ, चक्रतीर्थ, सप्तर्षितीर्थ, रुद्र ब्रह्मतीर्थ, नरनारायणतीर्थ, मुचकुंदाश्रम, व्यासती केशवप्रयाग, माणभद्राश्रम, पांडवतीर्थ।

५६. नारदोपाख्यान ॥४१॥ नारदकुंड।

६०. बदरीमाहात्म्ये वैश्योपाख्यान ॥४४॥ कैलास पर्व गन्धमादन, बदरीनाथ जहां गंगाद्वार और केदार होकर जाते हैं।

६१. बदरीमाहात्म्ये जन्मेजयोपाख्यान ॥८८॥ व्यासपुस्तक स्थान।

६२. बदरीमाहात्म्य ॥८३॥ गंगाद्वार, नारायणस्थान, नील भैरवस्थान, कण्वाश्रम, केदारनाथ, बदरीकेश, गंगे त्तर, नारदीयहृद, वह्नितीर्थ।

६३. रुद्रप्रयागमें रागोत्पत्ति ॥१६॥ रुद्रप्रयाग, नागालय।

६४. कैलास-प्रशंसामें शिवसहस्रनाम ॥१४७॥

६५. रुद्रतीर्थमें पिंडोत्पत्ति ॥१४६॥

६६. ,, रागोत्पत्ति ॥६४॥

६७. ,, नारदश्रुतिभेदाख्यान ॥२७॥

६८. ,, संगीतमें ग्रामादिभेदकथन ॥४३॥

६९. संगीतशास्त्रमें मध्यम ग्रामौडुकथन ॥४॥

७०. षाड्जग्रामौडवनामकथन, ॥४॥

७१. षाडवौडवयातम्, ॥११॥

७२. स्थायाद्यलंकार वर्णन, ॥१६॥

७३. षड्जादिजातिप्रमुखकथन, ॥२४॥

७४. गानक्रिया, ॥२६॥

७५. रागगणना, ॥२१॥
७६ शृंगारादिकथन, ॥४५॥
७७ संगीतशास्त्र-समाप्ति, ॥२७॥
७८ रुद्रतीर्थमाहात्म्य, ॥५२॥
७६. नानातीर्थमाहात्म्य, ॥५२॥ नीलकंठ तीर्थ, शुंभ-निशुंभ, दो महोन्नत पर्वत, मानमतीर्थ, चक्रतीर्थ, विल्वेश्वर, हेरम्बकुड, वैराग्यक्षेत्र, शैलोदक (शलोदा?) नदीमहादेव, तटक्षेत्र, पिंडारकनदी, मरीचि-आश्रम ब्रह्मपुत्रेश्वर।
८० पुष्करपर्वत महात्म्य, ॥१२८॥ ब्रह्मपुत्र क्षेत्र (मरीचिक्षेत्र ?) के उत्तरमें हिमालयमे पुष्कर पर्वत, जलेश्वर, देवीपीठ, ढुँठीश्वर ।
८१. नानातीर्थकथन-॥११०॥ गोविन्दतीर्थ, महानदी भानु, पिंडारका नदी, गणाकुड, रंभाकुड, दशमौलितपस्थली, नंदादेवीतीर्थ, सौदामिनी नदी, कामेश्वरतीर्थ, गणेशस्थान, कपिलकतीर्थ, ब्रह्मेश्वरतीर्थ, कर्णाश्रम (कर्णप्रयाग), सूर्यकुंड, उमेश्वरीतीर्थ, वैनायकीशिला, मेनकाक्षेत्र, पुलहेश्वरतीर्थ, ब्रह्मशिला, मणिभद्रपुर, यक्षकुंड, मणिमतीनदी, भीमेश्वरतीर्थ, दिव्यसर देवेश्वरतीर्थ, स्वर्णेश्वर, इन्द्रतीर्थ, हनुमतशिला, भीमशिला, भीमतीर्थ, कालीगृह ।
८२ कालीतीर्थ माहात्म्यमें रक्तवीजवधप्रसंगमे दूतप्रेषण॥३३॥
८३ ,, ,, इंद्रपराजय ॥३६॥ सुमेरुशृंग।
८४. ,, ,, कैलासगमन ॥४५॥
८५. ,, ,, कालीस्तोत्र ॥२३॥ केदारमंडल, मन्दाकिनी कालीतीर्थ
८६. ,,

८७. ,, ,, चंडमुँडादिवध ॥३७॥
८८. ,, ,, रक्तबीजवध ॥६२॥ गंगाद्वार, कश्मीर, नीलकंठेश्वर, मानससर, कुंभोदक तीर्थ, कुरुवर्ष;गंडकीतीर्थ।

८९. कालीक्षेत्र तीर्थाभिधान ॥५६॥ कालीश्वर तीर्थ, सिद्धेश्वर तीर्थ, कोटिमाहेश्वरीतीर्थ।
९०. कोटिमाहेश्वरी माहात्म्य ॥२८॥ रामेश्वरी महादेवीका स्थान।
९१. राकेश्वरी माहात्म्य ॥५४॥ राकेश्वरी तीर्थ।
९२. चान्द्रवंश कथन ॥५७॥ श्रीक्षेत्रमें क्षीरपुत्र पर्वत।
९३. सौम्यवाराणसी माहात्म्य ॥१०२॥ सौमकाशी (उत्तरकाशी) जो वारणावत पर्वतपर है, जहां धातुकी शक्ति (त्रिशूल) है। असी नदी, वरुणा नदी, जमदग्नि सुत-आश्रम, उत्तरकाशी (वाराणसी) भागीरथी गंगा, श्वेतवाहिनी गंगा, मणिकर्णिका-केदारमंडल।
९४. सौम्यवाराणसी माहात्म्य ॥४६॥ रामाश्रम,रेणुकातीर्थ।
९५. सौम्यवाराणसी माहात्म्य समाप्ति ॥१००॥ वारणावत तीर्थ, ब्रह्मकुंड, रुद्रकुंड, रुद्रेश्वर। उत्तरकाशी, कुरुक्षेत्र, प्रयाग, वाराणसी, सागर, बदरिकाश्रम, देवप्रयाग, श्रीक्षेत्रमे अधिक फलदायक है। यहां गंगद्वार, दक्षेश्वर, कुब्जाम्रक, भरततीर्थ, लक्ष्मणाश्रम, वशिष्ठाश्रम,देवप्रयाग,भिल्लगना-गंगा होकर आतेहैं। जातुकगृह, वायुतीर्थ, वायव्यानदी, यमतीर्थ, विष्णुकुंड शालग्रामाख्यतीर्थ, गंडकीनदी, मुक्तिक्षेत्र।
९६. नानातीर्थमाहात्म्य-॥५५॥ ब्रह्मधारा, यमुना, हिरण्यबाहुनदी, ताममानदी, दक्षतीर्थ, विष्णुतीर्थ, महाला-

नुगिरि, ज्योतीश्वर, हेमश्रृंग, सिद्धधारा, हिरण्य-सैकतानदी, काश्यपतीर्थ, ब्रह्मपुत्रनद, मल्लेश्वर, गवीश्वरी, शतद्रू, पंचनादेश्वर, जम्बूशैल, कामाख्या, कामधारा नदी, सुन्दरीतीर्थ, हयग्रीव, विष्णुप्रयाग ।

९७. समुद्रतीर्थाभिधान-॥२२॥ हिमवत् गिरि ।

९८. नानातीर्थमाहात्म्य-॥१४॥ तमसानदी, रुद्रतीर्थ, विष्णुतीर्थ, ब्रह्मतीर्थ, शक्रतीर्थ ।

९९. तामसोत्पत्तिमाहात्म्य-॥१६॥ वारणावतक्षेत्र, बालखिल्यशैल ।

१००. सोमेश्वर माहात्म्य-॥१६॥ सोमेश्वर, धर्मनदी, धर्मकूटगिरि, धर्मेश्वरी, अप्सरागिरि, यक्षकूटमहागिरि ।

१०१. देशप्रशंसा वर्णन-॥४०॥ गंगाद्वार, मायाक्षेत्र, कैलास शिखरपर केदारतीर्थ, नन्दापर्वत, काष्टगिरि, केदारक्षेत्र, हिमालयपद, हिमवद्देश ।

१०२. मायाक्षेत्रमाहात्म्य-॥३४॥ गंगाद्वार, रत्नश्रृंग, मायाक्षेत्र, द्रोणाश्रम, कुशावर्त, विल्वक, नीलपर्वत, कनखल, चण्डिकातीर्थ, दक्षेश्वर, द्रोणतीर्थ, रामतीर्थ, हृषीकेश, रामतीर्थ, प्रयाग, तपोवन, लक्ष्मणस्थान, (सौमित्रितीर्थ) ।

१०३. मायाक्षेत्रेसतीदेहोत्सर्ग ॥५५॥

१०४. मायाक्षेत्रमाहात्म्य-॥६८॥

१०५. मायाक्षेत्रेयज्ञसंधानतीर्थोत्पत्ति ॥६१॥ कैलास, मायाक्षेत्र, दक्षेश्वर ।

१०६. नीलपर्वतमाहात्म्य-॥८६॥ महागिरि, नीलेश्वर, महत्कुंड ।

१०७. विल्वतीर्थमाहात्म्य-॥५३॥ नीलपर्वत, विल्वपर्वत, शिवधारा, मायाक्षेत्र, ब्रह्मपुर, विल्वेश्वर, भ्रमरीतीर्थ ।

१०८. मायातीर्थमाहात्म्य-॥२८॥ त्रिमूर्तितीर्थ, सुनन्देश्वर वीरभद्रतपस्थल, गणेश्वर, निवर्तनस्थल, मुँडमालेश्वरी, पीठेश्वरी, पीतशिला।

१०९ मायापुरीमाहात्म्य ॥३६॥ गंगाद्वार, कैलासगिरि कनखल, अर्गलपुर।

११०. गोमहिमा-॥६६॥ हिमवत्स्थल, मन्दर, उज्जयिनी।

१११. अन्नदानमाहात्म्य ॥५४॥ गंगोत्तर, नीलपर्वत, गंगाद्वार

११२. मायापुरीमाहात्म्य-॥११॥ कुशावर्त, ब्रह्मतीर्थ, जाह्नवी।

११३. गंगाद्वारमाहात्म्य-॥८६॥ विष्णुतीर्थ, बदरीविपिन हरिद्वार।

११४ धर्मध्वजोपाख्यान-॥३१॥ हिमवत्, पिंडारकनदी, अलकनन्दा, श्रीक्षेत्र, गजस्थल।

११५. गंगाद्वारमाहात्म्यसमाप्ति-॥५६॥ कुशावर्त, सप्तसामुद्रिक तीर्थ, स्वर्णवल्लीश्वर, शिवतीर्थ, विल्वेश्वर, गणेश्वर, नारायणीशिला, पार्वतीश्वर, नीलपर्वत, साश्वतीधारा, गंगा, पार्वतीतीर्थ, रक्तशिला, [illegible]तीर्थ, आपदुद्धारण

१२१. लक्ष्मणोपाख्यान ॥७४॥ वायव्य तीर्थ, वासव तीर्थ, चन्द्रिका नदी, गणायभैरव, वारुणतीर्थ, वाराहतीर्थ, सप्तसामुद्रकतीर्थ, ऋषिपर्वत, लक्ष्मणतीर्थ।
१२२. ब्राह्मणप्रशंसा ॥४७॥ कुब्जाम्रकतीर्थ।
१२३. कुब्जाम्रकमाहात्म्य ॥६३॥ लक्ष्मेश्वर, लक्ष्मणकुंड, मुनिकुंड, इन्द्रकुंड, वायुकुँड, नन्दीशिला, नन्दीकुंड, धर्मधारा, धर्मेश्वर, माहेश्वरी, वाराहतीर्थ, सूर्यपुत्री नदी, सूर्यकुंड, यज्ञेश्वर, विष्णुकलेवरा, हृषीकेशाश्रम।
१२४. रामतीर्थमाहात्म्य ॥३८॥ कैलास, रामाश्रम, धेनुपर्वत, वेत्रवती नदी, कालिकानदी, चंडीस्थान, दुर्गास्थान, घंटाकर्ण स्थान, भूतेश, कुहूनदी, शिवदानदी, परमगह्वरा गुफा, सीताकुंड, रामकुंड, हनुमानकुंड, महादुर्गा, दुर्गेश्वर, द्वीपेश्वर, रामेश्वर, प्रवालिकादेवी।
१२५. द्रोणवरप्रदान ॥३६॥ द्रोणाश्रम, देवधाराचल, देवजन्या नदी।
१२६ शस्त्रविद्या निरुक्ति ॥७६॥
१२७ अनेकतीर्थाभिधान ॥२२॥ देवधार, देवेश्वर, देवजन्वानदी, नवदोलातीर्थ, त्रिपथाधारा, जावालीश्वर, धेनुवन, धेनुगंगा, नंदिनी, काकाश्रम, करेणुकानदी, पर्याकनी नदी, पुष्पेश्वर।
१२८ द्रोणाश्रमभिधान ॥३८॥ नानाचल, नागपर्वत, नागेश्वर, शुभस्रवानदी, चन्द्रवन, चन्द्रसर, चन्द्रवतीनदी, सुहृवनोनद।
१२९ सुहृवननदोत्पत्ति ॥३२॥ चन्द्रवती, सुहृवननद, शाकिन्या नदी।
१३० द्रोणतीर्थमाहात्म्य ॥२४॥ गणकुँजर पर्वत, गणधारा, चंडिका, देवगर्भ नदी, चन्द्रारण्य, सूर्यकुण्ड,

१४३ भुवनेशीपीठमाहात्म्य ॥१८॥ वागीश्वर, नागत्रीनदी, चामरेश्वर, चानरादोलिनीधारा, गदंमागुरशैल, गदंभोरस्वरनादिनी।

१४४ भुवनेशीमाहात्म्य ॥६॥ ब्रह्माश्रम, कोटीश्वर, शिवकुंड, शूलकुंड, ब्रह्मकुंड।

१४५ भुवनेश्वरीपीठमाहात्म्य ॥६॥ भद्रसेनाश्रम।

१४६ शिवलिंगमहिमावर्णन ॥४। भिल्लांगनानदी, सत्येश्वर।

१४७ माल्यवतीश्वरमाहात्म्य ॥४२॥ गांगेश्वर, धेनुतीर्थ, शेषतीर्थ, माल्यवती आश्रम, मालतीश्वर, कूटाद्रि, रौद्रीशिला, पर्णवन, विरागिणीतपस्थल, शूलेश्वरी, गोवर्द्धनगिरि।

१४८ भास्करक्षेत्रमाहात्म्य ॥२२॥ भास्करक्षेत्र भास्करकुण्ड, विष्णुकुण्ड, ब्रह्मकुण्ड, नवलानदी, देवप्रयाग क्षेत्र, गोमुखक्षेत्र, शिवतीर्थ।

१४६ देवप्रयागमाहात्म्य ॥६६॥ घंटाकर्ण, कन्दुमती, ब्राह्मीशिला, मोक्षवतीनदी, मोक्षतीर्थ, मोक्षेश्वरस्थान, देवप्रयाग (देवतीर्थ), जान्हवी, अलकनन्दा, ब्रह्मकुंड, शिवतीर्थ, स्वयंभूस्थान, वैतालिकीशिला, वैतालकुंड, सूर्यकुंड, वशिष्ठतीर्थ, वाराहीशिला, पौष्पमालतीर्थ, इन्द्रद्युम्नतपस्थल, विल्वतीर्थ।

१५० देवप्रयागमाहात्म्य ॥१५७॥ देवप्रयाग, दशरथया पर्वत।

१५१ " " ॥१००॥ ब्रह्मकुण्ड।

१५२ " " ॥१४०॥

१५३ " " ॥७६॥ शिवतीर्थ, सूर्यप्रभुतीर्थ, [illegible] शांतानदी।

१४३ भुवनेशीपीठमाहात्म्य ॥१८॥ वागीश्वर, नागानदी, चामरेश्वर, चानराढोलिनीधारा, गर्दभासुरशैल, गर्दभोत्सरनादिनी।

१४४ भुवनेशीमाहात्म्य ॥६॥ ब्रह्माश्रम, कोटीश्वर, शिवकुंड, शूलकुंड, ब्रह्मकुंड।

१४५ भुवनेश्वरीपीठमाहात्म्य ॥६॥ भद्रसेनाश्रम।

१४६ शिवलिंगमहिमावर्णन ॥४॥ भिल्लांगनानदी, सत्येश्वर।

१४७ माल्यवतीश्वरमाहात्म्य ॥४२॥ गांगेश्वर, धेनुतीर्थ, शेषतीर्थ, माल्यवती आश्रम, मालतीश्वर, कूटाद्रि, रौद्रीशिला, पर्णवन, विरागिणीतपस्थल, शूलेश्वरी, गोवर्द्धनगिरि।

१४८ भास्करक्षेत्रमाहात्म्य ॥२२॥ भास्करक्षेत्र भास्करकुण्ड, विष्णुकुण्ड, ब्रह्मकुण्ड, नवलानदी, देवप्रयाग क्षेत्र, गोमुखक्षेत्र, शिवतीर्थ।

१४९ देवप्रयागमाहात्म्य ॥६६॥ घंटाकर्ण, वन्दुमती, ब्राह्मीशिला, मोक्षवतीनदी, मोक्षतीर्थ, मोक्षेश्वरस्थान, देवप्रयाग (देवतीर्थ), जान्हवी, अलकनन्दा, ब्रह्मकुंड, शिवतीर्थ, स्वयंभूस्थान, वैतालिकीशिला, वैतालकुंड, सूर्यकुंड, वशिष्ठतीर्थ, वाराहीशिला, पौष्पमालतीर्थ, इन्द्रद्युम्नतपस्थल, विल्वतीर्थ।

१५० देवप्रयागमाहात्म्य ॥१५७॥ देवप्रयाग, दशरथयागपर्वत।

१५१ „ „ ॥१००॥ ब्रह्मकुण्ड।

१५२ „ „ ॥१४०॥

१५३ „ „ ॥७६॥ शिवतीर्थ, ऋष्यशृङ्गतीर्थ, शिवकुण्ड, शांतानदी।

१५४ देवप्रयागमाहात्म्य ॥८४॥ वैतालकुण्ड, शिवकुण्ड, वैतालशिला।

१५५ ,, ,, ॥५६॥ वैतालतीर्थ, सौरकुण्ड।

१५६ ,, ,, ॥६५॥ जनार्दनशिला, वाराहशिला,

१५७ देवप्रयागमाहात्म्ये सूर्यकुण्डोत्पत्ति ॥७५॥ सौरकुण्ड, सौरतीर्थ।

१५८ देवतीर्थ (देवप्रयाग) ॥८७॥ पौष्पमालतीर्थ, हिमवत्, मानसह्रद।

१५९ देवतीर्थ (देवप्रयाग) ॥६१॥ इन्द्रद्युम्न आश्रम।

१६० देवप्रयागमाहात्म्ये विल्वतीर्थवैभव कथन ॥३१॥ विल्वतीर्थ।

१६१ देवप्रयागमाहात्म्य वर्णन ॥६७॥ शीलवतीह्रद, भूमिदेवस्थान, नन्दीस्थान, भृङ्गिस्थान, वागीश्वर, गाणपत्यपीठ, लिंगभद्राश्रम, ऋषिकुंड, नारसिंहकुंड, नारसिंहीशिला, रामतीर्थ।

१६२ देवप्रयागमाहात्म्य ॥११८॥ मेरुशृङ्ग, सीता, अलकनन्दा, चक्षु, भद्रा, चार नदियां, क्षीरसमुद्र, गन्धमादन, भद्राश्ववर्ष, माल्यवान् शिखर, केतुमाल, शृङ्गवतपर्वत, कौवेरवर्ष, हिमपर्वत, धनवतीनदी, तुडीश्वर, दन्वीश्वर, विश्वेश्वर, ताटकेश्वर, देवप्रयाग, क्षेत्रराज, भैरव, ब्रह्मकुंड, वशिष्ठकुंड, शिवतीर्थ, वैतालकुंड, शांतानदी।

देवप्रयागमाहात्म्यसमाप्ति ॥७१॥ उपरोक्त अनेक।

इन्द्रप्रयागमाहात्म्य ॥३६॥ नवालकरगंगा, इन्द्रप्रयाग, इन्द्रकुंड, धर्मकुंड, धर्मतीर्थ।

इन्द्रप्रयागमाहात्म्य ॥११॥ इन्द्रकुंड, धनातीर्थ ब्रह्मकुंड

ब्रह्मधारा, त्रिशूल, नवालका पूर्वी धारा, नवालका दक्षिण धारा, उर्मिका।

१६६. नवालका (नयार) उत्पत्ति ॥४०॥ नीलकंठ, केदारभवन मन्दाकिनीनदी, नवालकानदी, च्यवनाश्रम।

१६७. नानातीर्थवैभव ॥३५॥ वैनतेयनदी, वैनतेयतीर्थ, गंगा द्वार, गारुड़कतीर्थ, गारुड़ीनदी, विभाविनीनदी, भावेश्वरी, राजेन्द्रीनदी, मंदधारानदी, पृथुतीर्थ, पृथ्वीश्वर, कपर्दकगिरि, कपिंजलानदी, कपिंजलेश्वर, चन्द्रकूटगिरि, चन्द्रतोयानदी, लांगलपर्वत, पिंगलिका शिला, मंजुकुला, धेनुगंगा, वनदेवी, अत्रिपुत्रीनदी, शूलेश्वरी।

१६८. दीप्तज्वालेश्वरीमाहात्म्य ॥२६॥ दीप्तज्वालेश्वरी।

१६९. उमादिवर्णन ॥२३॥ कांडवीनदी, केवलेश्वर, कपिलानी नदी, कपिलाश्रम, राष्ट्रकूटपर्वत, रथवाहिनीनदी, नवालकानदी, वन्यश्रीकेश्वर।

१७०. देवराष्ट्रेश्वरीमाहात्म्य ॥५॥ देवराष्ट्रेश्वरी, ऐन्द्रीनदी।

१७१. नन्देश्वरीमाहात्म्य ॥६॥ पुरायकूटगिरि, नन्दनानदी, नन्देश्वरीदेवी, नन्देश्वरदेव।

१७२. अनेकतीर्थाभिधानवर्णन ॥२६॥ सुन्दरपर्वत, सुन्दरेश्वर सुन्दरानदी, भूरिदेव पर्वत, भूरिदेवानदी, नवालका नदी, भवनाशनकतीर्थ भवानीस्थान, भवमोचनतीर्थ शिलहोपर्वत, रेणुकानदी, मनोहरानदी, श्वेततरंगिणीनदी, करिणीनदी, भैरवतीर्थ, करींद्रपर्वत, मंदिरेश्वरस्थान, भद्रतरानदी, भृगुपत्नीनदी, अगदानदी कालिकानदी, वीरिणीनदी, भरणीनदी, भृगुकुंड, इन्द्रप्रयाग, वैनायकतीर्थ।

१७३. योगीश्वरमाहात्म्य ॥१२॥ कुब्जाम्रकमहाक्षेत्र, योगेश्वर स्थान, शिवतीर्थ, सूर्यकुंड ।

१७४. गुहेश्वरीमाहात्म्य ॥६॥ ताम्राचल, विश्वाधार पर्वत, गुह्येश्वरीस्थान ।

१७५. नन्दभद्रेश्वरीमाहात्म्य ॥१६॥ नन्दभद्रेश्वरी, गुणश्री-स्थान, नारायणीनदी, षडमुँडगिरि, कालेश्वरस्थान ।

१७६ श्रीक्षेत्रमाहात्म्य ॥१५॥ श्रीक्षेत्र ।

१७७ श्रीक्षेत्रमाहात्म्य ॥५४॥ श्रीस्थल, कोलोत्तमाग, कोल-कलेवर, जीवनेन्द्रपुर, इर्षवतीनदी, खाडवनदी, छविपुर, केशरक्षेत्र, इन्द्रकीलपर्वत, कीनाशपर्वत ।

१७८ श्रीक्षेत्रमाहात्म्ये कोलासुरवध ॥१२८॥ कुबेरपर्वत, राज-राजेश्वरीतीर्थ ।

१७९ श्रीक्षेत्रमाहात्म्य ॥२८४॥ कीनाशपर्वत, वजाडाश्रम, श्राजाड-आश्रम, ककालेश्वर, मुक्तेश्वर, मेनकानदी, मेनकेश्वर, देवतीर्थ, मुकुकंडेश्वर, चन्द्रधारा, यह्नि-धारा, कोलासुरभवानदी, शिवप्रयाग, श्यामलेश-महादेव, गजवतीधारा, पुष्पदतिकानदी, भानुमती-शिला, सूर्यकुड इन्द्रप्रयाग, दृषद्वतीनदी, दृषद्वतपर्वत, कडिकानदी, कंडिकागुहा, गणेश्वरस्थान, भवानी-स्थान, श्मशानवासिनीस्थान, शक्तिजायानदी भौवन पीठ, उपेन्द्रजानदी, इर्षवतीनदी, कोलगिरि ।

१८० श्रीक्षेत्रमाहात्म्य ॥१००॥ लारयतीर्थ, उर्द्ध पर्वत, माया-महेश्वरीस्थान, गौरीगगा, गौरीप्रयाग, बरेश्वरीनदी, श्रीरमणतीर्थ, वारुणपर्वत, इन्द्राणीनदी कुलवतीनदी ऋषिप्रयाग, विश्वप्रयाग, विश्ववती शिला, कुँभिका नदी, विश्वनाथ, मुक्तिप्रयाग, मुक्तिधारा, औडव पर्वत, मुक्तीश्वर, कौडिन्याश्रम, अलर्क-आश्रम,

स्वर्णेश्वरगुफा, वैनायककुंड, मजुमतीधारा, मंजुमती, रूपवती, दिग्वलि, शुभानना और यशोवती नामक पांच धाराये, मंजुघोषक भैरव।

१८१. श्रीक्षेत्रमाहात्म्ये भिल्लार्जुनोपाख्यान ॥१०६॥ शिवप्रयाग, खांडवनदी, किलकिलेश्वर।

१८२. श्रीक्षेत्रमाहात्म्य ॥६७॥ महानदीखांडव, कालिकानदी, करिपर्वत, करिभैरव, वत्सजानदी, शिरकूट पर्वत, नारायणीनदी, राजिकानदी, ढुंढिप्रयाग, कौवेरपर्वत, पुण्यवतीनदी, ढौंठिक्यानदी, संपद्धारानदी; शिवप्रयाग, शिवकुंड, श्रीस्थंडिल, वासवीनदी।

१८३. श्रीक्षेत्रमाहात्म्ये द्विजदंपतिउपाख्यान ॥४५॥ करिपर्वत, भैरवीधारा, श्रीकुंड, भूसुतानदी, ब्रह्मकुंड, अश्वतीर्थ

१८४. श्रीक्षेत्रमाहात्म्ये धनु-अश्व-भृङ्गितीर्थमाहात्म्य ॥७६॥ अश्वतीर्थ, भृङ्गिशिला, विडालाक्षकुंड, देवलाश्रम, धनुतीर्थ।

१८५. श्रीक्षेत्रमाहात्म्ये भैरवीपीठराजराजेश्वर्युपाख्यान ॥३३॥ भैरवीतीर्थ (पीठ)।

१८६. श्रीक्षेत्रमाहात्म्ये दूत-संवाद ॥४०॥ चामुण्डभैरवीतीर्थ, गौरीपीठ।

१८७. श्रीक्षेत्रमाहात्म्ये चामुण्डोत्पत्ति ॥५०॥ ब्रह्मकुंड मुण्डतीर्थ।

१८८. श्रीक्षेत्रमाहात्म्यवर्णन ॥११४॥ माहेश्वरपीठ, कमलेश्वर पीठ, नागेश्वरपीठ, कटकेश्वरपीठ, कोटीश्वरपीठ, भैरवीतीर्थ, ब्रह्मशिला, विष्णुशिला, महेशशिला, ब्रह्मकुंड, विष्णुकुंड, महेशकुंड, शिश्नेश्वर, नागतीर्थ कटकवतीनदी, कटकेश्वर, नृपेश्वर, शायरकुंड, शिबितपस्थल।

नदी, सुधातीर्थ, ब्रह्मनदी, रुद्रभद्रनद, ब्रह्मतीर्थ, चित्रवतीनदी, भस्मधारानदी, भस्मतीर्थ, कामधारानदी, ध्रुवतीर्थ, कुबरपं, जह्नी एकपादा, शूर्पकर्णा, महानना, अश्वदेहा, दीर्घकेशा मनुष्य रहते हैं, जो बीस सहस्र या दस सहस्र वर्षकी आयु पाते हैं। सौंदर्यपर्वत, सुन्दरीनदी, मोक्षवतीनदी, सुन्दरप्रयाग, सिद्धरूपास्थान, हयग्रीवरस्थान, विष्णुधारा, विष्णुक्षेत्र।

२०५. सत्यव्रतोपाख्यान ॥५०॥ हिमधामपर्वत, कुब्जाम्रक देवप्रयाग, कैलाश, हेमधारानदी, हिमदाव, चन्द्रकूटगिरि, वानराचल, हिमदावेश्वर, क्षेत्रपाल।

२०६ केदारमण्डलप्रशंसा ॥५१॥ गंगाद्वार, श्वेतगिरि, तमसा, काष्टगिरि, केदारभवन, गगाधाम, हिमवत्गिरि।

१९. मानसखण्डमे बदरी-केदार-क्षेत्र—

यह बात ध्यान देने योग्य है कि कत्यूरियोंके ताम्रपत्रोंमे जो अवश्य ग्यारहवीं-बारहवीं शताब्दीसे पहलेके हैं जिन स्थानों के नाम आये हैं, उनमेसे दो-चारको छोडकर शेष सबके नाम पिछले ८-६ सौ वर्षोंमे इतने अधिक परिवर्तित होगये हैं कि उनकी वास्तविक पहचान बहुत कठिन है। एक कारण यह भी है कि दानपत्रोंमे गावों के नाम है, पर हैं वे बडे विचित्र। जैसे अब बहुत कम मिलते हैं। पर केदारखड और मानसखंडमे आये हुये स्थानोंके अनेक नाम आज भी अधिकाश उसी प्रकार मिलते हैं। उनमे कुछके नामोंमे जो थोडा परिवर्तन मिलता है, उसका कारण यह है कि लेखकने प्रचलित नामोंको संस्कृत रूप देनेका प्रयत्न कियाहै।

दूसरी ध्यान देने योग्य बात यह है कि मानसखंडमे आये हुये गढवाली स्थानोंमे से अनेकके नाम बिलकुल उसी प्रकारसे

केदारखंडमें आतेहैं। यह भी सिद्ध करताहै कि मानसखंड और केदारखंडके रचयिता यदि एक न रहेहों तो कमसे कम उन्होंने एक दूसरेके ग्रन्थोंको देखा अवश्य था। केदारखंड स्वयं स्वीकार करताहै कि उसकी रचना मानसखंडके पश्चात् हुईहै। [केदारखंड अध्याय १०१, श्लोक १०-११, १३; अध्याय २०४, श्लोक ५६,५७]।

अगस्तेश्वर	अगस्तमुनि, मन्दाकिनीके तट पर।
अग्नितीर्थ	सप्तकुंड।
आकाशगंगा	तुङ्गनाथसे निकली नदी [आगास]।
आपनेश :	
कर्णप्रयाग	
कल्पस्थल	कल्पेश्वर, उरगम गावमें
कल्पेश्वरलिंग	
काली	कैलगंगा
क्षीरगंगा	मंदाकिनीकी उपरली धारा
गुप्त वाराणसी	गुप्तकाशी [मारीगांव]
गोपेश्वर	
गोरक्षाश्रम	त्रिजुगी *
गोस्थल	गोपेश्वर
गोस्थलक्षेत्र	गोथल [मल्ला नागपुर]
गंगाद्वार	हरिद्वार
गणेश्वर	फलासी गाव [तल्ला नागपुर] *
घोषेश्वर	नेलङके ऊपर [माना, रुद्रता, जाड संगम] *
चर्मरावती	मेनानदी (उरगम) *
ज्योतिर्धाम	जोशीमठ
तत्क्षेत्र	पिंडार पार, आधाक्षेत्र *
तपोवन	ढाक तपोवन, जोशीमठके पास

तमसा	टोंसनदी
त्रिविक्रमनदी	सिनोनदी, त्रियुगीनारायणके पास
दृषतीर्थ	
देवीकुंड	नागनाथके पास
नन्दप्रयाग	
पंचसरोवर	कालीह्रद, कामह्रद, पद्मह्रद
पांडुस्थान	पांडुकेश्वर
पिंडार पिंडारक	पिंडारनदी
पुष्कर .	त्रिशूल का एक शिखर
पुष्करशिखर	पोखरी गांव के ऊपर बिचला नागपुर
ब्रह्मकपाल	बदरीनाथके पास एक चट्टान
ब्रह्मपुत्रस्थान	वान-उपत्यकामें *
भिल्लक्षेत्र	भिलंगना-उपत्यका
भीमसेन	भीम-उड्यार (गुफा)
भृगुतुङ्ग	
मणिभद्रा	महादेवसर (दशोली) *
मन्धाता	ऊखीमठ मन्दिर *
मर्कतेश्वर	तुङ्गनाथके पंडोंका माकों गांव
महापंथ	भृगुपंथ, भृगुतुङ्ग, केदारके ऊपर शि[illegible] हिमानी
महाभद्र	मल्ली दशोलीमें
महिषमर्दिनी	त्रियुगी गांव
रतीश्वर	गोपेश्वरसे नीचे, त्रिशूल-सगम पर
राजराजेश्वरी	
लक्ष्मणस्थान	लक्ष्मणभूला
वह्नितीर्थ	अग्नितीर्थ, गौरीकुंड
वगलाक्षेत्र	टेहरीमें भिलांगनाक्षेत्रके पास

वाराणसीक्षेत्र	उत्तरकाशी
विनायकद्वार	त्रियुगी-मन्दाकिनी-संगम
विरहवती	विरहीगंगा
विल्वेश्वर	
विष्णुगंगा	
विष्णुतीर्थ	यमुना-तमसा-संगम, कालसीके पास
वेणू	वेनशिखर, आदि बदरी के पास
शाकंभरीक्षेत्र	वगलाक्षेत्रके पास, टिहरीमें
शिवकुंड	मध-मन्दाकिनीके पास, संगम पर
शेषनाग	नागमन्दिर, मुखीम
शेषेश्वर	,, सीम
सारा	लोहवाकी नदी*
सौम्यकाशी	गुप्तकाशी
स्वर्गारोहिणी	महापंथके ऊपरके शिखर-समूह
हिरण्यगर्भ	गौरीकुंड
हेमशृंग	हेमकूट, नन्दादेवी शिखरपुंजका एक शिखर अथवा नागशिखर *

* चिह्नांकितकी पहचान राहुल रचित गढ़वाल [पृ० ६५-१००] के आधार पर दीगईहै। प्रसिद्ध स्थानोंकी पहचान छोड़दीगईहै।

अध्याय ७

धर्मशास्त्रोंमें उत्तराखंड की यात्रा और उसकी प्राचीन विधि

१. पवित्रदेशोंकी कल्पना—

मनुने बतलाया कि सरस्वती और दृषद्वती इन दोनों देव-नदियोंके बीचका देवनिर्मित देश ब्रह्मावर्त है। कुरुक्षेत्र, मत्स्य देश (जयपुर आदि), पांचाल देश (कन्नौज आदि) तथा शूरसेन देश ब्रह्मर्षि देश कहलाते हैं। इन देशोंमें उत्पन्न ब्राह्मणोंसे पृथ्वीके सब मनुष्योंको अपना-अपना आचार सीखना-चाहिये, [मनु, २।१७।२०]। मनु [२।२१] के अनुसार हिमालयसे दक्षिण, विन्ध्यागिरिसे उत्तर, विनशन [सरस्वती के गुप्त होनेका स्थान] से पूर्व और प्रयागसे पश्चिम देश मध्यदेश है। वशिष्टस्मृति [१।८,११] तथा बौधायन स्मृति [१।१-२७-२८] इसी विश्वासको दुहराते हैं। वृहत्पाराशरस्मृति [१।४२] के अनुसार यह मध्य देश पवित्र देश है और इतर म्लेच्छ देश हैं।

मनुने [२।२२] आर्यावर्तकी सीमाके अन्दर पूर्व समुद्रसे पश्चिम समुद्रतक तथा हिमालय पर्वतसे दक्षिण और विन्ध्या-गिरिसे उत्तरके देश मानेहैं। वशिष्ठस्मृतिमें [१।७—६]

तृतीय केदार तुङ्गनाथ जी
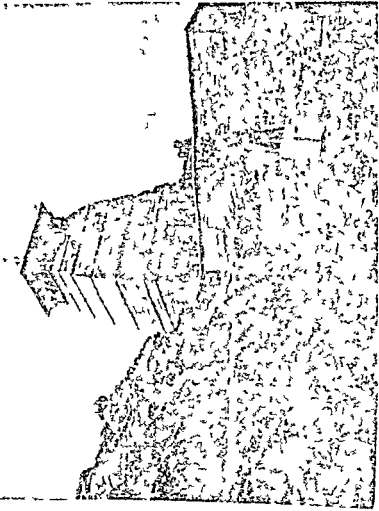
गईहै पर हिमालय और विन्ध्याचलके बीचका प्रदेश उसी प्रकार आर्यावर्त के अन्दर गिनागयाहै। यही बात बौधायन स्मृति [१।१।२७] में भी कहीगईहै। इस प्रकार स्मृतियोंने हिमालय--प्रदेशको सदा पवित्र भागोंमें गिनाहै।

बृहत्पाराशरीय धर्मशास्त्र [१।४३-४४] में कहागया है कि सुख को चाहनेवाले द्विजातिके लोग समुद्रमें जानेवाली पवित्र नदियों तथा मुनियोंसे सेवित पुण्य-तीर्थोंके आस-पास निवास करें क्योंकि मुनियोंके निवाससे वे देश भी पवित्र हो गयेहैं। मनु [२।२४] ने कहा जिन देशोंमें काले मृग स्वभावसे ही विचरण करतेहैं, उन देशोंको यज्ञ करने योग्य समझनाचाहिये। इनसे अन्य देशोंको म्लेछ-देश कहतेहैं। द्विजातियोंको यत्न पूर्वक इन देशोंमें निवास करनाचाहिये। शूद्र लोग अपनी जीविकाके लिये किसी भी देशमें रहसकते हैं। इससे स्पष्ट हुआ कि हिमालय, जहां स्वच्छन्द होकर काले मृग विचरण करतेहैं, पवित्र देशोंमें गिनागयाहै। संवर्तस्मृति श्लोक ४, में जहां स्वभावसे ही काले मृग विचरतेहैं, उन देशों को 'धर्मदेश' कहागयाहै और द्विजोंके धर्मसाधनके योग्य बताबागयाहै। व्यासस्मृति १।३ के अनुसार ऐसे देश वेदोक्त धर्मोंके अनुष्ठानके योग्य कहेगयेहैं। वशिष्ठस्मृति १।१३। १४, बौधायनस्मृति १।१।२६-३०, तथा बृहत्पाराशरीय धर्मशास्त्र १।४१, इसी कथनकी पुष्टि करतेहैं।

२. धर्मशास्त्रोंमें उत्तराखंडके तीर्थ—

व्यासस्मृति और शंखस्मृति स्पष्ट शब्दोंमें हरिद्वार, केदार, भृगुतुङ्ग और महालयकी महिमाका उल्लेख करतीहैं। व्यास-स्मृति ४।१५ मे कहागयाहै कि गंगाद्वार और केदारकी यात्रा से सारे पापोंसे छुटकारा मिलताहै। शंखस्मृति १४।२७-२६ में

कहागयाहै—गया, प्रभास, पुष्कर, प्रयाग और नैमिषारण्य तीर्थमें, गंगा, यमुना और पाचोष्णी नदीके तीरपर अमरकंटक तीर्थमें, नर्मदा और गयामें, काशी, कुरुक्षेत्र, भृगुतुङ्ग और महालय तीर्थमें और सप्ततीर्थ तथा ऋषिकूपके निकट पितरोंके निमित्त जो कुछ कियाजाताहै उसका फल अक्षय होताहै।

यहां पर इन नियमोंका भी संक्षेप में उल्लेख करना अनुचित न होगा, जिनका प्राचीन कालमें पालन कियाजाताथा।

३. तीर्थयात्रासंबन्धी नियम—

किसे फल मिलता है?

महाभारतमें तीर्थयात्रा धनी-निर्धन सबकेलिये सुलभ बतलाईगईहै। पर साथ ही यह भी कहदियागया है कि—

यस्य हस्तौ च पादौ च मनश्चैव सुसंयतम्।
विद्या तपश्च कीर्तिश्च स तीर्थफलमश्नुते॥
अकोपनश्च राजेन्द्र! सत्यवादी दृढव्रतः।
आत्मोपमश्च भूतेषु स तीर्थफलमुच्यते॥

जिसके हाथ, पैर और मन संयमसे हों, जिसमें विद्या, तपस्या हो और जिसने सच्चरित्रताके कारण ख्याति प्राप्त करलीहो उसीको तीर्थका फल प्राप्तहोताहै। जो क्रोध रहित, सत्यवादी, दृढ़ निश्चयवाला तथा सब प्राणियोंको अपना जैसा समझताहो उसे ही तीर्थयात्राका फल मिलताहै।

प्रतिग्रहादुपावृत्तः संतुष्टो येन केनचित्!
अहंकारविमुक्तश्च स तीर्थं फलमश्नुते॥
अदम्भको निरारम्भो लघ्वाहारो जितेन्द्रियः।
विमुक्तः सर्व संगैर्यः स तीर्थफलमश्नुते॥
तीर्थान्यनुसरन् धीरः श्रद्दधानः समाहितः।
कृतपापो विशुद्ध्येत किं पुनः शुद्धकर्मकृत्?

जो प्रतिग्रह नहीं लेता, जो कुछ मिले उसीमें संतुष्ट रहता है, जो अहंकार-रहित है, उसीको तीर्थ-फल मिलताहै। पाखंड रहित, नई-नई मृगतृष्णामें न फंसनेवाला, अल्पहारी, जितेन्द्रिय तथा आसक्ति-रहित व्यक्तिको ही तीर्थ-फल प्राप्त होताहै। पहले पाप करनेपर भी जो व्यक्ति धैर्य और श्रद्धासे तीर्थोंका सेवन करताहै, वह भी शुद्ध होजाताहै, फिर शुद्ध हृदय व्यक्तिका तो कहना ही क्या है? [वाराहपुराण]

नृणां पापकृतां तीर्थे पापस्य शमनं भवेत्।
यथोक्त फलदं तीर्थं भवेच्छुद्धात्मनां नृणाम्।

पापी मनुष्योंके पाप तीर्थमें जानेसे नष्ट होजातेहैं। किंतु तीर्थका फल उन्हींको मिलताहै जिनका अन्तः करण शुद्ध हो। [शंखस्मृति]

कामं क्रोधं च लोभं च यो जित्वा तीर्थमावसेत्।
न तेन किञ्चिन्न प्राप्तं तीर्थाभिगमनाद्भवेत्॥
तीर्थानि तु यथोक्तेन विधिना संचरन्ति।
सर्वद्वन्द्वसहा धीरास्ते नराः स्वर्गगामिनः॥

जो काम, क्रोध और लोभको जीतकर तीर्थमें प्रवेश करता है उसकी सभी कामनायें तीर्थयात्रासे पूर्ण होजातीहैं। जो विधि पूर्वक तीर्थयात्रा करतेहैं, सारे दुख-द्वन्दोंको सहनेवाले ऐसे धीर पुरुष, स्वर्ग पहुँचतेहैं। [स्मृतिसार-समुच्चय; श्री मित्र, वीरमित्रोदय, तीर्थप्रकाश, १२-१४]।

४. किसे तीर्थयात्राका फल नहीं मिलता—

तीर्थका फल प्राप्त करनेके लिए श्रद्धाविश्वासका होना आवश्यक ठहराया गयाहै।

अश्रद्धानः पापात्मा नास्तिकोऽच्छिन्नसंशयः।
हेतुनिष्ठश्च पंचैते न तीर्थ फलभागिनः॥

श्रद्धा-रहित, पापी, नास्तिक, संशयात्मा, तर्क वितर्क करने वाला—ये पांच व्यक्ति तीर्थयात्राका फल नहीं पाते। [स्कन्द पुराण] इसी प्रकार नारद पुराणमें कहागयाहै कि गंगादि तीर्थोंमें मछलियां और देवालयोंमें पक्षी रहतेहैं पर उन्हें तीर्थ-सेवन या मन्दिर-निवासका फल नहीं मिलता। अत. हृदय कमलमें भक्तिभावका संग्रह करके एकाग्रचित होकर तीर्थोंका सेवन करनाचाहिए। [कल्याण, तीर्थांक, ३१]।

५. तीर्थयात्रामें समय-विचार—

तीर्थोंकी यात्राके लिए, विशेषकर, दूरके तीर्थोंकी यात्रासे पहले काल-शुद्धि अर्थात् ज्योतिपके अनुसार शुभा-शुभका विचार करके शुभ दिन, शुभ नक्षत्र और शुभ लग्नका निश्चय करलियाजाताथा। इनके अतिरिक्त कुछ निश्चित नियम और थे, दूरकी यात्राओंमें 'जिनका विचार रखा जाताथा।

गुर्वादित्ये गुरौ सिंहे नष्टे शुक्रेमलिम्लुचे।
याम्यायने हरौ सुप्ते सर्व कर्माणि वर्जयेत्॥
रविक्षेत्र गते जीवे जीवक्षेत्रगते रवौ।
वर्जयेत् सर्वकर्माणि व्रतस्वस्त्ययनानि च॥
बाले वा यदि वा वृद्धे शुक्रे वास्तगते गुरौ।
मलमास इवैतानि वर्जयेद्देव दर्शनम्॥
अनादि देवतां दृष्ट्वा शुचः स्युर्नष्टभार्गवे।
मलमासेऽप्यनावृत्तं तीर्थस्थानं विवर्जयेत्॥

जब सिंह पर बृहस्पति हो अथवा धनु या मीनका सूर्य हो, या शुक्र अथवा बृहस्पति बाल, वृद्ध या अस्त होगयेहों अथवा मलमास हो, उन दिनों दूरस्थ तीर्थोंकी यात्रा न करे। [श्रीमित्र, वीरमित्रोदय, तीर्थप्रकाश. पृ० ४३]।

६. प्रस्थानसे पूर्व मंगलाचरण—

प्रस्थानसे पूर्व किस प्रकार मंगलाचरण [शुभदायक आचार, कृत्य] कियेजातेथे, इसका अति रोचक वर्णन हर्षचरितमें मिलताहै। "दूसरे दिन प्रातः ही स्नान करके चलनेकी तय्यारी की। श्वेत दुकूल वस्त्र पहनकर हाथमें माला ली और प्रास्थानिक सूत्र और मंत्रोंका पाठ किया। शिवजीको दूधसे स्नान कराकर पुष्प, धूप, गन्ध, ध्वज, भोग, विलेपन, प्रदीप आदिसे पूजा की और परम भक्तिसे अग्निमें आहुति दी। ब्राह्मणोंको दक्षिणा बांटी; प्राङमुखी नैचिकी [प्रति वर्ष ब्याने वाली] गौकी प्रदक्षिणाकी; श्वेत चन्दन, श्वेतमाला और श्वेत वस्त्र धारणकिये; गोरोचना लगाकर दूवनालमें गुथेहुये श्वेत अपराजिताके फूलोंका कर्णपूर कानमें लगाया; शिखामें पीली सरसों रखी और यात्राकेलिये तय्यार हुआ। पिताकी छोटी बहिन बुआने प्रस्थानकेलिये उचित मंगलाचार करके आशीर्वाद दिया, सगी बड़ी बूढ़ियोंने उत्साह-वचन कहे, अभिवादित गुरुजनोंने मस्तक सूंघा। फिर ज्योतिषीके कथनानुसार नक्षत्रदेवताओंको प्रसन्न किया। इस प्रकार शुभ मुहूर्तमें हरित गोबरसे लिपेहुये आंगनके चौतरेपर स्थापित पूर्ण कलशके, जिसके गलेमें श्वेत पुष्पोंकी माला बंधीहुईथी और पिटार पर चावलके आटेका पंचागुल थापा लगाहुआथा और मुँहपर आम्र-पल्लव रखेहुयेथे, दर्शन किये। फिर कुलदेवताओंको प्रणाम करके, दहिना पैर उठाकर [बाहर] निकला, अप्रतिरथसूक्तके मंत्रोंका पाठ करतेहुये और हाथमें पुष्प और फल लिएहुये ब्राह्मण उसके पीछे-पीछे चले।" [हर्षचरित उच्छ्वास २ पृ॰ ५६-५७; [अग्रवाल, हर्षचरित, एक सांस्कृतिक अध्ययन, ३६]।

७. ममताका त्यागकर श्रद्धासे चले—

पद्मपुराणमें लिखा है—तीर्थयात्रा करनेका निश्चय करलेने-

पर सबसे पहले स्त्री, कुटुम्ब, घर, पदार्थादिको असत्य जानकर उनमें तनिक भी आसक्ति न रहनेदे और मनसे श्री भगवानका स्मरण करे। तदन्तर 'राम-राम' की रट लगातेहुये तीर्थयात्रा आरम्भ करे। एक कोस जानेके पश्चात् वहां तीर्थ [पवित्र नदी तालाव-कुयें] आदिमें स्नान करके चौर करवाले। यात्राकी विधि जाननेवालोंके लिये यह आवश्यक है। तीर्थोंकी ओर जानेवाले मनुष्योंके पाप उनके बालोंपर आकर ठहरजातेहैं, अतः उनका मुण्डन करादेनाचाहिये।

उसके पश्चात् बिना गांठका दण्ड अर्थात् मोटी, चिकनी, वांसकी मजबूत लाठी, कमण्डलु और आसन लेकर तीर्थकेलिये योगी वेष धारण करे तथा लोभका त्याग करदे। इस विधिसे यात्रा करनेवाले मनुष्योंको विशेषरूपसे फलकी प्राप्ति होतीहै। इसलिये पूरा प्रयत्न करके तीर्थयात्राकी विधिका पालन करे। जिसके हाथ, पैर तथा मन वशमें रहतेहैं और जिसमें विद्या, तपस्या और कीर्ति होतीहै, वही तीर्थके फलको प्राप्त करताहै। मुखसे—

हरे! कृष्ण! हरे! कृष्ण! भक्तवत्सल गोपते!
शरण्य भगवन विष्णो! मां पाहि बहुसंसृतेः।

इस मंत्रका उच्चारण करतेहुए तथा मनसे भगवानका स्मरण करतेहुये पैदल ही तीर्थयात्रा करनीचाहिये, तब ही वह महान् अभ्युदय करानेवाली होतीहै। [पद्मपुराण, पातालखंड, १६।१६-२६; (कल्याण, तीर्थांक पृ० २६]।

८. लघुभव—

तीर्थयात्राके लिए अपने साथ बहुतसा झुँड बनाकर लेजाना और बहुत-सी सामग्री लाद लेजाना केवल झंझट बढ़ानाहै। महाभारतमें इस संबन्धमें एक अति सुन्दर वर्णन है।

जब राजा युधिष्ठिरने तीर्थयात्रापर जानेका निश्चय कर-लिया तो महर्षि लोमशने उनसे कहा—

लघुर्भव महाराज ! लघुः स्वैरं गमिष्यसि।

महाराज ! आप अपने साथ अधिक बखेड़ा—मनुष्यों तथा सामग्रीका—न रखिये और हल्के भारवाले बनजाइये। लघु भार होनेसे आप इच्छानुसार सरलतासे यात्रा करसकेंगे, [वन ६२।१८]।

यह "लघुर्भव" सभी युगों, सभी देशों और सभी प्रकारकी आर्थिक परिस्थिति वाले तीर्थयात्रियों, पर्यटकों, यायावरों तथा एक स्थानसे दूसरे स्थान जानेवाले सभी लोगोंकेलिए मूलमंत्र है; इसे न भूलनाचाहिये।

लोमशजीकी यह आज्ञा सुनकर राजा युधिष्ठिरने अपने साथियोंसे कहा,—"जो भिक्षाभोजी ब्राह्मण और संन्यासीहैं, अर्थात् जो मार्गमें गांव-गांवमे भोजन मांगनेकेलिए भटकते रहेंगे तथा जो भूख-प्यास, परिश्रम-थकावट और शीतकी पीड़ा सहन न करसकें,वे लौटजायें। जो द्विज केवल मिष्टान्नभोजी हैं, वे भी लौटजायें। जो पके-पकाये भोजन अथवा 'पक्के' भोजन चटनी, पेय पदार्थ और मांस आदि खानेवाले लोग हैं, वे भी लौटजायें। जिन लोगोंका कार्य विना रसोइयेके नहीं चल-सकता, वे भी लौटजायें। [वन, ६२।१६-२१]

आज यात्राके साधन सुलभ होगयेहैं, फिर भी ऊंचे पर्वतों पर स्थित तीर्थोंकी यात्राके लिए ये वाक्य आज भी उपयोगी हैं।

९. यात्रामें सवारी—

तीर्थयात्रामें किस प्रकारके यान [सवारी] का प्रयोग करसकते हैं, इस पर प्राचीन ग्रंथोंमें विचार कियागयाहै। मत्स्यपुराणमें मार्कण्डेयजी कहतेहैं—पुत्र ! मैं तीर्थयात्राकी आर्यविधि कहता

हूं, जैसी मैंने देखीहै और सुनीहै। बैलपर चढ़कर तीर्थयात्रा करनेका फल बहुत दारुण होताहै, ऐसा यात्री नरक जाताहै। गाय-बैलका क्रोध भयंकर फलदायी होताहै। जो गाय-बैल पर चढ़कर तीर्थयात्रा करताहै, तीर्थमें उसके द्वारा दियेगये तर्पण पितर ग्रहण नहीं करते। जो पैदल चलनेकी शक्ति होने पर भी केवल अपना ऐश्वर्य दिखानेकेलिए यान पर चढ़कर चलताहै, उसकी तीर्थयात्रा निष्फल होतीहै। अशक्त मनुष्य नरयान— [पालकी, झिंपाण-कंडी या मनुष्यकी पीठ पर] अथवा घोड़े पर या घोड़ाजुते रथसे यात्रा करसकताहै। [मत्स्यपुराण, श्री मित्र, वीरमित्रोदय. तीर्थप्रकाश, पृ० ३३-३४]।

फलके तारतम्यमें कहाहै—गोयान गोवधके समान है, घोड़े पर तीर्थयात्रा करना निष्फल है। नरयानका प्रयोग करनेसे केवल आधाफल मिलताहै। पैदल तीर्थयात्रा करना सबसे श्रेष्ठ है, इससे नरयानकी अपेक्षा चौगुना फल मिलताहै।

वर्षा और धूपमें छतरी साथ रखनी चाहिये। रात्रिमें और जंगलमें लाठी बड़ी उपयोगी है। शरीरकी रक्षाकी इच्छासे सदा जूता पहनकर चलनाचाहिये। [विष्णुपुराण; श्रीमित्र, वीर-मित्रोदय, तीर्थप्रकाश, ३४]।

१०. तीर्थयात्रियोंकी कंवार—

आजसे दो सहस्र वर्ष पूर्व तीर्थयात्री अपनी सामग्री पीठपर लादकर किस प्रकार चलतेथे, इसका सुन्दर वर्णन निदान-कथामें सुरक्षित रहगयाहै। 'मोतियोंके जालके सदृश छींकेमें मूंगेके रंगकी कुण्डीको रखा। तीनों स्थानों [दोनों शिरों और बीचमें] से झुकी बँहगीको लेकर बँहगीके एक शिरेपर कुण्डी और दूसरे शिरेपर अङ्कुशकी पिटारी तथा त्रिदण्ड आदि लट-

(टेककर चलनेकी लकड़ी) ले, पर्णकुटीसे निकले' [कौसल्यायन, निदानकथा, जातक, १, पृ० ६६]।

आजसे डेढ़सहस्र वर्ष पूर्व गुप्तयुगमें किस प्रकार तीर्थयात्री चलतेथे इसका अति सुन्दर चित्रण गढ़वाके एक प्राचीन मन्दिरके द्वारपट्ट पर अंकितहै। यह मन्दिर निश्चय ही गुप्त युगका है। इसमें दो तीर्थयात्री कन्धेपर कँवार लिए चलरहेहैं। ये लंगोटी पहनेहैं और इनके शिर पर पगड़ी है। शेष शरीर नग्न है। पैरों पर जूता नहीं है। प्रसन्नचित प्रतीत होतेहैं। श्रद्धा-भक्तिसे आनन्दमें मग्न हो चलेजारहेहैं। [कनिंघम, आर्के-लौजिकल सर्वे रिपोर्ट, खंड, १०, चित्रावली-फलक, ७]।

दो सहस्र वर्षोंके पश्चात् आजके हिन्दू तीर्थयात्री प्रायः इसी प्रकार चलतेहैं। जैसा आज भी हरिद्वार आदि तीर्थोंपर देखा जासकताहै।

११. शिरपर दीपक लिए तीर्थयात्रा—

अधिक श्रद्धालु भक्त शिरपर दीपक रखकर तीर्थयात्रा करते थे। लम्बेमार्गमें ऐसा करना कठिन था, पर तीर्थपर पहुँचजाने पर ऐसा करना कठिन न था। निदानकथाके अनुसार मंगल-बुद्धने मशाल (दण्डदीपक) लपेटनेकी तरह सारे शरीरको लिपटवाया और लाख मूल्यकी, रत्न जड़ित सोनेकी थालीमें घी भरवा, उसमें सहस्रों बत्तियां जलवा, उसे सिरपर ले, सारे शरीरमें आग लगवा,चैत्यकी प्रदक्षिणा करते सारी रात बितादी [कौसल्यायन, निदानकथा, जातक, १, पृ० ६३]।

और भी अधिक श्रद्धालु मार्गमें अथवा तीर्थों या मन्दिरोंके निकट कुछ दूरी पीठके बल रेंककर या खिसककर पूरी करतेथे।

१२. सरकारी खर्चेपर तीर्थयात्रा—

भविष्य पुराणमें कहागयाहै तीर्थयात्रा करनेवालेको 'पराया

अन्न तथा पराई अन्य खाद्य वस्तुओंका सेवन नहीं करनाचाहिये। जितेन्द्रिय, क्रोधरहित, ब्रह्मचारी और पवित्र रहनाचाहिये। जो तीर्थमें दूसरेका अन्न खाताहै, वह अन्नदाताके पाप खाताहै। पैठीन सस्मृतिके अनुसार जो दूसरेके खर्चेपर तीर्थयात्रा करताहै उसे यात्राफलका सोलहवां भाग प्राप्त होताहै। जो प्रसंगवश तीर्थमें पहुंचजाताहै, उसे केवल आधा फल मिलताहै। शंखस्मृतिके अनुसार प्रसंगवश तीर्थमें पहुंचनेवालेको केवल स्नानका फल मिलता है। अनुपंगोऽन्न पित्रादिसेवाध्ययनाद्यर्थं विदेशगमनम्। तेन देवातीर्थलाभे स्नानजं फलम्। यथाविधि यात्रामकृत्वा यस्तीर्थं गतस्तस्य यात्रा फलाभावेऽपि तीर्थस्नानादिफलं भवत्येव [भीमित्र वीरमित्रोदय, तीर्थप्रकाश, ३५, ३६, ३७, ५०] इसलिए बड़े-बड़े अधिकारी लोग जो सरकारी खर्चेपर तीर्थयात्रा करतेहैं, उन्हें विचार लेनाचाहिये। जो चाहतेहैं कि तीर्थपर पहुँचकर उनका गाजे-बाजेसे स्वागत हो, गेट बनें, जलूस निकलें, देवताके स्थानपर उनकी पूजा हो, वे राष्ट्रमाता श्रीमती राजवशीदेवीजीसे शिक्षा-लें। जिन्होंने भारतके राष्ट्रपतिकी धर्मपत्नी होतेहुए भी एक अति सामान्य नागरिक नारीके रूपमें बदरीनाथकी तीर्थयात्रा की थी और किसीभी प्रकारकी राजकीय सहायता लेना अति नम्रता पूर्वक अस्वीकार करदिया था।

१३. तीर्थमें पहुँचने पर—

तीर्थके समीप पहुंचने पर, जहांसे तीर्थस्थान दिखाईदे, साष्टांग प्रणाम करनाचाहिये। जो किसी यानसे भी तीर्थयात्रा कररहेहों, उन्हेंभी तीर्थसे कुछ दूर पहले यानसे उतरकर, पैदल चलनाचाहिये और जहांसे तीर्थस्थान दिखाईदे साष्टांग प्रणाम करनाचाहिये। तीर्थको नमस्कारहै ["तीर्थाय नमः"] ऐसा कहकर पुष्पांजलि चढ़ानीचाहिये। जो 'देव-दर्शिणी' [जहाँसे

तीर्थ दिखाईदे] पर साष्टांग प्रणाम न करसकेहों उन्हें तीर्थमें पहुँचने पर साष्टाँग प्रणाम करनाचाहिये, [श्रीमित्र, वीरमित्रोदय, तीर्थप्रकाश, ४६] ।

तीर्थमें वस्त्र सहित स्नान करनाचाहिये । स्कन्द पुराणके प्रभासखंडके अनुसार सारे तीर्थोंमे स्नानकरते समय एक ही मंत्रका प्रयोग करनाचाहिये ।

> "ॐ नमो देवेदवाय शितिकण्ठाय दंडिने ।
> रुद्राय चापहस्ताय चक्रिणे वेधसे नमः ॥
> सरस्वती च सावित्री वेदमाता गरीयसी ।
> सन्निधानी भवस्त्वत्र तीर्थे पाप प्रणाशिनि ॥"
> सर्वेषामेव तीर्थानां मंत्र एष उदाहृतः ।
> इत्युच्चार्य नमस्कृत्वा स्नानं कुर्याद्यथाविधि ॥
> [श्रीमित्र, वीरमित्रोदय, तीर्थप्रकाश, ४७] ।

१४. श्रद्धा-विश्वास—

प्राचीन साहित्यमे बार-बार कहागयाहै, मंत्र, तीर्थ, ब्राह्मण, देवता, ज्योतिषी, वैद्य और गुरुमें जैसी जिसकी श्रद्धा होतीहै, वैसाही उसे फल मिलताहै । स्मृतिसार-समुच्चय, कुलार्णव, मंत्रमहार्णव आदि सैकड़ों ग्रथांमें यह श्लोक आताहै:—

> मंत्रे तीर्थे द्विजे देवे दैवज्ञे भेषजे गुरौ ।
> यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी ॥

अध्याय ८

युग-युगमें उत्तराखंडकी यात्रा

१. बौद्धयुगमें उत्तराखंडकी यात्रा

गंगाजीके तटपर तीर्थ और पवित्र स्थानोंकी कल्पनाका जो प्रचार हमे रामायण और महाभारतमे मिलताहै, वह बौद्धयुग और गुप्तयुगमे उसी प्रकार चलतारहा और उसी रूपमे हम तक चलाआयाहै। बुद्धके समयमें भी गंगा-तटपर तीर्थ थे, उनमें आजकलके समान ही विशेष पर्व-अवसरोंपर मेले लगते-थे, जो "गंगामहिया" कहलातेथे। [राहुल, विनयपिटक, चुल्लवग्ग, पृ० ४३६]। जातकोंमे बार-बार बोधिसत्वों तथा अन्य तपस्वियोंका हिमालयमे जाकर तपस्या करनेका उल्लेख मिलताहै, जिनमेंसे कई गंगातट पर हिमालयमे पहुंचतेथे।

जब कुरुदेशके उत्तरपांचाल नगरमें रेणु नामका राजा राज्य करताथा, महारक्षित तपस्वी पाच सौ तपस्वियोंको साथ ले हिमालयमें रहताथा। वह 'निमक-खटाई' खानेकेलिए विचरता-विचरता उत्तरपांचाल नगरमें आनपहुँचा और वर्षाऋतुकी समाप्तिपर 'अब हिमालय रमणीय होगयाहै, वहीं जायेंगे," कह, चला-गया। [कौसल्यायन, जातक, ५, सोमनस्सजातक, पृ० ३२]

इस जातकका बोधिसत्व भी हिमालयमें चलागयाथा। [उपरोक्त पृ० ४०]। लगभग एक सौ जातकोंमें इसी प्रकारके उल्लेख मिलतहैं।

२. चैत्यक सम्प्रदायमें तीर्थयात्रा

बौद्धोंके चैत्यक सम्प्रदायमें तीर्थयात्राको सबसे अधिक महत्व दियाजाताथा। उनका विश्वास था कि चैत्योंके निर्माण, सजावट और पूजाके द्वारा बहुत पुण्यकी प्राप्ति होतीहै। चैत्यकी परिक्रमा-मात्रसे पुण्यफल प्राप्त होताहै। चैत्योंमें पुष्पमाला, पुष्प, धूपकी भेंट चढानेसे और भी अधिक पुण्य मिलताहै। दान देकर भी पुण्यफल मिलताहै। इस पुण्यफलको अपने मित्र और सम्बन्धियोंकेलिए भी प्राप्त किया जासकताहै। ये सिद्धान्त प्राचीन कालसे चलेआरहेहुए लोकधर्मके सर्वथा अनुकूल थे। इसलिये इनके द्वारा बौद्ध धर्म लोकप्रिय बननेलगा। [बापत, २५०० इयर्स ऑव बुद्धिज्म पृ० ११८]

३. अशोकके समय धर्मयात्रा

अशोकके समय जब बौद्ध भिक्षुओंका सम्मान होनेलगा और उन्हें सुख सुविधायें प्राप्त होगई तो कई व्यक्ति, जिनकी बौद्ध सिद्धान्तोंमें आस्था न थी, संघमें घुसगये, और बुद्धके नाम पर अपने सिद्धान्तोंका प्रचार करनेलगे। इनसे संघमें जो अव्यवस्था उत्पन्न हुई, उससे दुखी होकर मोग्गलिपुत्त गंगाकी ऊपरली घाटीमें अहोगंगपर्वतपर चलेगये और वहां सात वर्ष रहे। [बापत, २५०० इयर्स ऑव बुद्धिज्म, पृ० ४५] अशोक स्वयं तीर्थयात्राका बड़ा प्रचारक था। अपने राज्याभिषेकके ग्यारहवें वर्षमें अशोकने पवित्र स्थलोंकी यात्रा कीथी जो धर्मयात्राके नामसे प्रसिद्ध है। उसने लुम्बिनी, कपिलवस्तु,

बुद्धगया, सारनाथ, कुशीनगर, श्रावस्ती, नामक अनेक धार्मिक स्थानोंकी यात्रा कीथी। अपने आठवें लेखमें वह लिखताहै—

"देवानं पिये पियदसि लाजा दसवसाभिसिते सतं निखमिया संबोधि। तेनता धमंयाता। हेता इय होति समनबंभनान दसने चा दाने च बुधान दसने च हिलन पटिविधाने चा जानपदसा दसने धमंनुसथि चा धर्मपलिपुछा चा ततोपया। एसे भुये लाति होति देवानं पियसा पियदसिसा लाजिने भागे अने।"

धर्मयात्रामें ब्राह्मणों और भिक्षुओंके दर्शन होतेहैं, उनको दान दियाजाताहै। वृद्धोंके दर्शन होतेहैं, उनको सुवर्णदान दियाजाताहै। जनपदवासियोंसे मिलने, उनको धर्मोपदेश देने तथा धर्मसंबंधी पूछताछ करनेका समय मिलताहै। देवताओंका प्यारा प्रियदर्शी राजा इन आनंदप्रद धर्मयात्राओंको अपना अहोभाग्य समझताहै। [दत्त-वाजपेयी, उत्तरप्रदेशमें बौद्ध धर्मका विकास, पृ० ३११]

इसमें सन्देह नहीं कि उस युगमे प्रजा भी धर्मयात्राओंको अपना अहोभाग्य समझतीथी। अशोक श्रमण-ब्राह्मणोंका समान रूपसे सत्कार करताथा। और निश्चय ही उसके राज्यकालमे और पीछे भी उत्तराखंडकी यात्रा उसी प्रकार चलती रहीहोगी, जैसे पहले चलतीथी। बौद्धमत हिन्दूधर्मकी एक शाखामात्र था। उसके चरम प्रचारके समय भी हिन्दूधर्मकी गंगा निरन्तर अविच्छिन्न रूपसे पूर्ववत् बहतीरही।

४. बौद्धधर्म, अल्प जनताका धर्म

डाक्टर थामाजका अनुमान है कि अशोक ईसा-पूर्व २७० मे सिंहासनपर बैठा और उसने ईसा-पूर्व २६० वर्षमें तत्परतासे बौद्ध धर्मका प्रचार करना आरम्भ किया। ईसा-पूर्व १८४

वर्षमें पुष्यमित्रने अन्तिम मौर्य नरेश बृहद्रथको मारकर साम्राज्यपर अधिकार करलिया और ब्राह्मणधर्मका बड़े उत्साहसे समर्थन किया। इस प्रकार अशोक और उसके सभी वंशजों को, केवल ११२ वर्षका समय मिला। [कैम्ब्रिज हिस्टरी ऑव इन्डिया, भाग १, पृ० ४५३, ४६१-६२]। यदि अशोकके सभी वंशजोंको बौद्धधर्मका अति उत्साही प्रचारक भी मानलियाजाए, यद्यपि ऐसा माननेकेलिए कोई प्रमाण नहीं है—तो भी वे इस अल्प अवधिमें भारतीय जनताके केवल अत्यल्प भागमें ही बौद्धधर्मका प्रचार करसकेहोंगे। क्योंकि हम देखतेहैं कि ७१२ ई० से लेकर पानीपतके तृतीय युद्ध १७६१ ई० तक धर्मान्धतापूर्वक १०५० वर्षोंतक इस्लामका प्रचार करने पर भी भारतकी केवल २५-३० प्रति सैकड़ा जनताने हिन्दु धर्म छोड़कर इस्लाम अपनाया। फिर उदार मौर्य सम्राटोंको केवल ११२ वर्षके शासनमें कितनी सफलता मिलीहोगी? सच्ची बात तो यह है कि बौद्धधर्म भारतमें थोड़ेसे राजकुलों, क्षत्रिय-सामन्तों और भिक्षुओंका धर्म बनसका। जनसाधारणका धर्म सदा हिन्दुधर्म रहा जो अन्य साधुसम्प्रदायोंके समान बौद्ध-सम्प्रदाय के प्रति भी श्रद्धा-पूज्यभाव रखताथा। इसलिए बौद्धयुगमें यदि उसे युग कहाजासकताहै तो, भारतीय जनताके धार्मिक विश्वासोंमें—जिसमें तीर्थयात्राका बड़ा महत्व था, कुछ भी अन्तर न आया।

५. मौर्ययुगके पश्चात् उत्तराखण्डकी तीर्थयात्रा—

अनुमान कियाजाताहै कि मौर्ययुगमें हिन्दूधर्ममें जो शिथिलता आगईथी वह पुष्यमित्र शुंग द्वारा राज्य पर अधिकार करतेही दूर होगई। और ईसा पूर्व १८४ वर्षसे हिन्दुओंमें जो महोत्साहकी लहर दौड़ी उसमें प्रयत्न करनेपर भी वैदिक यज्ञों

का फिरसे प्रचार न चलसका। किन्तु इस युगमें तीर्थयात्रा और भी अधिक प्रचलित होगई। इस कालका सारा साहित्य तीर्थोंकी महिमासे भरापड़ाहै। हिन्दुओंके पुराण, स्मृति और अन्य धार्मिक ग्रंथ, जो इसी युगके मानेजाते हैं, गंगाकी महिमासे भरेपड़ेहैं। अधिकांश पुराणोंमें बदरिकाश्रमकी यात्राका, अनेकमें बदरी-केदारकी यात्राका, या इन तीर्थोंकी पावनताका उल्लेख है। जिनमें इनका अलग उल्लेख नहीं है, उनमें भी गंगाकी महिमा, भुवनकोश, अथवा शिव, उमा, नारायण, इन्द्र, कुबेर आदिकी कथाओंके साथ इनका उल्लेख अवश्य हुआहै। इस युगके मन्दिरोंके द्वारपट्टोंपर,किस प्रकार गंगा-यमुना अंकित मिलतीहैं, यह हम देखचुकेहैं।

६. रथयात्रा—

शुंगोंमें जो युग आरम्भ हुआ, उसमें रथयात्रा-महोत्सव धार्मिक और सामाजिक जीवनका महत्वपूर्ण अंग था। फाशीन [फाहियान] जिसने ३६६ ई० से ४१४ ई० तक भारतमें भ्रमण कियाथा, पाटलिपुत्रके वर्णनमें लिखताहै कि यहां प्रति वर्ष रथ-यात्रा होतीहै जो वर्षके दूसरे मासकी आठवीं तिथिको निकलती है। इसमें चार पहिएके रथ होतेहैं जो पाच मंजिलवाले बांस के बनेहोतेहैं तथा अर्द्धचन्द्राकार खंभों पर ठहरेहोतेहैं। रथ ऊँचाईमें २० फिटके लगभग होताहै, और पैगोडा-सा दिखाई देताहै। उसके ऊपर श्वेत कश्मीरी दुशाला मढ़ाहोताहै, जो नाना प्रकारके रंगोंमें रंगा होताहै। देवताओंकी भव्य मूर्तियां सोने-चांदी और स्फटिककी बनतीहैं। रथोंपर रेशमी ध्वजा और चाँदनी लगीहोतीहै। चारों ओर कलगियां लगतीहैं। प्रत्येक रथमें एक बुद्ध और उसकी सेवामें बोधिसत्व होताहै। रथयात्रामें बीस रथ जुतते हैं। जो एक-से-एक सुन्दर, भड़कीले

और न्यारे-न्यारे रंगके होतेहैं। निश्चित दिनपर आस-पासके गृहस्थी और यति इकत्रित होतेहैं। उनके साथ गाने-बजाने वाले चलतेहैं। वे रथ वारी-वारीसे नगरमें प्रवेश करतेहैं। इसीमें दो रात्रियां व्यतीत होजातीहैं। सारी रात्रिभर दिए और धूप जलतेरहतेहैं। ब्राह्मण-बौद्धोंको बुलालेजातेहैं तथा गाना-बजाना और पूजन होतारहताहै। प्रत्येक जनपद में ऐसा ही होताहै। [गाइल्स, दि ट्रैवल्स ऑव फा शीन, पृ० ४७ उपाध्याय, गुप्त साम्राज्यका इतिहास भाग २, पृ० २३६] ऐसा ही रथोत्सव फाशीनने खोतानमें देखाथा। [गाइल्स, उपरोक्त, पृ० ५]

७. गुप्तयुगमें तीर्थयात्रा—

इस युगमें तीर्थस्थानोंमें जाना एक आवश्यक धार्मिक कृत्य था। तीर्थभूमिमें स्नान करनेसे स्नान करनेवालेके पाप धुलजाते और उसको पुण्यकी प्राप्ति होतीहै, ऐसी धारणा प्रचलित थी। किसी पवित्र नदीके किनारे या उसके आस-पास तीर्थस्थान सामान्यतः निश्चित किएजातेथे। शाकुन्तलका शचीतीर्थ इसी-प्रकारका तीर्थस्थान था, और ऐसे ही थे गंगा-यमुना तथा गंगा-सरयूके संगम थे। शकुन्तलाकी ग्रहशान्तिके लिए कण्व सोमतीर्थ को जातेहैं। दूसरे तीर्थ थे—गोकर्ण, पुष्कर और अप्सरसतीर्थ। तमसाके किनारे तपस्वियोंकी भरमार थी, अतः वहां तीर्थस्थान बनगयाथा। इन तीर्थोंमें एक बार स्नान करनेसे आत्माओंको पुनर्जन्मके चक्करसे मुक्ति और देवपद तथा देवशरीरकी प्राप्ति संभव होना समझाजाताथा। राजाके राज्याभिषेकके समय उसके अभिषेकलिए तीर्थस्थानोंसे लाएगए जलका प्रयोग होता-था। [उपाध्याय, कालिदासका भारत, भाग २, पृ० १६०]

इस युगमें गंगा-यमुनाके प्रति अगाध श्रद्धा तथा शैव और

वैष्णव मतोंकी ओर विशेष झुकावके कारण, गंगोत्तरी, यमुनोत्तरी, केदार और बद्रीनाथकी यात्रा बढचली।

८. बाणभट्टके समय जात देना—

बाणभट्टका समय सातवीं शतीका पूर्वार्द्ध है। उस समय गुप्तकालीन संस्कृति पूर्णरूपसे विकसित होचुकीथी। एक प्रकार से स्वर्णयुगकी वह संस्कृति उत्तरगुप्तकालमें अपनी संध्यावेलामें आगईथी और सातवीं शतीमें भी उसका बाह्यरूप भलीप्रकार पुष्पित, फलित और प्रतिमंडितथा। कला, धर्म, दर्शन, राजनीति, आचार, विचार आदिकी दृष्टिसे बाणके अधिकांश उल्लेख गुप्तकालीन संस्कृतिपर भी प्रकाशडालतेहैं। [अग्रवाल, हर्षचरित, एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० ३] बाणके हर्षचरितमें तीर्थयात्राके सम्बन्धमें दो अत्यन्त महत्वपूर्ण उल्लेख आतेहैं। दूसरे उच्छ्वासमें ग्रीष्मऋतुका वर्णन करतेहुये बाणने लिखाहै—

हिमदग्धसकलकमलिनीकोपेनेव हिमालयाभिमुखी यात्रा-.... [हर्षचरित पृ० ४६] यहां पर निदाघके वर्णनमें एक अर्थ तो यह है, कमलिनी-समूहको हिमसे दग्ध देख क्रोधित होकर [कमलिनी-कान्त] हिमालयकी ओर बढ़े। पर श्लेषसे एक अन्य अर्थकी ओर भी संकेत है। ग्रीष्मकालमें लोग हिमालयाभिमुखी [हिमालयकी ओर जानेवाली] यात्रा [तीर्थयात्रा] करते थे जो 'जात देना' कहलातीथी। किसी संकटसे बचनेकेलिए लोग देवी-देवताओंका कोप-निवारण करनेकी इच्छासे लाल-फूलोंकी माला पहनकर जात देनेजातेथे। 'जातके लिए प्राचीन शब्द यात्रा था। यहां 'जात देना' मुहावरा संस्कृतमें प्रयुक्त हुआहै, [यात्रामदात्]। संभवत बाण उस समयकी लोकभाषासे इसका संस्कृतमें अनुवाद कररहेहैं। अग्रवाल, हर्षचरित, एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० ३२]

बाण और उसके पश्चात् कई शताब्दियों तक इस प्रकारकी 'जात' तीर्थयात्रा हिमालयकी ओर भृगुतुँग, बदरिकाश्रम और नन्दादेवीके लिये चलतीथीं। रूपकुंडमें एक ऐसी जातके अवशेष मिलेहैं, जो वहांकी गाथाओंके अनुसार कन्नौजसे चली थी और रूपकुंडमें हिमपातसे दबगई। आज तक उत्तरी गढ़वालमें नन्दादेवीकी जात चलतीहै जो नन्दादेवी-शिखरके नीचे पहुंचतीहै। जब उत्तर भारत पर मुसलमानोंका अधिकार होगया तो ऐसी जातोंके लिए प्रकट रूपसे चलना कठिन होगया।

९. भृगुपतन—

प्रभाकरवर्द्धनकी मृत्युपर उसके भृत्यादिने क्या किया इसका वर्णन करतेहुये बाण हर्षचरितके पांचवे उछ्वासमें लिखताहैः—

"केचिदात्मानं भृगुपुबबन्धुः केचित्तत्रैव तीर्थेषु तस्थुः।"

कुछने अपनेको भृगुपतनसे गिरादिया और कुछ [जो आत्म-हत्याका साहस न करसके] वहीं तीर्थोंमें रहगए। केदारनाथ-शिखरपर भृगुपतनके लिए यात्राका प्रचार बाणके समय भी भलीप्रकार प्रचलित था। बाणके समय भी जो लोग गंगाकी हिमालयवर्ती उपत्यकामें तीर्थयात्राके लिये जातेथे, उनमेंसे कुछ उसी पवित्र क्षेत्रमें बसजातेथे। जात और भृगुपंथके सम्बन्धमें आगे विस्तारपूर्वक कहाजाएगा।

१०. -दक्षिणाभिमुखी तीर्थयात्रा—

बाणसे शताब्दियों पहलेसे हिमालयाभिमुखी यात्राके समान दक्षिणाभिमुखी यात्रा भी चलपड़ीथी जिसका एक केन्द्र आन्ध्रप्रदेशमें श्रीपर्वत था। "बाणके समयमें श्रीपर्वतकी कीर्ति सर्वत्र फैलगईथी। वह तन्त्र-मन्त्र और और अनेक चमत्कारों का केन्द्र मानाजाताथा। दूर-दूरके लोग अपनी मनोकामना पूरी करानेके लिए श्रीपर्वतकी यात्रा करतेथे। सकल प्रणयि

मनोरथसिद्धिश्रीपर्वत: [हर्षचरित पृ० ७] ऐसा जन-विश्वास था कि श्रीपर्वत के चारों ओर जलतीहुई अग्निकी दीवार उसकी रक्षा करतीथी। महाभारत वनपर्वके अन्तर्गत तीर्थयात्रापर्वमें श्रीपर्वतका उल्लेख आयाहै और लिखाहै कि देवीके साथ महादेव और देवताओंके साथ ब्रह्मा श्रीपर्वतपर निवास करतेहैं। श्रीपर्वतकी पहचान श्रीशैलसे कीजातीहै, जो कृष्णानदीके दक्षिणीतटपर कुरनूलसे बयासी मीलपर ईशान कोणमें है। यहां द्वादश ज्योतिर्लिंगोंमेंसे मल्लिकार्जुन नामक शिवलिंगहै [अग्रवाल, हर्षचरित, एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० ८-९]

११. मन्दिरोंका युग और तीर्थयात्रा—

उत्तर भारतके इतिहासमें चौथी शताब्दीसे लेकर बारहवीं शताब्दीतकके युगको धार्मिक दृष्टिसे मन्दिरोंका युग कहाजाताहै, जिसमें भारतके एक छोरसे दूसरे छोर तक मन्दिर-निर्माणकी योजना फैलगई। हिन्दुस्थानमें आज जो सबसे प्राचीन मन्दिर मिलतेहैं, उन सबका निर्माण इन्हीं ८०० वर्षोंके अन्तर्गत हुआ था। उत्तर भारतमें बारहवीं शताब्दीके अन्तिम वर्षोंसे मन्दिर-विनाशकी जो परम्परा आरम्भ हुई वह बीच-बीचमें कभी-कभी रुकतीहुई १७६१ ई० तक चलीआई। इस बीच मन्दिरोंका उतना निर्माण नहीं हुआ जितना विध्वंस हुआ। दक्षिण भारतमें मन्दिर-निर्माण की परम्परा सोलहवीं शताब्दीके पूर्वार्द्धतक चलतीरही, यद्यपि मन्दिर-विध्वस भी साथ-साथ होतेरहे। विजयनगरके विनाशके पश्चात् मन्दिर-निर्माणका कार्य बहुत शिथिल होगया।

अंग्रेजी-राज्यकालमें भारतमें अनेक मन्दिरोंका निर्माण हुआ, पर उनमें वह उच्चकोटिकी कला, कलाकारोंकी तन्मयता और भक्ति, श्रद्धा और आनन्दका सामंजस्य नहीं आसका जो

चौथी शताब्दीसे बारहवीं शताब्दीतकके मन्दिरोंमें पाया-जाताहै।

देवमूर्तियोंका निर्माण, उनके दर्शन और यात्रा, उनकी धूप-दीप-नैवेद्य आदि उपचारोंसे पूजा और उनकी सेवामें दक्षिणा चढ़ानेकी प्रथा अत्यन्त प्राचीन कालसे चलीआतीथी। ईसासे तीन शताब्दी पूर्व कौटल्यने राजाओंका कोष बढ़ानेकेलिए मूर्तियोंकी स्थापना करने और उनके माहात्म्यका अतिरंजित प्रचार करनेका विधान कियाथा। "एक बगीचेमें रातको एक वेदी बनादीजावे और उसपर देवता स्थापित करदियाजावे। यह बड़ा पुण्यस्थान है। इसमें देवता भूमि फोड़कर निकला है, इस तरह देवताओंके चैत्य (बगीचे) को प्रसिद्ध करे फिर उसका मेला लगाकर जनतासे धन बटोरे। जो पुरुष इसपर श्रद्धा न रखे उनको चरणामृतके साथ थोड़ा-सा विष देवे जिससे उनका शिविर घूमे और देवताकी महिमा प्रकट हो। [कौटिल्य अर्थशास्त्र, अधिकरण ५, अध्याय २, सूत्र ४६-५१, पृ० ३७०]।

उस समय इन देवमूर्तियोंकेलिए मन्दिर भी बनेहोंगे। पर वे संभवतः काष्टादि-निर्मित होनेके कारण हम तक नहीं पहुंच सके। कुशाणोंके समयकी अत्यन्त सुन्दर मूर्तियां अब तक चली आईहैं। अवश्य उनकेलिए मन्दिर रहेहोंगे। हमारे सबसे प्राचीन मन्दिर महायानी बौद्धोंके चट्टानोंमें काटकर बनाएहुए चैत्यहैं जो काष्टमन्दिरोंके अनुकरण पर बनेहोंगे। उन्हींके अनुकरणपर विष्णु, शिव और दुर्गाके चट्टान काटकर हिन्दु मन्दिर बने। बादामी मम्मलपुरम, एलौरा और एले-फेंटाके मन्दिर इसी प्रकारके हैं।

गुप्तोंने बड़ी धूमधामसे मन्दिर निर्माण आरम्भ कियाथा। उनके साम्राज्यके विनाशपर मन्दिर-निर्माणका कार्य रुका नहीं। कश्मीरसे लेकर तमिल प्रदेशतक, मार्तंडमन्दिरसे लेकर कन्या-

कुमारी और रामेश्वरम् तथा समुद्रपार अनुराधापुरतक हिन्दु मन्दिरोंकी जो शृंखला फैली उसने तीर्थयात्राको बड़ा प्रोत्साहन दिया और तीर्थयात्राने मन्दिर-निर्माणको।

१२. मन्दिरों द्वारा कलाकारोंको प्रोत्साहन—

धार्मिक महत्वके अतिरिक्त मन्दिरोंमें नगरों और गांवोंके सामाजिक जीवनकेलिए महत्वपूर्ण आकर्षण बनगया। प्राचीन कालमें निकटके क्षेत्रोंके आर्थिक जीवनका संचालन इनके हाथमें था। सहस्रों-लाखों वास्तुकार और मूर्तिकारोंका व्यवसाय केवल मन्दिर-निर्माण और मूर्तिनिर्माण बनगया। इनके अतिरिक्त हजारों-लाखों धातुकारोंका व्यवसाय सोना, चांदी, ताम्र, पीतल या कांसेकी मूर्तियां, पूजापात्र और अन्य उपकरण बनाना होगया। स्वर्णकारोंका मुख्य लाभप्रद व्यवसाय देव-मूर्तियोंकेलिए मुकुट और अलंकार बनाना तथा वस्त्रकारोंका मुख्य लाभप्रद व्यवसाय देवमूर्तियोंकेलिए सर्वोत्तम कौशेय-जरी और छींट बनाना होगया। मन्दिरोंमें निरन्तर अगणित दीपकों, हजारों मन धूप, फूलोंकी मालाओं, फूलों और बिल्व-पत्रों, बड़ी मात्रामें भोज्यपदार्थों तथा देवमूर्तिके स्नानके लिए नाना प्रकारके चूर्णोंकी आवश्यकता पड़तीथी। इनके अतिरिक्त कई मन्दिरोंमें प्रतिदिन गंगाजलसे देवमूर्तिको स्नान कराया जाताथा, जिसके लिए निरन्तर हरिद्वारसे मन्दिर तक विभिन्न पड़ावोंपर जलवाहक नियुक्त रहतेथे। रामेश्वरममें गंगोत्रीके गंगाजलका बड़ा माहात्म्य मानाजाताथा, जिसके लिए श्रद्धालु धनिक हजारों रुपये व्यय करतेरहेहोंगे।

मन्दिरोंकी पूजामें हजारों ब्राह्मण नियुक्त होतेथे। इनके अतिरिक्त मन्दिरोंमें नर्तकी, देवदासियों, गायकों, वादकों और अभिनय करनेवालोंका जमघट हुआकरताथा।

कुम्हार, धोबी, नाई तथा अगणित दूसरे सेवक सब मन्दिरोंके आश्रयसे पलतेथे। इतना ही नही मन्दिरोंकी गूंठ भूमिसे किसानोंका, मन्दिरोंके चराई क्षेत्रोंसे गौ आदि पशुओंका, मंदिरों-के तालाबोंसे मछलियोंका मन्दिरके उपवनमें फूलपौधों और वृक्षोंका और मन्दिरमें तथा मन्दिरमार्गपर बखेरे जानेवाले अन्न-गुड और शर्करासे च्यूँटीसे लेकर नाना प्रकारके पशुओं और पक्षियोंका कल्याण होताथा। यहां देवमूर्ति वास्तविक अर्थमें चराचर जगतकेलिए कल्याणकारी बनजातीथी। संक्षेप मे कहाजासकताहै कि हिन्दु मन्दिरोंमें जहां राजालोग भूमि आदि दान करतेथे, व्यापारियोंके संघ बहुमूल्य भेंट चढ़ातेथे, वहां निर्धन क्षुद्र व्यक्तियोंको भी अपनी अपनी श्रद्धा अर्पित करनेका अवसर मिलताथा। इन मन्दिरोंके द्वारा जनताके एक बड़े भागको स्थायी आजीविकया मिलतीथी, तथा सारे समाजका धार्मिक और सांस्कृतिक संगठन कियाजाताथा। [सेन कल्चरल यूनिटी आव इन्डिया, पृ० ४३]

१३. धार्मिक मेले

दैनिक पूजाके अतिरिक्त विशेष पर्वोंपर मन्दिरोंमें मेले लगाकरतेथे जो व्यापारके अतिरिक्त तीर्थयात्राको प्रोत्साहन देतेथे। जिस तीर्थकी जितनी अधिक महिमा पुराणोंमें मिलती थी, उतनी ही अधिक वहांकी तीर्थयात्रा बढ़तीथी। गंगातटके मेले तो इस दृष्टिसे सबसे अधिक प्रचलित हुए। हरिद्वारसे गंगासागर तक तथा हरिद्वारसे लेकर बद्रीनाथ तक तथा सभी बड़े नगरोंको धार्मिक मेलोंने पनपाया है। हिन्दुस्थानके वक्षस्थलपर एकके पश्चात दूसरे राजवंश आए और विनाशके गर्तमें विलीन होगए पर युग-युगसे चली आतीहुई तीर्थयात्राकी परम्परा निरन्तर चलतीरही। देश-भरमें हिमालयसे समुद्रतट

तक फैलेहुये छोटे-बड़े मन्दिर सब एक शृंखलामें बंधेथे। यात्री एकके पश्चात दूसरेका दर्शन करते चलतेथे। मन्दिर मार्गमें टिकनेकेलिए धर्मशालाका काम देतेथे। वहां स्नानके लिए जल सोनेके लिए चटाई और भोजनके लिए प्रसाद मिलनेकी पूरी आशा रहतीथा। इनके अतिरिक्त भजन, कीर्तन, कथाश्रवण और देवपूजन देखकर कृतार्थ होनेका अवसर भी मिलताथा। इसीसे तो यक्षने मेघसे कहाथा—

अप्यन्यस्मिञ्जलधर ! महाकालमासाद्य काले
स्थातव्यं ते नयनविषयं यावदत्येति भानुः ।
कुर्वन्संध्याबलिपटहतां शूलिनः श्लाघनीया—
मामन्द्राणां फलमविकलं लप्स्यसे गर्जितानाम् ॥
पादन्यासक्वणितरसनास्तत्र लीलावधूतै
रत्नच्छायाखचितवलिभिश्चामरैः क्लान्तहस्ताः ।
वेश्यास्त्वत्तो नखपदसुखान्प्राप्य वर्षाग्रबिन्दू—
नामोक्ष्यन्ते त्वयि मधुकरश्रेणि दीर्घान्कटाक्षान् ॥
पश्चादुच्चैर्भुजतरुवनं मंडलेनाभिलीनः
सान्ध्यं तेजः प्रतिनवजपापुष्परक्तं दधानः ।
नृत्यारंभे हर पशुपतेरार्द्रनागाजिनेच्छां
शान्तोद्वेगस्तिमितनयनं दृष्टभक्तिर्भवान्या ॥

[मेघदूत, पूर्व, ३४-३५-३६]

हे जलधर ! यदि महाकालके मन्दिरमें समयसे पहले तुम पहुंचजाओ, तो तब तक वहां ठहरजाना जबतक सूर्य आंखसे ओझल न होजायँ। शिवकी सन्ध्याकालीन आरतीके समय नगाड़े—जैसी मधुर ध्वनि करतेहुए तुम्हें अपने धीर गम्भीर गर्जनोंका पूरा फल प्राप्तहोगा।

वहां प्रदोष-नृत्यके समय पैरोंकी ठुमकनसे जिनकी कटि-किंकणी बजउठतीहैं, और रत्नोंकी चमकसे झिलमिल मूठोंवाली

चौंरियां डुलानेसे जिनके हाथ थकजातेहैं ऐसी वेश्याओंके ऊपर जब तुम सावनके बुन्दाकड़े बरसाकर उनके नखक्षतोंको सुख दोगे, तब ये भौरों-की-चंचल पुतलियोंसे तुम्हारे ऊपर अपनी लम्बी चितवनें चलायेंगी।

आरतीके पश्चात् आरम्भ होनेवाले शिवके तांडवनृत्यमें तुम तुरंतके खिले जपा पुष्पोंकी भांति फूलीहुई संध्याकी ललाई लियेहुये शरीरसे, वहां शिवके ऊंचे उठे भुजमंडलरूपी वन-खंडको घेरकर छाजाना।

इससे एक ओर तो पशुपति शिव, रक्तसे भीगाहुआ गजा-सुरचर्म ओढ़नेकी इच्छासे विरत होंगे, दूसरी ओर पार्वतीजी उस ग्लानिके मिटजानेसे एकटक नेत्रोंसे तुम्हारी भक्तिकी ओर ध्यान देंगी। [अग्रवाल, मेघदूत, पृष्ट १८१-८२]

१४. मेघका प्राचीन यात्रापथ—

कालिदासका मेघ प्राचीन यात्रापथपर चलता हुआ अलका तक पहुंचताहै। उसके मार्गमें वही युग-युगसे चलेआनेवाले प्राचीन तीर्थ आतेहैं जिनसे होकर कालिदासके समयके मध्य-भारतके यात्री बदरी-केदार पहुंचतेरहेहोंगे। रामगिरि, नर्मदा, दशार्णदेश, विदिशा, उज्जयिनी (महाकाल), गम्भीरानदी, आकाशगंगा, देवगिरि, चर्मणवतीनदी, दशपुर, कुरुक्षेत्र, सरस्वतीनदी, कनखल, गंगानदी, हिमधवलित पर्वत, वह स्थान जहां शिलापर शिवके चरणचिन्ह हैं, क्रौंचरन्ध्र, वह स्थान जहां त्रिविक्रम विष्णुका सांवला चरण सुशोभित हुआथा, कैलास, मानसरोवर, अलकापुरी। रेलोंके प्रचलनसे पूर्व तक यही यात्रामार्ग विशेष प्रचलित था।

१५. भक्तियुगमें उत्तराखण्डकी यात्रा—

प्राचीन कालसे चलीआतीहुई तीर्थयात्रामार्गसे साहसी लोग

बदरी-केदार तथा कैलास-मानसरोवरकी यात्रा सारे हिन्दुयुगमें करतेरहे। महमूद गजनीने उत्तर भारत के जिन सैकड़ों मन्दिरों और तीर्थोंको लूटाथा उनमे कांगडामें वज्रेश्वरीका प्राचीन मन्दिर, जो कांगडादुर्गमें था, स्थानेश्वरमें चक्रस्वामिन्का मन्दिर व्रजमंडलमें मथुरा, महावन आदिके मन्दिर, कन्नौजके मन्दिर, कालिंजरके मन्दिर और सोमनाथके मन्दिर मुख्य थे। उसने मन्दिरोंको लूटा और मूर्तियोंको नष्ट कियाथा, और पश्चिमी पंजाबको अपने साम्राज्यमें मिलालियाथा। लाहौरसे उसकी सैनिक टोलियां उत्तरभारत के विभिन्न तीर्थोंको लूटने चलती थीं। इन टोलियों को शाकम्भरी (अजमेर) के चौहान नरेश वीसलदेवने नष्ट कियाथा जैसा उसके दिल्लीके शिलालेखसे प्रकट होताहै:—

> आविन्ध्यादाहिमाद्रेर्विरचितविजयस्तीर्थयात्राप्रसंगात्
> उद्ग्रीवेषु प्रहर्ता नृपतिषुविनमत् कन्धरेषु प्रसन्नः।
> आर्यावर्त यथार्थं पुनरपि कृतवान्म्लेच्छविच्छेदनाभिः।
> देव शाकम्भरीन्द्रो जयति विजयते वीसलो क्षोणिपालः।
> [शिवप्रसाद डबराल, हुतात्मापरिचय, पृ० १]

१६. मन्दिरोंके विनाशका तीर्थयात्रा पर प्रभाव—

महमूद गजनी द्वारा मन्दिरोंके विनाशसे तीर्थयात्रा पर अवश्य कुछ प्रभाव पड़ाहोगा। अपने ही सन्मुख अपने देवताओंकी मूर्तियोंको प्राणरहित निरे पत्थरके समान असमर्थ टुकड़े-टुकड़े किएजाते देखकर अनेक लोग तीर्थयात्रा और मूर्तिपूजासे विरत हुएहोंगे। उस युगके अनेक संतोंने भी तीर्थयात्राके विरुद्ध उपदेश दिए। विक्रमकी ग्यारहवीं शताब्दीके लगभग जैन साधु मुनि रामसिंहने इसी प्रकार प्रचार कियाथा। "जैनसाधु भी एक तीर्थसे दूसरे तीर्थ तक स्नान करतेफिरतेथे, तथा पुराणादिका

पाठकरना पुण्यप्रद कार्य समझतेथे। मुनि रामसिंहने कहा— 'देवालयोंमें पाषाण है, तीर्थोंमें जल, और सब पोथियोंमें काव्य भराहै। जो कुछ भी फूली-फली वस्तु दीखतीहै, वह सब ईंधन होजाएगी। एक तीर्थसे दूसरे तीर्थ तक भ्रमण करनेवालों को कुछ भी फल नहीं होता, वे बाहरसे शुद्ध होगए पर आभ्यन्तरिक दशा जैसी-की-तैसी ही रहगई। [पाहुड़ दोहा, (कारंजा जैन सीरीज, ३) दोहा १३५ पृष्ठ, ४१; (परशुराम चतुर्वेदी, उत्तरभारतकी संत-परम्परा, पृ०४१-४२] निर्गुण-सम्प्रदायके संतों ने तीर्थयात्रा और मूर्ति पूजाके संबंधमें अपना यही दृष्टिकोण रखा। यदि इनके समय तीर्थयात्राका प्रचार न होता तो इन्हें उसका विरोध करनेकी आवश्यकता न पड़ती। इससे सिद्ध है कि विक्रमकी ग्यारहवीं शताब्दीमें और पीछे भी तीर्थयात्रा पूर्ववत चलतीथी।

१७. नए मन्दिरोंका निर्माण और तीर्थयात्रा—

शीघ्रही पुराने मन्दिरोंके स्थानपर नए मंदिर बनाए जाने लगे जिनका उल्लेख हम एपिग्राफिका इंडिकामें अनेक स्थानों पर पातेहैं। और तीर्थयात्रा अपने पिछले रूपमे अविच्छिन्न चलनेलगी। जिसमे भक्ति-मार्गके प्रचारने बड़ा योग दिया।

भक्तिकी धारा पहलेसे ही चलीआरहीथी। मन्दिरोंने हिन्दुओंमें प्रेम और आनन्दकी धाराको तो अवश्य बहाया पर हिन्दुओंकी कुछ जातियां फिरभी इससे वंचित थीं। भक्तिमार्ग ने सभीको गले लगाया। उन्होंने जाति, लिंग, और वंशका भेद हटाकर सबकेलिए अपने सम्प्रदायोंमें मार्ग खोल दिया। फलतः विभिन्न सम्प्रदायोंने अपने जो तीर्थ निश्चित किए उनकी यात्रा बड़े उत्साहसे होनेलगी। जिन सम्प्रदायोंने तीर्थयात्राका निषेध किया, उनमें भी अपने सम्प्रदायके संतोंके जीवनसे जुड़े स्थानों

की यात्रा चलपड़ी। वैष्णव और शैव सम्प्रदाय वालोंको गंगा पहलेसे ही गंगाद्वार-हरिद्वारमे खींच लातीथी।

१८. शाक्तसम्प्रदायों द्वारा तीर्थयात्राको प्रोत्साहन—

महायानके साथ अनेक यान चलपड़ेथे जिनमे मन्त्रयान और वज्रयान मुख्य हैं। इन्हींका विकास हिन्दुओं की विभिन्न तांत्रिक पद्धतियोंमे हुआ। तन्त्रोंने तीर्थयात्राका निषेध किया। साथ ही विशिष्ट स्थानों पर मंत्र-साधन करनेसे तत्काल मंत्रसिद्धिकी घोषणा भी की।

> पुण्यक्षेत्रं नदीतीरं गुहापर्वतमस्तकम्।
> तीर्थप्रदेशाः सिन्धूनां संगमः पावनं महत्॥
> उद्यानानि विविक्तानि बिल्वमूलं तटं गिरेः।
> देवतायतनं कूलं समुद्रस्य निजं गृहम्॥

आदि स्थानोंको शारदातिलक द्वितीय पटलमें शीघ्र मन्त्रसिद्धि के लिए उचित स्थान बतलायागया। समयाचारतंत्र द्वितीय पटलमें कहागयाहै—

> जपस्थानानि देवेशि! सिद्ध पीठानि यानि च।

कुब्जिकातंत्रके सप्तम पटलमे इन सिद्ध पीठोंकीगिनती इस प्रकार कीगईहै—

> श्रूयतां सावधानेन सिद्धपीठं पतिव्रते!
> यस्मिन् साधनमात्रेण सर्वसिद्धीश्वरो भवेत्।
> मायावती, मधुपुरी, काशी, गोरक्षकारिणी।
> हिंगुला च महापीठं, तथा जालंधरं पुन.॥
> ज्वालामुखी महापीठं, पीठं नगरसम्भवम्।
> रामगिरिर्महापीठं, तथा गोदावरी प्रिये!
> नेपालं, कर्णसूनञ्च, महाकर्णं, तथा प्रिये
> . आयोध्याञ्च, कुरुक्षेत्रं, सिंहनादं, मनोहरम्'

मणिपुरं, हृषिकेशं, प्रयागं च तपोवनम् ॥
बदरीञ्च महापीठं, अम्बिका अर्द्धनालकम् ॥
त्रिवेणी च महापीठं, गंगासागरसंगमम् ॥
नारिकेलञ्च बिरजा, उड्डीयानं महेश्वरि।
कमला, विमला चैव, तथा माहिष्मती पुरी ॥
वाराही, त्रिपुरा चैव, वाग्मती, नीलवाहिनी।
गोवर्द्धनं, विन्ध्यगिरिः, कामरूपं कलौ युगे।
घंटाकर्णं, हयग्रीवो, माधवश्च सुरेश्वरि!
क्षीरग्रामं, वैद्यनाथं, जानीयात् वामलोचने!
कामरूपं महापीठं, सर्वकामफलप्रदम्।
कलौ शीघ्रफलो देवि: कामरूपे जपः स्मृतः।

इस प्रकार शाक्त तांत्रिकोंने भी बदरीनाथकी तीर्थयात्राको अक्षुण्ण बनाएरखा। केवल बदरीनाथ, मायावती, घंटाकर्ण, हयग्रीव ही नहीं, महानीलतंत्रके पंचम पटल में बदरी-केदार क्षेत्रके और स्थान भी सिद्ध पीठ मानेगएहैं। उसमें अन्य पीठोंके साथ यमुना पीठ, गंगाद्वार, कुशावर्त, बिल्वक, नीलपर्वत (नीलकंठ) कलम्बकुञ्ज (कुब्जाम्रक) भृगुतुंग, केदार, कर्णतीर्थ, कर्णाश्रम (कर्णप्रयाग), अगस्त्याश्रम (अगस्त्यमुनि,) ब्रह्मावर्त, पिंडारकवन, बदरीतीर्थ, आदिको भी सिद्ध पीठोंमें गिनागयाहै और उनकी देवियों और भैरवोंके नाम, गिनाएगएहैं। [भट्टाचार्य, प्राणतोषिणी, पृ० ४४३ से ४४७]

इन सिद्ध पीठों में मंत्र-पुरश्चरण के अतिरिक्त दीक्षा लेना-देना भी सद्यफलदायी ठहरायागया। फलतः तांत्रिक शाक्तोंके साधक निरन्तर बदरी-केदार क्षेत्रकी यात्रा करतेरहे और वहां मंत्रदीक्षा देते-लेतेरहे और मंत्र-पुरश्चरण करतेरहे। गढ़वाल-के समस्त मन्दिरोंमें, विशेषकर कालीमठ, तपोवन, सिमली, आदिबदरी आदि में हरगौरी, और महिषमर्दिनीकी जो अत्य-

न्त सुन्दर, दुर्लभ मूर्तियां मिलतीहैं, वह इन्हीं शाक्तोंकी देन हैं। अनेक मंदिर, जो आज मुख्यः वैष्णव मन्दिर कहेजातेहैं, प्रारंभमें शाक्त मन्दिर थे। और यही कारण है कि आदि बदरी, सिमली आदि मन्दिरोंमें आज प्रधान देवता नारायण होने पर भी हरगौरी और महिषमर्दिनीकी मूर्तियां भारी संख्यामें पाई-जातीहैं। [मेरा लेख, सिमलीके प्राचीन और विचित्र मंदिर, कर्मभूमि] जब वैष्णवधर्मका अधिक प्रचार हुआ तो ये तांत्रिक शाक्त वामकेश्वरतंत्र और कुलानर्णवतंत्रके आदेशानुसार।

अन्तः शाक्ता बहिः शैवाः सभायां वैष्णवामताः
नानारूपधराः कौला विचरन्ति महितले॥

कथनका पालन करतेहुए यहां पहुंचेहोंगे और आज भी पहुँचतेहैं। और उनका भेद मन्दिरके पुजारीपर तब खुलाहोगा जब उन्होंने वामावर्त प्रदक्षिणा कीहोगी और "शक्ति" जुटानेके लिए कहाहोगा। बदरी-केदार क्षेत्रके अनेक तीर्थोंपर इस कार्यके लिए देवचोलियोंकी व्यवस्था थी। उनके रहनेके लिए घर बनेथे। मन्दिरोंमें चढ़ाईहुई बालिकाएं और युवा होनेपर उनकी लड़कियां तो देवचोलियां बनती ही थीं इनके अतिरिक्त अन्य देवचोलियां भी थीं जिनका कार्य मन्दिरमें सेवा करना होताथा और जिन्हें गूंठ भूमि प्राप्तथी। कालीमठ, गोपेश्वर, तुँगनाथ और बदरीनाथमें भी अंग्रेजी राज्यकाल बहुत वर्षों तक "देवचोलियां" रहाकरतीथीं। [एटकियसन, हिमालयन डिस्ट्रिक्टस, खंड, ३ पृ०२३-२४;]

आज भी गढ़वाल शाक्तोंका गढ़ है। केदारखंड ग्रंथमें प्रत्येक तीर्थमें दरजनों देवियोंकी गणना कीगईहै। नन्दाकी जात आज भी चलतीहै जिसके लिए आज भी मनुष्य उत्सर्ग किए

जातेहैं, यद्यपि उनकी 'बलि' नहीं दीजाती। महिषवलि और 'धल' के मेले अभी तक चलतेहैं।

१९. शैव-सम्प्रदायों द्वारा बदरी-केदारयात्राको प्रोत्साहन—

शाक्तमत और शैवमत इन पर्वतोंमें प्राचीन कालसे चले-आतेथे। हिमवानकी पुत्री पार्वती उमा ही शाक्तोंकी इष्ट देवी हुईं जिनके दोनों जन्मों-सती और उमा—की क्रीडास्थली बदरी--केदार क्षेत्रमेंही थी। सतीदाह कनखलमें हुआ और उमा-जन्म हिमवान्में। यहीं उमाका विवाह और कुमारकी उत्पत्ति हुई और यहीं कैलास-शिखर पर शिवका तथा नंदा शिखर पर उमाका निवासस्थान मानाजाताहै। और मार्कंडेय पुराणकी देवी-माहात्म्यकी क्रीडास्थलीभी यहीं प्रतीत होतीहै जैसाकि हम पहले देखचुकेहैं। कालिदासने भी कुमारसंभवमें हिमवान, उसकी राजधानी ओषधिप्रस्थ, गन्धमादन, मेरू और कैलास सबकी स्थिति गढवालके रुद्र-हिमालयमें मानीहै। [उपा-ध्याय, कालिदासका भारत, भाग १, पृ० १०,]

यहीं महाभारतके अनुसार अर्जुनको किरात वेषधारी शिव मिलेथे। मूल रूपमें शिव इन्हीं किरातोंके देवता रहेहोंगे जिन्हें पहले आर्य घृणाकी दृष्टिसे देखतेथे और यद्यपि वैदिक कालमें ही आर्योंने किरातोंके इस देवताको अपना कर उसे अपना रुद्र बनालिया पर उसके वे विशेषण जो पहले आर्य लोग घृणापूर्वक उसके साथ लगाचुकेथे, उससे चिपके ही रहगए। वह पशूनां पति, पथीनां पति, पुष्टानांपति, वननां पति, वृक्षाणा पति ओषधीनां पति, उच्चैर्घोषाक्रन्दयते पत्तीनां पति, स्तेनानां पति परिचरायारण्याना पति, तस्कराणां पति, गिरिचराय कुलुञ्चाना पति, आदि सब भी बना रहगया। [वाजसनेयी संहिता, शत-रुद्रिय सूक्त (१६।१।६६)]

पर्वतोंके साथ शिवका सबंध वैदिककालमें ही जुड़गया, यह हम पहिले देखचुकेहैं । महाभारतमें हिमालयमें शिवकी प्रतिष्ठा होचुकीथी । वाल्मीकि रामायण(बालकांड ४५।१२-१३) के अनुसार विश्वामित्र शिवजीकी तपस्याकेलिए हिमालयमें गएथे । उत्तरकांड, १३।११ के अनुसार कुबेरने हिमालयपर शिवजीकी तपस्या कीथी । उत्तरकांड १६।८ के अनुसार हिमालयपर ही रावणने शिव-शैलको उखाड़नेका प्रयत्न कियाथा । उत्तरकांड ८७।१२ के अनुसार इसी पर्वतपर शिव क्रीड़ा करतेथे । इसके पश्चात् पुराणोंमें तो बदरीकेदार क्षेत्रमें शिवका निवास-स्थान और शिवभक्तोंका वहां पहुंचकर शिवजीकी तपस्या करनेकी सैकड़ों कथायें हैं। और सारे परवर्ती साहित्यमें कैलास शिवका स्थायी स्थान मानागयाहै । ब्रह्मपुराणमें तो स्पष्ट कहागयाहै "नमो पर्वत लिंगाय" कैलासपर्वत ही जिसका लिंगरूप है, उसे प्रणाम । [ब्रह्म, ३७।२]

२०. शिश्नदेवा--

ईसापूर्व द्वितीय शताब्दीमें पाशुपतधर्म ऐतिहासिकरूपसे सारे भारतवर्षमें फैलचुकाथा। हिमालयमें इससे बहुत पहलेसे ही "शिश्नदेवा" : [लिंगपूजक] रहाकरतेथे। शिलाओंपर जिनके अंकन प्यालाकार (cupshaped) वृत्तके अन्दर, वृत्तके रूपमें, विशाल शिश्नोंके रूपमें, तथा समकेन्द्र वाले पाषाण वृत्तोंके रूपमें अल्मोड़ा-गढ़वालकी सीमापर चंडेश्वरमें करनाकने प्राप्तकिएथे । [करनाक, रफ नोटस आन सम एनशिएंट स्कलपचरिंग ऐंड रौकस इन कुमाऊं]। ये *शिश्नादेवाः हिमालयसे* दक्षिणके पठार तक फैलेथे ।

शिवका दूसरा रूप, जिसकी उपासना अपेक्षाकृत कम ही लोग करतेथे एक विलासप्रिय देवताका रूप था । रामायण-

महाभारतमें इस रूपसे शिवका किरातोंके साथ संबंध था, और इसी जातिके किसी आदि देवताको आत्मसात् करनेके फलस्वरूप शिवके इस रूपकी उत्पत्ति हुईथी। ब्रह्मांडपुराणमें शिव और ऋषिपत्नियोंका आख्यान आताहै। यह भी एक रोचक बातहै कि ऊपर जिस उद्धरणका उल्लेख कियागयाहै, उसमें शिवका संबंध उत्तर दिशासे है। जिस वनमें शिवने ऋषिपत्नियोंको मुग्ध कियाथा वह देवदारु वृक्षोंका वना था और वे वृक्ष हिमालय प्रदेशमें ही मिलतेहैं। यहीं विष्णुने शिवको अपनी मायासे मोहित कियाथा। नीलयतपुराण नामक कश्मीरी ग्रंथ में कहागया है, कि कश्मीरमें कृष्णचतुर्दशीके दिन जब शिवकी विशेष पूजा होतीथी, शैव उपासक खूब आमोद-प्रमोद करतेथे और नाचने-गानेतथा गणिकाओंकी संगतिमें रातभर बितादेतेथे। [नीलमतपुराण श्लोक ५५६] देशके अन्य भागोंमें इस दिन भगवान शिवकी जो पूजा होतीहै, यह उसके बिलकुल विपरीत है। संभवतः यह उस समयकी स्मृति है, जब इस प्रकारका आमोद प्रमोद उस देवताकी उपासनाका एक प्रमुख अंग था। जिसका अब शिवके साथ तादात्म्य होगयाथा। [यदुवंशी, शैवमत, पृ० १०६-१०]

२१. "किरात" से "केदार"–

केदार शब्दकी संस्कृतमें कोई संतोषजनक व्युत्पति नहीं मिलती, इस बातकी ओर अनेक विद्वानोंका ध्यान गयाहै। स्टीवेनसनने लिखाहै शिवका प्राचीन नाम केदार प्रतीत होताहै जो आदिवासियोंमें प्रचलित रहाहोगा। इस शब्दको यद्यपि संस्कृत में ग्रहण करलियागयाहै, पर संस्कृत भाषामें इसकी कोई व्युत्पति जँचती नहीं है। 'लिंग' जिसे शिवका चिह्न मानाजाताहै उस प्रदेशसे ग्रहण कियागयाहै, जहां 'केदार' की

पूजा होतीथी। पूनाके पास पुरन्दर पर्वतमालाका सबसे ऊँचा शिखर आजभी 'केदार' कहलाताहै। [एटकिनसन, हिमालयन डिस्ट्रिक्टस, खंड २, पृ० ७२६-३०]

„हमारा अनुमान है कि किरात और 'केदार' मूल रूपमें दोनों एक ही शब्द है और यही 'किरात' केदार' बनगयाहै।

२२. पाशुपत धर्मका प्रसार—

दो हजार वर्ष या उससे पहलेही हिमालयमें एक ओरसे दूसरी ओरतक पाशुपत धर्म फैल चुकाथा। हिमाचल प्रदेशके नूर्मुंड नामक स्थानसे, जिसे हिमाचलकी काशी कहाजाताहै सातवीं शताब्दीका ताम्रपट्ट प्राप्त हुआहै जिसमें कपालेश्वरकी पूजाका उल्लेख है:—

"......भगवतस्त्रिपुरान्तकस्य लोकालोकेश्वरस्य प्रणतानुकम्पिनः सर्वदुःखक्षयकरस्य कपालेश्वरे......कपालेश्वरे-वलि-चरु-सत्र-स्रग्-धूपदीप-दानाय......" [कोर्पस इन्सक्रिपशनेरम इंडिकारम्, खंड, ३, XIIV, पृ० २८६]

७०० ई० के लगभगकी लक्षमंडल (लाखामंडल) की प्रशस्तिसे भी यही सूचित होताहै ।:—

सर्गस्थितिलयहेतोर्विश्वस्य (ब्रह्म) विष्णुरुद्राणां, मूर्तित्रय प्रदधते संसारभिदे नमो विभवे ॥
[एपिग्राफिका, इंडिका, I.P. १२]

आठवीं शताब्दीमें बैजनाथ (कांगड़ा) के विशाल शिव-मन्दिर और उसकी दोनों प्रशस्तियां हिमालयमें पाशुपत धर्मके विस्तारके निश्चित प्रमाण हैं। पहली प्रशस्तिमें 'दुर्गे-द्वारहा-रिणि हरि ब्रह्मादिदेवस्तुते, भक्तिक्षेमविधायिनी त्रिनयने......' और दूसरी प्रशस्तिमें देवस्याहुविलम्बटस्य परमा पुष्टियैवो

जायते। ताभिर्मूर्तिभिरष्टभिरवतु वो भूत्यै भवानीविभुः ॥ [एपिग्राफिका इंडिका, I.P. १०४]

छटी—सातवीं शताब्दी तक केवल केदारनाथ ही प्रसिद्धि न पाचुकाथा वरन् भृगुपंथकी यात्रा पूरी प्रचलित होचुकीथी, जैसा हम पहले देखचुकेहैं। कत्यूरी अभिलेखोंमें गढवाल नरेशोंने अपनेलिए "परम माहेश्वर" शब्दका प्रयोग कियाहै। ललित-शूरके प्रथम ताम्र शासनमें "परम माहेश्वर, परम ब्रह्मण्य," और द्वितीय ताम्र शासन में भी "परम माहेश्वर, परम ब्रह्मण्य" शब्दों का प्रयोग हुआहै। इसी प्रकार पद्मट के ताम्रशासन तथा सुभिक्षराजके ताम्रशासनमें भी इन्हीं शब्दोंका प्रयोग हुआहै।

२३. वीरशैव—

संभवत. गुप्त युग तक ज्योतिर्लिंगोंकी कल्पना होचुकीथी। शीघ्र ही केदारनाथ शैवोंका प्रधान तीर्थ बनगया। शैवोंमें सामान्य शैव, मिश्रशैव और "वीरशैव तथा लकुलीश शैव आदि सम्प्रदाय पायेजातेहैं। वीरशैव उन्हें कहतेहैं जो वीर, नन्दी, भृगीं, वृषभ और स्कन्द, इन पांच गणाधीश्वरोंके क्षेत्रमे उत्पन्न अपनेको बतलातेहैं। वे अखिल जगतका कर्ता, भर्ता, और हर्ता पच ब्रह्मरूप शिवको मानतेहैं और उसकी ईशान, तत्पुरुष, अघोर, वामदेव और सद्योजात, यह पांच मूर्तियां मानतेहैं। वीर शैवोंके पंचाचार्य भगवानके इन्हीं पांच मुखोंसे उत्पन्न मानेजातेहैं। भगवानके ईशान मुखसे एक पंचवक्त्र गणेश्वर प्रकट हुए। इन्हीं गणेश्वरके वंशज वह वीरशैव हुए जो 'भक्त' कहलाए। ब्राह्मण वीरशैव "जंगम" कहलाए और शेष वीर-शैव भक्त "शीलवना", "वञ्जिग" और पंचमशालि "कहलाए" [रामदास गौड़, हिन्दुत्व, पृ० ६६३-६४]

"वीरशैव मत पाशुपत मतसे अभिन्न है और कालानुसारही इसके नामोंमें भेद पड़गयाहै। पौराणिक साहित्यसे यह पता लगताहै कि अगस्त्य, दधीचि, विश्वामित्र, शतानन्द, दुर्वासा, गौतम, ऋष्यशृंग, उपमन्यु, व्यास आदि महर्षि शैवथे। व्यास-जीके लिए कहाजाताहै कि इन्ह न केदारमें घटाकर्णजीसे पाशुपत दीक्षा लीथी जिनके साथ पीछेसे वे काशीजीमें रहने लगे। व्यास-काशीमें घंटाकर्णजी लिंग धारण किएहैं। भारतमें अनेक प्राचीन मूर्तियां हाथमें उसी प्रकार लिंग धारण किए मिलतीहैं जैसे वीरशैव उपासक हाथमें पूजा करनेके लिए लेताहै। काशीमें विशालाक्षीदेवीके और पंढरपुरमें विठोबाके, कोल्हापुर-में अम्बाबाईके, 'तुलजापुरमें' भवानीके और काशीमें भग-वन्तके मस्तकपर लिंग बनाहै'। [रामदासगौड़, हिन्दुत्व, पृ० ६६५]

२४. वीरशैवोंके मठ—

"वीरशैवोंके पांच बड़ेबड़े मठ हैं—कोलनुपाकमें सोमेश्वर, अवन्तिकापुरीमें सिद्धेश्वर, केदारमें रामनाथ, श्रीशैलमें मल्लिकार्जुन और काशीपुरीमें विश्वनाथ। काशीमें भगवान विश्वाराध्यका स्थान 'जंगमबाड़ी' के नामसे प्रसिद्ध प्राचीन मठ है। इस मठके मल्लिकार्जुन जंगम नामके शिवयोगीको काशीराज जमनन्ददेवने विक्रम संवत् ६३१ मे प्रबोधिनी एकादशीको भूमिदान कियाथा। इस प्रकार यह ताम्रशासन लगभग पौने चौदहसौ वर्षोंका है। "नेपालराज्य के भीतगांवमें काशी जंगमबाड़ी मठकी एक शाखा है। उस मठको भी जेष्ठ शुदी अष्टमी ६२६ मे नेपालके महाराजा विश्वमल्लने मल्लिकार्जुन यतिको भूमिदान करके शिलापर उत्कीर्ण करादियाहै, जो उस स्थानमें है"। [रामदास गौड़, हिन्दुत्व, पृ० ६६६]
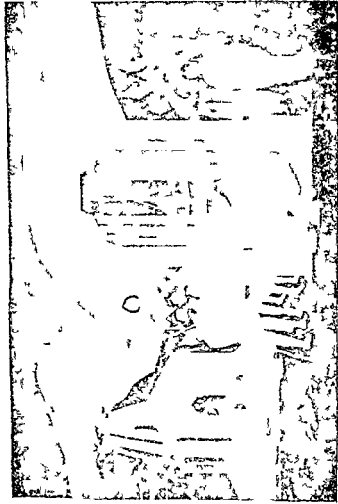
श्री केदारेश्वर पञ्चायतन

"वीरशैव मत पाशुपत मतसे अभिन्न है और कालानुसारही इसके नामोंमे भेद पड़गयाहै। पौराणिक साहित्यसे यह पता लगताहै कि अगस्त्य, दधीचि विश्वामित्र, शतानन्द, दुर्वासा, गौतम ऋष्यशृंग, उपमन्यु व्यास आदि महर्षि शैवथे। व्यास-जीके लिए कहाजाताहै कि इन्ह ने केदारमे घटाकर्णजीसे पाशुपत दीक्षा लीथी जिनके साथ पीछेसे वे काशीजीमे रहने लगे। व्यास-काशीमे घटाकर्णजी लिंग धारण किएहैं। भारतमें अनेक प्राचीन मूर्तिया हाथमे उसी प्रकार लिंग धारण किए मिलतीहैं जैसे वीरशैव उपासक हाथमे पूजा करनेके लिए लेताहै। काशामें विशालाक्षीदेवीके और पंढरपुरमें विठोबाके, कोल्हापुरमें अम्बाबाईके, 'तुलजापुरमे' भवानीके और काशीमे भगवन्तके मस्तकपर लिंग बनाहै'। [रामदासगौड, हिन्दुत्व, पृ० ६६५]

२४. वीरशैवोंके मठ—

"वीरशैवोंके पाच बडेबडे मठ हैं—कोलनुपाकमें सोमेश्वर, अवन्तिकापुरीमे सिद्धेश्वर केदारमे रामनाथ, श्रीशैलमे मल्लिकार्जुन और काशीपुरीमे विश्वनाथ। काशीमे भगवान विश्वाराध्यका स्थान 'जगमवाडी' के नामसे प्रसिद्ध प्राचीन मठ है। इस मठके मल्लिकार्जुन जगम नामके शिवयोगीको काशीराज जयनन्ददेवने विक्रम सवत् ६३१ मे प्रबोधिनी एकादशीको भूमिदान कियाथा। इस प्रकार यह ताम्रशासन लगभग पौने चौदहसौ वर्षोंका है। "नेपालराज्य के भीतगावमें काशी जंगमवाडी मठकी एक शाखा है। उस मठको भी जेठ सुदी अष्टमी ६२६ म नेपालके महाराजा विश्वमल्लने मल्लिकार्जुन यतिको भूदान करके शिलापर उत्कीर्ण करादियाहै, जो उस स्थानमें है"। [रामदास गौड, हिन्दुत्व, पृ० ६६६]

इससे स्पष्ट है कि विक्रमकी छटी–सातवीं शताब्दी में संभवतः इससे पहलेही से दक्षिणात्य शैव उत्तरभारतके शिव मन्दिरों पर अधिकार करनेलगे थे। इन दानपात्रोंकी प्रमाणिकता यदि संदिग्ध भी हो तो बाणका लेख इस बातका अकाट्य प्रमाण है कि विक्रमकी छटी–सातवीं शताब्दीतक दक्षिणात्य तांत्रिक उत्तर भारतमें फैल चुकेथे।

२५. केदारनाथ-यात्राकी प्राचीनता—

प्रचीनकालमें ही केदारेश्वर तीर्थकी यात्रा शैवोंमें बढ़ चलीथी और उसीके अनुकरण पर दक्षिणमें दक्षिण केदारेश्वरकी स्थापना हुईथी। "विश्वकोशाकार कहतेहैं कि, महीशूरके दक्षिणमें दक्षिण-केदारेश्वरका मन्दिर प्रसिद्ध है। वहांकी गुरु-परम्परामें श्री कंठाचार्य वेदान्तके भाष्यकार हुयेहैं। महीश्वरके कालमुख शैव लकुलागैम-समय नामक सिद्धान्तग्रन्थ-के अनुयायी हैं, और श्रीकंठाचार्य भी उसी सम्प्रदायके थे।" [रामदास गौड़, हिन्दुत्व, पृ० ६६८]

गढ़वालके अनेक मन्दिरोंमें प्राचीन लकुलीश पशुपतोंके शिवलिंग मिलतेहैं जिनमे लिंगको पूरा शिश्नरूप देनेका प्रयत्न दिखाईदेताहै। ये ही सबसे अधिक प्राचीन शिवलिंग हैं और सूचित करतेहैं कि शंकराचार्यसे पहलेही शैवों द्वारा केदार-यात्रा व्यापक रूपसे होनेलगीथी। ऊखीमठ, केदारमन्दिर और गढ़वालमें अन्यत्र शैवाचार्योंकी अनेक सुन्दर मूर्तियां आज भी मिलतीहैं, जो यहां शैवोंका प्रमुख गढ़ होना सूचित करतीहैं।

२६. भागवतों द्वारा बदरी-केदार यात्राको प्रोत्साहन—

भागवत धर्म में विष्णु और उसके अवतारोंकी उपासना प्रचलित है। महाभारतमें कृष्णको बदरिकाश्रममें तपस्या करने वाले नारायण ऋषिका अवतार और अर्जुन को नरऋषि–

अवतार बतलायागयाहै, यह हम देखचुकेहैं। नारायणका नाम वैदिक साहित्यमे अनेक बार आयाहै। शतपथ ब्राह्मण और तैत्तिरीय आरण्यकमे भी नारायणकी विभूतियोंका वर्णन आयाहै। वैष्णव धर्मकी नई लहर दाक्षिणात्य आचार्योंने उत्तर भारतमे वैष्णव धर्मका प्रचार करनेके लिए व्यापक रूपसे फैलाईथी। किन्तु उससे पहले भी भगवत धर्मावलम्बी प्राचीन परपराओंके अनुसार बदरी-केदार क्षेत्रकी यात्रा करतेरहेहोंगे।

ईसापूर्व दूसरी शताब्दीके वेसनगर (ग्वालियर) के शिला लेखसे ग्रीकनरेश ऐंटियाक्लिडसके राजदूत हेलियोडोराका भागवतधर्मावलम्बी होना, तथा उसके द्वारा 'देवदेव वासुदेवके नाम पर गरुडध्वजका निर्माण कियाजानासिद्ध होताहै। उसी ईसापूर्व दूसरी शताब्दीके प्रसिद्ध वैयाकरण पातंजलिसे पता चलताहै कि उनके समय कोई नाटक खेलाजाताथा जिसमे कृष्ण द्वारा कसका वध कियाजाना दिखलायाजाताथा। और उस समय तक यह घटना बहुत प्राचीन होगईथी, जैसा कि उनके भाष्यके अन्तर्गत आएहुए 'चिरहते कसे' वाक्यसे विदित होताहै। ईसापूर्व चौथी शताब्दीमे मेगस्थनीज तथा एरियन नामक ग्रीक लेखकोंके लेखोंसे पता चलताहै कि हेराक्लीजको शौरसेन वंशवाले बड़ी प्रतिष्ठाकी दृष्टिसे देखतेथे। उक्त वंशवालोंके 'मेथोरा' और 'क्लेइसोबोरा' नामक दो बडे नगर थे और इनके प्रदेशसे होकर 'जोबारे' नदी बहतीथी। डा० भाँडारकरने उक्त नामोंमे हेराक्लीज को 'हरिकुल' या 'वासुदेव' तथा शौरसेन को 'सात्वत' समझा है। और मेथोरा को 'मथुरा क्लेइसोबोराको 'कृष्णपुर' और जोबारको जमुना मानाहै। [भंडारकर, वैष्णविज्म, शैविज्म ऐंड माइनर रेलिजस सिस्टम्स, पृ० ४१; (परशुराम चतुर्वेदी, वैष्णव धर्म,

२७. बदरिकाश्रम-कथा और कौटल्य--

इसी ईसापूर्व चौथी शताब्दीमें कौटल्यने अर्थशास्त्रमें लिखा है, "मदात् दम्भोद्भव भूतावमानी" [अहंकारके कारण चराचर-का अपमान करनेवाला दम्भोद्भव मारागया। [अर्थशास्त्र, १।६ सूत्र १२] महाभारत [उद्योग पर्व ६६।३५-३८] के अनुसार दम्भोद्भवको बदरिकाश्रममें नर-नारायण ऋषियोंने माराथा। कौटल्यने बदरिकाश्रमका उल्लेख नहीं कियाहै, पर उक्त उद्धरण से स्पष्ट है कि वे बदरिकाश्रममें उक्त घटनाके होनेकी कथासे परिचित अवश्य थे।

२८. पाणिनिका बदरप्रस्थ--

ईसापूर्व पांचवीं शताब्दीमें पाणिनिने कर्क्यादि गणमें मघी-प्रस्थ, मकरीप्रस्थ, कर्कुप्रस्थ, शमीप्रस्थ, मरीरप्रस्थ, कटुकप्रस्थ, कुवलप्रस्थ और बदरप्रस्थका उल्लेख कियाहै। ज्ञात होताहै कि प्रस्थान्त नाम मूलमें हिमालयके प्रदेशमें थे, जहांसे आर्योंकी किसी शाखाके साथ ये कुरु जनपदमें लायेगये। [अग्रवाल पाणिनिकालीन भारत, पृ० ८१] पाणिनिने बदरिकाश्रमका उल्लेख नहीं कियाहै, पर उनके द्वारा बदरप्रस्थके उल्लेखसे स्पष्ट है ईसापूर्व पांचवीं शताब्दीमें कुरु जनपदमें बदरप्रस्थ (बदरिकाश्रम) के अनुकरणपर स्थानोंके नाम रखेजानेलगेथे।

पाणिनिके समय तक भगवत धर्म जिसमें वासुदेवअर्जुन या नर-नारायणकी उपासना होतीथी व्यापक रूपसे प्रचलित हो-चुकाथा। पाणिनिका "वासुदेवार्जुनाभ्यां वुन", ४।३।६८ सूत्र इसका साक्षी है। वासुदेवको इष्ट माननेवाले वासुदेवक और अर्जुनको इष्ट माननेवाले अर्जुनक कहलातेथे। नर-नारा-यणकी पूजा 'नारायणीय धर्म' कहलातीथी, जिसका विशद वर्णन महाभारतके शान्ति पर्वमें है। वासदेव कृष्ण और अर्जुन

नारायण और नरके अवतार मानेगए। वासुदेव कृष्णके परिवार-कल्पनाका दूसरा स्वरूप औरभी अधिक लोकप्रिय एवं स्थायी हुआ। उसमें संकर्षण, वासुदेव, प्रद्युम्न, अनिरुद्धको मिलाकर चतुर्व्यूह और साम्बको जोड़कर पंच वृष्णिवीरोंकी कल्पना पूर्ण हुई जो पांच रात्र धर्मका आधार है। पतंजलिके समयतक कृष्णके [नारायणऋषिके] अवतारत्व और उनकी जीवनलीलाओंका पूर्ण प्रचार होचुकाथा। पतंजलिने "संज्ञा-चैवा तत्रभवतः" लिखकर वासुदेवको विष्णुका स्वरूप माना। [अग्रवाल पाणिनिकालीन भारत पृ० ३५२-५३]

२९. मौर्य-शुंगकालमें भागवतधर्म—

पतंजलिके समय तो रामलीलाओंके समान कृष्णलीलाएं होनेलगीथीं, जिनका उल्लेख महाभाष्य ३।१।२६, वार्तिक १५ में है। भागवत धर्म माननेवाले पुरुष "भागवत" और नारियां "भागवती" कहलातीथीं। पाणिनिसे सौ वर्ष पश्चात्, ईसापूर्व चौथी शताब्दीके अर्थशास्त्रमें कृष्ण और कंसके उपाख्यानका तथा अप्रतिरथ विष्णुके प्रासाद या देवमन्दिरके निर्माणका उल्लेख है।

नगरी, चित्तौड़के पास प्राचीन माध्यमिकामें, ईसासे दूसरी शताब्दी पूर्वकी नारायणवाटिकाके अवशेष पाएगएहैं जिसके शिलालेखमें संकर्षण वासुदेवको सर्वेश्वर अर्थात् अन्य सब देवोंसे ऊपर (श्रेष्ठ) कहागयाहै। ये मौर्य-शुंग-युगके प्रमाण हैं। किंतु इस बातकी पर्याप्त सूचना देतेहैं कि मौर्यकालसे सौ-दोसौ वर्ष पूर्व भागवतधर्मका व्यापक आन्दोलन अस्तित्वमें आचुकाथा, जिसने भारतके धार्मिक रंगमंचपर महत्वपूर्ण परिवर्तन किया। [अग्रवाल पाणिनिकालीन भारत, ३५४]

३०. बदरिकाश्रम यात्राकी अति प्राचीन परम्परा—

कीथ, ग्रियरसन, भांडारकर, वेबर आदि विद्वानोंकी भी यही धारणा है कि भागवत धर्मकी प्रतिष्ठा पाणिनिसे पूर्व होचुकीथी, और अगली एक-दो शताब्दियोंमें उसका पूर्ण विकास और प्रचार होचलाथा। इस भागवतधर्मके मूलाधार थे नर-नारायण, जिनके आश्रम बदरिकाश्रममें थे। इसलिए यह मानाजासकता है कि महाभारतकालसे चलीआनेवाली बदरिकाश्रमकी यात्रा पाणिनिके समय तक और उसके पश्चात् भी पूर्ववत चलतीरही।

महाभारत ग्रन्थका समय ईसापूर्व सातवीं शताब्दीसे लेकर ईसापूर्व तीसरी शताब्दी तक मानाजाताहै। महाभारत ग्रन्थ निर्माणसे पहलेही बदरिकाश्रम आदि तीर्थ प्रख्यात होचुकेथे और उनकी यात्रा हुआकरतीथी। पांडव यहां नये स्थानोंका अन्वेषण करने नहीं गएथे, तीर्थयात्रा करनेगएथे।

३१. गुप्तकालमें बदरी—केदार—यात्रा—

गुप्तयुगमें, जब भागवतधर्ममें नवीन उत्साह दिखाई दिया, गरुड-ध्वजोंकी स्थापना कीजानेलगी, मन्दिर-द्वारपट्टोंपर गंगा-यमुनाकी मूर्तियां खुदनेलगीं और गुप्त सम्राट अपनेको भक्ति और गर्वसे 'परम भागवत' लिखनेलगे, तब भागवतधर्मके मूलाधार नर—नारायण के आश्रम और गंगा—यमुनाके स्रोतों तक तर्थयात्राको नवीन उत्साह प्राप्त हुआहोगा। इस युगमें गढ़वालमें बनेहुए अनेक मन्दिर और दुर्लभ तथा अति सुन्दर मूर्तियां, जो आज तक बच सकी हैं, प्रमाणित करतीहैं कि वह युग बदरी-केदार क्षेत्रकी तीर्थ यात्राका महान युग था, और इस यात्राका पुण्यलाभ कालिदासने अपने यक्षकोभी दियाथा।

३२. सिद्ध और नाथ तथा बदरी-केदार-यात्रा—

योगियोंकी परम्परा बहुत प्राचीन कालसे चलीआती है और योगसाधनाका अस्तित्व किसी न किसी रूपमें लगभग वैदिक युगसेही मानाजाताहै। उस कालके व्रात्य लोगोंके विषयमें कहागयाहै कि उनमें से कई-एक रुद्रकी उपासना करते थे तथा प्राणायामको भी बहुत महत्त्व देतेथे। उनके ध्यानकी साधना वर्तमान योगाभ्यासमे बहुत-कुछ मिलती-जुलती थी। [ब्रिग्ज, गोरखनाथ ऐंड दि कनफटा योगीज, पृ० २१२-३]। उसमें राजयोगके प्रारम्भिक रूपका भी आभास मिलताहै। अपने शरीरके विभिन्न अंगोंपर प्रभुत्व जमाकर उनपर प्राप्त विजयद्वारा प्राकृतिक शक्तियोंको भी वशमें लाना उस समय संभव समझाजाताथा। ऋग्वेदमें हमें 'केशी' तथा 'मुनि' लोगोंके जो वर्णन मिलतेहैं, उनसे तपस्वियों वा व्रतशील साधकोंके आचरण एवं वेषभूषाके संबंधमें हमें बहुत-कुछ पता चलताहै और उनके आधारपर अनुमान होनेलगताहै कि ऐसे लोग कदाचित शिवोपासक भी रहेहोंगे तथा उनमें और आधुनिक कालके योगियोंमें कोई बहुत बड़ा अन्तर न रहाहोगा। वे लोग उस कालमें लम्बे-लम्बे बाल व जटा धारण करतेथे, धुनी रमातेथे, किसी विषतुल्य वस्तुको खायाकरतेथे, मटमैले पीले वस्त्र लपेटतेथे, अपनी साधना द्वारा वायुमें ऊपर उठ जातेथे तथा रुद्रवत रहाकरतेथे। [परशुराम चतुर्वेदी, उत्तर भारतकी संत-परम्परा, ५५-५६]

नाथ-योगी सम्प्रदायवाले 'आदिनाथ' या शिवजीको अपने सम्प्रदायका प्रवर्तक बतलातेहैं। मराठा कवि ज्ञानेश्वरने गीताकी ज्ञानेश्वरी टीकामें लिखाहै, क्षीरसागरके तटपर शिवजी एक बार पार्वतीजीके कानमें ज्ञानका उपदेश कररहेथे। उस समय

ौर समुद्रमें एक मत्स्यके पेटमें गुप्त रूपसे रहनेवाले मत्स्येन्द्र-ाथने इस ज्ञानको सुना। मत्तश्रृंग पर्वतपर हाथ-पैर-हीन ौरंगीनाथ मत्स्येन्द्रनाथके दर्शनसे आरोग्य होगए। मत्स्येन्द्र ाथने गुरू गोरखनाथको ऐसी विद्या दी जिससे विषयोपभोगकी ान्ध भी पास नहीं आसकती। इस प्रकार गुरु गोरखनाथ वषयवासनाओंको जीतकर योगके द्वारा परम योगीश्वर पदको ाप्त हुए। [ज्ञानेश्वर, ज्ञानेश्वरी, अध्याय ८] ज्ञानेश्वरका हना है कि गोरखनाथके शिष्य गैनीनाथ, इनके शिष्य निवृत्तिनाथ (ज्ञानेश्वरका बड़ा भाना) तथा निवृत्तिनाथके शिष्य स्वयं ज्ञानेश्वर हुए।

गोरखनाथका मत विभिन्न नामोंसे प्रसिद्ध हुआ। हठयोगप्रदीपिकाकी टीका (१-५) में इसे नाथसम्प्रदाय कहतेहुए लिखा-है—'आदिनाथ सर्वेषां नाथानां प्रथमः, ततो नाथसम्प्रदायः प्रवृत्त इति नाथसम्प्रदायिनो वदन्ति।' नाथसम्प्रदायवालोंका कहनाहै कि नाथसम्प्रदायके प्रवर्तक आदिनाथ (शिवजी) थे। गोरक्षसिद्धान्त-संग्रह, पृ० १२ में इसे 'सिद्धमत', पृ० ५ में सिद्ध-मार्ग', पृ० २१ में 'योगाचार्य', पृ० ४८ में 'योग सम्प्रदाय, पृ० १८ में 'अवधूतमत' और पृ० ५६ में 'अवधूतसम्प्रदाय' आदि नामों से पुकारागयाहै।

इस मतके योगमत और योगसम्प्रदाय नाम तो सार्थक ही हैं, क्योंकि इनका मुख्य धर्म ही योगाभ्यास है। अपने मार्गको ये लोग सिद्धमत या सिद्धमार्ग इसलिए कहतेहैं कि इनके मतसे नाथ ही सिद्धहैं। अठारहवीं शताब्दीके अन्तिम भाग में काशीके बलभद्र पंडितने इसे संक्षिप्त करके सिद्ध-सिद्धान्त-संग्रह नामक ग्रन्थ लिखाथा। इन ग्रन्थोंके नामसे पता चलताहै कि बहुत प्राचीन कालसे इस मतको 'सिद्धमत' कहाजारहाहै। [हजारीप्रसाद द्विवेदी, नाथ-सम्प्रदाय पृ० १]

गोरक्षसिद्धान्त-संग्रह, पृ० १८ में 'अस्माक मतं त्ववधूतमेव' कहकर इसी नाथ-सिद्धमतको अवधूतमत भी कहागयाहै। कापालिक, औघड, और कनफटोंका सम्बन्ध भी अवधूतों और नाथोंसे जोडाजाताहै। 'नाथपंथियोंमें बहुतसे लोग 'औघड' या 'औघडपंथी' भी कहलाए। ये लोग संभवतः पाशुपत शैवों तथा कापालिकों द्वारा अधिक प्रभावित हुए और इसी कारण इनकी साधना व रहन-सहनकी अनेक बातें कुछ विचित्र-सी दीखपडतीथीं। इनके खोपडी तथा कोई न कोई हड्डी लिये रहने तथा चमत्कारिक दृश्य दिखलाकर लोगोंपर अपना प्रभाव डालतेफिरनेकी प्रवृत्तिने इन्हें निम्नश्रेणीके साधकोंमें ला दिया-है। और इनमेंसे अधिकांश अब केवल घृणा व भयकी दृष्टि से देखेजातेहैं। परन्तु बहुतसे औघड ऐसे भी मिलतेहैं, जो सन्तमत द्वारा प्रभावित होचुकेहैं और जिनकी साधना नाथ-पंथके अनुसार बहुत कुछ पूर्ववत चलतीहै। [परशुराम चतुर्वेदी, उत्तर भारतकी संत परम्परा, पृ० ६६ टि०]

गोरखनाथका समय ईसाकी दसवीं या ग्यारहवीं शताब्दी का प्रारम्भिक भाग प्रायः मानाजाताहै। पर गोरखनाथसे पहले सिद्धोंकी परम्परा ८ वीं-६ वीं शताब्दी तक जातीहै।

सरह आदिम सिद्ध हैं और वह पालवंशीय राजा धर्मपाल (ई० ७६८-८०६) के समकालीन थे। इसलिए उनका समय आठवीं शताब्दीका उत्तरार्द्ध समझना चाहिए। हम वज्रयानकी उत्पत्तिको छठी शताब्दीसे पूर्व और सरह आदिके कारण आठवीं शताब्दीसे बाद भी नहीं मानसकते। सरह उन चौरासी सिद्धोंके आदि पुरुषहैं, जिन्होंने लोकभाषामें अपनी अद्भुत कविताओं तथा विचित्र रहन-सहन और योग-क्रियाओंसे बज्रयानको एक सार्वजनिक धर्म बनादियाथा। इससे पूर्व वह, महायानकी भांति, संस्कृतका आश्रय ले गुप्तरीतिसे फैल-

रहाथा। सरहसे पूर्वकी एक शताब्दीको हम साधारण मंत्र-यान और वज्रयानका संधिकाल मानसकतेहैं। आठवीं शताब्दीसे वज्रयानका जोरोंसे प्रचार होनेलगा। तबसे मुसलमानोंके आने तक यह बढ़ताही गया। [राहुल, पुरातत्व-निबन्धावली, पृ० १४७]

आठवीं-नौवीं शताब्दीमें सिद्धोंका प्रचार भारतके अनेक भागोंमें फैलगया और जब सिद्धोंमें नाथपंथ उत्पन्न हुआ और गोरखनाथने पुरानी प्रथाएं हटाकर त्याग-तपस्या और योगका प्रचार किया तो यह सुधार हुआ। अतःनाथ-पंथ भारतमें दूर दूर तक श्रद्धाकी दृष्टिसे देखाजानेलगा।

"मुसलमानोंके प्रहार और अपनी भीतरी निर्बलताओंके कारण बौद्धधर्म विलीन होनेलगा। उससे शिक्षा ग्रहणकर आत्मरक्षार्थ नाथपंथ धीरे-धीरे अनीश्वरवादी से ईश्वरवादी होगया। कबीरके समान वही एक एक ऐसा पंथ था, जिसकी बाणियों और सत्संगोंका प्रचार सर्वसाधारणमें अधिक था। जिसप्रकार बड़ौदा, इंदौर, कोल्हापुर तथा कुछ पहले झांसी और तंजोर तक फैले छोटे-छोटे मराठा राज्य एक भूतपूर्व विशाल मराठा-राज्यका साक्ष्य देतेहैं, उसी प्रकार आजभी काबुल, पंजाब, युक्तप्रांत, बिहार, बंगाल और महाराष्ट्र तक फैली नाथपंथकी गद्दियां नाथपंथके विशाल विस्तारको बतलातीहैं। यह विस्तार वस्तुतः उन्हें अपने चौरासी सिद्धोंसे, पैतृक सम्पत्तिके रूपमें मिलाथा। [राहुल, पुरातत्व-निबंधावली, १६१]

२३. गढ़वालमें सिद्ध-नाथोंकी क्रीड़ाभूमि—

"सिद्धोंके ग्रन्थोंमें तीर्थयात्राका वर्णन आताहै। ये शिव और देवीमन्दिरोंके दर्शनार्थ जातेहैं। बालाजी और

हिंगुलाजके दर्शन विशेषत. करतेहैं। साथही नह्मारड और कायतीर्थकी बातेंभी करतेहैं।

सिद्ध और नाथोंकी गढवाल में अवश्य क्रीडाभूमि रहीहै। किसी समय उन्होंने गढवालके अधिकाश मन्दिरोंपर अधिकार करलियाथा। गढवालके धुरदक्षिणमें भावर और गंगा सलाणमें भरोंवाटीवक गाव-गाव में, तथा नदियोंके 'स्रोत', ऊंचे-डाडों और अन्य स्थानोंमें सिद्धबाबाके मन्दिर या स्थान आजतक मिलतेहैं। इन प्रदेशोंमें भूमिया ग्राम देवता जो गढवालके अन्य सभी भागोंमे गाव गावमें मिलताहै, नहीं मिलता। भावरके वनोंमें ग्वाले सदासिद्ध बाबाकी मनौती मनातेहैं और वन काटनेवाले पहले सिद्धबाबाकी "सिरणी" करतेहैं। [मेरालेख, भौंरोंवाटीकी गाथा, कर्मभूमि, २१ मई ४६]

३४. गढवालके मन्दिरोंपर नाथोंका अधिकार—

श्रीनगर पहुचते ही हमें मन्दिरोंपर नाथोंका अधिकार मिलताहै। गढवालके अधिकाश बडे मन्दिरोंपर, श्रीनगरमें कमलेश्वर, गोपेश्वर, टेहरीमें बूढाकेदार और उत्तरकाशीके विश्वनाथ मन्दिर आदिपर नाथोंका अधिकार आजतक चलाआताहै। किसी समय इनका अधिकार प्राय सभी मन्दिरों पर था। मन्दिरके शिखरके नीचे कुण्डलधारी शिवकी या आदिनाथकी मूर्ति श्रीनगरमें कमलेश्वरके मन्दिरमें, सिमलीके नारायण मन्दिरमें, तपोवनके बडे मन्दिरमें, आजभी मिलतीहै, जो इस बातका प्रमाणहै कि ये मन्दिर कभी नाथोंके अधिकारमेंथे। इन्हींके अनुकरण पर गढवालमें पीछेके बने मन्दिरोंके शिखरके नीचे इसी प्रकारकी कुण्डलधारी आदिनाथकी शिरोमूर्ति लगी मिलती है। ऐसी मूर्तियां श्रीनगरमें शंभालयन्धुओंके मन्दिर पर, त्रियुगीनारायणके मन्दिर पर

और यमनोत्तरीसे पहले इंडेलगांवके पासके मन्दिरमें मिलतीहैं। [मेरे लेख, तपोवनके पास प्राचीन ऐतिहासिक सामग्री-कर्मभूमि १ जनवरी, ५७, सिमली के प्राचीन और विचित्र मन्दिर, कर्मभूमि, ३० अप्रैल, ५७, तथा कलाकारोंका केन्द्र, श्रीनगर, कर्मभूमि २७ नवम्बर, ५६]

कुंडलधारी शिवकी मूर्तियां गोरखनाथसे पहलेसे चली आतीथीं, जैसा कि एलोरागुफाके कैलास-शिव-मन्दिरमें एक महायोगीकी कुंडलधारी मूर्तिसे प्रकट होताहै। पर इसका व्यापक प्रचार नाथोंके समयही हुआ।

३५. गढ़वालमें डल्या नाथ—

नाथोंका इस जिलेमें बड़ी संख्यामें प्रवेशका एक और प्रमाण अनेक गांवोंमे उनकी उस संतानका मिलनाहै जो 'डल्या', 'ओल्या' या नाथके नामसे प्रसिद्ध हैं। अबभी 'नाथजी ! आदेश' कहकर इनको सम्मान प्रकट कियाजाताहै। देवलगढ़में सत्य-पीरका मंदिरहै। नाथ-सम्प्रदायके प्रमुख नाथोंमें सत्यनाथका उल्लेख मिलताहै। पन्द्रहवीं शताब्दीके अंतिम वर्षोंमें सत्यनाथ और उसके शिष्य नागनाथ नामक दो महत्वाकांक्षी नाथ-योगी गढ़वाल और चम्पावत (अल्मोड़ा) पहुंचेथे। नागनाथके परामर्शसे चम्पावत-नरेशने चांदपुर-गढ़ीके राजा अजयपाल पर आक्रमण करके उसका राज्य छीनलियाथा। इसलिए अजयपाल सत्यनाथके पास देवलगढ़ पहुँचा। सत्यनाथके प्रयत्नसे अजयपाल और चम्पावत् नरेशमें संधि होगयी और अजयपालको उसका राज्य वापिस मिलगया। अजयपालने सत्यनाथके मन्दिरको गूंठभूमि दी। [रतूड़ी, गढ़वालका इतिहास, पृष्ठ ३६४-६५ तथा पाण्डे, कुमाऊंका,

इतिहास, पृ० २५१, २५२, २५३]। इससे गढ़वालमें नाथोंकी प्रतिष्ठा और प्रभुत्व बढ़गए।

२६. दाक्षिणात्य आचार्य और बदरी-केदार क्षेत्रकी यात्रा—

महाभारतकालमे ही दक्षिणमें श्रीपर्वतपर ब्रह्मा, शिव, देवी और अन्य देवताओं की स्थितिकी कल्पना होचलीथी, [वनपर्व, तीर्थयात्रापर्व, ८६।१६-१७] आगे चलकर वहीं मल्लिकार्जुन ज्योतिलिंगका स्थान मानागया। ईसाकी आरंभिक शताब्दियों मेंही श्रीपर्वत और दक्षिणके अन्यस्थान अपने तंत्र-मंत्र यंत्रादिकी सिद्धियोंके लिए प्रसिद्धि प्राप्त करने लगेहोंगे। बाणके समय तक ये दाक्षिणात्य 'सिद्धपुरुष' उत्तर भारतमें छागएथे और यह माना जासकता है कि इन्होंने अनेक देवी और शिवमन्दिरों पर अधिकार करलियाथा, क्योंकि शिव मन्दिरोंपर ब्राह्मण अपना अधिकार नहीं रखतेथे। और आज भी सारे देशके शिवमन्दिरोंमेंसे अधिकांश पर या तो अब्राह्मण जतियोंका अधिकारहै अथवा उन जातियोंका जो पहले ब्राह्मण नहीं मानजातीथी और कुछही शताब्दियोंसे अपनेको ब्राह्मण कहलानेलगीहैं। १८८२ मे एट किन्सिनने लिखाथा कि कुमाउं कमिश्नरी के शिवलिंग वाले मन्दिरोंके पुजारी या तो गुसाईं, नाथ आदि सन्यासी वर्गके होतेहैं, अथवा खसिया-ब्राह्मण। इनमें से कई अपना संबंध दाक्षिणसे जोड़ते हैं। [हिमालयन डिस्ट्रिक्ट खण्ड २, पृ० ७३४]

३७. गढ़वालके मन्दिरोंमे श्री शंकराचार्यका संबंध—

जोशीमठ, बदरीनाथ, केदारनाथ, उत्तरकाशी, गंगोत्तरी और यमुनोत्तरी, इन एक मठ और चार धामोंकी प्रतिष्ठाका संबंध श्री शंकराचार्यसे जोड़ाजाताहै। और कहाजाताहै कि

शंकराचार्यने जोशीमठ, बदरीनाथ और केदारनाथमें अपने शिष्य तथा दक्षिणके ब्राह्मण रावलोंकी नियुक्ति कीथी।

शंकराचार्यकी जीवनीके संबंधमें संस्कृतमें कमसे कम १६ ग्रन्थ हैं, जिन सबके नामके अन्तमें प्राय: विजय आताहै। इनमें शंकरदिग्विजय, शंकरविजय, शंकरविजयसार, शंकर-दिग्विजयसार, शंकरविजयकथा, प्राचीन शंकरविजय, वृहत्त शंकरविजय, शंकरविजयविलास, आचार्यदिग्विजय, शंकर-विजयविलास काव्य, शंकराभ्युदय, शंकराभ्युदयकाव्य आदि हैं। इन सबसे प्रतीतहोताहै, कि शंकर-संबंधी प्रामाणिक ग्रन्थ लुप्त होगयेहै और सुनी-सुनाई परम्पराओंके आधारपर बहुत पीछे इन ग्रन्थोंकी रचनाकीगईहै।

इनमें आनन्दज्ञान या आनन्दगिरीका वृहद् शंकर दिग्विजय तथा माधवका शंकरदिग्विजय अधिक प्रसिद्ध हैं। माधवके शंकर-दिग्विजयमें अनेक इतिहास-विरुद्ध बातें लिखीहैं। जैसे अभिनवगुप्तके साथ शंकरका शास्त्रार्थ, अभिनवगुप्तको काम-रूपी निवासी बताना, शंकरका बाण, दंडी, मयूर, खंडनकार (श्री हर्ष), भट्टभास्कर और उदयनाचार्यसे शास्त्रार्थ करना, सर्वथा इतिहास विरुद्ध हैं। बाण, दंडी और मयूर शंकरसे पहलेके और अन्तिम, ३ शंकरके पश्चातकेहैं। [बलदेव उपाध्याय, शंकराचार्य, १२-१३]

शंकर संबंधी संस्कृत साहित्यमें केवल ४२ स्थानोंके नाम मिलतेहैं, जहां शंकराचार्य पहुँचेथे। इन ४२ में से केवल पांच स्थान ऐसे हैं जिनका उल्लेख सभी ग्रन्थोंमें मिलताहै। ये हैं—उज्जैनी कांची, काशी, मायापुरी (कनखल) और रामेश्वरम्। बदरीनाथ, केदारनाथ, जोशीमठ, संबंधमें सारे ग्रन्थोंका मतैक्य नहीं है। [बलदेव उपाध्याय, *श्रीशंकराचार्य* पृ० १०७, १०८, १०६, ११३]

जिन ग्रन्थोंमें बदरी-केदारका उल्लेख किया भी है, उनमें से सभीके क्रम भिन्न भिन्न हैं। और कुछसे तो मार्गका वर्णन भूगोलिक दृष्टिसे भ्रांतिजनक है। "माधवके" वर्णनकी अपेक्षा आनन्दगिरिका वर्णन विस्तृतहै, परन्तु आनन्दानंद गिरिके वर्णनका भौगोलिक मूल्य बहुतही कम है। एक उदाहरण ही पर्याप्त है। आचार्य शंकरने केदारलिंगके दर्शनके अनन्तर बदरीनारायणका दर्शन कियाथा, परन्तु इस ग्रंथकारका कहनाहैः-

"अमरलिंगं केदारलिंगं दृष्ट्वा कुरुक्षेत्रमार्गात् बदरीनारायण-दर्शनं कृत्वा........"

अर्थात् अमरलिंग, केदारलिंग का दर्शन शंकरने कुरुक्षेत्रके मार्गसे बदरीनारायण का दर्शन किया। बात बिलकुल समझमें नहीं आती कि केदारनाथके दर्शनके अनन्तर बदरीनाथ-का दर्शनका उचित क्रम है, पर इसे सिद्ध करनेकेलिए कुरुक्षेः जानेकी क्या आवश्यकता ? यह तो अप्राकृतिक है। तथ द्रविड़ प्राणायामके समान है। [बलेदव उपाध्याय, श्रीशंकरा-चार्य, १०५-१०६]

३८. शंकराचार्य—गढ़वालमें—

शंकाराचार्यकी जीवन-तिथि विवादास्पद है। इतनाही कहा जासकता कि वे ईसाकी सातवीं शदीके पीछे किसी समय दक्षिणमें उत्पन्न हुए और अल्पायुमें अपार पांडित्य प्राप्त करके धर्म-दिग्विजयके लिए चलपड़े। काशीमें "उन्हें विश्वनाथ जीने अपना दिव्य शरीर प्रकट करके दर्शन दिये और उन्हें व्यसकृत ब्रह्मसूत्रके ऊपर भाष्य लिखने की आज्ञा दी। उन्होंने यह स्थिर किया कि बदरीनाथ जाकर ही सूत्रभाष्यकी रचना करूंगा। बदरीकाश्रम के पास ही 'व्यासगुहा' है, जहां रहकर व्यासजीने इन वेदान्तसूत्रोंका प्रणयन किया ...। हरिद्वार

होकर आचार्य ऋषिकेश पहुंचे। वहां उन्हें पताचला कि विष्णु मन्दिरकी मूर्ति चीन देशके डाकुओंके भयसे गंगाजीमें फेंक दीगईहै। आचार्यके प्रयत्नसे गंगातीरपर एक स्थानसे वही प्राचीन मूर्ति प्राप्त होगई और उसकी मंदिरमें प्रतिष्ठाकी-गई। इसके पश्चात् आचार्य बदरीकाश्रमकी ओर चल पड़े। मार्गमें नरबलिप्रथा और तांत्रिकपूजा अधिक प्रचलित थी, जो आचार्यके प्रयत्नसे रुक गई। बदरिकाश्रममें प्रधान मन्दिरमे भगवानकी मूर्ति न मिली। पुजारियों ने कहा कि चीनदेशके राजाका समय-समय पर इधर भयानक आक्रमण होताआया-है, इसलिए भगवानकी मूर्तिको हम लोगोंने नारदकुँडमें फेंक दियाहै। आचार्यने नारदकुँडसे भगवानकी मूर्ति निकालकर उसकी मन्दिरमें स्थापना करदी। यह मूर्ति पद्मासन पर बैठेहुए चतुर्बाहु विष्णुकी मूर्ति है जिसका दहिनाकोना टूटा हुआहै।" [बलदेव उपाध्याय, शंकराचार्य, पृ० ५१-५२]

शंकराचार्यने व्यासतीर्थमें चार वर्ष तक रहकर ब्रह्मसूत्र, भगवद्गीता तथा प्रधान उपनिषदोंपर विपद भाष्य लिखे, [बलदेव उपाध्याय, शंकराचार्य, पृ० ५३]

इसके पश्चात् आचार्य केदारनाथ पहुँचे। वहां अपने शिष्योंको शीतसे बचानेके लिए उन्होंने तप्तकुँडका पता लगाया। इसके पश्चात् वे उत्तरकाशी होते हुए गंगोत्री पहुँचे। उत्तर-काशीमें उन्हें व्यासजी के दर्शन हुएथे। यहीं उन्हें तीर्थ यात्रियोंसे पताचला कि कुमारिल प्रयागके त्रिवेणीतट पर हैं। उनसे मिलनेके लिए वे संभवतः यमुना के किनारे-किनारे चलकर त्रिवेणी पहुँचे। [बलदेव उपाध्याय,शंकराचार्य ५५-५६]

आचार्यने बदरिकाश्रमके पास ज्योतिर्मठकी स्थापनाकी और उसका अध्यक्ष अपने शिष्य तोटकाचार्यको बनाया। यह चुनाव इनके अथर्ववेदी होनेके कारण कियागया [बलदेव

उपाध्याय, शंकराचार्य, १६७] । तोटक अथर्ववेदी थे इससे अवश्य टोटके (टोने) के आचार्य रहेहोंगे । क्या तोटक और टोटक एकही शब्द हैं ?

३९. शंकराचार्यके समयसे तीर्थयात्राको प्रोत्साहन—

उपरोक्त घटनाओंसे अनेक विद्वान सहमत नहीं हैं । किन्तु इतना निश्चित है कि शंकराचार्य भारतमें मुसलमानी साम्राज्य-की स्थापनासे पहले होचुकेथे । उनके समय बद्री-केदारकी यात्रा भलीप्रकार प्रचलित और प्रसिद्ध थी । शंकर—जैसे महान् विद्वानके द्वारा बद्री—केदारकी यात्रा, और यदि उत्तरकाशी, गंगोत्तरी और यमुनोत्तरीकी यात्रा भी जोडा जाए तो गढ़वालके चारों धामोंकी यात्रा और ज्योतिर्मठकी स्थापनासे इस प्रदेशकी तीर्थ-यात्राको औरभी अधिक प्रोत्साहन मिला होगा । धीरे-धीरे ऐसी स्थिति उत्पन्न होगई कि नेपालसे कश्मीर तकके सभी बड़े मन्दिर अपना संबंध शंकराचार्यसे जोड़नेलगे और इन मंदिरोंमेंसे अनेक पर दाक्षिणात्यों ने शंकराचार्यके नामसे अधिकार जमालिया।

शंकराचार्य और उनके द्वारा अथवा उनके नामसे स्थापित मठोंके शंकराचार्योंने हिन्दु धर्मसे एक नया जीवन फूंकदिया । भारतके कोने-कोने तक फैलेहुए साधु-संप्रदायोंने अपना संबंध शंकराचार्य या उनके शिष्योंसे जोड़लिया और वे विभिन्न नामोंसे संगठित होगए। इन साधुओं और शंकराचार्योंने मुसलमानी शासनकालमें हिन्दुओंके अन्दर बहुत शुद्ध जीवन बनाएरखा । शंकराचार्य संभवतः अनेक देवी-देवताओंके उपासक न थे। पर उनके नामसे मिलने वाले सैकड़ों देवी-देवताओंके स्तोत्र भारतमें घर-घर फैलगए और आजभी प्रत्येक हिन्दु उनके द्वारा अपने देवी देवताओंकी उपासना

करताहै। अनुभवके आधार पर यह कहाजासकताहै कि आज भारतके स्मार्त उपासकोंसे शत-प्रति-शत व्यक्ति शंकराचार्यके नामसे बने स्तोत्रोंका पाठ करतेहैं। संभवतः केवल बीस-प्रति-शत ही पुराणों, रामायण, महाभारत तथा तंत्र-निगमागमके स्तोत्रोंका पाठ करतेहैं और वैदिक स्तोत्रोंका पाठ करने वाले तो एक प्रतिशतसे भी कम हैं। इन स्तोत्रोंमें कितना मिठास है, कितना सौन्दर्य है, जयदेवके गीतगोविन्दके समान इन्होंने संस्कृतको अद्भुत माधुर्य प्रदान कियाहै।

साधारण उपासकोंमें जिसप्रकार शंकराचार्यके नामसे मिलनेवाले स्तोत्रोंको वेदवाक्य मानाजानेलगा, वैसेही शंकराचार्यके दार्शनिक भाष्य विद्वानोंमें प्रमाण मानेजानेलगे और आज तक मानेजातेहैं। इस शताब्दीके विवेकानन्द और रामतीर्थ, राधाकृष्णन् आदि किसी न किसी रूपमे शंकराचार्यके पदचिह्नों पर चलनेवाले कहेजासकतेहैं।

अवश्य, शंकराचार्यसे पहलेभी दाक्षिणात्य शैवों और शाक्तोंके समान दार्शनिक विद्वान महात्मा दक्षिणसे उत्तर भारतमें आते रहेहोंगे, पर उनकी स्मृति अब लुप्त होगईहै।

शंकराचार्यने बदरी-केदार और संभवतः उत्तरकाशी-गंगोत्तरी, यमुनोत्तरीकी यात्रा कीथी। उनके शिष्य सम्प्रदायोंके साधुओंने इस परम्पराको बनाए रखा।

४०. रामानुजाचार्य—

विक्रमकी नौवीं शताब्दीके उत्तरार्धमें यामुनाचार्यका समय मानाजाताहै जिन्होंने दक्षिणमें वैष्णवधर्ममें नई जाग्रति उत्पन्न करदीथी। इनके शिष्य प्रसिद्ध रामानुजाचार्य हुए, जिनका जन्म संवत् १०७४ विक्रमीमें मानाजाताहै। रामानुजने यामुनार्यके मतकी और भी अधिक विस्तृत व्याख्या कीथी।

इन्होंने सगुण भक्ति और विष्णुके दस अवतारोंका समर्थन कियाथा। कहतेहैं इन्होंने दिल्ली आकर तत्कालीन मुसलमान बादशाहके महलसे एक विष्णुमूर्तिका उद्धार कियाथा, और कश्मीर भी गएथे। इन्होंने अपने वैष्णवमतके प्रचारके लिए ६४ शिष्य नियुक्त किए थे। इन्होंने अनेक ग्रन्थोंकी रचनाकीथी, जिनमें रामपटल, रामपद्धति, रामपूजापद्धति, राममन्त्रपद्धति, राम-रहस्य, रामायणव्याख्या, रामार्चन पद्धतिका संबंध रामचन्द्रजीकी पूजासे है। [रामदास गौड़, हिन्दुत्व, ६४८-५२]

४१. माध्वाचार्यकी बदरीनाथ-यात्रा—

इनका जन्म दक्षिणमें सम्वत् १२५६ मे हुआथा। सम्वत् १२८५ तक इनकी विद्वताकी धाक जमगई और ये दक्षिण-विजयके लिए चलपड़े और रामेश्वरम् तक पहुँचे। कहतेहैं कि गीताभाष्यकी रचना करके आचार्य बदरिकाश्रम गए और भगवान वेदव्यासके प्रत्यक्ष दर्शन होनेपर इन्होंने उक्त ग्रंथ व्यास भगवानको समर्पण करदिया। व्यासजीने प्रसन्न होकर इन्हें शालग्रामकी तीन मूर्तिया दी। ये ही तीन मूर्तियां आचार्यने सुब्रह्मण्य, उदीपि और मध्यतलमे प्रतिष्ठित की। इन्होंने उदीपिमें एक श्रीकृष्ण मूर्तिकी भी स्थापना कीथी। भागवान् व्यासदेवकी आज्ञासे आचार्य वैष्णव धर्मके प्रचार में लगगए और उन्नासी वर्षकी आयु तक प्रचार करतेहुए संवत १३६० में स्वर्ग पधारे। [रामदास गौड़, हिन्दुत्व, ६६३-६४]

सवत् १३६० में दिल्ली का बादशाह अल्लाउद्दीन खिलजी था। पर यदि आचार्यने १२८५ के ५ वर्षके अन्तर्गत बदरिकाश्रमकी यात्राकी होगी तो उन दिनों उत्तरभारतमे ईल्तुतमिशका साम्राज्य रहाहोगा। इससे पता चलताहै कि साहसी साधु-सन्यासी विक्रमकी तेहरवीं-चौदहवींमें भी सुदूरदक्षिणसे बदरि-

काश्रमकी यात्रा करने जातेथे और लौट आनेकी आशा रखतेथे।

४२. श्रीनिम्बकाचार्य—

आपका जन्मभी दक्षिणमें हुआथा, पर कब, यह अनिश्चित है। दक्षिणसे आकर आचार्य वृन्दावनमे रहनेलगेथे, इनकी गद्दी मथुराके पास यमुना तटवर्ती ध्रुवक्षेत्रमे है।

इनके अतिरिक्त सैकड़ों दक्षिणी आचार्य उत्तरभारत में पहुँचकर धर्मप्रचार करते रहेहोंगे, जो प्रसिद्धि न प्राप्त करसके। इन आचार्योंने उस समय हिन्दुजातिको संगठित किया जिस समय उत्तरभारतमें मुसलमानी शासन स्थिर होगयाथा और दक्षिणकी ओर फैलरहाथा। ये तीर्थोंमें तो रहतेथे ही इनके द्वारा प्रचारित स्मार्त-वैष्णव धर्मसे तीर्थयात्राको बहुत प्रोत्साहन मिला। साथही उत्तरभारतमें आचार्यों और सन्तोंकी भारी शृंखला उत्पन्न होगई।

४३. श्रीवल्लभाचार्य—

आचार्यका जन्म संवत् १५३५ में रामपुर, मध्यभारत हुआथा। ग्यारह वर्षकी अवस्थामेंही आपने काशीमें अध्यय समाप्त करदिया और वृन्दावन चलेआये। वहां कुछ दि रहकर वे तीर्थाटनकेलिए चलदिए। इन्होंने विजयनगर राजा कृष्णदेवकी सभामें उपस्थित होकर बड़े-बड़े विद्वानों शास्त्रार्थमें हराया और वैष्णवाचार्यकी उपाधि प्राप्तकी। विज नगरसे उज्जैन, मथुरा होकर वे वृन्दावन चलेगये और व उन्होंने बालगोपालकी पूजाका प्रचार किया। श्री वल्लभाच श्री चैतन्यमहाप्रभुके समसामयिक थे और उन्हें मिले थे [रामदास गौड़, हिन्दुत्व, ६७५-७६]

४४. श्रीचैतन्य महाप्रभु—

इनका आविर्भाव सम्वत् १५४२ में और तिरोभाव सम्वत् १५६०में। वंगालमे नवद्वीपमें हुआ। इन्हें श्रीकृष्णका प्रेमावतार मानाजाताहै। इन जैसे भावावेशमें मग्न होकर प्रेम-मदिरा छकनेवाले भक्त बहुत कम हुयेहैं। इनका प्रेम इन्हें मथुरा-वृन्दावन लेआया। और इन्होंने वंगालको व्रजभूमिसे जोड़दिया।

४५. श्री स्वामी रामानन्द—

इनका जन्म सम्वत् १३६७में प्रयागमें हुआथा। और इनका शरीरान्त सम्वत् १४५६मे हुआ। इनके समयमें प्रायः सारे भारतवर्षमें मुसलमानोंके अनेक प्रकार के अत्याचार हो रहेथे जिन्हें देख इन्होंने जाति पांतिका वन्धन कुछ ढीला करनाचाहा, और सबको रामनामके महामन्त्रका उपदेश देकर अपने 'रामावत' सम्प्रदायमें सम्मलित करना आरम्भ कर दिया। इनके शिष्योंमें पीपा, कबीर, सेना, धन्ना, रैदास आदि हुए। इन्हीं की शिष्य परम्परामें स्वामी नरहरिदासके शिष्य गोस्वामी तुलसीदास हुए। इनके सम्प्रदायमे अयोध्याजी एवं अन्य स्थानोंके वैरागी कहलाने वाले साधु एवं उनके अनुयायी रामोपासक आते हैं। [रामदास गौड़, हिन्दुत्व, ६८४-८७]।

४६. गोस्वामी तुलसीदासकी वदरीनाथ यात्रा—

अब तो मतोंकी लम्बी परम्परा चलपड़ी। गुरु नानक [सम्वत् १५२६-१५९६] ने हरद्वार, काशी, गया, मक्का आदि सभी तीर्थोंकी समभावसे यात्रा कीथी। गोस्वामी तुलसीदासजी [सम्वत् १५५४-१६८०] ने, जिनका रामचरितमानस हिन्दुओं में वेदसे भी अधिक प्रचलित और प्रसिद्ध है, वदरीनाथकी यात्रा कीथी। वैसे कुछ लोग कहतेहैं कि उन्होंने कैलासयात्रा

भी की थी किन्तु स्वामी प्रणवानन्द इससे सहमत नहीं हैं। [एक्सप्लोरेशन इन तिब्बेट, १४१] । फिर भी यह निश्चित है कि उन्होंने बदरिकाश्रमकी यात्राकी थी जैसा कि विनयपत्रिकाके निम्न छन्दोंसे पता चलताहै।

नौमि नारायणं नरं करुणायनम्,
ध्यान पारायणं ज्ञानमूलम्।
अखिल संसार उपकार कारण सदय,
हृदय तप निरत प्रणतानुकूलम्॥
सकल सौंदर्यनिधि, विपुल गुण धाम,
विधि वेद बुध शंभु सेवित अमानम्।
अरुण पदकंज मकरन्द मन्दाकिनी मधुप मुनिवृन्द कुर्वन्ति पानं।
पुन्यवन शैलसरि बदरिकाश्रम, सदाऽसीम पद्मासनं एक रूपं।
सिद्ध योगीन्द्र वृन्दारकानन्दप्रद, भद्रदायक दरस अति अनूपं।
मान मनभंग, चितभंगमद, क्रोध लोभादि पर्वतदुर्ग, भुवनभर्ता।
द्वेष मत्सर राग प्रबल प्रत्यूह प्रति, भूरि निर्दय क्रूरकर्म कर्ता।
विकटतर बक्र क्षुरधार प्रमदा, तीव्र दर्प कदर्प खर खड्गधारा।
धीर गंभीर मन पीरकर, तत्रके बराका वय विगतसारा॥
परम दुर्घट पथ, खल असंगत साथ,
नाथ नहीं हाथ वर विरतियष्टी।
दरशनारत दास, त्रशित मायापास,
त्राहि ! त्राहि ! दास कष्टी॥
दास तुलसी दीन, धर्म संबल हीन,
श्रमित अति खेद, मति मोहनाशी॥
देहि अवलम्ब, न विलम्ब अंभोजकर,
चक्रधर तेज-बल शर्म-राशी॥

सारा वर्णन बदरीनाथ यात्रा का द्योतक है। मनभंग, चितभंग क्षुरधार और खड्गधार बदरीकाश्रमके पर्वतोंके नाम है।

[शुक्ल, दीन, दास, तुलसीग्रन्थावली, भाग २ विनयपत्रिका, पृ ५६५-६६] तुलसीदास जीके समयसे वैरागी नागा प्र. गुसाईं साधुओंकी सेना तीर्थोंकी रक्षा करती और तीर्थयात्रा करते मिलतीहैं। कहतेहैं बदरीनाथके वर्तमान मन्दिरकी रचना वर्दरीराजनो वैरागी की आज्ञासे गढवाल नरेशने कीथी।

४७. वैरागी-और तीर्थयात्रा—

बदरीकेदार क्षेत्र की यात्राको निरन्तर बनायेरखनमें वैरागियोंका बहुत बडा हाथ है। ये मुगलकालमें भी बेधडक दूर-दूर तककी तीर्थयात्रा करतेथे और कैलास, मानसरोवर तक पहुँचतेथे। इन्हीं वैरागी साधुओंका भेष बनाकर तथा इन्हींके साथ सन् १६२५-२६ [सम्वत् १६८२] में पुर्तगाली जेसुएट फादर अन्तोनियो दे अन्दरादे बदरीनाथ पहुंचेथे और माणा से एक पथप्रदर्शक लेकर माणा घाटा होकर हूणदेश [तिब्बतमें] छपराग गएथे। अप्रैल १६२६ में उन्होंने यहा ईसाई गिरजेकी नींव डालीथी।

४८. वैरागियोंकी तीर्थयात्रा, स्लीमैनका वर्णन—

सन् १८३५-३६ में मेजर जनरल स्लीमैनने लिखाथा,— वैरागी लोग अपने जीवनका आरंभिक और मध्यभाग चेलोंके रूपमें चलकर भारतके समस्त भागोंमें फैले हुए 'विष्णु' मन्दिरोंकी यात्रा करनेमें बितातेहैं। जीवनके शेष भागमें जब वे किसी मन्दिरके प्रधान पुजारी बनजातेहैं अपने इसी प्रकार यात्रा करनेवाले चेलोंकी कथा सुनानेमें बितातेहैं। ये सम्भवतः इस देशके सबसे बुद्धिमान लोग है। उनमें सभी जातियों और सभी वर्गोंके लोग होतेहैं। छोटा से छोटी जातिसे लेकर बडी जातिवाले भी वैरागी बनजातेहैं। जिस देवताकी ये पूजा करते हैं, उसकी सेवा सब भेदभाव हटादेताहै। उनमेंसे थोड़ेही

जितना पढ़ना जानतेहैं। पर वे मनुष्यको और वस्तुओंको पहचाननेमें बड़े चतुर होतेहैं जो उनकी चित्तवृत्ति समझतेहैं, उनके लिए वे प्राय अत्यधिक मिलनसार और सन्मार्ग बतानेवाले साथी सिद्ध होतेहैं और उससे हृदय खोलकर बातें करतेहैं। [स्लामैन, रेम्बल्स एण्ड रिक्लेक्शन्स, भाग १, पृ० ३६४]

४९. उत्तराखण्डके तीर्थोंमें वैरागी—

सत्तरहवीं-अठारवीं शताब्दीतक उत्तराखण्डके तीर्थोंमें जानेवाले यात्रियोंमेंसे सबसे अधिक संख्या वैरागियोंकी होतीथी। ऋषिकेशसे बद्रीनाथ तक सारे यात्रामार्गमें मिलनेवाले अनेक नये वैष्णव मंदिर विशेषकर रामके मन्दिर और रामके नामसे या रामायणमें आए नामोंसे सबन्धित नामोंवाली चट्टियोंके नाम इन्हींके प्रचारके चिन्ह हैं। लक्ष्मणझूला, देवप्रयाग, रामपुर, रामनगर, रामबाड़ा, भरतमंदिर आदि दर्जनों नाम इन्होंने दियेहैं।

सन् १८१८ में डाक्टर पातीरामने लिखाथा—'गढ़वालके वैष्णव रामानुज सम्प्रदायके वैरागी हैं जो जनेऊ पहनते और चुटिया रखतेहैं। वे अपने शवोंको जलाते और हिन्दुप्रथाओं का पालन करतेहैं। वे विष्णु, राम और कृष्ण तथा अन्य अवतारोंको मानतेहैं। और अन्य देवी देवताओंमें विश्वास नहीं करते। ये गलेमें तुलसीकी माला धारण करतेहैं और अपने माथे पर खड़ीसे त्रिशूल जैसे तीन चिन्ह बनातेहैं। इनमें से कुछ नन्दप्रयागमें बसेहैं और बड़े धनीहैं। यात्राकालमें ये बदरीनाथ चलेजातेहैं और वैष्णव साधुओंके लिए नन्दप्रयागसे बदरीनारायण तक सदावर्त लगादेतेहैं, जिनमें साधुओंके निवास और भोजनकी व्यवस्था होतीहै। अधिकांश वैष्णव शास्त्रोंके

पंडितहैं । [पातीराम गढवाल एनशिएन्ट एन्ड मौडर्न, १०-३-१०४]

५०. नांगा सन्यासी—

मुस्लिमयुगमें तीर्थोंकी रक्षाके लिए सदा कटिबद्ध रहनेवाला दूसरा दल नांगा-संन्यासी साधुओंका था। जिसके संस्थापक दादूदयाल [सम्वत् १६०१ से १६६०] के शिष्य सुन्दरदास थे। ये ब्रह्मचारी सैनिकका काम करतेहैं। जयपुरराज्यने रक्षाके लिए रियासतकी सीमापर ये नौ पडावोंमे रहतेहैं। जयपुरदरबारसे इन्हें बीस हजारका खर्चा मिलताहै।[1] [रामदास गौड़ हिन्दुत्व, ७३७]

५१. अब्दालीके अत्याचार और वैरागी-सन्यासी—

मुगल साम्राज्यके पतनके दिनोंमे जब रुहेले और अफगान उत्तर भारतमें गांव-गांवमे फैलकर हिन्दुओंपर अत्याचार कर रहेथे, उस समय वैरागी और नांगा साधु अपने प्राण देकर भी मन्दिरोंकी रक्षा करतेथे। राजवाड़े द्वारा संपादित 'मराठ्यांच्या इतिहासाचीं साधनें' खंड १ मे पत्र संख्या ६३ से तथा अनेक मुसलमान इतिहासकारोंके लेखसे पता लगताहै कि सन् १७५७ में नागा सन्यासियोंने किस प्रकार अब्दालीके आक्रमणसे गोकुलकी रक्षा कीथी। इस घटनाका यहा संक्षेपमे उल्लेख करना आवश्यक है जिससे पता लगसके इन तथा-कथित 'मुफतखोरों'ने हिन्दुमन्दिरोंकी रक्षाके लिए कितना बलिदान कियाहै।

फरवरी १७५७ मे अहमदशाह अब्दालीने नजीबुद्दौला और जहानखानके पास बीस सहस्र सेना देकर आज्ञा दी,—'मथुरा हिन्दुओंका तीर्थ है……वहां सबको तलवारसे काटडालो। आगरा तक एक भी व्यक्ति खड़ा न छोड़ो'। अब्दालीने अपनी सेनाको लूटमार करनेकी खुली छुट्टी देदी। जो कुछ वे

लूटमारमें लायेंगे वह उन्हीं के पास रहने दियाजायगा। जो सैनिक हिन्दुओंके शिर काटकर लावे, वह मुख्य वजीरके तम्बूके बाहर उन खोपड़ियोंकी मीनार बनावे। प्रत्येक हिन्दु खोपड़ीके लिए उसे शाहीकोपसे पांच रुपया दियाजायगा। [इंडियन ऐंटीक्वेरी, १९०७,पृ०५१, [सरकार फॉल ऑव मुगल एम्पायर, खंड २, ११७]

अफगानों और रुहेलोंका यह दल अपने स्वामीकी आज्ञाका एक-एक शब्द पूरा करनेके लिए मथुराकी ओर चलपड़ा। मथुराकी रक्षाकेलिए यद्यपि मराठोंने रुधिरकी एक बूँद भी न बहाई पर जवाहरसिंह जाटने १० सहस्र सेना लेकर आक्रान्ताओंसे युद्ध किया और सूर्योदयसे लेकर नौ घंटे तक शत्रुसे लड़ता रहा। जब उसके अधिकांश जाट कटकर मरगये और धरती पर दोनों ओरकी १०-१२ सहस्र लाशें फैलगईं तब ही उसे घरकी ओर लौटनापड़ा।

१ मार्च १७५७ को प्रात: काल अफगान और रुहेले मथुरा नगरमें प्रविष्टहुए। लगातार चार घंटे तक उन्होंने हिन्दुजनता का कत्लेआम और नारियों पर बलात्कार किया। मथुरामें रहनेवाले थोड़ेसे मुसमानों को मुसलमना होना सिद्ध करनेके-लिए पजामा खोल कर खतना दिखानापड़ा। हुसैनशाहीने लिखाहै किइस्लामके वीरोंने मूर्तियोंको पोलोकी गदोंके समान तोड़ा और ठोकरें मारीं।३००० मनुष्योंकी हत्या, घरोंको लूट औरजलाकर तथा एक लाख रुपया और दंड लेकर जहानखां चलागया। [सरकार,उपरोक्त ११९]

लूटमार और कत्लेआमकी खुली छूट मिलजाने पर प्रत्येक सैनिक स्वयं घोड़ेपर चढ़कर अपने साथ, एक दूसरेसे ऊंटोंके समान रस्सियोंसे बंधेहुए दससे लेकर बीस तक घोड़े लेजाता-था। वे आधी रातमें लूटनेके लिए चलपड़तेथे और सूरज

निकलनेके तीन घंटे पश्चात् लौटतेथे। प्रत्येक सैनिकके सभी घोड़े लूटकी सामग्रीसे लदेहोतेथे। सबके ऊपर बन्दी बनाई-हुई युवतियां और दास बिठाएहोतेथे। वे कटेहुए शिरोंकी गठरी बन्दी बनाएहुएलोगोंके शिरोंपर रखकरलातेथे। तब उन खोपड़ियोंको भालोंसे बींधकर मुख्य वजीरके तम्बूके द्वारपर पुरस्कारके लिए लेजातेथे। प्रतिदिन इसीप्रकारका हत्याकांड और लूटमार होतीथी। रातको जब अफगान और रुहेले बन्दी हिन्दुनारियोंपर बलात्कार करतेथे तो उनकी हाय-हाय कानोंको बाधर बनादेतीथी। [सरकार, उपरोक्त १२४]

५२. कत्लेआमके पश्चात् रुहेलोंके अत्याचार—

कत्लेआमके पश्चात जब अफगान चलेगए नजीबुद्दौला और उसकी सेना मथुरामें ३ दिनतक पड़ीरही। नूरुद्दीन हसनने लिखा है "उन्होंने बहुतसा धन लूटकर तथा गड़ा हुआ खजाना खोदकर लेलिया और अनेक सुन्दर नारियोंको उठालेगए। जमुनाकी नीली धाराने अपनी उन अनेक पुत्रियों को अपने अंकमें लेकर चिरशान्ति देदी जो भागकर उसमें कूद-अनेक भाग्यवान नारियोंने अपने घरके कुंओंमें ही छलांग लगाकर कालीमापूर्ण जीवनसे अपनेको बचालिया। किन्तु वे अभागी नारियां जो बचरहीं मृत्युसे भी बुरा जीवन बिताने बाध्य हुई"। [सरकार उपरोक्त, ११६-२०]

एक मुसलमानने अपनी आंखोंदेखा दृश्य इस प्रकार वर्णन किया है:—

"बाजार और गलियोंमें सर्वत्र धड़ रहित शिर पडेथे और सारा नगर धधक रहाथा। अगणित घर टूटकर गिरपड़ेथे। जमुना का नीला जल रक्तसे भरकर पीला बनकर बहरहाथा। कत्लेआमके दिन से लेकर सात दिन तक यमुनाका नीला जल

रुधिरके समान लाल बनकर बहता रहाथा और उसके पश्चात ही पीला बनाथा। नदीके तट पर मैंने वैरागी और सन्यासियों की अनेक झोंपड़ियां देखीं जिनमेंसे प्रत्येकमें साधुके कटे हुए शिरके साथ रस्सी द्वारा गायका कटा हुआ शिर बांध कर लटकायाथा और साधु के मुखमें गायके कटेहुये शिरका भाग डालाहुआथा"। [सरकार. उपरोक्त, १२०]

" जहानखा मथुरासे वृन्दावन पहुँचा और यहां उसने ६ मार्चको विष्णु के अत्यन्त नम्र उपासकों (वैरागियों) का उसी प्रकार कत्लेआम किया। वही मुसलमान लेखक आखों-देखा वर्णन लिखताहै। सर्वत्र लाशोंके ढेर लगेथे और बड़ी कठिनाईसे मार्ग मिलताथा। एक स्थान पर हमने एक ही ढेरमें २०० बच्चों की लाशें देखी। किसी भी लाशपर शिर नहीं था। इतनी दुर्गंध फैलीथी कि सांस नहीं लेसकतेथे "[सरकार, उपरोक्त, १२०-२१]

अब अब्दाली अपनी सेना लेकर बल्लभाचार्य के समृद्धशाली गढ़ गोकुल पर चढ़आया और गोकुल लूटनेके लिए उसकी सेना आगे बढ़ी।

५२. नांगासाधुओं द्वारा गोकुलनाथ मन्दिरकी रक्षा—

नांगा सन्यासी और वैरागी मथुरा और वृदावनमें मन्दिरों का पतन, मनुष्योंका घोर संहार, नारियोंपर बलात्कार और साधुओंकी निर्मम हत्या देखचुकेथे। अब ये चुप रहनेवाले न थे। "यहां राजपूताना और उत्तरभारतके लड़ाकू नांगा सन्यासी डटेखड़ेथे। ये नंगे, राख मले ४००० साधु गोकुलके बाहर अफगानोंसे जूझपड़े। उनमें से आधे कटमरे पर उन्होंने अब्दालीकी सेनाके भी इतने ही व्यक्तियोंको मारडाला। इस पर बंगालके सूबेदारके दूत जुगुलकिशोरने प्रार्थना की कि फकीर

की झोपड़ियोंमें कुछ धन नहीं रहता, और अब्दालीने अपनी सेना हटाली। इस प्रकार एक-एक बैरागी (साधु) कटिमरा पर गोकुल के स्वामी गोकुलनाथकी रक्षा होगई। [सरकार, उपरोक्त, १२१-२२]

५४. अंग्रेजी राज्यके आरंभिक दिनोंके नांगा साधु—

अंग्रेजी राज्यके आरंभिक दिनोंमें ये तीर्थयात्री नांगा सन्यासी अंग्रेजोंकी दृष्टिमे चुभतेथे। वारेन् हेस्टिंग्जने सर जार्ज कोलब्रुकके पास २ फरवरी १७७३ के पत्रमें निम्नलिखित बातें लिखीथीं,—

"आपको सन्यासियों अर्थात् रमते-फिरते फकीरोंके उपद्रवका वृत्तांत ज्ञात ही होगा। ये लोग हर साल इसी समय हजार-दस हजारका दल बांधकर जगन्नाथजीकी यात्रापर जाते समय इस प्रांतमे उपद्रव मचातेहैं। कप्तान टामस नामक एक वीर सैनिक अफसर इन लुटेरोंके फेरमें पड़कर मारागया। [ग्लेगके स्मरणलेख, भाग, १, पृ० २८२]। ६ मार्च १७७३ को हेस्टिंग्जने जोशिर्द डुप्रेको एक पत्र लिखाथा, उससे स्पष्ट होजाताहै कि ये सन्यासी, नांगा सन्यासी थे।

"इन लोगोंका इतिहास बड़ा विचित्रहै। ये तिब्बतकी पहाड़ियोंके दक्षिन, काबुलसे चीन तक फैलीहुई विस्तृत भूमिमे रहतेहैं। ये प्रायः नंगे रहतेहैं। न तो इनकी कोई निश्चित बस्ती है न घर द्वार। बाल-बच्चे भी नहीं हैं। ये एक जगहसे दूसरी जगह घूमतेरहतेहैं। और जहां-कहीं हटे-कट्टे बालक देखपातेहैं वहींसे उन्हें उड़ालातेहैं। इसीसे ये लोग हिन्दुस्तानमें सब से बढ़कर वीर और कार्यपटु मनुष्य हैं। इनमें कितने ही सौदागर भी हैं।' ये सब रमते जोगी हैं। और सब लोग इन का बड़ा सम्मान करतेहैं। इसी कारण हम लोगोंको सर्वसाध-

रण से न तो इनका कुछ पता लगताहै, न इन्हें दबानेमें सहायता मिलतीहै। यद्यपि इस विषयमें बड़े-बड़े-बड़े आज्ञापत्र जारी किए जाचुकेहैं। ये लोग वर्ष-वर्ष इस प्रांतमें ऐसे घुस पड़तेहैं, मानों आसमानसे टपक पड़ेहों। ये बड़े हट्टे-कट्टे, सहसी और उत्साही होतेहैं। हिन्दुस्तान में ये जिपसी अर्थात् सन्यासी ऐसे ही अद्भुत हैं। [क्लेगके स्मरणलेख, भाग १, पृ०२६७] बंकिम-चन्द्रके 'आनन्दमठ' उपन्यासकी पृष्ठभूमि में यही सन्यासी हैं। इसी ग्रन्थके परिशिष्ठ में क्लेगके स्मरण लेखसे उपरोक्त उद्ध-रण दिएगएहैं।

५५. आजके नांगा साधु—

आज हमारे-साधु-महात्माओं, सन्यासियों और वैरागियों को अनेक व्यक्ति "धार्मिक ठग", "हिन्दुजाति पर जोंक" आदि नानाप्रकारके शब्दोंसे पुकारकर अपनी विद्वता बघारतेहैं। मैं स्वीकार करताहूँ कि इस पौन करोड़ व्यक्तियोंके झुंडमें नकली साधुभी मिलतेहैं, पर यह नहीं भुलासकते कि हिन्दु तीर्थोंकी रक्षा और तीर्थयात्राके प्रचारमें साधु-महात्माओंका बहुत बडा हाथ रहाहै। यदि हम इन्हें तीर्थोंकी सेना कहें तो अत्युक्ति न होगी। जहाँ कहीं मन्दिरकी सम्पत्ति आदि पर कोई अधि-कार करनेलगताहै, हम साधुओंको धरना देते, आन्दोलन करतेपातेहैं। १६३६-४० ई० के दिल्लीके शिवमन्दिर सत्याग्रहमें सैकड़ों साधु कारागार गएथे। बदरीनाथ मन्दिरकी व्यवस्था ठीक करनेका आन्दोलन करनेवाले साधु ही थे। और आज भी यदि साधुओंको संगठित कियाजाय, यदि इन्हें शंकराचार्य रामानन्द, वल्लभाचार्य जैसे नेता मिलें तो यह हिन्दुओंकी बड़ी धार्मिक सेवा करसकतेहैं।

५६. गढ़वालके वर्तमान नांगा और अन्य साधु—

गढ़वालमें विभिन्न समयोंमें विभिन्न सम्प्रदायोंके साधुओंका प्रवेश होतारहा। तीर्थस्थान होनेके कारण यहां अनेक साधु चलेआए और इनकी देखादेखी यहां भी साधुओंकी कमी न रही। "अनेक दसनामी आदि साधु गावोंमें बसगएहैं। ये शैवधर्मके उपासक हैं। इनमेंसे अधिकांश गृहस्थी बनगएहैं, और उन्होंने भूमि जोड़लीहै। ये न तो जनेऊ पहनतेहैं और न चुटिया रखतेहैं। ये रुद्राक्षकी मालायें धारण करतेहैं। इनमेंसे अनेक शरीरपर राख मलतेहैं और भगोंया पहनतेहैं। ये अपने शव गाड़ते और उसपर समाधि बनातेहैं।" उनके कष्टरहित 'साधू' जीवनने गढ़वाली नारियोंके सन्मुख बहुत बुरा उदाहरण उपस्थित कियाहै; जिनमेंसे सैकड़ों सन्यासिनी-माइयां बनगईहैं। [पातीराम, गढ़वाल, एनसियेंट ऐड मॉर्डन १०२-१०३]

इन गृहस्थी जोगियोंकी भारी संख्या गंगाजीकी घाटीमें गढ़वाल और टेहरी दोनोंमें मिलतीहै। श्रीनगरके आस-पास इनके गढ़ हैं। पौ, गढ़वाल सेटलमेंट रिपोर्ट, (१८९६), पृ० ४५, स्टोवेल, मैन्युएल, पृ० १४]

५७. मुसलिम और ब्रिटिश राज्यकालमें उत्तराखडकी यात्रा—

हम देख चुकेहैं कि श्री मध्वाचार्यने सम्वत् १२९० विक्रमी [१२३३ ई०] के लगभग रामेश्वरमसे चलकर बदरिकाश्रमकी यात्राकीथी। रामेश्वरमसे हरिद्वार, बदरिकाश्रम या गंगोत्तरी से गंगाजल लेकर चढ़ानेकी प्रथा प्राचीनकालसे चलीआरहीथी और इसी प्रथा और तीर्थयात्रा मार्गका अनुसरण आचार्यने कियाहोगा। संभवतः उन्होंने इलतुतिमिशके राजकालमें यह यात्रा कीहोगी। मुगलोंसे पहलेके हिन्दुविरोधी

मुसलमान बादशाहों जैसे फिरोज तुगलक, सिकन्दर लोदी, आदिके राज्यकालमें तीर्थयात्राका संकट बढाहोगा। पर साहसी लोगोंने, परम्पराको कुछ न कुछ बनाएरखाहोगा। मुगल बादशाहोंकी नीति अधिक उदार थी, और उनके शासनकालमें बदरी केदारकी यात्रामें सभवत राज्यकी ओरसे कोई बाधा न रहीहोगी।

५८. बद्रिनाथका बलिदान—

फारश्ता, मखजान-इ-अफगान तथा तारीख-इ-दाउदी से पता चलताहै कि जब सिकन्दरलोदी मथुराके मन्दिरोंका विनाश कररहाथा तो बुद्धन नामक एकसाधूने इसका विरोध कियाथा और सिकन्दरकी आज्ञासे मुसलमान न बननेपर उसे प्राण दण्ड देदियागयाथा। [शिवप्रसाद डबराल, महाराणा संग्रामसिंह, १२,५०।६५]

५९. अकबर द्वारा दल प्रेषण—

अकबर स्वयं गंगाजलका बडा प्रेमीथा। उसकेलिए तांबेके बर्तनोंमें गंगाजल पहुचताथा। अकबरके पीछेभी मुगल बादशाह गंगाजल पियाकरतेथे। लडाईके मैदानमें जानेपर तांबेके पात्रोंमें भरकर गंगाजलभी साथमें चलताथा, क्योंकि यह शीघ्र बिगडता नहींहै। [बंकिमचन्द्र, राजसिंह, भूमिका]

कहतेहैं कि अकबरने सोहलवीं शताब्दी इसवीके मध्य (१७वीं विक्रमी) मे गंगाजीके स्रोतका पता लगानेकेलिए एक दल भेजाथा जो गंगास्रोत ढू ढता हुआ मानसरोवर पहुँचाथा। उस दलने एक मानचित्रभी प्रस्तुत कियाथा, जिसमें सतलुज और ब्रह्मपुत्रको मानसरोवरसे तथा सरजूको राक्षसतालसे निकलता दिखलायागयाथा। [प्राणानन्द, एक्सप्लोरेशन इन तिबेट, १५०] इस कथनमें सत्यता होसकतीहै क्योंकि अकबर

अशिक्षित होतेहुयेभी नए स्थानों और नयी बातोंके जाननेके लिए सदा उत्सुक रहताथा। उसमें धार्मिक कट्टरता न थी, और वह अपने युगमें बहुत प्रगतिशील था। यह दल गंगोत्तरी अथवा बदरीनाथके चिरप्रचलित यात्रामार्गसे ही गयाहोगा।

६०. जेसुएट पादरियोंका साहस—

सोलहवीं-सत्रहवीं शताब्दी ईसवीमें बदरी-केदार क्षेत्रकी यात्रा भलीप्रकार प्रचलित थी जिससे अन्तोनियो ये आन्द्रादे नामक जेसुयेट पादरीको गोआसे चलकर तिब्बतमें इसाईधर्म का प्रचार करनेकी सूझी। फादर मैनुएल मारकस और दो अन्य भारतीय इसाई सेवकोंके साथ अन्तोनियो १६२४ ई० [सं० १६८१] में गोआसे चलकर आगरा पहुंचा। और ३० मार्च १६२४ ई० को गंगाकी उपरली घाटीमें यात्रा करनेवाले हिन्दू तीर्थ-यात्रियोंके दलके साथ होलिया। उसका मार्ग संभवतः हरिद्वार होकर श्रीनगर (गढ़वाल) के राजाके राज्यसे होकर गयाथा। तबतक कोई गोरा इस प्रदेशमें न पहुंचसकाथा। यह दल फिसलनेवाली चट्टानों और घने वनोंसे होकर आगे बढा। नीचे गर्तोमे गंगाजी गरजरह थी। अपने मार्गमे आगेबढ़कर यह साहसी पुर्तगाली विष्णुगंगाकी घाटीसे होकर आगे बढ़ा, और बदरीनाथ पहुंचा। जहां, हिमालयके इस भागमे हिन्दुओंका सबसे उच्चतीथ है, जहां हिन्दू तीर्थयात्रियों की भीड़ लगीरहतीथी। बदरीनाथके पासके माणागांवसे इन्होंने अपने साथ एक पथ-प्रदर्शक लिया। कई दिनोंके पश्चात वे अगस्त के आरम्भमें तिब्बतमें छपरांग पहुँचे। छपरांगमें अन्तोनियो केवल एक महीने रहा और नवम्बर १६२४में आगरा पहुँचकर उसने अपनी यात्राका मनोरंजक वर्णन लिखा, जो १६२६में लिसोवा (लिसबन) मे छपाथा। वह हरिद्वार,

श्रीनगर, बदरीनाथ, माणा, भोटिया जैसे नामोंका प्रयोग करताहै जो आजतक चलेआते हैं। [स्वेन हेडिन, ट्रांसहिमालय, खंड २, पृ० २६८-३०४]।

अगले वर्ष वह फिर छपरांगके लिए चलपड़ा। और अगले २५ वर्षोंमें लगभग १८ मिशिनरी इसी प्रकार छपरांग पहुँचे। अंतोनियो अपनी दूसरी यात्राके पश्चात १६३० ई०में फिर गोवामें मिलताहै। १६३४में वह तीसरी बार छपरांग आनाचाहताथा, पर १५ मार्चको ही उसका स्वर्गवास होगया। अवश्य ही बदरी-केदारक्षेत्र और कैलासकी यात्रा इन दिनों भली प्रकार प्रचलित रहीहोगी।

६१. राजा बाजबहादुरका सदावर्त—

अल्मोड़ेके चन्द्रराजा बाजबहादुरने, जिसका राज्यकाल सन् १६३८ से १६७८ [संवत् १६९५ - १७३५] तक है, यह सुनकर कि हूँणियालोग कैलास-मानसरोवरके तीर्थयात्रियों पर अत्याचार करतेहैं, ऊंटाधुरा घाटेसे होकर हूणदेशपर आक्रमण किया और कैलास-मानसरोवर पहुँचा। उसने कैलास-मानसरोवर जानेवाले समस्त मार्गोंपर अपना अधिकार करलिया। कैलाससे लौटने पर उसने सन् १६७३ [संवत् १७३०] में कैलाश-मानसरोवर जानेवाले यात्रियों के लिए पांचगांव 'गूंठ' लगादिए। इसका वर्णन उसने अपने ताम्र पत्रमें कियाहै। [प्रणवानन्द, कैलाश-मानसरोवर, पृ० २२१] इन कैलास-मानसरोवर जानेवाले यात्रियोंमेंसे बहुधा बदरी-केदारक्षेत्रकी यात्रा करके कैलाश-मानसरोवर जाते रहेहोंगे।

६२. टैवर्नियरका उल्लेख—

सन १६५३में टैवरनियर भारतमें था। वह लिखताहै कि हिन्दू गंगाजलको इतना पवित्र समझतेहैं कि गंगाजीकी ...

घाटियोंसे गंगाजल मंगाकर उसे विवाहमें वितरण करतेहैं। वे अपनी स्थितिके अनुसार प्रत्येक पाहुनेको एक या दो प्याले गंगाजल पीनेको देतेहैं। किसी-किसी विवाहमें दो सहस्र से लेकर तीन सहस्र रुपये तकका गंगाजल बिकताहै। [बाल, टैवरनियर, खंड २, पृ० २३१-२५४; स्लीमैन रैम्बल्स एण्ड रिकलेक्शन्स, खंड १, पृ० २५६ टि०]

६३. हरवलभकी कैलास यात्रा–

अठाहरवीं शताब्दीमें, संभवतः शताब्दियों पहलेसे ही नीती घाटेसे भी यात्री कैलास पहुँचतेथे। संवत् १७८६में हरवल्लभ नामक एक ब्राह्मणने नीती घाटाहोकर कैलाश-मानसरोवर की यात्रा कीथी। सन् १८१२ में साधू-वेशमें मूरक्राफ्ट और कैप्टेन हेरेसको छिपाकर यहीं हर बलभ नीतीकेमार्गसे हूँण देश में प्रविष्टहुआथा। [प्रणवानन्द,एक्सप्लोरेशन इन तिब्बेट,पृ०१५३]

६४. गंगाजीके स्रोतकी ढूंढ–

सन् १८०८में कैप्टिन रेपर गंगाका स्रोत ढूंढनेकी इच्छासे वेवके साथ विष्णुगंगाजीकी घाटीमें माणा गांवतक पहुंचाथा। उसने केवल गढ़वालका सुन्दर भौगोलिक वर्णनही नहीं लिखा वरन् १८०३ के भूचालद्वारा हुई क्षतिका भी वर्णन किया। [एशियाटिक रिसर्चेज, खंड ११, ओकले होलि, हिमालय, १५२] एशियाटिक रिसर्चेजमें एक दूसरा लेख कोलब्रुकका भी छपाथा जिसका शीर्षक था, "हिमाद्रि या इमोदसमें गंगाजीका स्रोत"।

६५. स्लीमैनका वर्णन–

अनेक यूरोपियन पर्यटकों, लेखकों और सरकारी कर्मचारियोंने अंग्रेजी साम्राज्यके आरंभिक दिनोंमें हिंदुस्थानमें सर्वत्र प्रचलित तीर्थयात्राका बड़ा रोचक वर्णन कियाहै। मेजर जनरल स्लीमैनने सन् १८३५-३६ में स्वास्थ्य-सुधारके लिए नर्मदासे

चलकर हिमालयकी यात्रा कीथी। उसने तीर्थयात्राका आंखों देखा अत्यन्त रोचक वर्णन लिखाहै। इसमें सन्देह नहीं कि उसने जैसी तीर्थयात्रा देखीथी भारतमें शताब्दियोंसे ठीक उसी प्रकारसे तीर्थयात्रा होतीरहीहोगी। वह लिखताहै,—

हिन्दुस्थानके राजपथोंपर विचरतेहुए यूरोपियन पर्यटकका ध्यान सबसे अधिक उन नाना प्रकारके तीर्थयात्रियोंकी ओर आकर्षित होताहै जो उसे मार्गमें मिलतेहैं। विशेषकर नवम्बर के अन्तसे, जबकि बरसाती खेती काटलीजातीहै और अगली खेती बोदीजातीहै, ये सहस्रोंकी संख्यामें चलतेमिलतेहैं। इन मेंसे अधिकांश नर-नारी हरिद्वारसे, जहां गंगाजी हिमालयसे उतरकर मैदानमें जातीहै, गंगा-जल लेकर हिन्दुस्थानके विभिन्न भागोंमें स्थित शिव और विष्णुके मन्दिरोंकी यात्रा करने जाते हैं। इस जलको देव-प्रतिमाओंपर डालतेहैं, और तब यह "चन्दामिरत" (चरणामृत) कहलाताहै। तब इस जलको प्राय: पुनः एकत्रित करलेतेहैं और भविष्यमें रोगी होनेपर औषधिके रूपमें इसे पीतेहैं।

तीर्थयात्री गंगाजलको छोटी-छोटी कुप्पियोंमें लेजातेहैं। यह हरिद्वार या गंगाजीकी उपरली घाटीके जिन तीर्थोंमें लायाजाता है, उन तीर्थोंके प्रधान पुजारियों [पंडों] की उन पर मुहर लगी होतीहै। ये कुप्पियां दो बन्द टोकरियोंमें, जो एक डंडेके दोनों किनारों पर लटकी होतीहैं, बन्द करके कंधेपर उठाकरलेजाई जातीहैं।

जो लोग इस प्रकार हरिद्वार और उपरले तीर्थोंसे गंगा जल लेकरचलतेहैं, वे तीन प्रकारके होतेहैं। पहले वे जो तीर्थयात्री के रूपमें इसे हिन्दुस्थानके मैदानोंके विभिन्न तीर्थोंके मन्दिरोंमें चढ़ानेको लेजातेहैं। दूसरे वे, जो दूसरोंके सेवक होतेहैं, अथवा मजदूरी पर गंगाजल लेजातेहैं। तीसरे वे, जो वेचनेके लिए

गंगाजल लेजातेहैं। शीतकालमें खेती बोलेनेके समयसे ले॰ उसे काटनेसे पहले तक अर्थात् नवम्बरसे मार्च तक हिंदुस्तान जमींदार और किसानोंका एक बड़ा भाग अपना खाली समय इस पवित्र कार्यमें लगताहै। वे घरसे अपनी कॅवार लेकर चलते हैं, अथवा उसे मार्गमें खरीदलेतेहैं। तीर्थोंमें स्नान करके तथा देवताको गंगाजलसे स्नान करालेनेके पश्चात् व उससे अपनी अभिलाषाएं और प्रार्थनाएं सुनातेहैं और तब घर लौट आतेहैं। नवम्बर से मार्च तक हिंदुस्थान की सड़कों पर जो लोग ऐसे चलते मिलतेहैं उनके तीन चौथाई इसी प्रकारके तीर्थ यात्री होतेहैं। अन्य मौसमोंमें मिलनेवाले ऐसे लोगोंसे तीन चौथाईसे अधिक मजूरीपर या सेवकके रूपमें गंगाजल ले जातेहैं, अथवा विक्रयार्थ लिए गंगाजल लेजानेवाले होतेहैं। [स्लीमैन, रैम्बल्स एंड रिकलेक्शन्स भाग २ पृ०२८६०]

६६. स्वास्थ्यरक्षाके लिए तीर्थयात्रा—

तीर्थयात्रा केवल पुण्यके लिए ही नहीं, स्वास्थ्य-लाभके लिए भी कीजातीथी। "हमें एक सम्मानित परिवारके चार सदस्य मिले जो अपने रुग्ण पुत्रके स्वास्थ्य लाभकेलिए तीर्थ-यात्रा कररहेथे। इन्होंने तीर्थतक आने-जानेमें बारह चौदह सौ मीलकी यात्रा कीथी और सारे रास्तेमें अपना भार स्वयं ढोतेचलेथे। उन्हींके समान हिन्दुस्थानके सभी भागोंमें प्रति वर्ष कई लाख परिवार यही करतेहैं। वायु परिवर्तन और व्यायामके कारण लड़के को स्वास्थ्यलाभ होगया और इसमें सन्देह नहीं कि उन्हें इसके अतिरिक्त और भी कई लाभ पहुंचे होंगे। किन्तु धार्मिक व्यक्तिके अतिरिक्त किसी दूसरे चिकित्सकके कहनेपर वे इसप्रकार स्वास्थ्य लाभ केलिये इतनी लम्बी यात्रा करनेके लिए कभी प्रस्तुत न होसकतेथे।" [स्लीमैन, रैम्बल्स ऐंड रिकलेक्शन्स खंड, १, पृ०२६२]

गोरखा शासनके दिनोंमें भी तीर्थयात्रापर कोई प्रतिबन्ध न था। गोरखे अत्याचारी होनेपर भी तीर्थ और मन्दिरोंके भक्त थे। उन्होंने अनेक मंदिरोंको गूंठ भूमिदान दीथी और गंगोत्री के मन्दिरका निर्माण कियाथा। सन् १८१४ई० के गोरखा-युद्ध के पश्चात् गढ़वालपर अंग्रेजोंका अधिकार होगया।

६७. ट्रेलका अपराध–

कुमाऊँके प्रथम अंग्रेज कमिश्नर ट्रेलको हिन्दु यात्रियों द्वारा बदरीनाथ-केदारनाथ और कैलाश-मानसरोवर जैसे दुर्गम स्थानोंकी यात्रा करतेदेखकर स्वयंभी इन दुर्गम स्थानोंमें पहुँचने की प्रेरणा मिलीथी, इसलिए उसने इन मार्गोंको निरापद बनाने का भरसक प्रयत्न कियाथा। इंडिया हाउस लन्दनमें १८३०ई० [सं. १८८७] के लगभग एक बहसमें ट्रेलके इस मार्गकी पोइंडर नामक एक अंग्रेजने कड़ी आलोचना कीथी कि वह असभ्योंकी मूर्तिपूजाको प्रोत्साहन देरहाहै। [पी, वैरन, पिलग्रिम्स, वांड-रिंग्ज इन दि हिमालयाज, नोटस, अक्टूबर १८४२, पृ०६४; यमुनादत्त वैष्णव 'अशोक', त्रिपथगा, दिसम्बर, ५६]

६८. उन्नीसवीं शताब्दीके अंत तक–

अंगरेजी राज्यकी स्थापना होजानेपर धीरे-धीरे सुव्यवस्था होगई और मार्गभी पहलेसे अधिक सुखकर बननेलगे। उन्नसवीं शताब्दीके अन्तमें पादरी ओकलेने लिखा था-"केदार और बदरी जानेवाले यात्रामार्गपर प्रतिवर्ष हिन्दुस्थानके विभिन्न भागोंसे धुरदक्षिणसे भी सहस्रों व्यक्ति चलतेहैं। दूरीके कारण दृश्य और दृष्टिकोणमें आकर्षण उत्पन्न होजाता है। इसलिए प्रायः दक्षिणी यात्री अन्य प्रान्तोंके यात्रियोंकी अपेक्षा अधिक श्रद्धालु और अधिक संख्यावाले होतेहैं। यह तीर्थ, कोई नया तीर्थ नहींहै। ऐसा प्रतीत होताहै, इस तीर्थकी

यात्रा अत्यन्त प्राचीन कालसे, उस समयसे जबकि शिव राष्ट्रीय देवताभी नहीं बनसकाथा, और ब्राह्मणोंने उसे वैदिक प्रकृतिदेवोंके स्थानपर स्वीकारभी न कियाथा, चली आरहीहै। [ओकले, होलि हिमालय, १३०]

६९. यह है भारत—

"आजके भौतिकवादी संसारके लिए यह समझना कठिन है कि वह कौनसा सजीव विश्वास है जिसकी प्रेरणासे लाखों हिन्दू लम्बी और कठिन यात्रा करके इन पवित्र स्थानोंपर पहुँचतेहैं जो बड़ी बड़ी नदियोंके स्रोतों, सगमों तथा तटों और भीलों या सोतोंके पास तीर्थ मानेगयेहैं, जो हिमालय तथा अन्य पर्वतों पर अथवा ऐसी गुफाओंमें मानेगयेहैं जिनके संजयमें अत्यन्त प्राचीन गाथाएं चलीआतीहैं। सुर दक्षिणसे वे उत्तरकी उन हिमाच्छादित गुफाओंतक पहुचतेहैं जहांसे गंगा-यमुनाके प्रवाह आरंभ होतेहैं। वे हिमालयमें बदरी केदार तक पहुँचतेहैं तथा तिब्बतकी चुभनेवाली शुष्क शीत,वायुवाले पठार पर कैलाश पर्वतमें शिवके स्वर्गतक की यात्रा करतेहैं। सुर उत्तरसे चलकर वे सुर दक्षिणमें रामेश्वरमतक पहुचतेहैं,जहा वे उस शिवलिंगकी पूजा करतेहैं, जो प्राचीन गाथाओंके अनुसार रामचन्द्रजी द्वारा स्थापित कियागयाथा। सचमुच हिमालयसे लेकर कुमारी अन्तरीप तक सारा भारत तीर्थ-यात्रियोंकी सम्पदा है।

"उनमेंसे अधिकाश बड़े दरिद्र होतेहैं, यद्यपि उनमें, उन्हींके साथ चलतेहुए, राजा और रानीभी मिलजातेहैं। अनेक बहुत वृद्ध होतेहैं। बहुत बड़ी सख्या नारियोंकी होतीहै, और अंधे और लगड़ेभी कम नहीं होते। पर वे बेधड़क आगे बढ़तेहैं, कष्टोंकी चिन्ता नहीं करते, लक्ष्यतक पहुचनेके लिए

तिबद्ध रहते हैं। विश्वास और भक्ति उन्हें प्रोत्साहित करते हैं। उन्हें पूरा विश्वास है कि यदि वे किसी न किसी प्रकार हिम-शीतलजलमें गोता लगा सकेंगे तो उनके सारे पाप धुलजायेंगे अथवा अदृश्य रहनेवाले देवता या ऋषि, जिनकी वे नम्रता-पूर्वक स्तुति करतेरहतेहैं, उनकी मनोकामना पूरी करदेंगे। धरतीके किस भागपर देशके कोने-कोनेसे इस प्रकार पचास लाख व्यक्ति एकत्रित होसकते हैं जैसे प्रति १२वेंवर्ष बारी-बारी से प्रयाग, हरिद्वार, नासिक और उज्जैन के महाकुंभोंमें होते हैं? यह है हिन्दुस्थानियोंका पूज्य हिन्दुस्थान, अब भी सजीव, अब भी सत्य!" [एमरशन सेन, कल्चरल यूनिटी आफ इंडिया, ४४]

७०. बदरीनाथकी यात्रा—यही अंतिम अभिलाषा

"अधिकांश हिन्दुओंकी धरती पर सबसे बडी लालसा, इन पवित्र स्थानों, बदरी-केदारकी यात्रा हुआकरतीहै, जिससे जन्म जन्मांतरके पाप दूरहोते हैं। और मोक्ष प्राप्तहोताहै। यात्रा-मार्गकी प्रत्येक चट्टान और नदी-नालेका संबंध किसी देवी-देवता या ऋषिसे मनाजाताहै और प्रत्येकका अपना अलग-अलग माहात्म्य है। यहां प्रकृति की असीम निर्जनता और ऊबड़-खाबड़ दृश्यावली स्वयं ही इस विश्वास की पुष्टि करतीहै कि यहीं महान देवता महादेवका निवासस्थान होसकताहै। इन तीर्थोंतक पहुँचाने वाली गहरी घाटियोंसे होकर अत्यन्त परिश्रमसे ऊपर चढ़नेवाले, थके मैदानी यात्रीको जब साथी यात्री या गुमास्ताचुपचाप श्रद्धापूर्वक चलनेका आग्रह करताहै-जिससे देवता कुपित न हो तो उसे सचमुच देवताकी उपस्थितिका अनुभव होनेलगताहै। यदि फिर भी कुछ यात्री गीतगान करतेरहतेहैं और क्रुद्ध देवता अपराधियों पर हिमानी लुढ़का

देताहै तो भयभीत यात्री विश्वास करनेलगतेहैं कि उन्होंने अपने देवताका तुरंत कठोरदंड देनेवाला रूप देखलियाहै। और देवताको प्रसन्न करनेकी प्रतिज्ञा करतेहैं।

"यात्रामार्गमें पूजाप्रवृत्ति को प्रोत्साहन देनेवाली सभी बातें मिलतीहैं। यहां प्रभावोत्पादक मोहक दृश्यावलीहै। मन्दिरोंकी भरमार है। रहस्यपूर्ण एवं रंगीली पूजाविधियां हैं। तथा पूजा-उपासनामें रत रहनेवाले कुशल भक्त मिलतेहैं। सचमुच वह व्यक्ति अत्यन्त भावहीन होगा जो तीर्थ-यात्राके पश्चात असंतुष्ट ही घर लौटेगा। [शेरिंग-वेस्टर्न तिबेट एंड ब्रिटिश बोर्डरलैंड, ५४-५५, एटकिनसनके हिमालयन डिस्ट्रिक्ट-स से उद्धृत]

अध्याय-६ वर्तमानकालमें उत्तराखंडकी यात्राकी तैयारी

१—उत्तराखडके धाम—

उत्तराखडकी यात्रामें, जैसा पहले कहागया है, यमुनोत्तरी, ...री, केदारनाथ और बदरीनाथ, इन चार धामों की यात्रा आतीहै। इनके साथ कैलास-मानसरोवरकी यात्रा भी गिनसक्ते हैं। कैलास-मानसरोवर सदासे उत्तराखडके तीर्थ रहेहैं और सहस्राब्दियोंसे हमारे पूर्वज उनकी यात्रा करतेरहेहैं। कैलास पर्वतके अनुकरण परही शिवलिंगकी कल्पना कीगईहै। कैलासको शिवजीका स्थान और मानसरोवरको गगाजीका उद्गम माना जाताहै। वास्तवमें गगाजीमानसरोवरसे नहीं निकलती। पर मानसरोवरसे निकलनेवाली नदी आजभी गगाछू [गगाजल] कहलाती है। जो गगाजीका मानसरोवरसे सबध जोड़देतीहै।

२ – भाषा—

उपरोक्त चारोंधाम उत्तरप्रदेशके उत्तराखड डिवीजन से उत्तरकाशी, टेहरी, गढवाल मे चमोली और अलमोड़ासे पिठोरागढ, सीमात जिले बनाए गए हैं । जहा हिन्दीकी ही एक बोली गढवाली बोलीजातीहै । यहाँ प्रत्येक व्यक्ति हिन्दी समझता और कामचलाऊ हिन्दी बोललेता है। अस्तु इन चार धामोंकी यात्रामें भाषाकी तनिक भी कठिनाई नहीं है। कैलास मानसरोवरकी यात्राके लिए तिब्बती भाषाका बोध होनाचाहिए। कामचलाऊ तिब्बती भाषा तिब्बती रीडरोंसे सरलतापूर्वक सीखी जासकतीहै। यदि ऐसा न करसकें तो अपने साथ दुभाषिया रखनापड़ताहै। जो भारवाहक नीति, भाषा, लिपूलेख आदि द्वारो से मिलते हैं वे दुभाषियाका काम भी देदेते

हैं, कोई अन्य व्यक्ति नहीं लेजानापड़ता । कैलास-मानसरोवरके मार्गमें आजकल कुछ बाधाएं उपस्थित होगईहैं, इसलिए पता लगानेके पश्चात् यात्रा करनी चाहिए ।

३—भोजनसामग्री—

चारों धामोंके यात्रा मार्गपर एक मीलसे लेकर पांच मील तककी दूरीपर स्थान-स्थान पर चट्टियां बनी हैं, जहां आटा, चावल, दाल, साग-सब्जी, मसाले, घी लकड़ी, मिट्टी का तेल, भोजन बनानेकेलिए वर्तन आदि सभी आवश्यक वस्तुएं मिल जातीहैं । मार्गमें जहाँ बाजार हैं, वहां पकी-पकाई रोटी मिठाई दूध भी मिलजातेहैं । चाय तो पग-पग पर मिलतीहै । अपने साथ भी बहुतसे यात्री सत्तू, आटा आदि ले चलतेहैं । कैलास-मानसरोवरकी यात्राके लिए तो सारी भोजनसामग्री साथ लेजानी पड़ती है । तिब्बतमें कोई वस्तु नहीं मिलसकती ।

४—यात्रा का समय—

चारों धामोंकी यात्रा वैशाख शुक्लपक्ष से लेकर दिवाली तक अर्थात् मईसे नवम्बर तक होसकतीहै । उसके पश्चात् हिमपातके कारण मार्ग रुद्ध होजातेहैं, मईके आरम्भ तक मार्गोंपर हिम छायारहताहै । अनेक स्थानोंपर हिमपर चलनापड़ताहै और हिमके द्वारा शीतकालमें सड़कोंको जो हानि पहुँचतीहै, वह तबतक पूरी नहीं होती । इसलिए यात्रा करना कठिन होताहै । ऊँचेपर्वतों पर हिमानी टूटनेका भय बनारहताहै । सबसे उत्तम समय १५मईसे सारे जूनमास तक है । वर्षा आरम्भ होजानेपर अनेक कष्ट पहुँचते हैं । मार्गमें नदी-नाले, चट्टियोंमें गीली भूमि, गीली लकड़ी, वस्त्रों और बिस्तरेका भीग जाना आदिसे यात्रा में आनन्द नहीं

आता। सितम्बरमें कुछ वर्षा बन्द रहती है और सुहावना मौसम रहता है। केदारनाथ-बदरीनाथ दोनों या एकधामकी यात्रा उन दिनोंभी होसकती है। पर शीत कुछ बढ़जाता है। जून मासमें तो १० सहस्र फीट तक-अर्थात् केदारनाथ को छोड़कर शेष तीन धामोंमें, दिनमें, बिलकुल शीत नहीं रहता और रात्रि को एक-दो कम्बलों में निर्वाह होजाता है। जिनको चारों धामों की यात्रा एक साथ करनी हो, उन्हें तो अवश्य मई १५ तक यात्रा आरम्भ करके वर्षा आरम्भ होने से पहले केदारनाथ पहुँच जाना चाहिए। जिन्हें हिमालयके दृश्योंके चित्र लेने हों उनके लिए भी ग्रीष्मकाल ही अति उत्तम है। क्योंकि वर्षाकालमें कुहरा छाजानेसे चित्र नहीं खींच सकते। "बी" पर समय देकर भी चित्र ठीक नहीं उतरते। दिवालीको चारों धामोंके कपाट बन्द होजाते हैं और उत्सव मूर्तियां और पंडे तथा इन तीर्थोंके अन्य निवासी नीचे उतर आते हैं। केवल कुछ तपस्वी महात्मागण गंगोत्तरीमें ठहरे रहते हैं। अब कुछ बदरीनाथ केदारनाथमें भी ठहरने लगे हैं। सुना है एक-दो महात्मा भोजवासा, चीड़वासामें भी ठहरेरहते हैं।

५—वस्त्र—

मई-जूनमें चारों धामोंकी यात्रा करनेवाले अधिकांश यात्री साधारण ऊनी वस्त्र (कोट) तथा सूती धोती या सूती अथवा ऊनी पाजामा पहने मिलते हैं। अधिकांश नारियां सूती धोती और जम्फर पहने मिलती हैं। पर ऊनी वस्त्र पहनना अधिक उचित और निरापद है। कैलास-मानसरोवरकी यात्राके लिए लगभग १७००० फीटके घाटे पार करने होते हैं। अस्तु पहननेके वस्त्रों के संबंधमें बहुत सावधानी रखनी पड़ती है। छाता अथवा बरसाती, लाठी और चमड़े का जूता आवश्यक हैं।

यात्रामार्गमें अनेक स्थानोंपर मोची नहीं मिलते हैं, अस्तु जूता टिकाऊ और पैर न काटनेवाला होना चाहिए। कपड़े और रबड़के सस्ते जूते, या खड़ाऊं अथवा चप्पल सब व्यर्थहैं और शीघ्र टूटकर धोका दे देते हैं। और विना जूता चलनेमें पैरोंपर फफोले पड़ जातेहैं। यदि उचित हो तो दो जोड़ी जूते साथ लेजाने चाहिए, दोनों को पहले एक-दो मास तक चलालेना चाहिए। नया जूता यात्रामार्गमें शत्रु बनजाताहै। ध्यान रखना चाहिए कि शरीर रक्षा सबसे अधिक आवश्यक है। इसलिए वस्त्र और छाता तथा जूतोंके सबंधमें पूरी सावधानी रखनी चाहिए। जूता न पहन कर दुखी रहने की अपेक्षा जूता पहनकर यात्रा करना अधिक अच्छा है।

६--आवश्यक सामग्री--

हिमालय की यात्राओं के लिए निम्न सामग्री प्रायः आवश्यक समझी जाती हैं। जिनका अपने वित्त, स्वभाव, आयु, और शक्ति के अनुसार संचय करनाचाहिए।

१—पूरे सूती और ऊनी गरम कपड़े। रुई की बंडी साथ नहीं लेजानी चाहिए, यह भाग कर कष्ट देगी।

२—शिर पर ऊनी टोपी (मंकी कैप) जो कानों तक ढक सके।

३—गुलूबन्द, जिससे शिर और कान बांधे जासकें।

४—ऊनी दस्ताने, चमड़े के समूरवाले दस्ताने अति उत्तम रहते हैं।

५—ऊनी मोजे और सादे मोजे, यात्रा की लम्बाई के अनुसार कई जोड़े अपने पास रखने चाहिए, हिममें चलने पर

मोजे अच्छे न होने पर अंगुलियाँ शीत से नष्ट होजाती हैं।

६—छाता।

७—बरसाती कोट और टोपी हल्के ग्रोवेनाइडके भी मेल जाते हैं।

८—ऐसे जूते जो हिम और पत्थरों पर भी काम दे सकें बाटा के मोटे रबड़ के तले वाले, जिनमें चमड़ेके नीचे रबड़ लगा हो, सबसे अच्छे रहते हैं।

९—बल्लम के समान नीचे लोहे से मढ़ी सिर के बराबर लाठी जिसके सहारे आवश्यक होने पर कूदा जा सके।

१०—दो अच्छे मोटे कम्बल। रजाई-गद्दे-बिलकुल न ले जाने चाहिए। ये भीगने पर व्यर्थ ही नहीं होजाते वरन भार बन जाते हैं। कैलास, मानसरोवर यात्रा के लिए चुगटा, थुलमा साथ लेने होंगे। ये किराए पर भी मिल जाते हैं।

११—एक रबड़ लगा मोमजामा, या ऐसा कपड़ा जिसमें सब सामान लपेटा जा सके, और वर्षा होने पर भीगे नहीं।

१२—थोड़ी खटाई, इमली, या सूखे आलूबुखारे जो चढ़ाई में जी मचलने पर खाए जा सकें। अधिक ऊँची जोतों पर भोजनकी इच्छा बिल्कुल नहीं रहती। केवल मिठाई अच्छी लगती है। चौकलेट या ऐसी मिठाई जो कई दिन तक बिगड़े नहीं, साथ रखसकतेहैं, डिब्बोंमें बन्द चटनी, मुरब्बा, अचार भी साथ रखसकते हैं। कईयात्री ऊंची जोतों पर काली मिर्च या लौंग या अदरख चबाते हैं।

१३—कुछ औषधियां जैसे सोडामिंट, सल्फरगो गोनाइडिन, आयोडेकन, सारीडिन, पेलुड्रीन, चोट लगने पर कोई मलहम, आर्द्रलोशन, अजवाइन और कालालमक ...

थोड़ी रुई और पट्टी बांधने के लिए वस्त्र कमसे कम एक फ्लेमीन, अजवाइन, कालानमक, दस्त रोकनेकी औषधि और पिपरमेंट की टिकिया तथा कुछ रुई और कपड़ा अपने साथ अवश्य रखने चाहिए।

१४—वैसलीन तथा धूपका काला चश्मा। ऊंची ओटों पर चलनेसे पहले मुख-हाथों पर वेसलीन मल लेनाचाहिए हिममें सदा धूपचश्मा लगाएरखना चाहिए नहीं तो चकाचौंधसे आंखोंको हानि पहुँचतीहै। वेसलीन मलकर पोंछना नहीं चाहिए।

१५—मोमबत्ती, टार्च, टार्च के अतिरिक्त सेल, दियासलाई की कई डिबियाँ, लालटेन, तेलका ऐसा डिब्बा जिसमें रिंगवाला ढक्कन हो, तथा जिसमें एक बोतल मिट्टीका तेल आसके। कैलास मानसरोवर-यात्रा पर मिट्टीके तेलका छोटा टिन साथ लेजाना होगा।

१६—भोजनके हलके बरतन, चारों धामों की यात्रा पर चट्टियोंमें बरतन मिलजाते हैं, अपने साथ एक लोटा, छोटी बाल्टी, एक गिलास, रखना आवश्यक है। कैलास-मानसरोवर यात्रा के लिए सभी बर्तन साथ लेजाने आवश्यक हैं। वहा ऊंचाई के कारण भात-दाल नहीं पकसकते। ईंधन नहीं मिलता, अस्तु इनके लिए बरतनों को लेजाना व्यर्थ होता है। पानी के लिए तमलेट या फ्लास्क साथ लेजाना चाहिए।

(१६) बार'बार लम्बी तीर्थयात्रा नहीं होतीं, इसलिए कैमरा और फिल्म साथ रखकर चित्र खींचने चाहिए। फिल्म को आर्द्रता से बचाना चाहिए, चित्र लेना अत्यन्त सरल कार्य है, अवश्य सीखना चाहिए।

१७–भोजन-सामग्री—

थोड़ा सत्तू या बिस्कुट-जैसी वस्तुए अपनेपास रखसकते हैं। शेष सब भोजन सामग्री आटा, चावल, दालि, घी, मसाला आदि चट्टियों पर मिलता है। आलू मिलजाता है, बद्रीनाथ-मार्गको छोड़कर सर्वत्र दूध मिलता है। कैलास-मानसरोवरके लिए सारी सामग्री साथ रखनी होगी।

३७–सावधानी—

इन यात्राओंमें निम्न बातें ध्यान में रखनी चाहिए।

(१) 'लघुर्थव' अपने पास व्यर्थका भार न बढ़ाना चाहिए जितने कम सामानसेसरलता से कार्य चलसके उतना ही अपने पास रखना चाहिए। कुलियों के भरोसे बहुत सी सामग्री लादलेचलनेसे बहुत झंझट रहता है।

(२) सभी सामान कुलियोंको न देकर थोड़ा सा जल-पान का सामान, सूखे मेवे या पेड़े, खटाई, पानी का तमलेट या फ्लास्क फोटो खींचनेका केमरा और फिल्में नोटबुक, पेनसिल, कलम, चाकू, यात्रागाइड, नकशा, दुरबीन, बरसाती, छाता; लाठी, सामान्य औषधियां अपने साथ रखनी चाहिए। कुली पीछे छूटजातेहैं और प्रायः पगडंडियों के रास्ते चलते हैं। आवश्यकता होने पर वस्तुओंके पास न रहने से कष्ट होता है।

(३) रुपया-पैसा सब अपने पास रखना चाहिए। कुलियों के पास न देनाचाहिए, एक-एक रुपए के नोटोंकी बैंकों में मिलनेवाली सिली गड्डी जिसमें संख्याएं क्रमसे लगी होती हैं, साथ रखनी चाहिए, इससे हिसाब रखना सरल होता है। दस-दस या सौ-सौ के नोट लेजानेसे झंझट होता है। अपने पास

दस पाच रुपए की रेजगारी सदा रखनी चाहिए, पर उसका प्रयोग केवल उस समय करना चाहिए जब रेजगारी न मिले।

(४) नारियों को हलकी साड़ियां, बहुमूल्य वस्त्र और आभूषण अपने साथ बिलकुल न लेजाने चाहिए। पेटीकोट या सलवार अवश्य पहनना चाहिए इसी प्रकार कमीज़ या जम्फर के ऊपर ऊनी वस्त्र, या कोट।

(५) छोटे-छोटे बच्चे, विशेषकर दूध पीनेवाले साथ न लेजाने चाहिए। कई यात्री बदरीनाथ-केदारनाथके यात्रामार्ग पर छोटे बच्चे भी साथ लेजातेहैं। पर गंगोत्तरी मार्गपर छोटे बच्चे साथ रखना बड़े संकटका कामहै।

(६) मार्गमें किसी अपरिचित फल, पुष्प या पत्तोंको खाना, सूंघना, या छूना कष्ट देसकताहै। इनमेंसे कई विषैले होतेहैं और छूने या सूंघने मात्रसे खुजली, फफोले, बेहोशी आदि उत्पन्न करसकतेहैं।

(७) बहतेहुए पर्वतीय जलको पीना हानिकारक होता है। सीधे झरनेका जल बिल्कुल नपीना चाहिए जलको किसी बर्त्तनमें लेकर एक दो मिनट तक स्थिर होने देनाचाहिए जिससे उसमें मिले हुए पत्थरके छोटे छोटे कण बैठ जाएं। जल पीनेसे पहले कुछ वस्तु, जैसे एक दो दाने किशमिश या थोड़ीसी मिश्री खालेनी चाहिए। अजवाइन चबाते रहना चाहिए। उससे भोजन और जल दोनों पचतेहैं। पसीनेमें और दूरसे चले आने पर तुरन्त जल न पीनाचाहिए। दस्त होताहो तो शीतल जल न पीकर केवल उष्ण जल या चाय पीनी चाहिए।

(८) प्रात खाली पेट यात्रा बिलकुल न करनी चाहिए थोड़ा जलपान या चायपान अवश्य करलेनाचाहिए।

(९) पेटमें तनिक भी गड़बड़ हो तो भोजन बन्द कर देनाचाहिये और लम्बी यात्रा न करनी चाहिए।

(१०) चट्टीमें पहुँचकर अपने हाथसे अथवा सेवक द्वारा भोजन बनवाना चाहिए। बासी, गन्दा भोजन न खानाचाहिये।

(११) यात्रा आरम्भ करनेसे पूर्व हैजेका टीका लगालेना चाहिये। यदि आरम्भ में न लगाया हो तो जहाँ सुविधा हो लगाना चाहिए। यदि टीका में विश्वास न हो तो रोगसे बचनेके लिए औषधि अपने पास रखनी चाहिए।

(१२) मैदानसे बदरीनाथ आनेवाले यात्रियोंके पण्डा देवप्रयागमें रहतेहैं और उनके गुमास्ते भारत भरके नगरोंमें फिरतेहैं। ऋषिकेशमें भी मिलजातेहैं। उनको या उनके गुमास्तेको साथ रखना अथवा उमसे परामर्श लेनेमें प्रायः लाभ रहताहै। पण्डोंके संबंधमें आगे विस्तारसे कहाजायेगा। यमुनोत्तरी गंगोत्तरी और केदारनाथके पंडा बदरीनाथके पंडोंमें पृथक होतेहैं। बदरीनाथ जानेवाले हिमालयके विभिन्न भागों—हिमाचलप्रदेश, गढ़वाल, कुमाऊँ और नेपालके निवासियों के पंडा गढ़वालके डिमरी होतेहैं जो बदरीनाथ ही मिलतेहैं। लोग पंडोंसे चौकतेहैं पर सभी पंडे एक-से नहीं होते। पंडोंसे पहले प्रत्येक बात ठीक करदेनी चाहिए। पंडा करनेसे यात्री का प्रायः लाभ पहुँचताहै।

८—गुमास्ता—

घरजंवाईके अतिरिक्त देवप्रयागी पंडे अपने जजमानों को भारत भरके नगरोंसे एकत्रित करके बदरीनाथ पहुँचानेके लिए गुमास्तोंकी नियुक्ति भी करतेहैं। ये गुमास्ते प्रायः गढ़वाली होतेहैं। इनमेंसे कई भारतके अनेक भागों की बोलियां सरलतासे बोलसकतेहैं। यात्रियोंके साथ ये केदारनाथ-बदरीनाथ और

अन्य तीर्थों तक पहुँचते और उन्हें तीर्थों में ठहरानेका प्रबन्ध करते हैं। बदरीनाथमें इनके स्वामी पंडे रहते हैं जो स्वयं यात्रियोंको सुफल देते और उनसे दक्षिणा लेतेहैं।

सान्यालने गढ़वाली गुमास्तेका रोचक और सत्य वर्णन कियाहै। "अमरसिंह पंडा लोगोंका आदमी है। पथनिर्देशक बनकर यात्रियोंको बदरीनाथ तक पहुँचाने का उत्तरदायित्व लेकर साथ आया है। शुद्ध आचरणका ब्राह्मण(?) है। कुछ पढ़ना-लिखना भी जानता है, देवप्रयागसे कुछ दूर पहाड़के किसी गांवमें उसका मकान है। वर्षके अन्तमें पैसा पैदाकरनेके लिए हरिद्वार आजाताहै। यात्रियों की सुख-सुविधाओं की ओर उसकी तीव्र दृष्टि रहती है। मामूली बीस-तीस रुपए के लिए प्रायः साढ़े तीन सौ मील उसे चलना पड़ता है। वह भला आदमी है। और वेशभूषासे भी भद्र मालूम पड़ताहै"।

[सान्याल, महाप्रस्थानके पथपर पृ० १६]

६–गढवाली गुमास्तोंका सद्व्यवहार—

"देवप्रयागके पास किसी एक दुर्गम पर्वतके शिखरपर अमरसिंह गुमास्तेका एक छोटा-सा गांव है। घरमें उसके माता-पिता, भाई-बहिन तथा विवाहिता पत्नीहै। यात्रियोंको मेहलचौरीके रास्ते पर छोड़कर उसे चलाजाना ही होगा।

"मनुष्यके परिचय व्यवहारसे घनिष्ठ आत्मीयता होजाती है। दुःखके दिन तथा दुर्योगकी रातें हमने उसके साथ काटीहैं। वह बंधु है, वह परम आत्मीयजनहैं। उससे बिछुड़नेमें हृदयमें बहुत दुःख होताहै, मनके भीतरसे मानो किसीने जोरसे जड़मूलसे उखाड़कर फेंक दियाहो।

"अमरसिंहने यात्रियोंके हृदयपर विजय प्राप्तकीहै । वह विजयीहै, भाग्यवान्है । जिससे जो बनपड़ा—कपड़ा, चादर, कोट, तौलिया, कम्बल और रुपये–उदार हाथोंसे सबकुछ उसकी झोलीमें भरदिया। बदरीनाथने जिस चीजको नहीं पाया, उसको पाया अमरसिंह ने। देवता पातेहैं, पूजा, मनुष्य पाताहै प्रेम। अमरसिंह हमारा बड़ा आत्मीयजनहै। बहुत ही अधिक आत्मीय।

[साम्याल, महाप्रस्थान के पथपर ११७]

प्राय: अधिकांश गढ़वाली गुमास्ते यात्रियोंकी सेवा करके उनका हृदय जीत लेतेहैं, उनका प्रेम और आशीर्वाद प्राप्त करते हैं। गुमास्ता यात्रामार्गमें भगवानका दूत या ईश्वरका वरदानहै। वह सारे मार्गमें यात्रियोंकी सुख-सुविधाका ध्यान रखताहै।

देवप्रयागी पंडे अधिकांश यात्रियोंकी बड़ी टोलियोंके साथ विश्वासपात्र गुमास्ते भेजा करतेहैं, सभी गुमास्तोंका चरित्रआदर्श नहीं होता। फिर भी पंडे यह ध्यान रखतेहैं, उनके जजमानोंके साथ जानेवाला गुमास्ता यथासम्भव सज्जन और सदाचारी हो। मोटर-लारियोंकी बहुलतासे अब गुमास्तोंकी आवश्यकता निरन्तर घटतीजारहीहै।

१०–यात्रामार्ग मे मजूर—

यात्रामार्गमें भार ढोने तथा यात्रियोंको पीठ पर- या कंधे पर उठालेजानेके लिये भीमसेनके पुत्र गढ़वाली और डोटियाल अपने बड़े भ्राता घटोत्कचके समान आज भी प्रस्तुत रहतेहैं।

सारे यात्रामार्गोंपर सर्वत्र मजूर मिलतेहैं, पर जहाँसे यात्राएँ आरम्भ होतीहैं, या जहाँ मोटरमार्ग समाप्त होकर पैदल

मार्ग आरम्भ होतेहैं वहाँभी सर्वत्र मजूर उपस्थित रहतेहैं। विभिन्न यात्रामार्गों पर निम्न स्थानों पर मजूर मिलजातेहैं—

(१) यमुनोत्तरीके लिये ऋषिकेश, धरासू और डंडेल गाँवमें। यमुनोत्तरीके लिये ऋषिकेशसे डंडेलगाँव तक मोटर चलतीहै। प्रायः डंडेलगाँवमें मजूर मिलजातेहैं। पर यदि भीड़ अधिक हो तो धरासू से मजूरोंको अपने साथ मोटरमें बिठा लेजानापड़ताहै। उनका किराया स्वयं देना होताहै। यहाँ मजूर गंगोत्तरी, केदारनाथ और बद्रीनाथ तक और वापिसीमें भी साथ में लारीके अड्डे या रेलस्टेशन जानेके लिये मिल जातेहैं।

गंगोत्तरीके लिये—यदि यमुनोत्तरी न जाकर सीधे गंगोत्तरी जाना हो तो ऋषिकेश, धरासू और उत्तरकाशी और भटवाड़ीमें मजूर मिलजातेहैं। मोटरमार्ग भटवाड़ी तक जाताहै। भटवाड़ीसे मिलनेवाले मजूर गंगोत्तरी साथ जाकर वापिस भटवाड़ी तक साथ आतेहैं। यदि साथ में केदार-बदरी लेजाना हो तो बड़ी प्रसन्नता से तैयार होजातेहैं।

केदारनाथके लिये—यदि उपरोक्त मार्गसे न जाकर ऋषिकेशसे सीधे केदारनाथ जाना हो तो मजूर ऋषिकेश, देवप्रयाग, श्रीनगर, रुद्रप्रयाग और गुप्तकाशीमें मिलतेहैं। देवप्रयाग और रुद्रप्रयागमें मजूर-एजेन्सी भीहै। मोटरमार्ग गुप्तकाशी तक जाताहै। यदि भीड़हो तो रुद्रप्रयागमें मजूर साथ लेलेने चाहिए। यहाँ मजूर केदारनाथसे वापिस गुप्तकाशी-अगस्तमुनि तक अथवा केदारनाथ से वापिस नालाचट्टी, ऊखीमठ, गोपेश्वर होकर चमोली या बदरीनाथ तक और वापिसीमें जिस मोटरगाड़ी या रेलस्टेशन तक यात्री लेजाना चाहें, वहाँ तकके लिए मिलजातेहैं।

(४) यदि ऋषिकेशसे सीधे बदरीनाथ जाना होतो ऋषिकेश, देवप्रयाग, श्रीनगर, पीपलकोटी और जोशीमठमें मजूर मिलजाते हैं। ऋषिकेश से जोशीमठतक सारा मार्ग मोटरकाहै। अस्तु मजूर जोशीमठसे ही लेना उचित होताहै।

११—भारवाहन के लिए घोडा-खच्चर—

इन मार्गों पर भार वहन करनेके लिये घोड़े-खच्चर भी मिलतेहैं पर अधिक दूरीके लिए नहीं मिलते। कुछ स्थानोंमें मार्ग टूटा-फूटा होनेसे घोड़े-खच्चर लेजानेमें कठिनाई भी रहती है। जिन मार्गों में अभी तक झूलेहैं, वहाँ भी घोड़े-खच्चर लेजाना कठिनहै।

यमुनोत्तरीके लिये धरासूसे खरसाली तक और कभी-कभी यमुनोत्तरी तकके लिए घोड़े-खच्चर मिलजातेहैं। गंगोत्तरी के लिये उत्तरकाशीसे गंगोत्तरी तकके लिये मिलतेहैं। भूखी और सुखी चट्टियोंके बीच मार्ग सदा टूटता-रहता है, इसका पता लगा लेना आवश्यक है। गंगोत्तरी मार्ग पर घोड़ा-खच्चर लेजाना सदा निरापद नहीं है। गंगोत्तरी से केदारनाथ जानेके लिये मल्ला चट्टीसे सारे मार्ग के लिए घोड़े-खच्चर नहीं मिलते मार्ग कहीं-कहीं संकरा भी है। पर भोटिया घोड़ा भली प्रकार चल सकताहै। त्रिजुगी नारायणसे केदारनाथ, केदारनाथ से बदरीनाथ घोड़े-खच्चर सरलतापूर्वक आते-जाते रहते हैं। ऋषिकेशसे केदारनाथ, ऋषिकेशसे बदरीनाथ तथा बदरीनाथसे लौटने के सारे मार्गों पर घोड़े-खच्चर आनन्दसे आते-जातेहैं।

सारे यात्रा-मार्गों पर जहाँ मोटर-मार्ग समाप्त होतेहैं सवारीके लिए घोड़े मिलजातेहैं। अनेक चट्टियोंमें जहाँ चढ़ाई आरम्भ होतीहैं घोड़ेका स्वामी घोड़ा लिए खड़ा रहताहै और

स्वयं पूछताहैकि किसी यात्रीको घोड़ा चाहिये। घोड़े प्रायः आठ आना मील पर मिल जाताहै, पर इसमें घोड़ोंकी संख्या, यात्रियों की आवश्यकता, उनमें धन देनेकी शक्ति, आदि कई बातें किराये पर प्रभाव डालतीहैं। फिर भी आठ-दस आने मीलसे अधिक प्रायः नहीं लगता।

१२—नर-वाहन—

पांडवोंके समयसे आजतक इस मार्ग में धनी व्यक्ति घोड़ेकी अपेक्षा मनुष्यकी पीठ या कन्धों पर चढ़ना अधिक निरापद समझते हैं। घोड़े पर चढ़नेका अभ्यास थोड़े लोगोंको होता है। मनुष्य पर चढ़कर चलनेमे, अभ्यासकी आवश्यकता नहीं पड़ती।

१३—कंडी—

अनेक यात्री कुलीकी पीठ पर जाते हैं। कुलियों में बहुत शक्ति होतीहै। कंडी लेजानेवाला कंडीवाला कहलाता है। कंडी एक प्रकारकी टोकरी होतीहै जो पीठ पर बांधीजातीहै, उसके द्वारा सामान भी जाताहै, मनुष्य भी उसमें बैठकर जातेहैं। कंडीपर वृद्ध, छोटे बच्चे और प्रायः नारियां यात्रा करतीहैं, पर कंडीमें अधिक सुविधा नहीं रहती, कंडीको एक ही मजूर उठा लेताहै। यदि छोटा-सा बिस्तरा हो तो उसे भी साथ ही लेचलता है। मोटे व्यक्ति कंडी में नहीं बैठसकते।

१४—डंडी—

आराम कुर्सीके सामान होती है, उनके तले पर डंडे लगा-कर चार कुली कंधे पर रखकर पालकी की तरह लेकर चलते हैं। संभ्रान्त यात्री डंडीसेही यात्रा करते हैं, इसमें सबसे अधिक

सुविधा रहती है और किसी प्रकारका कष्ट नहीं होता।

१५—झांपा—

"मुर्देकी झाम्पीकी तरह उसका चेहरा होताहै। पद्मासनकी तरह उसपर बैठाजाताहै। इससे मार्गका परिश्रम तो बचजाता है, किन्तु आराम नहीं मिलता" [सान्याल, महाप्रस्थानके पथ पर, पृ० १४]

१६—कुली सीधे और सच्चे—

"इस मार्गमें 'सभ्य समाज' के समान चोरी डकैती आदि कुछ नहीं होती। इस दृष्टिसे इस ओर यात्री निरापद रहतेहैं। कुली विश्वासी, नम्र और सीधे-सादे होते हैं। पैसे के लिए उनमें मोह होता है, किन्तु उसके लिए दुष्प्रवृत्ति नहीं होती। वे विवाद करेंगे पर धूर्तता नहीं करेंगे, वे गरीब होते हैं, किन्तु गरीबी उनके हृदयको कलुषित नहीं करती, वे वित्तहीन हैं, पर चित्तहीन नहीं।" [सान्याल, महाप्रस्थानके पथ पर, १५]

१७—गढवाली-मजूर—

यात्रा मार्ग पर मजूर या तो गढ़वाली होते हैं, या डोटियाल गढ़वाली कुलियोंमेसे अधिकाश टेहरी-गढवालके यूढ़ानेदार क्षेत्रके होते हैं। नेपालसे डोटियालोंके आनेसे पहले सारे यात्रा मार्ग पर गढवाली कुलीही भारवहन करतेथे। टेहरी-गढवालके अधिकारी कुली डोटियालोंके समान ही बलिष्ट होतेहैं और स्वच्छता डोटियालोंसे बहुत आगे होतेहैं, इसलिए वे यात्रीके लिए भार वहन के अतिरिक्त भोजन बनानेका कार्य भी कर सक्ते हैं। कठिन कार्य के लिए, घोर-से-घोर दुर्गम मार्गपर चलनेके लिए जो शक्ति, साहस और कटिबद्धता डोटियालमें मिलती है,

गढ़वालीमें भी नहीं मिलती।

गढ़वाली युवक, अथवा भारवहन करनेमें समर्थ प्रौढ़ और वृद्ध भी चैत्रके महीनेके अन्तमें घरसे चलकर नीचे यात्रामार्गों पर उतर आते हैं। और यात्रियों और उनकी सामग्री को तीर्थस्थानों तक लेजाने के लिये प्रस्तुत रहते हैं। टेहरी-गढ़वाल मजूरोंकी गति पहले हरिद्वार से चारों धाम और गढवाल अल्मोड़ेकी सीमा पर मेहल-चोरी तक सीमित थी।

"जाड़ेके दिनोंमें ये लोग कैसे बचते हैं, यह तो मुझे पता नहीं किन्तु ग्रीष्म कालमें ये लोग कम्बल सिरहाने रखकर रात बितादेते हैं। कुली प्रायः ब्राह्मण या क्षत्रिय होते हैं। यात्रियों के साथ वे सोते, रहते, बातचीत करते, भूरा तम्बाकू पीते, किन्तु उनका छुआ नहीं खाते हैं। खानपान के सम्बन्धमें उनमें विस्मयकर पवित्रता है। मांसाहार करना वे पाप मानते हैं, जीवहिंसा वे कभी नहीं करते।"

[सान्याल, महाप्रस्थान के पथपर १४]

इस उद्धरणमें अन्तिम सूचना असत्य है।

१८—गढ़वाली मजूरकी सरल हृदयता—

यात्रामार्ग में कई दिनो तक साथ रहने, साथ चलने और चट्टियों में एक साथ भोजन बनाने तथा ठहरने से गढवाली कुली शीघ्र ही यात्री से आत्मीयता जोड़लते हैं, जब यात्रियोंसे विदा होने लगते हैं, तो उनका निष्कपट प्रेम फूट पड़ता है।

"गुमास्ता अमरसिंह चला गया है, आज बड़ी बालोंने भी विदा लेली, विदाई का दृश्य करुणाजनक था। तुलसी, काली चरण, तोताराम, सभी ने प्रेमपूर्वक विदा मांगी। गढ़वालियों की

यह एक विस्मयजनक सरलता है। चोधरी महाशयके कण्डी वाले तो जोर-जोर से रो रहे थे।

रानी (नामक एक विधवा नारी जो यात्रा कर रही थी) उन सबके लिये माता के समान जो है। उसके समान इतनी दयावती, स्नेहमयी देवी उन्हे जीवन में कहाँ मिल सकती थी ? रानी के दान से उनकी झोलिया भर गई। कपडे, चादर, पुराने कम्बल, वर्तन ओर नकद इनाम। मजूरीसे इनाम ज्यादा होगया।

"उम्र में जो सबसे छोटा कुली था, वह कुछ नहीं चाहता था। केवल एक अबोध शिशु की तरह रानी के आचल में मुह छिपाकर, सिसक-सिसक कर रोने लगा। पराया जिस समय अपना होता है, वह उस समय आत्मीय से भी अधिक अपना लगता है।

"ऐसा दृश्य जीवन में कभी नहीं देखा था। रानी की भी आखें सजल होगई। धनियों ओर श्रमिकों के बीच मे आज कोई अन्तर नहीं रहा। दुःखमे, दुर्योगमे, पथ-पथमे इन दीर्घ चालीस दिनों मे आज उन्होंने जाना, वह माँ उनकी अपनी माँ नहीं है। ससारके अपार जन अरण्यमें उनकी माँ अदृश्य हो जायगी।" (सान्याल, महाप्रस्थान के पथ पर, १२६)।

ऐसी न जाने कितनी माताओं को ये भोले गढवाली, थोडे से दिनोंके साथमे अपना हृदय, अपना प्रेम, अपनी श्रद्धा अपनी सेवा, अपना विश्वास और अपना सर्वस्व अर्पित कर देते हैं, और यात्रा की समाप्ति पर बार-बार यह देखकर भी नहीं देखते और देखकर भी विश्वास नहीं करना चाहते कि इनका-हमारा केवल मजूरी का सम्बन्ध है। इन तीर्थों के मार्गों में जिस दिन यह हृदयहीन "मजूरीवाद" आजायेगा उस दिन तीर्थ न रहेंगे।

१६–डोटियाल

यात्रा मार्गों में डोटियालों का बाहुल्य पिछले ३० वर्षके अन्दर हुआ है। डोटियाल नेपाल के प्राय सडोटी और सल्याण और ट्रदेहलख प्रान्तों से आते हैं। कभी–कभी हुम्ला–जुम्ला और यहाँ तक कि दक्षिणी भोटे प्रांत के डोटियाल भी पहुँच जाते हैं। डोटियालों में से अनेक कार्तिक या मार्गशीर्ष के आरंभ में अपने घरसे चलते हैं। यात्रा आरम्भ होनेसे पूर्व ये अल्मोड़ा, नैनीताल, गढ़वाल, देहरादून या शिमला तक वनों में या सड़कों पर अथवा पहाडी नगरों मे मजूरी करते रहते हैं। और यात्रा आरम्भ होते ही ऋषिकेश, देवप्रयाग, टेहरी, धरासू, डंडेलगांव, उत्तरकाशी, श्रीनगर, रुद्र प्रयाग, अगस्त्यमुनि पीपलकोटी और जोशीमठ में इनके झुण्ड के झुण्ड एकत्रित हो जाते हैं।

कुछ लोग चैत्रके आरम्भमे ही नेपाल से चलकर यात्रा मार्ग पर पहुँचते हैं और आषाढ के आरम्भ में लौट जाते हैं। इनके पास एक कम्बल या भांग की चादर, एक-दो भोजन बनाने के बर्तन तथा बांस की कण्डी होती है, इस कण्डी मे ये यात्रियों का भार या यात्री को बिठा ले जाते हैं। इनके पास अंगरेजी के T (टी) अक्षर या हिन्दी की आ की माला के समान लकड़ी की टिकान भी होती है जिस पर कभी–कभी अपना भार टिकाकर ये विश्राम कर लेते हैं। ये भार को पीठ पर लटकाये ले जाते हैं जो माथे पर लगी एक चौड़ी रस्सी के सहारे पीठ पर लटका रहता है। भार वहन करने का यह सबसे सुन्दर ढङ्ग है।

२०—कुली का भार

एक कुली का भार ३० सेर से लेकर एक मन तक होता है। कुली इससे भी अधिक ले जा सकते हैं और मांगते हैं पर अधिक भार देने से वे यात्री के साथ–साथ नहीं चल सकते,

े छूट जाते हैं और मार्ग में यात्री को कष्ट होता है और
ीक्षा करनी पड़ती है।

२१—मजूरी—

यात्रा मार्ग पर कुलियों की मजूरी की निश्चित दर होती
। वह मील के हिसाब से न होकर प्रायः धाम के हिसाब से
ती है। जैसे—

ऋषिकेश से एक धाम यमुनोत्तरी दो रुपया प्रति सेर।
ो कुली २० सेर भार ले जायगा उसे यमुनोत्तरी पहुँचने पर
० रुपये, जो १ मन लेजायेगा उसे ८० रुपये मिलेंगे आदि।

प्रायः मजूरी प्रति मन आठ-दस आना प्रति मील पड़ती
। मजूर को भोजन नहीं देना पड़ता है। इसलिये यह मजूरी
ाज के महगाई के दिनों में बहुत कम है। मजूर को कम मजूरी
देनी चाहिये। जिस मार्ग पर यात्री अपना शरीर ही नहीं
ठा ले जा सकता उस पर जो मनुष्य यात्री के भार या यात्री
ो उठा ले चलता है, उसे कम मजूरी देना अति घोर पाप है
ौर सारी यात्रा के पुण्य को नष्ट करने वाला है।

२२ सरदार—

यदि भार कई मजूर ले जा रहे हों तो एक मजूर के पास
ाधारण सामग्री देकर धनी लोग एक सरदार भी साथ रखते
ंग्रेज प्रायः ऐसा करते थे सरदार का वेतन अलग देना होताहै।

पण्डों का जो प्रतिनिधि यात्रियों के साथ चलता है, वह
गुमास्ता कहलाता है। वह सारा प्रबन्ध कर देता है। इस संबंध
की विशेष जानकारी गुमास्ता या पण्डेसे मिल जातीहै। गुमास्ता
गढ़वाली होते हैं और प्राय सन्तोषी होते हैं। तीर्थ मार्ग पर
चट्टी वाले, तथा दूसरे सभी व्यक्ति मजूर आदि का प्रबन्ध करने
मे सदा यात्री की सहायता करते हैं। कोई कठिनाई नहीं होती।

२३—चट्टियां—

यात्रा मार्ग पर ऋषिकेश से लेकर चारों धामों तक और वापिस लौटने के सारे मार्गों पर रेलवे स्टेशन तक सर्वत्र एक मील से लेकर पाँच मील की दूरी के अन्दर चट्टियां बनी हुई हैं। जिनमें यात्री ठहर सकता है, भोजन सामग्री खरीद सकता है और भोजन बना सकता है।

चट्टी शब्द की उत्पत्ति में कुछ लोग इसे 'चटाई' शब्दसे बना मानते है। उनका कहना है आरम्भ में चट्टियां रिंगाल-बाँस की चटाइयों से छाई जाती थीं और अब भी उनमें रिंगाल की चटाइयां बिछी होती हैं। मेरा अनुमान है कि 'चट्टी' शब्द तामिल के चेट्टी दूकानदार (दूकान) शब्द से बना है। दाक्षिणात्यों ने केवल हमें बड़े—बड़े मन्दिरों के पुजारी ही नहीं दिये वरन् ये चेट्टी-(चट्टी) भी दिये हैं। सम्भव है बदरी—केदार देवप्रयाग आदि मन्दिरों के पास रावलों ने जो दूकानदार बसाये हों उनको या उनकी दूकानको वे चेट्टी कहने लगे हों और फिर उनके अनुकरण पर यात्रा मार्ग में बनी ये समस्त दुकानें चट्टियां कहलाने लगी हों।

हमारे बदरी—केदार के रावल दाक्षिणात्य हैं, अनेक शिव मन्दिरों के महन्त दाक्षित्य जङ्गम या वीर शैव हैं, डिमरी पण्डे दाक्षिणात्य रावल की सन्तान हैं, देवप्रयागी पण्डों में एक वर्ग दाक्षिणात्यों का है, और यह असम्भव नहीं कि हमारी चट्टियां भी दाक्षिणात्यों की देन हो। गढ़वाली भाषा तामिल आदि द्राविड़ भाषा के शब्दों से भरी है। पाण्डवपूजा, पांडवकुडी, पितकुड़ी, आदि नाना प्रकार की प्रथाएं हमें दाक्षिणात्यों से जोड़ती हैं और गढ़वाल की सैकड़ों जातियां अपने को पंचद्रविड़ बतलाती हैं।

२४–चट्टी का आकार-प्रकार–

चट्टी यात्रा मार्ग पर उन धर्मशाला–जैसे मकानों को कहते हैं जो गढ़वाली लोगों ने यात्रियों को टिकाने के लिये स्वयं अपने धन से बनाये हैं। ये धरती से दो फीट ऊँचे चबूतरे पर बनाई जाती हैं और खुले बरामदे के समान होती हैं। इनमें प्रायः द्वार नहीं होते। अगला भाग जो यात्रा मार्ग की ओर होता है खुला रखा जाता है। अधिकांश चट्टियां एक मञ्जिल वाली होती हैं। उसको कई क्यारियोंमें बांटा रहता है। प्रत्येक क्यारी में एक चोका होता है जिसके सिरे पर चूल्हा बना होता है। चट्टी स्वामी चट्टी को भली प्रकार लीप पोतकर स्वच्छ रखता है। क्यारी में चूल्हे–चौके के लिये थोड़ा स्थान छोड़कर नीचे शेष स्थान पर रिंगाल की चटाई बिछी रहती है। चट्टी को घास या पटाल (पत्थर–सलेट से छाया जाता है। कहीं–कहीं टिनकी चादरों से छाई भी मिलती है। चट्टी का स्वामी चट्टी के एक भागमें रहताहै। वहीं उसकी भोजन सामग्री की दुकान होती है।

२५—आदमस की रिपोर्ट—

यात्रा मार्ग की स्वच्छता के निरीक्षण के लिये उत्तर प्रदेश सरकार ने १६१३ ई० में (सं० १६७० वि०) में जे० सी० रौबर्टसन, खुशहालपाल सिंह, एम० ए० हैरिस, पृथ्वीपालसिंह और जी० एफ० आदमस की एक समिति बनाई थी। उस रिपोर्ट में आदमस ने लिखा था—

'चट्टी का निर्माण इस प्रकार का होता है कि वह जिस कार्य के लिये बनी है, उसके सर्वथा अनुकूल है। चट्टी सदा सड़क के ठीक किनारे पर बनी होती है। यात्री को अपने मार्ग से एक पग भी बाहर चट्टी की ढूंढ में नहीं जाना पड़ता। चट्टी गाँव से अलग होती है और तुरन्त पहचानी जा सकती है। जहाँ सड़क

वनों से होकर जाती है, अथवा नंगे पर्वतों से होकर आगे बढ़ती है, जहाँ गाँव बहुत कम या बिलकुल नहीं हैं. वहाँ भी गढ़वाल के विभिन्न भागों के पर्वतीय लोगों ने चट्टियां बनाई हैं। इस कार्य में अग्रसर होने वाले सुमाड़ी के ब्राह्मण थे। जोशीमठ और पांडुकेश्वर के बीच घाट चट्टी के स्वामी सुमाड़ी के निवासी हैं।" (आदम्स पिलग्रिम रूट रिपोर्ट, पृ० १०)

इस रिपोर्ट में कहा गया है कि चट्टियों में जो भोजन सामग्री मिलती है, वह शुद्ध. अच्छी और सादी होती है। (पृ० ११) वस्तुओं का मूल्य कुछ अधिक प्रतीत होता है। उसका कारण है कि सारी भोज्य सामग्री बकरियों की पीठ पर भावर की मंडियों से आती है, इसलिये भाड़ा अधिक लग जाता है। (पृष्ठ १२–१३)। चट्टियों की व्यवस्था ठीक उसी प्रकार है जिस प्रकार की चाहिये। इससे अच्छी व्यवस्था दूसरी नहीं हो सकती। चट्टियों की संख्या पहले ही पर्याप्त है और निरन्तर बढ़ती जाती है। चट्टियों का मकान बिलकुल उसी प्रकार का बना होता है, जिस प्रकार का आवश्यक है। चट्टियों में प्रायः अत्यधिक भीड़ नहीं रहती। कभी-कभी यदि भीड़ बढ़ भी जाये, जैसा सर्वथा सम्भव है, तो भी ये चट्टिया इतनी खुली और हवादार हैं कि स्वास्थ्य को कोई हानि नहीं पहुँच सकती। इनमें भोजन सामग्री अच्छी होती है और उचित मूल्य पर मिलती है। इन चट्टियों की व्यवस्था के लिये किसी प्रकार का अधिनियम बनाने की आवश्यकता नहीं है। उन पर "सराय' और पड़ाव" अधिनियम लागू करना केवल व्यर्थ ही नहीं होगा, वरन् हानिकारक भी सिद्ध होगा। (आदम्स,पिलग्रिम रूट रिपोर्ट, पृ० १३)

२६–आदम्स.रिपोर्ट पर सम्मति–

आदम्स रिपोर्ट पर अपनी सम्मति देते हुए समिति ने

लिखा था—'यह रिपोर्ट इतनी स्पष्ट और आकर्षक है कि इसे पढ़ने में यात्रा करना जैसा आनन्द आता है। इस रिपोर्ट का अति मनोरञ्जक अंश वह है, जिसमें चट्टियों का वर्णन है और बतलाया गया है कि इनकी संख्या यात्रा मार्ग में प्रतिदिन बढ़ रही है तथा इनमें अच्छी भोजन सामग्री उचित मूल्य पर मिल जाती है। हम आदम्स के इस कथन से पूर्णतया सहमत हैं कि चट्टियों की वर्तमान व्यवस्था में किसी भी प्रकार की छेड़छाड़ करना सर्वथा अवांछनीय है और इनके सम्बन्ध में किसी प्रकार का अधिनियम बनाने की तनिक भी आवश्यकता नहीं है (आदम्स पिलग्रिम रूट रिपोर्ट, पर रौबर्टसन, खुशहालपाल सिंह, हैरिस और पृथ्वीपालसिंह की सम्मति पृ० १)

२७—चट्टी द्वारा पुलिस-कार्य—

सारे यात्रा मार्ग में मील-दो मील पर चट्टियां होने से यात्रियों की बड़ी रक्षा होती है। उन्हें निर्जन में लूटे जाने का भय नहीं रहता। चट्टियों में औषधियां चट्टी चौधरी से मिल जाती हैं जिससे रोगादि का भय नहीं रहता। चट्टी पर अपना सामान छोड़कर यात्री निशंक शौचादि जा सकता है। कई चट्टियों पर यात्री अपनी फालतू सामग्री चट्टी चौधरी को सौंपकर निकट के किसी तीर्थ में दर्शन करने चले जाते हैं और लौटने पर अपनी सामग्री सुरक्षित ले लेते हैं। केदारनाथ की कड़ी चढ़ाई पर यात्री अपनी सभी सामग्री नहीं ले जाते नीचे चट्टियों में छोड़ जाते हैं, लौटने पर ले लेते हैं। प्रति वर्ष एक लाख के लगभग यात्री इन मार्गों पर चलते हैं, परन्तु कभी कोई चोरी आदि की घटना नहीं होती। चट्टियां मील-मील पर सबकी रक्षा करती हैं। उन्हीं के सहारे यात्री दिन में ही नहीं रात्रि में भी निशंक यात्रा करते हैं।

२८—यात्री निश्चिंत यात्रा कर सकता है—

यात्रा मार्ग में इस प्रकार चट्टियां होने से यात्री निश्चिंत यात्रा कर सकते हैं। सारी भोजन सामग्री ईंधन, भोजन बनाने के वर्तन, आवश्यकता पड़ने पर बिस्तरा और साधारण प्रारंभिक उपचार की औषधियां भी चट्टियों में मिल जाती हैं। यात्री को किसी प्रकार की चिंता करने की आवश्यकता नहीं। पग-पग पर यात्रा मार्ग में सर्वत्र एक-एक दो-दो मील पर उसके लिये ये चट्टियां नहीं घर बने हैं। जिस पर वह बिना पूछे अधिकार कर सकता है, भोजन बना सकता है, विश्राम कर सकता है और रात्रि बिता सकताहै। यदि भोजन सामग्री चट्टी वाले से खरीदी जाती है तो वह कुछ भी किराया नहीं लेता। यदि यात्री अपनी भोजन सामग्री का प्रयोग करना चाहता है तो चट्टी वाला प्रति यात्री केवल दो आना किराया मॉगता है, जो ऐसे मार्गों पर और इतनी सुविधा मिलने से, बहुत ही कम है। इसी मार्ग पर सरकारी डाक बङ्गलों में पहले तो अनेक प्रयत्न करने पर भी स्थान मिलता ही नहीं और यदि मिलता भी है तो दो रुपया प्रति चारपाई देना पड़ता है। डाक बङ्गले सर्वत्र नहीं हैं, जहाँ हैं वे यात्रा मार्ग से कुछ दूर हैं। वहाँ यात्री इस प्रकार अधिकार नहीं कर सकता, जिस प्रकार चट्टी पर अपना-सा घर समझकर कर लेता है। सच पूछो तो ये चट्टिया यात्रा मार्ग पर भगवानके वरदानके समान हैं। जिन्हे चट्टियों से मिलने वाली सुविधा का पता नहीं रहता वे ही व्यर्थमें अपने साथ इतना भार लादे चलते हैं। यदि भारत भरमें घर-घर इस बात का पता लग जाये कि यात्रा मार्ग पर चट्टियों में कितनी सुविधाएं सरलता से प्राप्त हो जाती हैं तो इन धामों की यात्रा दस गुनी बढ़ जाये। आज जहाँ एक लाख यात्री जाते हैं वहाँ दस लाख पहुँचने लगें।

भारत सरकारके पर्यटक विभाग को इसका प्रचार करना चाहिये, जिससे भारतवासी हिमालय का सौन्दर्य देख सकें।

२६–चट्टियां धर्मशाला नहीं हैं–

कुछ लोगों की धारणा है कि चट्टियां धर्मशालाएं हैं जिनपर दूकानदार ने अधिकार कर लिया हैं। उनकी यह धारणा हैं। उनकी यह धारणा भ्रांतिमूलक है। चट्टियां दुकानदार द्वारा अपने धन से निर्मित होटल हैं जिनमें टिकने को स्थान मिलता है, पर कच्चा राशन मिलता है, पका–पकाया भोजन नहीं। पर धर्मशाला न होने पर भी ये धर्मशाला से अधिक सुलभ, अधिक लाभप्रद अधिक स्वास्थ जनक ओर अपने घरके समान हैं।

"ये चट्टियां मानों पथके किनारे बैठकर यात्रियों को निगल जाती हैं और ठीक समय पर फिर अपने पेट से बाहर निकाल लेती हैं। खैर, उपमा को उलट दीजिए। इन चट्टियों के समान बन्धु पथमें और कोई नहीं हैं।

"जो पथ सनातन ओर मनातन और वन्धनों से रहित है। जिस पथ पर मुक्तिका अनावृत अवकाश है, उस पथ पर चलना कठिन है। पथिक के पैरों मे उस पथ पर भयानक वाधा मालूम होती है। उस मरुभूमिके समान कठोर पथ पर परिश्रान्त पथिक को मादर बुलाती हैं, डाल–पात–लता आदि से निर्मित ये चट्टियां!

"दरिद्री दुखी माता मानो पथ के किनारे खड़ी होकर अपने थके–मादे बालबच्चों की बाट जोह रही है। उसके एक हाथ में झरने का सुशीतल जल है दूसरे हाथ मे विदुरका-सा रूखा-सूखा अन्न, (सान्याल, महा प्रस्थान के पथ पर, ८०–८१)

३०–बाबा काली कमली वाले का कार्य–

७०–७५ वर्ष पहले अधिकांश यात्री अपने साथ अपनी

आवश्यक भोजन सामग्री–सत्तू–आदि लाते । अंगरेजी राज्य की सुव्यवस्था से धन और प्राणों का संकट बहुत कम या नाम मात्र का रह गया. मार्ग चौड़े, कम चढ़ाई-उतार वाले और सुरक्षित बनगए, नदियों पर पुल लग गए यात्रियों की संख्या बढ़ने लगी । चट्टियां और धर्मशालाएं बनने लगीं । बाबा कालीकमली वाले ने अनेक चट्टियों पर अपने क्षेत्र खोल कर तथा धर्मशालाएं बनाकर बड़ा उपकार किया । उन्होंने एक व्यवस्था यह करदी कि उनके क्षेत्र में ऋषिकेश धन जमा करने पर उनके किसी भी क्षेत्र में आज्ञापत्र दिखाकर धनले सकते थे । इस प्रकार उन्होंने यात्रा मार्ग पर एक प्रकार से बैंककी सुविधा करदी । दूसरे । धन जमा करके, अथवा बिना धन जमा किये ही उनके आज्ञा पत्र दिखाकर उनके सदाव्रतों में सारे यात्रा मार्ग पर भोजन मिल सकता था । यात्रियों को कंबलादि वस्त्र देने और उनके लिये चिकित्सालय, औषधालय खोलनेका कार्य भी उन्होंने ही आरम्भ किया था । शिक्षाके क्षेत्र में यत्र-तत्र ईसाई मिसनरियों ने जो कार्य किया उसका कई गुनाअधिक सेवा कार्य सारे उत्तराखंडके यात्रा मार्गमें बाबा काली कमली वाले ने किया । पीछे पञ्जाब-सिन्ध क्षेत्रने भी प्रशंसनीय कार्य आरम्भ कर दिया । इन सब सुविधाओं से यात्रियों की संख्या बढ़ चली । अब तो रेल और मोटर की सुविधा इतनी अधिक होगई है कि तीन चौथाई से अधिक मार्ग मोटर से पार किया जाता है, केवल एक चौथाई से भी कम पैदल पार करना होता है । हैजा पर पूरा नियन्त्रण कर लिया गया है । इसलिये यात्रियों की संख्या एक लाख से ऊपर पहुँच गई है और कुछ ही वर्षों में कई गुनी अधिक हो जायेगी ।

–०::–(ॐ)–::०–

अध्याय १०

(१) यमुनोत्तरी-गंगोत्तरी-धाम

(१) उत्तराखण्ड के यात्रा मार्ग, प्राचीन काल में—

महाभारतकाल मे उत्तराखण्ड के तीर्थ मार्ग कितने भयङ्कर थे, यह महाभारत के तीर्थ यात्रा पर्व के उस वर्णन मे प्रकट होता है, जिसमें धौम्य के साथ पाडवों की उत्तराखण्ड की यात्रा का वर्णन है, जिसे हम पहले दे चुके हैं। प्राचीन काल में उत्तराखण्ड की यात्रा करने वाले लौटने की आशा न रखकर यात्रा करते थे। यदि सकुशल लौट आते थे तो यह भगवान का वरदान समझा जाता था। अनेक स्थानों पर ऐसे प्राचीन मार्गों के अवशेष अब भी पर्वत पृष्ठ पर रेखा के रूप मे दिखाई देते हैं। जिन्हें देखकर प्राचीन तीर्थ यात्रियों के साहस और श्रद्धा पर आश्चर्य होता है। सीधी खड़ी चट्टानों पर जिनके नीचे एक मील की सीधी खाई में गङ्गाजी गरजती थी और ऊपर शिर पर इसी प्रकार सीधी चट्टान चली गई थी, ये मार्ग जाते थे। इन पर, जिन पर आज बकरिया भी न जा सकेंगी, ये यात्री चलते थे। यह पग-पग पर मृत्यु से संघर्ष करना था। इसीलिये तो पद्म पुराण पाताल खण्ड मे कहा गया है—

> विराग जनयेत् पूर्वं कलत्रादिकुटुम्ब के ।
> असत्यभूत तत् ज्ञात्वा हरिं तु मनसा स्मरेत् ॥

तीर्थ यात्रा का निश्चय करके सबसे पहले स्त्री, कुटुम्ब, घर, धन-सम्पत्ति को असत्य जानकर उनमे तनिक भी आसक्ति न रहने दे। और मन से श्रीभगवान का स्मरण करे। (पद्म, पाताल खण्ड, १९।१६)

मार्गों की दुर्गमता, जलवायु की कठोरता और आश्रम की कमी के कारण मनुष्य को सर्वथा भगवान के भरोसे चलना होता था। नदियों पर पुल न थे। कहीं-कहीं साधारण घास का अकेला रस्सा नदी के आरपार तट के वृक्षों से बंधा होता था, जिसके सहारे बन्दर के समान मनुष्य को नदी पार करनी होती थी। आज के साधारण साहस वाले मनुष्यों के लिये ऐसी अकेली घास की रस्सी से नदी पार करना असम्भव सा है। अथवा लकड़ी की दो लम्बी कड़ियां नदी के आरपार रखकर उन पर तख्ते ठोक दिये जाते थे। सन् १८२७ में एक ऐसे ही पुल द्वारा मन्दाकिनी पार करते हुए मिस एलजाबेथ सालमोन बह गई थी। (ओक्ले, होलि हिमालय, १४६)

इसके अतिरिक्त पर्वत टूट गिरने अथवा हिमानी के खिसक आने का भय निरन्तर बना रहता था। अब अधिकांश मार्ग ऐसे क्षेत्रों से होकर जाते हैं, जहाँ या तो ऐसी बाधाएं कम होती हैं और यदि हो जाती हैं, तो उनसे रक्षा के साधन उपलब्ध हैं।

२—डाकुओं का भय

हिमालय के निचले भागों में मैदानी चोरों और ऊपर के भागों में हुणिया डाकुओं का भय निरन्तर बना रहता था। मैदान के तीर्थ तो ठगों के अड्डे थे ही।

वैरागिया नाला और जुनुम-जोर। तहाँ रहत साधु के वेश चोर।
वैरागिया से कुछ दूर जाय। इक रहत तहाँ धूनी रमाय॥

आदि में सीताराम ने इन तीर्थों का वर्णन किया है। तीर्थ ठग उतने ही प्राचीन हैं, जितने तीर्थ। कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में 'तीर्थघात' (तीर्थों में यात्रियों की हत्या करने और लूटने वाले) लोगों का उल्लेख करके दण्ड विधान किया है। (कौटिल्य, अर्थशास्त्र, ४—१०—१—पृ०—३९४)

१८३५-३६ में मेजर जनरल स्लीमैन ने लिखा था कि ऊपरले द्वाबके मुजफ्फरनगर, सहारनपुर, मेरठ और अन्य भागों में ठगोंके एक सहस्र से अधिक परिवार रहते हैं। स्थानीय अधिकारी उन्हें पहचानते हैं, पर उनका कुछ बिगाड़ नहीं सकते। टेहरी के कई गाँव ठगोंसे भरे हैं। (स्लीमैन, रैम्बल्स ऐंड रिकलेक्शन्स, खण्ड १, पृ० ८३-८४)

वे ठग प्रायः साधू का वेश बना कर फिरते थे। और यात्रियों के साथ चलकर उनके रहस्यों का पता लगाते तथा उन्हें वहाँ पहुँचाते थे जहाँ छिपे हुए ठग उन्हें लूट सकते थे। (स्लीमैन, ए रिपोर्ट ऑन दि सिस्टम रिकलेक्शन्स, खण्ड १, पृ० २६४ टि०)

अंगरेजी राज्य आरम्भ होने पर धीरे-धीरे मार्गों में भी सुधार हुआ और इन बाधाओं पर भी नियन्त्रण कर लिया गया। मार्गों के निर्माण की ओर सबसे पहले ध्यान कुमाऊँ के पहले कमिश्नर ट्रेलने दिया था। जिसका पहले उल्लेख हो चुका है।

३—आज यात्रा मार्ग निरापद है—

आज निम्न मार्गों पर पर्याप्त दूरी तक मोटरें चलने लगी हैं और शेष मार्गोंपर भी सड़कें पहलेसे अधिक अच्छी बन गई हैं।

१. ऋषिकेष—यमुनोत्तरी मार्ग पर डंडेलगांव तक, जहाँ से यमुनोत्तरी के लिये पैदल मार्ग केवल २० मील रह गया है।

२. ऋषिकेष—गङ्गोत्तरी मार्ग पर भटवाड़ी तक, जहाँ से गङ्गोत्तरी के लिये पैदल मार्ग केवल ३८ मील रह गया है।

३. ऋषिकेष—केदारनाथ मार्ग पर गुप्तकाशी तक जहाँ से पैदल मार्ग केवल २४ मील रह गया है।

४ ऋषिकेश—बदरीनाथ मार्ग पर जोशीमठ तक, जहाँ से पैदल मार्ग केवल १८ मील रह गया है।

५. ऋषिकेश कैलाश - मानसरोवर मार्ग पर जोशीमठ तक जहाँ से पैदल मार्ग केवल ११६ मील रह गया है।

अब विश्रामगृह, चट्टी, औषधालय, डाक-तार स्वच्छता आदि सबकी उचित व्यवस्था होगई है।

४—वामावर्त तीर्थ यात्रा—

उत्तराखण्ड की यात्रा में जिन्हे चारों धाम, यमुनोत्तरी, गङ्गोत्तरी, केदारनाथ ओर बदरीनाथ की यात्रा करनी हो उनके लिये 'वामावर्त' बाएं से दहिने, अर्थात् यमुनोत्तरी से यात्रा आरम्भ करके बदरीनाथ पर समाप्त करना प्रशस्त माना गयाहै। एक धामकी यात्रा करने वाले इच्छानुसार यात्रा करते हैं। पर बदरीनाथ से पहले केदारनाथ की यात्रा आवश्यक ठहराई गईहै।

५—उत्तराखण्ड के यात्रा मार्ग—

संख्या	मार्ग	दूरी	पैदल मार्ग	दूरी
१	ऋषिकेशसे यमुनोत्तरी	१२५	डंडलगॉवसे यमुनोत्तरी	३०
२	ऋषिकेशसे गङ्गोत्तरी	१५०	भटवाड़ीसे गङ्गोत्तरी	४८
३	ऋषिकेशसे केदारनाथ	१३८	गुप्तकाशी से केदारनाथ	३०
४	ऋषिकेश से बदरीनाथ	१४७	जोशीमठ से बदरीनाथ	१६

ऋषिकेश से चारों धामों या दो धामों की दूरिया इस प्रकार हैं.—

१ ऋषिकेश से यमुनोत्तरी, गङ्गोत्तरी, केदारनाथ होकर बदरीनाथ, सारा मार्ग ६१५ मील
२. ऋषिकेश से केदारनाथ, बदरीनाथ सारा मार्ग २४३ मील
३ ऋषिकेश से गङ्गोत्तरी होकर मानसरोवर २८६ मील
४ ऋषिकेश से बदरीनाथ (माणा) होकर मान सरोवर ४५६ मील
५ ऋषिकेश से नीती (दमजन) होकर मानसरोवर ३३६ मील
६ ऋषिकेष से नीती (चोरहोती) होकर मानसरोवर ३२८ मील
७ ऋषिकेशसे नीती (गणेश गङ्गा) होकर मानसरोवर ३१५ मील

६—यमुनोत्तरी-गङ्गोत्तरी ,तीन मार्ग—

यमुनोत्तरी के लिये ऋषिकेश से तीन मार्ग जाते हैं।

(१) ऋषिकेश से देवप्रयाग-टिहरी होकर।

(२) ऋषिकेश से नरेन्द्रनगर-टिहरी होकर, और

(३) ऋषिकेश से देहरादून-मंसूरी होकर।

इन्हीं तीनों मार्गोंसे गङ्गोत्तरी भी पहुँच सकते हैं। क्योंकि गङ्गोत्तरी का मार्ग इसी मार्ग में धरासू चट्टी से पृथक होता है।

७—(१) ऋषीकेश-देवप्रयाग-टिहरी मार्ग—

प्राचीन कालमें इसी मार्ग से यात्रा होती थी। ऋषिकेश से देवप्रयाग ४४ मील है। अब यहाँ मोटर द्वारा जा सकते हैं। देवप्रयागमें भागीरथी और अलकनन्दा का सङ्गम है। कुछ लोग इन दोनों धाराओं के मिले रूप को ही गङ्गा मानते हैं। यहाँ सङ्गम से ऊपर रघुनाथजी का रमणीक मन्दिर है, तथा आद्य विश्वेश्वर, तथा गङ्गा-यमुना की मूर्तियां है। यहां गृद्धाचल, नर-सिंहाचल और दशरथाचल तीन पर्वत है। इसे प्राचीन सुदर्शन क्षेत्र कहा जाता है। यात्री यहां पिंडदान-तर्पणादि करते हैं। यहां से एक मार्ग बदरीनाथ, केदारनाथ और एक टेहरीको जाता है। अभी देवप्रयाग टेहरी के बीच मोटर मार्ग बन रहा है। इसलिये देवप्रयाग से टेहरी पैदल जाना होता है।

आज भी जो श्रद्धालु यात्री पैदल यात्रा करते हैं वे ऋषि-केश से पैदल या मोटर द्वारा लक्ष्मण झूला पहुँचते हैं। यहां तार के पुलसे गङ्गाजी पार करते है। लक्ष्मणझूला में गङ्गापार स्वर्गा-श्रम और गीता प्रेस का गीता भवन दर्शनीय स्थान है। यहां से आगे गङ्गाजी के तट से होकर देवप्रयाग को पैदल मार्ग जिन चट्टियों से होकर इस प्रकार गया है। मीलों की संख्या कोष्टक में दीगई है।

गरुड़चट्टी (२)–फूलचट्टी (२)–गूलरचट्टी (२)–महादेवसैण (२)–नाई मोहनचट्टी (१)–बिजनी (३)–कुण्ड (३)–बन्दरभेल (३)–महादेव चट्टी (३)–सेमल चट्टी (४)–कांडी (३)–व्यास घाट (४)–छालुड़ी चट्टी (३)–उमरासू (२)–सौड़ चट्टी (२)–देवप्रयाग (२) इनमें से प्रत्येक चट्टी पर काली-कमली वाले क्षेत्र की धर्मशाला है। महादेव चट्टी में गोपालजी का मन्दिर है। व्यासघाट में गङ्गापार व्यासजी का मन्दिर है। देवप्रयाग में मन्दिरों का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। देवप्रयाग में बदरीनाथ के देवप्रयागी पण्डे रहते हैं, जो मैदानी यात्रियों के पण्डे हैं।

८–देवप्रयाग–

की ऊँचाई समुद्र की सतह से १७०० फीट है। बसन्त पञ्चमी को यहाँ बड़ा मेला लगता है। देवप्रयाग को देवशर्मा नामक ब्राह्मण तपस्वी ने बसाया था। देवप्रयागसे टेहरी जाने के लिये मार्ग–अलकनन्दा भागीरथी को पार करके भागीरथी के किनारे-किनारे गयाहै। इस मार्गमें चट्टियोंका क्रम इस प्रकार है–

देवप्रयाग से खर्साड़ा (१०)–कोटेश्वर (४)–बंडरिया (रॅवाली) (६) क्यारी (८)– टेहरी (६)–इनमें से टेहरी के अतिरिक्त प्रत्येक चट्टी पर काली कमली वाले क्षेत्रकी धर्मशाला है। कोटेश्वर में कोटेश्वर महादेव का मन्दिर है।

९–टेहरी–

भागीरथी और भिल्लगंगा नदी के सङ्गम पर टेहरी जिले की राजधानी है। यहां लगभग डेढ़ सौ वर्ष पुराने राजमहलों के खण्डहर हैं। बदरीनाथ-केदारनाथ के विशाल मन्दिर हैं। यहाँ के दो छोटे-छोटे मन्दिरों में कुछ अत्यन्त प्राचीन और सुन्दर मूर्तियां हैं जो टेहरी नगर बसने से पहले भी यहां तीर्थस्थान

होना सिद्ध करती हैं। इसका प्राचीन नाम गणेश प्रयाग बतलाया जाता है। टेहरी से केवल आधी मील की दूरी पर स्वामी राम-तीर्थ कुछ समय तक एक गुफा में रहे थे।

लक्ष्मणझूलासे देवप्रयाग की ओर जाते समय हिवल और भागीरथी के सङ्गम पर शिवपुरी और ब्रह्मपुरी के छोटे-छोटे मन्दिर मिलते हैं। कहते हैं स्वामी रामतीर्थ ने कुछ समय ब्रह्मपुरी में बिताया था। लक्ष्मणझूला से तेरहवें मील पर हिवल नदी के

१—दवामा हिमालय

पुल से एक मार्ग हिवल नदीमें चट्टान टूटने से बने हुए एक ताल तक जाता है जिसे १८५२ में 'वशिष्ठ सरोवर' नाम दिया है।

इस स्थान से ६ मील की दूरी पर प्रसिद्ध वशिष्ठ गुफा है, जहाँ प्राचीन कथाओं के अनुसार वशिष्ठजी रहा करते थे। यहाँ

भिगनी नामक स्थान है, जिसे माता आनन्दमयी के नाम पर आनन्दकाशी नाम दिया गया है। यहाँ उत्तर वाहिनी गङ्गा होने से बड़ा माहात्म्य माना जाता है। देवप्रयाग जाने वाली मोटर गाड़ियां व्यासी (व्यास घाट) और साक्निधार नामक स्थानों पर रुकती हैं।

१०–ऋषिकेश नरेन्द्रनगर-टेहरी मार्ग (यमुनोत्तरी मार्ग)

ऋषिकेश से नरेन्द्रनगर होकर टेहरी को जाने वाला मोटर मार्ग यमुनोत्तरी मार्ग भी कहलाता है। ऋषिकेश से पर्वत की मानो परिक्रमा करते हुए ऊपर चढ़ता हुआ मोटर मार्ग १० मील चढकर नरेन्द्र नगर। ३८५० फीट) पहुँचता है, जहाँ से मंसूरी, देहरादून, रुड़की, हरिद्वार और ऋषिकेश का अति सुन्दर

२—ब्रह्मकुण्ड हरिकी पैड़ी हरिद्वार

दृश्य दिखाई देता है। यहाँ से लगभग ४ मील दूर कुञ्जापुरीदेवी का मन्दिर है जहाँ नवरात्रि के अवसर पर बड़ा मेला लगता है

और अश्वलियां दी जाती हैं। नरेन्द्र नगरसे ऋषिकेश की ओर १½ मील पर पलसर नामक सुन्दर स्थान पर्यटकों का स्वर्ग बनता जा रहा है।

३—गंगा पुल तथा घाट हरिद्वार

नरेन्द्रनगरसे टेहरी तक मार्ग में निम्न चट्टियां पड़तीहैं। फकोट (१०)—नागणी (१०)—चम्मा (११)—टिहरी (१०) नरेन्द्रनगर से सर्पाकार चलती हुई इस मोटर सड़क पर वन भी पड़ते हैं और सबसे ऊँचा स्थान अगराखाल (५००० फीट)

—४भीमगोडा हरिद्वार

आता है। नागणी से टेहरी को उतरते समय मार्ग में वन समाप्त होने लगते हैं। टेहरी पहुँचने से पहले ही नङ्गी पहाड़ियां नग्न शब्दों में मनुष्य द्वारा मर्यादा पूर्वक वन विनाश की कथा सुनाने लगती हैं। शीतकाल में अगराखाल और चम्बा शिखरों पर
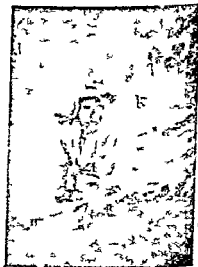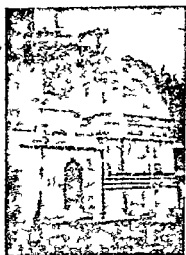
५—बद्री केदार मंदिर टिहरा ६—पूना से पैदल चलकर उत्तराखण्ड में साष्टाग प्रणाम कर यात्रा करने वाला माई।

कभी-कभी हिमपात उनकी शोभा बढ़ा देता है। मैदानों से इतने निकट हिमपात का दृश्य बहुत कम दिखाई देता है।

११—टेहरी से धरासू

ऋषिकेश से धरासू तक जाने वाला मोटर मार्ग आगे यमुनोत्तरी के लिये धरासू से डंडलगाव तक जाता है। और गङ्गोत्तरी जाने वाला मोटर मार्ग भटवाड़ी तक पहुचता है। मोटर मार्ग धरासू तक भागीरथी के बाए किनारे पर चलता है।

इसमें चढ़ाव-उतार न होने से कोई कष्ट नहीं होता। मार्ग में पड़ने वाली चट्टियां ये हैं—

टेहरी से पीपलचट्टी (सराई) (५)-भिल्डियाण (६) -छाम (५)-नगुण (५)-धरासू (५)। इन सब चट्टियों में धर्मशालाएं हैं। भिल्डियाणा में काली कमली वाले क्षेत्र की धर्मशाला है।

१२—ऋषिकेश-देहरादून-मसूरी—

ऋषिकेश या हरिद्वार से रेल द्वारा देहरादून और वहां से मसूरी को मोटर मार्ग जाता है। मसूरी से काणाताल होकर टिहरी को सड़क बन रही है। इस मार्ग में निम्न लिखित स्थान आते हैं जहाँ दुकान आदि में ठहर सकते हैं।

देहरादून से राजपुर (१)-टौलघर (१)-जड़ीपानी (२½)-बालोगञ्ज (१)-मसूरी (२½)-जबरखेत (१)-सुवाखोली (५)। यहाँ से एक मार्ग धरासू को और एक टेहरी को जाता है, तथा एक पगडण्डी उत्तरकाशी को जाती है।

सुवाखोली से थत्यूड़ा (६) मोलधार (५)-अंधियारी (७)-चापड़ा (१) स्याङचट्टी (६) और धरासू (७)। मोलधार से आगे ३ मील चढ़ाई और ४ मील उतार है। इसी प्रकार स्याङचट्टी से २ मील उतार और ४ मील चढ़ाई है।

धरासू गङ्गाजी के तट पर छोटा-सा स्थान है, पर ठहरने के लिये सुविधा पर्याप्त है। सड़क से ऊपर एक घर के अन्दर प्राचीन मन्दिर के अवशेष हैं। जो अत्यन्त विचित्र हैं।

१३—मसूरी से धरासू—

इस मार्ग में अति सुन्दर देवदारु के वन हैं और देवलसारी तथा गोरखमुण्डी नामक स्थान पड़ते हैं। छपरा, देवलसारी

और मगरा होकर मार्ग धरासू पहुँचता है । इस मार्ग में दो तीन दिन लगते हैं।

१४—धरासू से यमुनोत्तरी—

धरासू से मोटर मार्ग डडेलगांव तक जाता है यहाँ से यमुनोत्तरी दो दिन में पहुँच सकते हैं। पैदल मार्ग में धरासू से आगे की चट्टियां इस प्रकार हैं।

धरासू से कल्याणी (४) बरमखाल (ग्यूंली) (४)-सिजक्यारा (५)-राड़ी (५) गङ्गनाणी (३)-जगनाथचट्टी (५)-डंडोला (४½)-हनुमान चट्टी (४)-खरसाली (४)-यमुनोत्तरी (४)।

सिलक्यारा, गङ्गनाणी, जगन्नाथ (जमुना) चट्टी, ढंडोला के पास कुन्साला में, तथा हनुमान चट्टी में काली कमली वाले की धर्मशाला हैं। जगन्नाथ (जमुना) चट्टी से यमुनापार १ मील पर बीफ गाँव में मार्कंडेय तीर्थ और गरम पानी का झरना है।

खरसाली में शीतकालमें यमुनोत्तरी के पंडा रहा करतेहैं।

१५—यमुनोत्तरी (१०८०० फीट)

यमुना का मुख्य स्रोत यमुनोत्तरी से केवल चार मील दूर है। यमुनोत्तरी, बन्दरपूंछ महाशृङ्ग (२०७३१ फीट) की पश्चिमी ढाल पर है। यह शिखर सदा हिम च्छादित रहता है और हनुमान गङ्गा और टौंस नदी का जल विभाजक है। बन्दरपूंछ तक पहुँचने के लिये दो मार्ग हैं।

(१) खरसाली-छिमरी (२)-टीगाधार (३)-बोणाधार (६)-जखोला (४)-बन्दरपूंछ।

(२) यमुनोत्तरी से यमुना तट से होकर दूधीथातर (४) बन्दरपूंछ (३) यह मार्ग सरल है।

१६—फ्रेजर का यमुनोत्तरी वर्णन—

फ्रेजर के जौरनल ऑव ए टूर इन गढ़वाल हिमालय में यमुनोत्तरी का वर्णन इस प्रकार दिया गया है। यमुनोत्तरी में जहाँ पर्वत के हिम पिघलने से कई धाराएं एकत्रित होकर एक गर्त में गिरती हैं वह स्थान निकट होने पर भी, वहाँ तक चढ़ना असम्भव है क्योंकि इस स्थान पर नदी धार के ऊपर सीधी

७—यमुनोत्तरी

चट्टान खड़ी होने के कारण वहाँ तक चढने का मार्ग रुद्ध है। यमुनास्रोत के दोनों तटों का दृश्य ऊपर से झुककर चट्टानों ने ढक दिया है। निरन्तर आर्द्रता के कारण चट्टान का यह भाग हरा होगया है। इस पर युग-युगसे जल धाराओं ने गिरकर अनेक गर्त बना डाले हैं। इन गर्तों से होकर अगणित धाराए मिलकर यमुना की ऊपरली धारा बनाती हैं। हरे तटों पर ऊबड़-खाबड़, नङ्गी, पथरीली चट्टानें सीधी खड़ी हैं। अत्यन्त गहरे शान्त जल मार्ग हैं और जिनके ऊपर गगनचुम्बी हिम-शिखर खड़े हैं। इसकी पार्श्व भूमि इसके ही अनुकूल है। उस पर गहरी काली हरियाली वाली विशाल अद्भुत शिलाएं हैं तथा कुहरा बखेरती हुई धारा एक शिला से दूसरी शिला तक गरजती

उछलती चलती हैं।

उस स्थान पर जहाँ धार्मिक कृत्य हुआ करते हैं, नदी के उत्तरपूर्वी तट पर चट्टानें बिलकुल सीधी खड़ी हैं। इन चूने की चट्टानों से अगणित भाप बखेरने वाली गरम धाराएं निकल रही हैं। इन गरम धाराओं के और भी अनेक स्रोत हैं। जिनमें से एक विशेष उल्लेखनीय स्रोत वह है जो नदी की तलहटी में दो शिलाओं के बीच है। इससे उष्ण जल का एक बड़ा सोता ऊपर उछलता है और इसके जलके ऊपर यमुना की एक धार गिरती है। इस गरम सोते का जल अन्य सोतों के जल की अपेक्षा बहुत गरम है। इस जल में एक घड़ी भी हाथ डालना असह्य है। इससे अपार भाप निकलती है।" .

फ्रेजर लिखता है मुझे इस जलमें तनिक भी तेजाब-जैसा स्वाद अथवा गन्धक-जैसी या अन्य प्रकार की कोई गन्ध न मिली। यह जल अत्यधिक स्वच्छ, पारदर्शक और स्वादहीन है। स्नान करने के लिये स्थान वहाँ बना है, जहाँ, गरम जलका एक बहुत बड़ा सोता ठंडे जल के कुण्ड में निकलता है और उसे स्नान योग्य तापमान वाला बना देता है। गरम जलके इन गेसरों में से कुछ काफी ऊँचाई तक उछलते हैं। जब उनके ऊपर नदी आजाती है तो वे नहीं दिखाई देते। इनमें से दो गौरी कुण्ड और तप्तकुण्ड के नाम से प्रसिद्ध हैं। यमुनोत्तरी में न तो कोई मूर्ति है और न कोई मन्दिर है। (पातीराम गढ़वाल, एनशिएट ऐंड मौडर्न, १५४) किन्तु अब प्रधान मन्दिर यमुनाजी का है जिसमें गङ्गाजी की मूर्ति भी है।

यमुनोत्तरी में अनेक धर्मशालाएं हैं, जिनमें मुख्य बाबा काली कमली वाले की तथा लाला रघुनन्दन लाल की हैं।

१७—गेसर तप्तकुंड—

यहाँ के खौलते हुए जल वाले गरम सोतों के कुण्डों में
क में जो मन्दिर के निकट है १६४.७ डिग्री फार्नहाइट त
ापमान मिलता है। यात्री कपड़े में बाँध कर चावल, आ
ादि उनमें डुबो देते हैं और वे पदार्थ पक जाते हैं। वहाँ भोज
नाने के लिये चूल्हा जलाने की आवश्यकता नहीं है। इन त:
ुण्डों में स्नान करना असम्भव है और यमुनाजी का जल अ
ौर शीतल होने के कारण स्नान के योग्य नहीं है। इसलि
दोनों जलों को मिलाकर स्नानकुण्ड बनाये गये हैं। न्यूजीलैंड
तप्तकुण्डों (गेसर) में वहाँ के आदिवासी मावरी लोग अप
भोजन बनाते हैं। संसार भर के पर्यटक वहाँ देखने जाते ह
अपने देश यमुनोत्तरी में वही दृश्य है और मार्ग सरल, स्थ
निकट और व्यय बहुत कम है।

कलिन्द पर्वत से निकलने के कारण यमुनाजी कलि
नन्दिनी या कालिन्दी, कालिन्दिनी कही जाती हैं। यहाँ इत
शीत है कि बार-बार झरनों का जल जमता पिघलता है।
शीतल स्थानों में भोजन पकाने के लिये खौलते जल के कु
और स्नान योग्य तप्त जलके कुण्ड भगवानके वरदान ही सम
चाहिये। यमुनोत्तरी का स्थान छोटा-सा और संकीर्ण है। छो
सी धर्मशालाएं और छोटा-सा यमुनाजी का मन्दिर है।

यहाँ गङ्गाजी का एक अपना झरना है, जिसे गङ्गाध
कहते हैं, असित ऋषि की प्रार्थना पर गङ्गाजी ने इसे यमुनोत
में प्रकट कर दिया था। यह उज्वल जल का झरना आज
वहाँ है। हिमालय में गङ्गा-यमुना की धाराओं के मध्य द
पर्वत जल विभाजक का कार्य करता है। देहरादून के स
यद्यपि दोनों धाराएं बहुत पास आजाती हैं पर सैकड़ों मील

यात्रा करने पर ही प्रयागराज पहुँच कर उनका सङ्गम बनता है।

१८—यमुनोत्तरी से गंगोत्तरी, छायापथ

यमुना और गङ्गाजी के मूल स्रोतों के बीच दण्ड पर्वत का जल विभाजक है। यमुनोत्तरी से एक मार्ग सीधा दण्ड पर्वत को पार करता हुआ गङ्गोत्तरी पहुँचता है। यह मार्ग उस बुग्याल से होकर गया है, जो छायापथ कहलाती है। स्वामी रामतीर्थ इस मार्ग से यमुनोत्तरी से गङ्गोत्तरी पहुँचे थे।

"यात्री यमुनोत्तरी से गंगोत्तरी १० दिन से कममें नहीं पहुँचते, राम तो तीसरे ही दिन पहुँच गया। इस रास्ते पर अभी तक किसी मैदान में रहने वाले ने पैर भी न रखा था। राम ने लगातार ३ रातें निर्जन जङ्गली गुफाओं में बिताईं। उसे कहीं कोई कुटिया-झोंपड़ी न मिली। रास्ते भर में कोई दो पैर वाला जीव भी न दिखाई दिया। पहाड़ी लोग इस मार्ग को "छाया मार्ग" कहते हैं। प्रायः बारहों मास उस पर छाया ही बनी रहती है। वृक्षों की छाया? नहीं नहीं। भला वहाँ वृक्षों का क्या काम! यह मार्ग प्राय मेघों से ढका रहता है।

"यमुनोत्तरी और गंगोत्तरी के पड़ोसी गावों के चरवाहे प्रतिवर्ष दो-तीन मास तक यहाँ अपने पशु चराते रहते हैं। रात को ये हिम के ढके बड़े-बड़े गिरि-शिखरों के पास सहसा मिल गये। उन्हीं से राम को इस मार्ग का पता मिला। बन्दरपूँछ और हनुमान मुख के निकट उनसे भेंट हुई। ये दोनों गिरिशृङ्ग दोनों सरिता स्वसाओं के स्रोतों को मिलाते हैं।

"फूलों की यहां इतनी भरमार है कि समूचे मार्गमें मानो जरदोजी की दा खेती की गई है। नीले, पीले, बैंगनी भांति-भांति के फूलों से जङ्गल भरे पड़े हैं। ढेर के ढेर कमल, और बनकसा, गुललाला और गुलवदार। सौ-सौ वर्ण के एक-एक

फूल ! गूगल धूप, ममीरा, मीठा तेलिया, सालिम मिश्री, आदि अनेक रंगीन पौधे और लताएं, केसर आदि अनेक अपार सुगन्ध से भरे पौधे, तथा तुहिन सीकरोंसे भरे गर्व वाले गर्वीले ब्रह्मकमल इन सबने गिरिराज को मानो स्वर्ग और मृत्युलोक के स्वामी का प्रमोदवन बना दिया है ।

"गोल चांद का यौवन फूट-फूटकर बाहर निकल रहा है। चारों ओर सुन्दरता बरसरही है। पवन चारों दिशाओं में निर्भय विचर रहा है। जो सामने पड़ता है, उसीको चूमताहै। चटकीले, चमकीले फूलों को तो बार-बार चुम्बन करता है।"

"इन विराट पर्वतोंकी चोटियोंपर सुन्दर-सुन्दर (घासके) श्वेत कामदार कालीनों की भांति बिछे है। देवगण ! कहो, भला ये तुम्हारी भोजन की मेजें हैं या नृत्य भूमि ? कल-कल करते हुए नाले और दरारों और करारों पर शोर मचाती हुई नदी दोनों यहां मौजूद हैं। किन्हीं-किन्हीं चोटियों पर तो दृष्टि चारों ओर भटक कर दूर-दूर तक जाती है। न उसकी राह में कोई बड़ा पर्वत आड़े आता है। न उसकी राह में कोई कष्ट मेघ रोकताहै। किसी-किसी शिखर को तो गगन-भेदी और घनच्छेदी होने का इतना अधिक उत्साह है कि ठहरना ही भूलगयाहै, मानो आकाश में पहुँचकर ही दम लेगा।"

"मानी महीधरों की महान महिमा का वर्णन करते-करते मार्ग की सुषमा में असमान्य वृद्धि करने वाली उस मणि-मय अरुणोदय की ओस को भी भूल जाना उचित न होगा। अहा, देखो वह कमलदलसे लगा छोटा-सा चंचल-चंचल,सलिल,ओस-कण मनुष्य के मन का कैसा अच्छा नमूना है। छोटाहै, चपलहै, परन्तु अहा ! कितना पवित्र है। कैसा स्वच्छ और चमकीला है"

(स्वामी रामतीर्थ, पोद्दार द्वारा हिमालय की गोद में, ७८, १२-१३-१४)

सभी यात्रियों में इस सुन्दर मार्ग से चलने का . . नहीं है। यह मार्ग अधिक प्रचलित नहीं है। प्रचलित होजाए तो कई यात्री निस्सन्देह इसका प्रयोग करना चाहेंगे। ऊँची बुग्यालों पर मार्ग इतना बीहड़ नहीं होता। यदि साथ हो, तथा संग में उचित भोजन सामग्री और तम्बू हों तो इस मार्ग काप्रयोग किया जा सकता है। छाया पथ की बुग्याल अनेक स्थानों में गंगोत्तरी से केदारनाथ जाने वाले मार्ग में पड़ने वाली पंवाली बुग्याल में अधिक ऊँची और अधिक मनोहर है। पर यहां जो आनन्द है, जो मोहक दृश्य है, वह धरतीपर अन्यत्रदुर्लभहै। और पंवालीमें हिमालयका जो अद्भुत दृश्य मिलताहै, उसका वर्णन असंभव है।

१६–यमुनोत्तरी से उत्तरकाशी—

यमुनोत्तरी को जिस मार्ग से जाते हैं, उसी मार्ग से गङ्गाणी तक २४ मील लौट आते हैं। यहाँ से ६ मील चलने पर सिंगोठ चट्टी आती है, जहाँ बाबा कालीकमलीवाले की धर्मशाला है। नाकुरीपर धरासू-उत्तरकाशी सड़क मिलतीहै। इसलिए यात्री यहाँ पहुँचकर उत्तरकाशी के लिए मोटर पर चढ़ते हैं। पर अनेक मोटरों में स्थान मिलने की सुविधा के लिए डंडेल गांव से धरासू पहुँचते हैं और वहाँ से मोटर द्वारा उत्तरकाशी जाते हैं। सिंगोठ से ३मील नाकुरी और वहांसे ६ मील उत्तरकाशी है।

नाकुरी के पास ढूंढा से एक मील दूर पर रेणुकादेवी का मन्दिर है, जहाँ परशुरामजीने कहते हैं, अपनी माता रेणुका की हत्या की थी। और अपने पिता यमदग्नि से पुनः उसको जीवित करवा दिया था।

२०—उत्तरकाशी—

८—उत्तरकाशी

उत्तराखण्ड का प्रसिद्ध तीर्थ स्थान है। केदारखण्डमें लिखा है—"वारणावत क्षेत्र में जहाँ उत्तरवाहिनी गङ्गा बहती है, वहाँ दो पवित्र असी और वरुणा नदियों का संगम है। इस उत्तर के मुक्ति क्षेत्र मे ब्रह्मा, विष्णु और महेश नित्य विराजते हैं। जहाँ ऋषियों के उत्तम आश्रम हैं। जहाँ शिवलिंग मरकतमणि की शोभा से उज्ज्वल है। यहां देवताओं और दानवों के युद्ध मे धातु की बनी हुई शक्ति (त्रिशूल) फेंकी गई थी जो आज तक दिखाई देती है। जहा यमदग्नि के पुत्रपरशुरामने कठोर तप किया था।" (केदारखण्ड, ६३-१०-१५) उत्तरकाशी के ऐतिहासिक महत्व "शक्ति" आदि के सम्बन्ध मे "उत्तराखण्ड के मन्दिरों का ऐतिहासिक महत्व" नामक अध्याय में आगे विचार करेंगे। १८५७में स्वतन्त्रता संग्राम के प्रसिद्ध वीर और राजनीतिज्ञ नाना फड़नवीस ने (?) भागकर शरण ली थी। जिस मकान मे वे रहते थे, उस पर आज सरकारका अधिकार है। (टूरिस्ट गाइड,टेहरी डिस्ट्रिक्ट पृ० १४-१५)

९—नाग देवता मन्दिर सूकी

उत्तरकाशी में कालीकमली वाले क्षेत्र की तथा बिडलाजी की धर्मशालाए हैं। यहा अनेक प्राचीन मन्दिर हैं, जिन में विश्वनाथजी का मन्दिर और उसी के सन्मुख शक्ति, जिस पर का लेख खुदा है, दर्शनीय हैं। इनके अतिरिक्त गोपेश्वर, परशुराम, दत्तात्रेय, भैरव, अन्नपूर्णा, रुद्रेश्वर और लक्षेश्वर के मन्दिर हैं। विश्वनाथ मन्दिर के दक्षिण मे शिव–दुर्गा का मन्दिर तथा पूर्व में जड भरत का मन्दिर है। यहा एकादशरुद्र का मन्दिर भी अति सुन्दर है।

काशी के समान उत्तरकाशी भी गङ्गा (भागीरथी) असि और वरणा नदियों के बीच म है। इसके पूर्व में वारण वत पर्वत है, जिस पर विमलेश्वर महादेव का मन्दिर है। उत्तरकाशी की पचकोशी परिक्रमा वरणा–सङ्गम पर स्नान करके विमलेश्वर को जल चढाकर आरम्भ की जाती है। यहा जड भरत का आश्रम है। उसी के पास मणिकुण्ड में स्नान, तर्पण, पिंडदान का विधान है। मणिकुण्ड में तो प्राय सदा ही गङ्गाजी का जल रहता है, पर यहा के अन्य घाटों और कुण्डों से गङ्गाजी दूर चली गई है।

उत्तरकाशी से १ मील दूर उजेली नामक स्थान पर साधुओं

घा विशाल आश्रम बसा है । जहां कई विद्व न साधु रहते हैं ।

मकरसंक्रान्ति के अवसर पर उत्तरकाशी मे बड़ा मेला लगता है जो तीन दिन तक चलता है । यहां मन्दिरों के देवताओं को पालकियों में लेकर लोग पहुँचते हैं और नृत्य करते हैं । जैसा हिमालय प्रदेश मे करते हैं ।

उत्तरकाशीसे आगे चलकर तेखलामे स्व० गोस्वामी गणेशदत्त का आश्रम है । इसके पास गङ्गा-तट पर अवधूत खडे रहते हैं । पहले यहा श्री केशवानन्द अवधूत कण्ठ तक गङ्गाजल मे दिनभर खडेरहतेथ । यह एक मनोहर और एकात स्थान भजन अनुकूलहै ।

२२–उत्तरकाशी से गगोत्तरी—

उत्तरकाशी से ३ मील की दूरी पर असिगङ्गा और भागीरथी का सङ्गम अ यन्त शान्त और मनोहर स्थानहै । ठीक सङ्गम पर एक कुटिया और वाटिका थी जहा मैं १६४० मे आश्विन से लेकर माघ तक रहा था । इस वर्ष में जब यहा फिर गया तो देखा कि कुटिया और वाटिका सब बह गई हैं । यहा से "डोडीताल" नामक एक अत्यन्त सुन्दर सरोवर के लिये मार्ग जाता है, जो १६ मील दूर है । मार्ग सरल है ।

उत्तरकाशी से गङ्गोत्तरी तक चट्टियों का क्रम इस प्रकार है । उत्तरकाशी,—मनेरी (७),—मल्लाचट्टी (७),—भटवाड़ी (७)-गङ्गनानी (८),-लोहारीनाग (४),-सुक्खी (१),-भाला (३),-हरसिल (०)-अणियापुल (३/२),-धराली (२)-जागला (४)-जाडगङ्गा-सङ्गम से ऊपर भैरोंघाटी (०३/२)-गङ्गोत्तरी (६३/२) । मनेरी, मल्लाचट्टी, भटवाड़ी, सुक्खी, भाला, हरसिल, धराली, और गङ्गोत्तरी में कालीकमली वाले तथा दूसरों की धर्मशालाएं हैं । लोहारी नाग और सुक्खी के बीच मार्ग निरन्तर टूटता रहता है । यहाँ

पहले बहुत से उष्णजल के सोते (गेसर) थे जो अब सूख चुके हैं। धरती गेंधक मिले चट्टानों से ढकी है। यहां से सहसा रेखा आती है जिस पर हिमालय की नदी तुरन्त अधिक ऊँची चट्टियों पर पहुँच जाती है। सुक्खी से आगे गङ्गोत्तरी की ओर गङ्गाजी चौरस घाटी में बहती है। कभी यहां तक हिमानी थी मल्लाचट्टी से बूढाकेदार होकर केदारनाथ को मार्ग जाता है। जो यात्री गङ्गोत्तरी नहीं जा सकते वे यमुनोत्तरी से यहां पहुँचकर यहीं गङ्गा स्नान करके केदारनाथ और वहां से बदरीनाथ चले जाते हैं। गङ्गानदी में गरम जल का सोता है। हरसिल में पहले श्यामप्रयाग और गुप्तप्रयाग दो स्थान आते हैं। हरसिल को हरि

१०-गंगा और ग्लेशियर

११-हरसिल गंगोत्री

प्रयाग कहा जाता है, यहाँ लक्ष्मीनारायण मन्दिर है। धराली से एक मार्ग नेलगघाटी होकर कैलाश-मान सरोवर को जाता है। मार्ग बड़ा कठिन है। धराली के सामने श्रीकण्ठ पर्वत पर गङ्गा

भगीरथ का वक्स्थल माना जाता है। श्रीकंठसे आई हुई दूधगङ्गा और भागीरथी का सङ्गम धराली में होता है। यहां सङ्गम पर शिव मन्दिर है। धराली के गङ्गा मन्दिर को दूधगङ्गा ने बहा दिया है। यहां से गङ्गा पार मुखमा-मठ है जहां शीतकाल मे गङ्गोत्तरी के पंडे रहते हैं। वहां से एक मील पर मारकंडेय स्थान है। शीत काल में गङ्गाजी की पूजा यहीं होती है। मुखमा से १ मील पर करनाताल पर्वत है। "जिसकी चोटी पर एक ऐसा स्थान है जहाँ से मानव सुमेरु (स्वर्ण पर्वत) के दर्शन होते हैं।" (कल्याण तीर्थांक, ५२)

जॉगलासे नेलंगघाटी होकर कैलास-मानसरोवर को मार्ग जाता है।

२३-भैरोंघाटी—

चट्टी से पहले जहाँ जाडगङ्गा और भागीरथी का सङ्गम है, संसार भर मे संभवतः सब से भीषण और रोमांचकारी स्थान है।

"भैरोंघाटी क्याहै, वास्तवमें भैरोंघाटीही है। ऐसा प्रतीत होताहै कि कैलाशपति भगवान् शङ्कर ने पापियों और पुण्यहीन लोगोंको यहासे आगे न बढनेदेनेके लिये अपने प्रधानगण भैरवको यहांपर द्वारपाल नियत करके कड़ा पहरा बिठाया हो, ठीक वैसे ही जैसे कि केदारघाटीमें भगवती पार्वतीने गणेशको द्वारपाल नियत कियाथा। ऐसा अद्भुत, भयानक और भव्य दृश्य मैंने पहले कभी नहीं देखाथा, संभवतः माणा-घाटीके सरस्वती-पुल वाले अद्भुत और भयानक दृश्यसे भी यह बढ़कर था। इस घाटी में प्रवेश करके ऐसा मालूम होने लगताहै मानो भूतनाथ भैरवके कारागार मे बन्दी बना लिये गये हों और अब छुटकारा असम्भव है। ...

वही स्थान हैं, जहां से पहले लाखों यात्री वापिस चले गये होंगे। यह तबकी बातहै, जबकि यहां गरुड़गंगापरका वर्तमान नया लोहे का पुल नहीं था और इसके कुछ ही ऊपर बिलकुल अंतरिक्षमें दिखाईदेता हुआ एक झूला था। अब भी उस झूले की रस्सियां ऊपर आसमानमें दिखायी देतीहैं। यह झूला लगभग एक फर्लांग ऊँचाई पर था और सम्भवतः संसारका सबसे ऊँचा झूला था। आज भी ऊपर उसकी रस्सियोंको देखकर सिरसे टोपी और दिल से कलेजा नीचे छूटजाता है, भय और आश्चर्यकी तो इतिश्री हो जातीहै। गरुड़-गङ्गाका दृश्य इतना भयोत्पादक किंतु भव्यहै कि गङ्गाजीके सौम्य-शांत रूपसे एकदम दृष्टि हटकर उधर हो जाती है। गरुड़-गङ्गा अथवा भोट-गङ्गाके दोनों ओरके कगार अत्यन्त उच्च (लगभग एक फर्लांग) और बहुत दूरतक (दृष्टि पथ तक) फैलेहुये इतने विशाल और भव्य हैं कि मालूम होता है कि भोट देशकी इस सामग्रीके स्वागतके लिये स्वयं प्रकृतिदेवीने यह उपयुक्तविशाल फाटक विश्वकर्मासे निर्मित करवाया हो। इस विशाल तोरणमें होकर यह सामग्री हरितवर्ण साड़ी पहने हुए इस राजोचित गंभीरता स्वाभिमान और ज्ञानसे चलती है मानों ब्रह्मद्रव, विष्णुपदी, देवनदी माता भागीरथीसे मिलने जारही हो। संगम से कुछ ही दूर पीछे एक विशाल पाषाण के विदीर्ण-वक्षस्थल से प्रवेश करती हुई वह ऐसी प्रतीत होतीहै मानों सैनिक स्वागत के बाद अब थालचर दलने उसका स्वागत किया हो। सौम्य-शान्त रूप धारणकर विनीत भावसे वह गंगाजीको साष्टांगप्रणाम करना ही चाहती है कि भगवती भागीरथी एक अत्यन्त आदरणीया अतिथिको आया जान एकदम पीछे मुड़कर उसे अपने चरणोंसे उठाकर छाती से चिपका लेती है। तब क्या होताहै ?—'ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति' जीव अपना अस्तित्व खोकर ब्रह्ममें लीन हो जाता

है, गरुड़गंगा भागीरथीगंगा बनजातीहै, प्रकृतिके गुणोंसे रञ्जित उसका हरित वर्ण विशुद्ध सत्वस्वरूप उज्वल ज्ञानगंगामें विलीन और तद्रूप होकर जीवन्मुक्त होजाताहै, और भाग्यवान सहृदय दर्शकों को आध्यात्मिक आनन्द–समुद्र में विलीन करदेताहै। इस सारे दिव्य दृश्यका सम्पूर्णआनन्द हम प्रथम दर्शनमें ही न लेसके, क्योंकि मौसिम अच्छा न था और मन्द-मन्द वर्षा होरही थी। लौटती वार हमने इसका अधिकसे अधिक आनन्द प्राप्त करने का प्रयत्न किया।" (उमरावसिंह रावत, उत्तरापथ की एक झांकी, पृ० १२३–२४)

"भैरोंघाटी में गन्धक का पर्वत होने से भूमि गरम रहती है।" (कल्याण, तीर्थांक, ५०)

भैरोंघाटी से आगे वन प्रदेश का दृश्य बड़ा सुहावना है। गंगाजी बड़े गहरे गर्त में बहरही है। मार्ग गंगाजीकी तलहटी से बहुत ऊँचाई पर बन प्रदेशसे होकर चलता है। गंगोत्तरीकी ओर जाने वाले यात्री के दहिने हाथ की ओर गंगाजी पार हिमाच्छादित पर्वत श्रेणियोंका अद्भुत दृश्य सन्मुख आता है।

२४—गंगोत्तरी (१००२० फीट)

१०—गंगा मन्दिर गंगोत्तरी

गंगाजीका वास्तविक उद्गम गंगोत्तरी और गोमुख दोनोंसे बहुत आगे है। गंगोत्तरी गंगाजी के तटपर ऐसे स्थानपर स्थित है,जहां तक यात्री अब सरलता से पहुँच सकता है। किन्तु जहां से आगे

९-१० मील दूर गोमुख तक पहुँचना सब के लिये संभव नहीहै। अधिकांश यात्री गगोत्तरी में ही स्नान करके, गंगाजी का पूजन करके तथा यहां से गंगाजल लेकर लौट जाते हैं।

गंगोत्तरी मे कई धर्मशालाएं और टि॰ने के आश्रम हैं। गंगाजी यहां केवल ४४ फीट चौड़ी है, और गहराई ३ फीट है। यहां मुख्य मन्दिर गंगाजी का मन्दिर है जिसमे गंगाजीकी मूर्ति, राजा भागीरथ यमुना, सरस्वती, एवं शंकराचार्य की मूर्तियां हैं। गंगाजी की मूर्त्ति, छत्रादि सब सुवर्ण के हैं। गंगाजी के मन्दिरके पास एक भैरवनाथ-मन्दिर है। गंगोत्तरीमे सूर्यकुण्ड,विष्णुकुण्ड, ब्रह्मकुण्ड आदि तीर्थ हैं। यहीं विशाल भगीरथ-शिला है। जिस पर राजा भगीरथने तपस्याकी थी। इस शिलापर पिंड दान करते हैं। यहा गंगाजी को विष्णु तुलसी अर्पित करते हैं।

गंगोत्तरी मे गंगाजी का मन्दिर अठारहवीं शताब्दी के आरम्भ में गोरखाँ सेनापति अमरसिंह थापा ने बनवाया था। उसी ने मुकवा के पंडों को यहा की पूजा के लिये नियुक्त कियाथा और उन्हें मुकवा से आगे गगोत्तरी तक का वन मन्दिर के लिए गूंठ रूप में प्रदान किया था इसका आज्ञापत्र भ्रष्ट संस्कृतमे लिखा अभी तक पंडों के पासहै। पीछे टिहरी राज्यने और उसकी ओर से भारत सरकार ने इस वन पर अधिकार कर लिया। मुक्वा के पंडों से पहले गंगोत्री के पुजारी टकनौरके खस (खसिया) राजपूत हुआ करते थे।

गंगाजी का मन्दिर मई से अक्टोबर तक खुला रहता है। दिवाली तक हिमपात होने लगता है और गंगोत्तरी के पण्डा मुकवा और धराली (श्याम प्रयाग) चले आते हैं।

२५-फ्रेजर का गंगोत्तरी-वर्णन—

फ्रेजर गंगोत्तरी भी पां

"वह स्थान जहां तक तीर्थयात्री पहुँचते हैं सचमुच उसी प्रकार की रहस्य पूर्ण पवित्रता से भरा है, जिस प्रकारकी पवित्रता वहां मानी जाती है। यहां भैरोंघाटी—जैसे घिरी हुई उदासी नहीं मिलती। अबतक भीषण सीधी चढ़ाईवाले 'भेल' गरजती नदियों और मार्ग के सङ्कटों से हृदय भयभीत रहता था। अब जो दृश्य बदलता है उसमें भय और रोमांच उत्पन्न करता है। किन्तु उस प्रकार का नहीं जिसप्रकार का उस अन्धकारपूर्ण भयङ्कर भैरोंघाटी में होता है। सचमुच भैरोंघाटी में हमने जो भीषण दृश्य देखा था उसे स्मरण कराने की कोत यहां भी नहीं है।

"यहां जो नंगे तथा गगनचुम्बी शिखर वाले पर्वत खड़े हैं और ऊबड़-खाबड़ दृश्यावली और ऊँचाई उन शिखरों से कम नहीं हैं, जिन्हें हम अब तक देख चुके हैं। उनसे बिखर कर गिरे हुए पाषाण खण्डों के अपार ढेर के ढेर उनके पाद-प्रदेश में फैले हैं। इन नंगे पर्वत शिखरोंपर यत्र-तत्र उगे हुए वृक्ष उनकी भीषण नग्नता को कहीं-कहीं ढकलेते हैं काले चीड़ के वृक्ष उन दरारों में उगे हैं, जहां वे सुरक्षित रह सके हैं। चारों ओर दृष्टि पथ बन्द हो जाता है, केवल पूर्व की ओर वहां तक दृष्टि पथ खुला है जहां चार अति विशाल हिमाच्छादित शिखर खड़े हैं। ये रुद्र हिमालय के शिखर हैं। द्वार के सन्मुख इससे अधिक सुन्दर दृश्यावली और क्या होती ? गंगोत्तरी की सुन्दर दृश्यावली के निकट इससे अधिक महानता वाले शिखर और किस प्रकारके हो सकतेथे ?

"चट्टानों सीधी खड़ी चढ़ाईवाले भेलों, उजाड़ निर्जन क्षेत्रों और सरिताओं का वर्णन करना सरल है। ऐसी दृश्यावली जिस प्रकार के भय उत्पन्न करती है, उसका वर्णन करना कठिन नहीं है। ऐसी वर्णनशैलियां और वर्णन अनेक पुस्तकों में मिलते हैं। किन्तु कुछ दृश्यावलियां इतनी कठोर और इतनी ऊबड़-खावड़ महानता

से भरी होती हैं, कि उनके सम्बन्ध में वास्तविक विवरण देना इतना सरल नहीं होता। निश्चय ही उनका सही वर्णन करना असम्भव होता है। उनकी सुन्दर निर्जनता को चित्रित करना, तथा श्रद्धा और भयके उस अवर्णनीय रोमाञ्चका वर्णन करना, जो उस समय उत्पन्न होता है जब मन इस दृश्यावली की मृत्यु जैसी भीषण नीरवता पर विचार करता है, असम्भव, सर्वथा असंभव है। जब हम ऐसे स्थानों में उनकी नीरव निर्जनता के सम्बन्ध में सोचते रहते हैं और उसी घड़ी हमें अपने घरकी अपने मित्रों की, अपने परिवार की, और अपने साथियोंके साथ के मधुर व्यवहार की स्मृति न ाग उठती हैं, तो हम अपनी उस समय की निर्जनता का अनुभव करते हैं, और सोचने लगते हैं, कि हम अपने प्रिय व्यक्तियों से कितनी दूर आ पड़े हैं। सचमुच गंगोत्तरी में कुछ ऐसी ही दृश्यावली है। इस स्थान में पहुँचते ही मनुष्य तुरन्त गहरे भावावेश में आजाता है।

"हम यहां उस महान् और अपार हिमालय के मध्य में थे, जो संसारकी सबसे ऊँची और सम्भवत सबसे ऊबड़-खाबड़ पर्वत शृंखला है। हम यहां उस सुन्दर परोपकारिणी नदी तथा कथित स्रोत में थे, जो नदी श्रद्धा और पूजा की वस्तु है और साथ ही हिन्दुस्थान की उर्वरता, समृद्धि और वृद्धि की स्रोत है। इन पवित्र पर्वतों में हिन्दुओं के जो अनेक तीर्थ हैं, उन में यह गंगोत्तरी तीर्थ सबसे अधिक पवित्र है। गम्भीर महानता के साथ ये प्रभाव डालने वाली विशेषताएं गंगोत्तरी में मनुष्यकी भावनाओंको अत्यधिक तीव्र कर देती है। पातीराम द्वारा गढ़वाल, एनशिएंट ऐंड मौडर्न में उद्धृत, १५४-५६,

२६—गंगोत्तरी-महात्म्य अतिशयोक्ति नहीं—

गंगोत्तरी के सम्बन्ध में जब एक विदेशी, विधर्मी और

मूर्ति पूजा पर विश्वास न करने वाले व्यक्ति के ये विचार हैं, तो महाभारत और पद्मपुराण के इस कथन में कौनसी अत्युक्तिहै ?

गंगोद्‌भेद समासाद्य त्रिरात्रोपोषितो नरः।
वाजपेयमवाप्नोति ब्रह्मभूतो भवेत्सदा ॥

गंगोत्तरी (गंगोद्‌भेद) तीर्थ में जाकर तर्पण, उपवास आदि करते हुए जो तीन रात्रियां बिता देता है, उसे वाजपेय यज्ञ का पुण्य प्राप्त होताहै। और वह फिर सदा ब्रह्मानन्दमें मग्न रहता है, (' महाभारत, वन, ८४।६५; पद्मपुराण आदि स्वर्ग,३२–२६)

२७–गौरीकुण्ड का अद्भुत दृश्य—

गंगोत्तरी मन्दिरके पास ही गंगाजी बहरही हैं। उसे पार करने के लिए एक पुल है। गंगाजी के दूसरे तट पर साधु-सन्यासियोंकी कुटिया तथा आश्रम हैं। कई महात्मा शीतकाल में भी यहीं विराजते हैं। इन्हीं कुटियोंके बीच से होकर गौरीकुण्ड जाने का मार्ग है। जो गंगोत्तरी से लगभग एक फरलांग नीचेकी ओर स्थित है। अति विशाल शिलाओं को चीरता हुआ गंगाजल बड़े वेग से प्राकृतिक शिवलिंग के ऊपर अर्घ रूप में गिरता है। इसी कारण से ही गौरीकुण्ड से आगे गंगाजल रामेश्वरम् में शिवजी के ऊपर नहीं चढ़ाया जा सकता। कहा जाताहै कि हिमालय पुत्री उमा ने शिवजी को पति रूप में प्राप्त करने के लिए यहीं तपस्या कीथी।

पटांगण:—गौरीकुण्ड से लगभग एक मील पर चौरस शिलाओं का एक मैदान है जो "पटांगण" का मैदान कहलाता है पुराणों के अनुसार गोहत्या के पाप का प्रायश्चित्त करने के लिए व्यासजीके आदेशसे पांडव यहां पहुँचेथे और उन्होंने यहा ऋषियोंकी सहायता से एक महान् देवयज्ञ किया था। और फिर यहीं

से रुद्रगङ्गा के तट से होकर वे केदारनाथ पहुँचे थे। महाभारतमें यह वर्णन नहीं आता।

२८—देवघाट—शिखर शृङ्खला—

गंगोत्तरी स्थान के पास ही केदारगंगा नामक एक स्वच्छ जल की धारा भागीरथी में आकर मिलती है। इसके सन्मुख जो ऊँची चाँदी की स्वच्छ दीवार—जैसी शिखर शृङ्खला चली गई है, वह देवघाट कहलाती है। । उसमें 'गंगामन्दिर' 'शिवलिंग' 'ब्रह्मा' आदि शिखर दिखाई देते हैं, जिनमें एक छोटा शिखर 'शङ्कराचार्य शिखर' कहलाता है तथा इस धारणा की पुष्टि करता है कि आद्य शङ्कराचार्य ने देवघाट में ही शरीर छोड़ा था। देवघाट से एक तीव्र वेग वाली स्वच्छ धारा 'देवगंगा' निकल कर भागीरथी में मिलती है।

"इस पुण्य भूमि को आदि काल से ही महान् तपस्वियों की तपोभूमि होने का सौभाग्य प्राप्त है। महर्षि मतंग, वरुण, ब्रह्म, नारद, मारकण्डेय, आदि मुनिश्रेष्ठोंने यहां आकर कठिन तपस्याएं की थीं। इसी कारण इस देवभूमि का कण–कण सिर-माथे चढ़ने योग्य है। असह्य कष्ट सहन करने के पश्चात् यात्री इस देवभूमिके दर्शन कर अपने को सचमुच ही धन्य अनुभव करता है। श्रद्धा तथा भावना से ओत प्रोत यात्रियों की भाव भीनी मुखाकृतियां लक्ष्य प्राप्ति के चरमसुख से दीप्त रहती हैं।" (माधव उपाध्याय कालिन्दी भागीरथीकी जन्म भूमिमें, त्रिपथगा, दिसम्बर, ५८)

२९—गोमुखकी ओर—

गोमुख, जहां गंगाजी हिमानीसे बाहर निकलती हैं, गंगोत्तरी से लगभग १४मील दूर है। किसी समय यह बाक गंगोत्तरी से भी बहुत आगे सुक्खी तक रहा होगा। उन दिनों गंगोत्तरी

यहां रहीहोगी जहां गंगणाणीहै। सुक्खीके पास गंगाजीकी सपाट तलहटी उस युगकी स्मारक है जब यहां तक बांक फैलरहा होगा। धीरे-धीरे गोमुख खिसकता हुआ गङ्गोत्तरी तक और उससे भी १४मील पीछे वर्तमान गोमुख तक चला गया।

गङ्गोत्तरी से गोमुखका मार्ग अत्यन्त कठिन है। सचपूछो तो मार्ग है ही नहीं। भागीरथी के किनारे-किनारे पत्थरों को पार करते तथा खिसके हुए पहाड़ोंपर पांव रखने मात्र का स्थान बनाते हुए आगे बढ़ना पड़ता है। मार्गमें चीते भी मिल सकते हैं। पर्वतीय तीव्रवेगी नालोंको पारकरना, कच्चे पर्वतोंपर चढ़ना-उतरना बहुत साहस और सावधानी का कार्य है। मार्गमें कोई पड़ाव,चट्टी या दुकानें नहीं हैं। इसलिये वर्ष भर में पचास-साठ, अधिक से अधिक सौ व्यक्ति गोमुख पहुँच पाते हैं। अस्तु गङ्गोत्तरी से आगे जाते समय अपने साथ कोई मार्गदर्शक,लोहालगी लाठी या बल्लम ऐसे जूते, जो हिम और शिलाओं पर न फिसलें, तथा तीन चार दिन के लिये भोजन ले चलना चाहिये। यदि हो सके तो एक हल्का तम्बू या छोलदारी साथ रख लेनी चाहिये जिससे मार्ग में वर्षा आजानेसे कष्ट न हो। कांगड़ा के गद्‌दी प्रायः गोमुखसे आगे तक भेड़-बकरियां चराने जाते हैं, उनके साथ जानेमें अधिक सरलता रहती है।

३०-गंगोत्तरी से चीड़वासा—

गङ्गाजी को पार करके बाएं तट से होकर गोमुख जाना होता है। थोड़ी ही दूर चलने पर कुटिया समाप्त होजाती हैं और छोटी-बड़ी शिलाओं के बीच पथ टटोलना पड़ता है। यहां पहले के यात्रियों या गद्दियोंके रखे हुए पत्थरोंके ऊपर पत्थर ही मार्ग निर्देशक कार्य करते हैं।

लगभग डेढ़ मील चलने पर भागीरथी को एक हिम के

प्राकृतिक पुल से पार किया जाता है । इससे आगे नाना प्रकार के फल फूलों वाले वृक्षों से भरा "गङ्गावन" आता है । इस मनोहर वन से एक मीलके लगभग और आगे बढ़नेपर एक विशालशिला सामने मार्ग रोककर खड़ी मिलती है, जो 'अघमर्दिनी' कहलाती है । सामने शिला खडी है और नीचे गङ्गाजी का प्रबल प्रवाह है, जो घोर शीतलता और वेग के कारण दुर्लंघ्य है । अब इस शिला के सहारे चीड़ के तख्ते रखकर मार्ग की सुविधा करदी गई है ।

अब थोड़ी देर तक मार्ग चीड़ के घने बन से होकर जाता है । इसलिये "चीड़वासा" कहलाता है । भागीरथी के एक ओर चीड़वासा के महान शिखर और दूसरी ओर पांगरवासा के हिम-शिखर खड़े होकर मानो इस स्वर्ग भूमि की रक्षा करते हैं । यहाँ पग-पग पर जो रोमांच होता है, उसे शब्दों से व्यक्त करना असम्भव है ।

चीड़वासा में काली कमली वाले की धर्मशाला है । यहीं यात्री रात को ठहर कर प्रातः दिन भरका संबल लेकर ब्राह्म-मुहूर्त में ही गोमुख की ओर चल देते हैं ।

३१—भोजवासा—

अब आगे भागीरथी के दोनों तटों पर गगनचुम्बी नैलङ्ग और भृगुपंथ-शिखर खड़े मिलते हैं । मार्गके दोनों ओर भोजपत्र का सघन वन है । इसीलिये यह स्थान "भोजवासा" कहलाता है । कठिन तपस्या करने वाले साधक शीतकाल में भी यहीं कुटिया बनाकर रहते हैं । आगे भृगुपंथ शिखर हिमानी से उतरने वाली ब्रह्मानन्द "वैतरणी" नामक नदी आती है । जिसके इस ओर मृत्युलोक छूट जाता है और पार ब्रह्मलोक या "सिद्ध-मण्डलाश्रम" आता है । यहाँ पहुँचकर रोम-रोम में जिस अद्भुत

आनन्द की बिजली दौड़ पड़ती है, उसे दुर्बल शब्द भला कैसे व्यक्त कर सकते हैं ?

३२—गोमुख का स्वर्गीय दृश्य—

"गोमुख इस स्थान से मात्र तीन मील पर स्थित है। सामने भागीरथी के पर्वत-शिखर तथा शिवलिंग (शिखर) के दर्शन होते हैं। सूर्योदय से पूर्व की सिन्दूरी आभा में इन पर्वत शिखरों के दर्शन दिव्य हैं। सूर्योदय के साथ ही सूर्य की प्रत्येक किरण उन्हें अपने स्नेह से संवारती हुई मानो उसे विभिन्न वर्णों में चित्रित कर रही हो। रक्त वर्ण, नील वर्ण तत्पश्चात् स्वर्णिम-आभा में लहलहा उठने वाले इन शिखरों को देख यात्री चित्र-लिखित सा खड़ा हो, अपलक उस ओर निहारता रह जाता है। उस समय मानो प्रकृति और मानव एकाकार हो जाते हैं। एक विचित्र आनन्द की सृष्टि होती है जिसकी अनुभूति वहाँ जाकर ही की जा सकती है। शब्दों की इतनी सामर्थ्य कहाँ जो प्रकृति-नटी के इस मनोहारी रूपको अपने जाल में बाँध सकें। (माधव उपाध्याय, कालिन्दी-भागीरथी की जन्म भूमि में, त्रिपथगा, दिसम्बर, ५८)

३३—गोमुख-हिमानी—

आगे गोमुख हिमानी मिलती है जिसके बीच में द्वार से गंगाजी वेग से बाहर निकल रही है। गोमुख बांक की अधिक से अधिक लम्बाई १६ मील और अधिक से अधिक चौड़ाई लगभग चार मील है। किन्तु अधिकतर स्थानों में यह एक या दो मील चौड़ा है। सौन्दर्य में यह प्रसिद्ध पिंडारी बांक के समान है। अर्द्ध चन्द्राकार विशाल द्वार से घोर तर्जन-गर्जन करती हुई गंगाजी अपरिमित वेगसे बाहर निकलती है। हिमानी के चारों

ओर से अगणित जल धाराएं इस मुख्य धारा से मिलती हैं। यह अपार हिमराशि। चाँदी की चमक वाली अपार स्वच्छ जमे गोदुग्ध जैसी बिखरी और उसके बीच से फूट पड़ने वाली यह तरल क्षीरधारा! जो चट्टानों से टकराकर ऊपर उछलती और नीचे गिरती ऐसी लगतीहै म नों सचमुच स्वर्ग से गिर रही हो।

"कुछ आगे बढ़ने पर बड़े-बड़े हिमखण्ड पानी में तैरते हुए तथा गङ्गाजी के किनारे पड़े हुए ऐसी शोभा देने लगे मानो सेंधा नमकका ढेर हो अथवा कपूर का पहाड़ टूट-टूटकर गिर रहा हो। इस दृश्यने हमारे अनुमान को निश्चयमें बदल डाला कि अब यात्रा पूर्ण होने वालीहै। इतनेमें एक गम्भीर प्रलयकारी घोष कर्णकुहर में प्रविष्ट होने लगा और सामने एक भीमकाय गिरिगुहा के दर्शन हुए।

निश्चय न हो सका कि यह क्या है। बहुत देर तक तो बिलकुल विश्वास न हुआ और हम इसी उधेड़ बुनमें लगे रहे कि क्या यही गोमुख है? बायीं ओर देखा तो बालुका मिश्रित बर्फ की दीवाल खड़ी थी। सामने ऊपर नजर डाली तो हिम-मंडित पर्वतराज और उसकी उपत्यका पर वही बालुका-मिश्रित हिम-भूधर, जिसके नीचे यह विशाल अदृष्ट पूर्ण गुफा बनी हुई थी, जिसने हमारे आनन्द और आश्चर्य को चरमसीमा तक पहुँचा दिया, भय का तो दिल से नामोनिशान मिट गया था। जब मुझे भली भांति यह विदित होगया कि यही गोमुख है, यही हमारा लक्ष्य है, यही हमारा गंतव्य है, यही हमारी तपस्या का प्रत्यक्ष फल है, यही माता देवनदी भागीरथी का उद्गम अथवा मूलस्रोत है, यहीं पर निराकार ब्रह्म द्रवित होकर ब्रह्मद्रव रूप में साकार बने-राजा भागीरथके कठोर तपके तापसे, तो मैं आनंद से उछल पड़ा और दौड़ा ऊपर रेत और बर्फके टीलों के ऊपर

. उस गुफाके मूल को लक्ष्य बनाने, इस बात की कोई परवाह न करते हुए कि यह टीला किसी भी क्षण गङ्गाजी की बीच धार में टूटकर गिर सकता है। यह अदृष्टपूर्व दृश्य और अश्रुत पूर्व गम्भीर घोष अथवा दुर्लभ अनाहत नाद निःसन्देह महान् पुण्यों का फल है, भगवान की महती कृपा का प्रसाद है। यह भी एक आश्चर्य का विषय है कि इस मूल पर भी अथाह जल राशि है, जिसने आरम्भ ही में अपने मार्गको प्रशस्त,विस्तृत और समतल बना लिया। मन्दाकिनी के उद्गम की भी ढलवाँ खतरनाक धार, जिसका केदार-यात्रा में उल्लेख हुआ था, यहाँ पर है ही नहीं। मन्दाकिनी जैसी छोटी नदीकी अवतार भूमिका ठीक-ठीक पता लगाना ही जब असम्भव है, तो गंगाजी के अवतरण का ठीक-ठीक निश्चय करना कितना असम्भव है, यह सोचने की बातहै। महाराज भागीरथ के पूर्वजों ने जिस गंगाजी के मूल स्रोत को खोजने में अपने प्राणों का बलिदान कर दिया और फिर भी पता न लगा सके, उसके मृत्युलोकावतरण की पृष्ठभूमिका को कोई महान् विज्ञानवेत्ता भी दूरदर्शी यत्नसे देखने का प्रयत्न करे, यह उपहासास्पद बालप्रयत्न और शिशु-चापल्य के अतिरिक्त और क्या हो सकताहै! उस दिव्य दृश्यके यत्किंचित चित्रणमें कोई महान् चित्रकार सफल हो जाय तो होजाय, परन्तु एक आधुनिक फोटोग्राफर की मशीन वहाँ पर बिल्कुल फेल होजाती है। मैंने इस असफल प्रयासका प्रत्यक्ष प्रमाण यू० पी० शिक्षा-प्रसार विभाग द्वारा प्रकाशित 'सचित्र भारत' नामक पुस्तक में देखाहै यह कहने की आवश्यकता नहीं कि ऐसे दिव्य दर्शन का शब्द चित्रण भी बाल-विनोदके अतिरिक्त कुछ नहीं। फिर भी अपनी वाणी और लेखनी तथा श्रोताओं व पाठकों के कर्णरंध्रों तथा अन्तःकरणको पवित्र करने के उद्देश्य से यथा शक्ति यथोचित

प्रयत्न किया जाता है।" (उमरावसिंह रावत, उत्तराप्य की एक झांकी, पृ० १३१-३३)

३४—पुण्यवान ही दर्शन कर सकते हैं—

"पुण्यभागा भागीरथी के स्रोत को देखकर यात्री विस्मय-विमूढ हो जाता है। वह अनुभव करता है कि वह प्रकृति के इस विराट रूपको झेल पाएगा या नहीं। और तभी श्रद्धा और भावना से अनुप्राणित होकर, बार-बार साष्टांग प्रणाम कर उच्च स्वरों में गङ्गाजी तथा शिवजी का जय घोष करता है।" (स्कन्द पुराण में गोमुख के माहात्म्य के सम्बन्ध में लिखा है, कि यदि वहाँ के गंगाजल का एक बिन्दु भी स्पर्श करे तो जहाँ-तहाँ निवास करने वाला मनुष्य भी देवलोक को प्राप्त करता है। ऐसे परम पुण्य-दायक ... हान् सौन्दर्य से विभूषित स्थान की यात्रा तो पूर्व-जन्मों मे किये गये पुण्यों के फलस्वरूप ही सम्भव है। माधव उपाध्याय, कालिन्दी-भागीरथी की जन्मभूमि में, त्रिपथगा, दिसम्बर, ५८)

गोमुख के दर्शन मात्रसे अपार आनन्द का सञ्चार होता है, जीवन भर के क्लेश, दुःख और चिन्ताए भूल जाती हैं, और हृदय लौकिक भूमि से कहीं ऊपर उठ गया प्रतीत होता है। गङ्गाजी के इस उद्‌गम तीर्थ में स्नान पाना अहोभाग्य है। इस हिमजल में हाथ डालते ही हाथ सूना हो जाता है। अस्तु यात्री अग्नि जलाकर स्नान करते हैं।

गोमुखसे लौटने में शीघ्रता करनी चाहिये। धूप निकलते ही हिम शिखरों से भारी-भारी हिम शिलाएं टूट-टूटकर गिरने लगती हैं। अस्तु धूप चढ़नेसे पूर्व ही चीड़वासा पड़ाव पर चला आना चाहिए। इस प्रकार गगोत्तरी से गोमुख आने-जाने में ३ दिन लगते हैं।

३५—गङ्गाजी का वास्तविक स्रोत—

गोमुखथांक भी गङ्गाजी का वास्तविक स्रोत नहीं है। क्योंकि गोमुखसे आगे नन्दनवनमें गङ्गाजी पुनः द्रव रूपमें बहती मिलती हैं। "श्रीबद्रीनाथ से आगे नर–नारायण पर्वत हैं। नारायण पर्वत के नीचे (चरण) से ही अलकनन्दा निकलती हैं और सत्पथ होकर बद्रीनाथ धाम आती हैं। वहीं नारायण पर्वत के चरण प्रांतसे भागीरथी गङ्गा का हिम प्रभाव (ग्लेशियर) प्रारम्भ होता है। यह प्रवाह अलंघ्य चतुःस्तम्भ है (चोखम्भे) शिखर से मानवसुमेरु (स्वर्ण पर्वत) के पास होता हुआ शिवलिंगी शिखर पर आता है। यह शिखर गोमुख से दक्षिण है। उससे नीचे उतरकर हिम प्रवाहसे गोमुखमें गंगा की धारा पृथ्वी पर व्यक्त होती है। गोमुख में हिम प्रवाह के दाहिने होकर ऊपर चढ़ा जा सकता है, वहाँ से मानव सुमेरु ६ मील है। और आगे चतुःस्तम्भ सम्भवतः २ या ३ मील।" (कल्याण, तीर्थ क, ५३)

कुछ अधिक साहसी यात्री गोमुख से आगे चढ़कर बद्रीनाथ पहुँच जाते हैं। किन्तु इसमें २००२० फीट के घाटे को पार करके आगे बढ़ना पड़ता है जिसमें केवल साहस ही नहीं उच्च शिखरों पर चढ़ने का कौशल और वर्तमान काल की वैज्ञानिक सामग्रियों की आवश्यकता होती है। जिन्हें ऐसे साधन और अनुभव उपलब्ध न हों उन्हें इस फेर में न पड़ना चाहिये।

—::—::—

१—देव प्रयाग   २—क्यूँ कालेश्वर पौड़ी   ३—मोटर सड़क व पुल
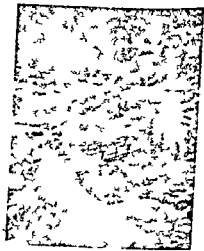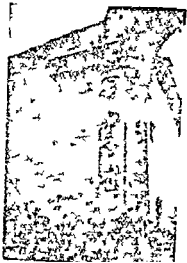
अध्याय-११ उत्तराखंडक यात्रा-मार्ग और मार्ग-सौन्दर्य-

(२) केदारनाथ-बदरीनाथ-धाम—

गंगोत्तरीसे केदारनाथ-[१२६ मील]

१—गंगोत्तरीसे मल्लाचट्टी-[४० मील]

गंगोत्तरीसे केदारनाथ जानेकेलिए ४० मील दूर मल्लाचट्टी तक उसी मार्गसे लौटना होताहै, जिस मार्गसे गंगोत्तरी जातेहैं। इस मार्गमें उत्तरकाशी और मल्लाचट्टीके बीच १६ मील तक मोटर मार्गभी पड़ताहै, पर मार्ग सरल होनेके कारण यात्री प्रायः पैदल ही चलतेहैं।

२-मल्लाचट्टी[४८५० फीट]से बूढ़ाकेदार-[२७ मील]

इस मार्गमें अनेक चट्टिया नई बनतीजारहीहैं। प्रायः मील दो-मील पर अवश्य चट्टियाँ मिलजातीहैं। नई सड़क बननेसे कई चट्टियाँ नष्ट भी होरहीहैं। मुख्य चट्टियाँ इस प्रकारहैं—

मल्लाचट्टी-सेराकी गाड़(३),-कुयालू (२ ,-छूणाचट्टी(३),-बेलक(४),-पंगराना (५),-झालाचट्टी (४),-बूढ़ाकेदार (५)। छूणाचट्टीमें धर्मशालाहै। झालाचट्टी पिछले वर्ष नई सड़क बननेसे टूट गईथी। हम यहां रातको निर्जन खंडहरोंमें टिके।

इस मार्गमें कुशकल्याणी पर्वतमालाका बेलाबघाटा मिलता है, जिससे होकर बूढ़ाकेदार जानेवाली सड़क आगे बढ़तीहै। बेलाब घाटा भागीरथी और बालगंगाके बीचका जलविभाजकहै। यहां की छटा अद्वितीयहै। यहां टिकनेकेलिए अति उत्तम स्थान है। कुश कल्याणी पर्वतमालाकी बुग्याल अपने सैकड़ों प्रकारके सुन्दर पुष्पों और बुग्यालकी हरियालीके लिए प्रसिद्ध है।

३-बूढ़ाकेदार-[४३८० फीट]:—

बालगंगा और धर्मगंगाके संगम पर पंच केदारोंमें से एक मानाजाताहै। यह भी केदारनाथकी शिलाके समान एक ग्रेनाइट

पाषाणकी काली शिला है जिस पर कुछ रेखाचित्र, संभवतः शिव और पांडवोंके खुदे हैं, जो अन्धकारमें यात्रियोंको दिखाई नहीं देते। मन्दिर पटाल-शिलाओंसे छाए हुए एक घरके भीतर है जो अधिक पुराना नहीं है। इसके बाहर मन्दिरके गुसांइयोंकी समाधियां हैं। यहां धर्मशाला है। यहीं से प्रसिद्ध मशरतालके लिए मार्ग जाता है। जो यहासे केवल छः मील दूर है। मशरतालसे १४००० फीट पर स्थित महस्रतालके लिए मार्ग जाताहै। ये झीलें सौन्दर्य और दृश्यावलीमें अपूर्व हैं।

४–बूढ़ाकेदारसे त्रियुगीनारायण–[४० मील]:–

इस मार्गमें भी नई-नई चट्टियां बनतीजारहीहैं। सारा मार्ग अति सुन्दर वन प्रदेशसे होकर जाताहै जिसमें चीड़-रांसल के वन और बुग्यालेंहैं। और चढ़ाई बहुत अधिक है। चट्टियोंका क्रम इस प्रकार है:—

बूढाकेदार–तोलाचट्टी ४,–भैरोंचट्टी (३),–भोंटाचट्टी(२),–घुत्तूचट्टी (७),–गंवाणचट्टी (१),–गौमांडा (३),–टुफंदा (३),–पंवाली (३),–मंगूचट्टी (१०),–त्रियुगीनारायण (७)।

भैरोंचट्टीमें भैरव और हनुमानजीके मन्दिर हैं। घुत्तूचट्टी में रघुनाथजीका मन्दिर है। पंवाली और त्रियुगीनारायणमें काली कमलीवालेकी धर्मशालाएं हैं। मार्गमें एक सरकारी चिकित्सालय बन रहा है।

५–पंवाली बुग्याल–[११३६४ फीट]

इस मार्गमें धरती पर स्वर्गके समान पंवाली बुग्याल पड़ती है, जिसके समान सुन्दर स्थान धरती पर बहुत कम मिलेंगे। यहां सैकड़ों प्रकारके सुन्दर पुष्पोंकी छटा और हरियाली पर यात्री मुग्ध होकर अपने सारे कष्ट भूलजाताहै। जहाँ प्रकृति इस प्रकार हँस रहीहो, कौन चिन्तातुर रहसकताहै ?

६-पंवाली कांठा-[१२:०२ फीट]

पंवालीबुग्यालसे आगे चढ़ाई पर पंवालीकांठा घाटा आता है जो १२:०२ फीट ऊंचा है। जो बदरीनाथ, केदारनाथ, यमुनोत्तरी, तथा गंगोत्तरी इन चारों धामोंके मार्गमें पड़नेवाले घाटोंमें से सबसे ऊंचा है। इससे ऊंचा स्थान यात्रीको सीधे यात्रामार्गमें और कोई नहीं मिलता इस घाटे पर प्रायः हिम मिलताहै। बादल लगने पर प्रायः वर्षा या हिमपात होजाताहै। मैं एक रातको ठीक इसी घाटे पर एक चटाईकी झोंपड़ी में दो डोटियाल साथियोंके साथ रहाहूं। यहाँ अधिक ऊंचाईके कारण वर्षामें वज्रपातका भय रहताहै। पर रातको चांदनीमें जो छटा देखनेको मिलतीहै, वह अत्यन्त दुर्लभ है। दिनमें भी जब स्वच्छाकाश हो, यहासे हिमालयका दृश्य वर्णनातीत होताहै।

७-पंवालीकांठेसे हिमालयकादृश्यःपिलग्रिमका कथनः-

यहासे देखे जाने वाले हिमालय-सौन्दर्यके संबंधमें अनेक वर्षों पहले पिलग्रिमने लिखाथा,-हमें पंवाली कांटेसे महान् हिमालयके दर्शनका सौभाग्य प्राप्त हुआ। मैं समझताहूं कि संसार कभी ओर वहीं ऐसी सुन्दर दूसरी दृश्यवाली नहीं उत्पन्न कर सकता। हमने अपने सन्मुख संगमरमरकी शिखर धारी दीवार खड़ी देखी जो अनन्त तक फैली ऊँची और लम्बी चलीगई थी। इसमें यमुनोत्तरी, गंगोत्तरी,केदारनाथ, बदरीनाथ, और उनसे आगे पूर्व की ओरके अगणित शिखर थे। इन सबको हमने एक अद्भुत रूप राशिके समान अपने सन्मुख फैला हुआ देखा। बार-बारके हिमपातने उन्हें अद्भुत चकाचौंध लगानेवाले शीत कालीन श्वेत वस्त्र पहनादिए थे।

हम स्वयं उस महाहिमालय के एक अति उच्च प्रदेशसे चल रहेथे और पग-पग पर हमें प्रतीत होरहा था कि हम उस प्रदेशके

निकट-निकट पहुँचरहे हैं जहां सदा शीत ऋतु बनीरहतीहै। जो सौन्दर्यकी छटा हमारे सन्मुख बिखरीथी, उसका शब्दोंमें वर्णन नहीं होसकता। उस अद्भुत महानताकी वास्तविक झांकी प्रस्तुत करनेमें सरस्वती भी अपनी भाषाकी सारी शक्ति लगाकर अपने को असमर्थ पाएगी। Eloquence itself, under the highest powers of language, seems but poverty in assisting to convey to the mind any adequate impression of its astounding magificence. सारे पर्वत-शिखर एक साथ बंधे दिखाईदिए, मानों वे सब एक दूसरेको आकाशमें अपना शिर छिपानेके सम्मलित प्रयत्नमें सहायता देरहेहों।

यह वह महान दीवार है जो प्राकृतिक तत्वोंका भी मार्ग रोकदेतीहै। यह भारतके ऊष्ण कटिबन्धके जलवायुकी सीमा बनातीहै। इसको पार करनेकी शक्ति वर्षामें भी नहीं है। उच्च शिखरोंकी इस पंक्ति पर उत्तरकी ओर वाले भागमें सहसा समशीतोष्ण कटिबंधका जलवायु मिलजाताहै।

ज्योंही आप यह स्मरण करतेहैंकि आपकी दृष्टिके सामने उन सब नदियोंके मूलस्रोत फैलेहै जिन्होंने भारतको एक महान कृषिप्रधान और व्यापारिक महत्वका देश बनाडालाहै, आपकी हिमालयके प्रति श्रद्धा बढ़जातीहै। इन हिम शिखरोंकी एक ओर की ढालसे तो यमुना, गंगा और काली आदि नदियां और दूसरी ओरकी ढालसे सतलज, सिंधु और ब्रह्मपुत्र आदि नदियां निकलतीहैं। इसलिए इसमें कुछ भी आश्चर्यकी बात नहीं है जो हिन्दुस्थानके निवासियोंने इन पर्वतोंको देवात्मा मानाहै। और उनमें अपने देवताओंके लोककी कल्पना कीहै। यदि ये सुन्दर पर्वत किसी अन्य देशमें भी होते तो वहां भी उनके प्रति पूज्य भावना ही रहती। जौनसनके शब्दोंमें—

इतने पवित्र, इतने महान,
ये हैं सचमुच, सुरगण स्थान।

हिमालयको निरन्तर देखते रहनेपर भी नेत्र कभी तृप्त नहीं होते। इस दृश्यावलीसे तो एक प्रकारका आनन्द मिलताहै, जो प्रकृतिके स्रोतसे उत्पन्न होने वाला सबसे पवित्र आनन्द होता है। उससे मनकी भावनाएँ अति उच्च हो जातीहैं। और हृदयमें क्षुद्र और नीच विचार नहीं रहते। अवश्य ही आपको प्रतीत होने लगताहै कि मानो आप मरणशील मानवसे कुछ ऊँचे उठ गएहैं। अभिमान और शान शौकत, तथा शक्तिका दंभ मानो आपसे बहुत नीचे ही छूटजातेहैं। बार-बार आपके हृदयमें विचार धारा उत्पन्न होकर आपको अपनी क्षुद्रताके कारण उस महान अपार महाशक्तिके सन्मुख, ब्रह्माण्डके उस महानिर्माताके आगे विनम्र बनादेतीहै।

ब्रह्माण्डकी इस सृष्टि-श्रृंखलामें मनुष्य कितना क्षुद्र, अणु-मात्र लगताहै। उस महानके सन्मुख,जिसने ऐसे महान् हिमालय जैसी वस्तुओंका निर्माण कियाहै, आप अपनी क्षुद्रातिक्षुद्र लाल-साओं और कामनाओंके पीछे मरतेहुए अपनेको धूलकण-जैसा तुच्छ समझने लगतेहैं।

"महान हिमालयके सन्मुख जिस व्यक्तिके हृदयमें ऐसी भावनाएँ नहीं जाग्रत होतीं वह सचमुच पत्थर-मात्र है। पर्वतोंकी दृश्यावलीको देखकर मैं सदा जिस प्रकार भावना विभोर होजाता हूँ,उसी प्रकार यहा पवाली काठेपर भी होगया। पर्वतोंका प्रभाव अनेक कष्टों और शोकोंकी स्मृतिको दबादेताहै। और यहा पवाली काठेमें तो मैं उन सब कारणोंको सर्वथा भूलगया जिनके कारण मैं फिर दूसरी बार प्रकृतिके इन निर्जन रहस्यपूर्ण दृश्योंमें भटकने लगाहूँ, जिनमें पहले वर्षों तक भटक चुकाहूँ।" [पिलग्रिम

याडरिंग इनाद हिमालय, पातीराम द्वारा गढ़वाल एनशिएंट ऐंड मोडर्न, से ४७–४६ पर उद्धृत]

८–त्रियुगीनारायणः—

पवालीकाठेसे नीचे उतरते समय भी मार्ग में हिम मिलता है। आगे रामल, बुरॉस और ट्यदारके आन सुन्दर वनोंसे होकर यात्री त्रियुगीना ायण उतर आताहै। यहा पर्वत शिखरके नीचे नारायण भगवानका मन्दिरहै। मन्दिर कैत्यूरी [नाग्रेनेष्टिनी] शिखर वालाहै और अधिक प्राचीन नहीं है। यहा मन्दिरके अन्दर जलस्रो । है। उसके पास नारायण, भूदेवा, तथा लक्ष्मीकी मूर्तियां रख कर नारायण की नाभिमें जलधारा निकलनेकी कल्पना कीगईहै। यही जल ब्रह्मकुण्ड, रुद्रकुण्ड, विष्णुकुण्ड और सरस्वती कुण्डमें पहुँचताहै। इन कुण्डोंमें स्नान, मार्जन, आचमन और तर्पण कियाजाताहै। इस मन्दिरमें अखंड धूनी जलताग्हताहै। यात्री कुण्डमें हवन करतेहैं और समिधा डालते हैं। कहतेहैं कि यहां शिव-पार्वतीका विवाह हुआथा। मन्दिर और हवनकुण्ड दोनों अधिक पुराने नहीं हैं। वर्तमान मूर्तिसे पहले मन्दिरमें जो मूर्ति थी, वह मन्दिरके बाहर द्वार पर रक्खाहै। मन्दिरके नीचे जलस्रोत होनेके कारण मन्दिर नीचे धंसगयाहै।

९–त्रियुगीनारायणसे केदारनाथ–[१३ मील]

त्रियुगीनारायणसे केदारनाथ जानेके लिए मार्गमें निम्न चट्टियां मिलतीहैं —

त्रियुगीनारायण—शाकंभरीदेवी (२),—गौरीकुण्ड (४½),—रामबाड़ा (४),—केदारनाथ (३)।

त्रियुगीनारायणसे उतरने पर मार्गमें शाकम्भरीदेवीका मन्दिर है, जिसे मनसादेवी भी कहतेहैं। देवीको चीर चढ़ायाजाता

हैं। शाकंभरीदेवीसे थोड़ा और उतरने पर पाटागाड़ पुल मिलता है, जहा ऋषिकेशसे देवप्रयाग, श्रीनगर, रुद्रप्रयाग होकर केदारनाथ आनेवाली सड़क मिलतीहै। इसलिए गौरीकुण्ड, रामपड़ाव और केदारनाथका वर्णन आगे दियाजाएगा।

[४] हरिद्वार-ऋषिकेशसे केदारनाथ-बदरीनाथकी यात्रा

१०-मोटरमार्ग केदारनाथ-बदरीनाथकी यात्राः—

बहुत से यात्री यमुनोत्तरी तथा गङ्गोत्तरी नहीं जाते। वे केवल केदारनाथ और बदरीनाथकी या केवल केदारनाथ अथवा बदरीनाथकी यात्रा करतेहैं। अब मोटरमार्ग ऋषिकेशसे जोशीमठ तक पहुँचताहै। जो यात्री केवल बदरीनाथ जातेहैं वे मोटरद्वारा जोशीमठ तक पहुँचजातेहैं। वहासे बदरीनाथके लिए केवल १८ मील पैदल चलना पड़ता है। किन्तु जो केदारनाथ की यात्रा करना चाहतेहैं वे रुद्रप्रयाग उतरजातेहैं। यहा गङ्गापार उन्हें गुप्तकाशीके लिए पुनः मोटर मिलतीहै। वहासे केदारनाथ के लिए केवल २० मील पैदल जानापड़ताहै। अब भी अनेक श्रद्धालु यात्री पैदल ही यात्रा करतेहैं। उनके मार्गमे चट्टियोंका क्रम इस प्रकार पड़ताहै।

११-(१) ऋषिकेशसे देवप्रयाग-[४४ मील]

देवप्रयाग ऋषिकेशसे श्रीनगर जानेवाले मोटरमार्ग पर पड़ताहै। यहा मोटर या पैदल चलनेमें मिलने वाली चट्टियोंका वर्णन ऊपर दियाजाचुकाहै।

१२-(१) देवप्रयागसे श्रीनगर [२० मील]

कार्तिनगरमें गङ्गाजीपर पुल लगजानेसे अब मोटर ऋषिकेशसे देवप्रयाग होकर सीधे श्रीनगर पहुँच जातीहैं। देवप्रयाग से श्रीनगर तक पैदल मार्गमे निम्न चट्टिया पड़तीहैं.—

देवप्रयाग-रानीबाग (८३),-रामपुर (३३),-अरकणा (३),-विल्वकेदार (७),-श्रीनगर (३)।

१३-श्रीनगर-[१६०० फीट]

नगरमें प्रवेश करनेसे पहलेही शंकरमठ मिलताहै। बांई ओर कमलेश्वरका प्राचीन मन्दिर है। यहां सत्यनारायण,नागेश्वर, हनुमानजी तथा केशवरायके मन्दिर हैं और कंममर्दिनीका स्थान है। श्रीनगर श्रीक्षेत्र कहलाताहै। यहां गङ्गाजी धनुषाकार होगई है, इसलिये 'धनुषतीर्थ' कहलाताहै। कहतेहैं कि भगवान रामने कमलेश्वरमें सहस्त्रकमलोंसे शिवजीकी आराधना कीथी। केशवराय के मन्दिरको विरहीगङ्गाकी बाढसे हानि पहुँचीहै, तथा सारा प्राचीन श्रीनगर बहगयाहै। [मेरा लेख,कलाकारोंका केन्द्र,श्रीनगर कर्मभूमि, २७ नवम्बर ४६]

श्रीनगरमें श्रीयंत्रः—

डाक्टर पातीरामका कहनाहै कि श्रीनगरका नाम श्रीयंत्र के कारण पड़ाहै, जो यहां पाषाण स्तंभ पर खुदाथा और जिसे श्री शङ्कराचार्यने नदीमें फेंक दियाथा। जब आर्यलोग पहले-पहल गढ़वालमें आए तो उन्हें यहां कोल-असुरोंसे लड़नापड़ा और अन्तमें विजयीहुए। इस बातके प्रमाण हैं कि तबसे श्रीनगर सदा नगर रहाहै। अनेक बार श्रीनगर प्राकृतिक उत्पातों-जैसे बाढ आदिसे नष्ट होचुकाहै। प्राचीन कालमें यहां श्रीयन्त्रके सन्मुख नर बलि दीजातीथी और उसे रोकनेका प्रयत्न श्रीशङ्कराचार्यने कियाथा। [पातीराम, गढ़वाल एनशियेंट ऐंड मोर्डन, १५७-५८] किन्तु इस बातके प्रमाणहैं श्रीनगरमें सोलहवीं शताब्दी तक प्रति दिन एक नरबलि हुआ करतीथी। श्रीनगरके पास सुमाड़ी गांवके रोजा ब्राह्मण अभी तक उस पयुन्दा दादा की पूजा करतेहैं जिसकी

पवार नरेशोंकी देवी राज-राजेश्वरीकी तुष्टिके लिए अन्तिम बलि दीगईथी । अब तक श्रीयन्त्र गङ्गाजीकी धारामे पडादिखाईदेताहै ।

१४ (३) श्रीनगरसे रुद्रप्रयाग [२० मील]

मोटर मार्गके अतिरिक्त पैदल मार्गमे निम्न चट्टियां पड़ती हैं ।

रुद्रप्रयाग—शुकरना (५),-भट्टीसेरा (३½),-खाकरा (४),-नरकोटा (२½),-गुलाबराय (२½),-रुद्रप्रयाग (१½) । कहतेहैं कि शुकरनामें शुकदेवजीने तपस्या कीथी । इससे आगे फरासुगांवमे परशुरामजीकी तपोभूमि बतलाईजातीहै । भट्टीसेरा और रुद्र-प्रयागमे धर्मशालाएं हैं । रुद्रप्रयागके पास जिम कौरबेटने नर-भक्षी व्याघ्रका वध कियाथा ।

१५—रुद्रप्रयाग [२००० फीट]

यहा अलकनन्दा और मन्दाकिनीका संगम है । यहासे केदारनाथ तथा बदरीनाथके मार्ग पृथक् होतेहैं । ऋषिकेशसे रुद्र-प्रयाग ८४ मीलहै । यहासे केदारनाथ ४८ मीलहै । यहा शिवजी का मन्दिर है । केदारखण्ड ग्रथके अनुसार नारदजीने संगीत विद्या की प्राप्तिके लिए यहा शिवजीकी आराधना कीथी । रुद्रप्रयाग बसस्टेशनसे २½ मील दूर अलकनन्दाके दाहिने तट पर कोटेश्वर महादेवका स्थान है । यह मूर्ति गुफामें है जिस पर स्वय जल टपकतारहताहै । कोटेश्वरसे एक मीलपर उमरानारायणका मन्दिर है । कोटेश्वर और उमरानारायण दोनों स्थानोंमे धर्मशालाएं हैं । रुद्रप्रयागसे मोहनाखाल जानेवाले मार्ग पर १६ मील दूर, स्वामी कार्तिकेयका मन्दिर है, जो सिद्ध पीठ मानाजाताहै । रुद्रप्रयागसे ७ मील दूर शिवानन्दीमे ६ मील दूर ऊंची चढाई पर हरियाली देवीका मन्दिर है ।

१६-(४) रुद्रप्रयागसे केदारनाथ [४८ मील]

रुद्रप्रयागसे गुप्तकाशी तक मोटर मार्ग जाताहै। आगे पैदल मार्ग केवल १८-१९ मील रहजाताहै। श्रद्धालु यात्री अब भी पैदल चलतेहैं। मन्दाकिनीकी घाटीमें मार्ग बड़ा सरल और मनोहर है। चट्टियोंका क्रम इस प्रकार है।

रुद्रप्रयाग—छतौली (५),–मठचट्टी (१½),–रामपुर (१),–अगस्त्यमुनि (४½),–छोटानारायण (½),–सौड़ी (१½),–चन्द्रापुरी (२),–भीरी(·½),–कुण्ड(२),–गुप्तकाशी (·½),–नाला(१½),–नारायण कोटि (१),–मैखण्डा (२),–फाटा (२),–रामपुर (३),–सोमद्वार (३½),–गौरीकुण्ड (३),–चिरपटिया भैरव (१),–भीमशिला (१),–रामबाड़ा (२),–केदारनाथ (१)।

छतौलीमें अलसतरंगिणी नदी मन्दाकिनीमें मिलतीहै। यह स्थान सूर्यप्रयाग कहलाताहै। अगस्तमुनिमें अगस्त्यजीका मन्दिर और धर्मशाला है। यहासे ६ मील दूर स्कन्दपर्वत पर स्वामी कार्तिकेयका मन्दिर है। छोटानारायणमें मन्दिर और रुद्राक्षका वृक्ष है। चन्द्रापुरीमें चन्द्रशेखर शिव तथा दुर्गाजीके मन्दिर हैं। यहाँ मन्दाकिनी और चन्द्रानदीका संगम है। भीरीमे भीमसेनका मन्दिर है। यहासे टेहरी और वूढ़ेकेदारको एक मार्ग जाताहै।

१७-गुप्तकाशी [४८५० फीट]:—

यहां अर्द्धनारीश्वर शिवजीकी नन्दी पर आरूढ़ सुन्दर मूर्ति है। काशीविश्वनाथकी लिंगमूर्ति है और नन्दी तथा नन्दीश्वर और पार्वतीजीकी मूर्तिया भी उसी मन्दिरमे हैं। एक कुण्डमे दो धाराएँ हैं जो गङ्गा-यमुना कहलातीहैं।

१८–शोणितपुर:—

गुप्तकाशीसे ४ मील दूर दक्षिणमे,कुण्डचट्टीसे २ मील ऊपर

पर्वतपर प्राचीन शोणितपुरहै। बाणासुरका दुर्ग बतलाया जाताहै। यहां केदारनाथके पंडोंका गांव लमगोडी है। यहां भगवान श्रीकृष्ण की श्याम पाषाणकी चार फीट ऊंची, चतुर्भुज मूर्ति, शङ्ख-चक्र गदा-पद्म धारी अत्यन्त भव्य कलापूर्ण है। किन्तु गावके नीचे गौशालाओंके बीच अनाथ अवस्थामें पड़ी है। सरकार को ऐसी कलापूर्ण मूर्तिकी रक्षा करनी चाहिए राष्ट्र की ऐसी दुर्लभ सम्पत्ति नष्ट न होने देनी चाहिए। मन्दाकिनीके पार ऊषीमठ है जहा बाणासुरकी पुत्री ऊषाका भवन था, ऐसा मानाजाता है।

१९ नालाचट्टी

यहाँ ललितादेवी का मन्दिर है। कहते हैं राजा नल उसकी आराधना करते थे। केदारनाथसे लौटते समय यात्री यहासे सीधे ऊषी मठ चले जाते हैं। यहाँ प्राचीन मन्दिरों और खण्डहरों के बीच निवेदिता, उषा याय आर गर्ल एक बौद्ध स्तूप बतलाते हैं। पर ध्यान पूर्वक देखने से यह बौद्ध स्तूप नहीं बल्कि किसी साधु-गुसाईं की समाधि सा लगताहै। नाला चट्टी से १½ मील पर माता देवी का मन्दिर तथा अन्य ४५ प्राचीन मन्दिर हैं।

२०—नारायण कोटि—

(भेत) यह स्थान अवश्य ही प्राचीन काल में अत्यन्त महत्वपूर्ण रहा होगा। यहाँ नारायण का प्राचीन युगल मन्दिर है। साथ सारे क्षेत्र में मीलों तक प्राचीन मन्दिरों के ध्वस बिखरे हैं। जिनके सम्बन्धमें विभिन्न विद्वानोंने विभिन्न अनुमान लगाये हैं। निवेदिता ने लिखा है—देवी पूजा का प्रचार होने पर फिर एक ऐसा युग आया जिसमें देवीका सम्बन्ध शिव और गणेशसे जोड़कर एक परिवार की कल्पना करली गई। केदार नाथ से पहले जो शिरहीन गणेश मिलता है "सूनी उसा से एक

है कि शिव-पार्वतीका पुत्र बनने से पहले इस देवता का अपना इतिहास था ।

भेतू चट्टी (नारायण कोटि) में जलाशयके ऊपर चैत्य के आकार या जो घर बना है, उसकी बौद्ध ढङ्ग की रचना तथा उसके द्वार पर बना हुआ गणेश सूचित करता है कि इस क्षेत्रमें यह सबसे प्राचीन वस्तु है । बुद्धके निर्वाण के दिन से ही बौद्ध प्रचारक हिमवंत में आते रहे हैं और बौद्ध धर्मका प्रचार करते रहे हैं । किन्तु उनके कार्यके चिह्न अब लुप्त होचुके हैं । अब केवल गोपेश्वरमें माताका मन्दिर जो चैत्यके आकारका बना है, भेतू चट्टी (नारायण कोटि) के जलाशय पर चैत्याकार घेरा जोशीमठ में नौ देवियोंका मन्दिर तथा नालामें स्तूपसे बदल कर बना हुआ मन्दिर केवल यही चिह्न बौद्ध धर्मके बच सके हैं। (निवेदिता, फुट फाल्स आव इंडियन हिस्टरी, २१५१६)

नारायण कोटिमें दबे हुए ३६० मन्दिरोंमें से कुछको सन् १९२७ से वहाँ के उत्साही विद्वान श्री विशालमणि उपाध्याय खुदवा रहे हैं और उनके प्रयत्नसे विद्वानों का ध्यान इस धार्मिक और ऐतिहासिक महत्वके स्थान की ओर गया है । फिर भी आश्चर्य है कि पुरातत्व विभागने इस सम्बन्धमें कोई सक्रिय भाग नहीं लिया है। और गढ़वालके इतिहास की अत्यन्त महत्वपूर्ण सामग्री यहाँ नष्ट हो रही है । सारे मध्य हिमालय प्रदेश में टोंससे लेकर अलमोड़ा तक कहीं इतनी अधिक दूरी तक और इतने महत्वपूर्ण प्राचीन ध्वंस नहीं मिलते जितने नाला-नारायण कोटिमें लेकर सारी मन्दाकिनी-उपत्यकामें फैले हैं। अवश्य यहाँ प्राचीन कालमें राजधानी थी । यहाँ नौ ग्रहों के नौ मन्दिर, लक्ष्मी नारायण, भद्रेश्वर, सत्यनारायण आदि के मन्दिर अब भी बचे हैं । नवग्रहों के मन्दिर सम्भवतः भारत में

बहुत कम हैं। ऐसे प्राचीन स्थान में पुरातत्व विभाग को अवश्य खुदाई करवानी चाहिए और इस दुर्लभ सामग्री की रक्षा करनी चाहिए।

२१—कालीमठ—

नारायणकोटि से २½ मील दूर सरस्वतीके तट पर प्रसिद्ध कालीमठ है जहाँ महाकाली, महासरस्वती और महालक्ष्मीके मन्दिर और अति सुन्दर मूर्तियां हैं। यह स्थान सीधे यात्रा मार्ग में नहीं पड़ता। उसका वर्णन आगे उत्तराखण्ड के तीर्थों में पुरातत्व-इतिहास की सामग्री नामक अध्यायमें दिया गया है। यात्रियों को मुख्य मार्ग छोड़कर २½ मील जाने और लौटने का कष्ट तो होता है पर इस तीर्थ में पहुँच कर जो अपार सुख-शान्ति मिलती है उसके सन्मुख यह कष्ट क्या है? यहाँ हरगौरी की दुर्लभ मूर्ति है। भैरवंडा में महिषमर्दिनी का मंदिर और हिंडोला है। रामपुरसे त्रियुगीनारायणको मार्ग जाता है। जो त्रियुगी नारायण नहीं जाते वे सीधे गौरीकुंड चले जाते हैं। गोरीकुंड में सोमनदी मन्दाकिनी में मिलती है। यहाँ सोम प्रयाग है। पुल पार एक मील पर छिन्न मस्तक गणपति है, जो रुहेलों द्वारा भग्न प्रतिमा है।

२२—(गौरीकुण्ड ६५०० फीट)—

यहाँ ठंडे पानी और गरम पानीके दो कुण्ड हैं। ठंडे पानीके कुण्ड मे स्नान करनेके पश्चात् यात्री उन्हीं गीले कपड़ो से कुछ दूर चलकर गरम कुण्ड (गौरी कुण्ड) में स्नान करते हैं। इसलिए गोरीकुण्ड का जल और भी गरम प्रतीत होता है। पार्वती का जन्म यहीं हुआ था, ऐसा माना जाता है। यहाँ पार्वती का मन्दिर और राधाकृष्ण का मन्दिर है।

है कि शिव-पार्वतीका पुत्र बनने से पहले इस देवता का अपना इतिहास था।

भेतू चट्टी (नारायण कोटि) में जलाशयके ऊपर चैत्य के आकार का जो घर बना है, उसकी बौद्ध ढङ्ग की रचना तथा उसके द्वार पर बना हुआ गणेश सूचित करता है कि इस क्षेत्रमें यह सबसे प्राचीन वस्तु है। बुद्धके निर्वाण के दिन से ही बौद्ध प्रचारक हिमवंत में आते रहे हैं और बौद्ध धर्मका प्रचार करते रहे हैं। किन्तु उनके कार्यके चिह्न अब लुप्त होचुके हैं। अब केवल गोपेश्वरमें माताका मन्दिर जो चैत्यके आकारका बना है, भेतू चट्टी (नारायण कोटि) के जलाशय पर चैत्याकार घेरा जोशीमठ में नौ देवियोंका मन्दिर तथा नालामें स्तूपसे बदल कर बना हुआ मन्दिर केवल यही चिह्न बौद्ध धर्मके बच सके हैं। (निवेदिता, फुट फाल्स आव इंडियन हिस्टरी, २१५१६)

नारायण कोटिमें दबे हुए ३६० मन्दिरोंमें से कुछको सन् १९२७ से वहाँ के उत्साही विद्वान श्री विशालमणि उपाध्याय खुदवा रहे हैं और उनके प्रयत्नसे विद्वानों का ध्यान इस धार्मिक और ऐतिहासिक महत्वके स्थान की ओर गया है। फिर भी आश्चर्य है कि पुरातत्व विभागने इस सम्बन्धमें कोई सक्रिय भाग नहीं लिया है। और गढ़वालके इतिहास की अत्यन्त महत्वपूर्ण सामग्री यहाँ नष्ट हो रही है। सारे मध्य हिमालय प्रदेश में टौससे लेकर अलमोड़ा तक कहीं इतनी अधिक दूरी तक और इतने महत्वपूर्ण प्राचीन ध्वंस नहीं मिलते जितने नाला-नारायण कोटिसे लेकर सारी मन्दाकिनी-उपत्यकामें फैले हैं। अवश्य यहाँ प्राचीन कालमें राजधानी थी। यहाँ नो ग्रहों के नौ मन्दिर, लक्ष्मी नारायण, भद्रेश्वर, सत्यनारायण आदि के मन्दिर अब भी बचे हैं। नवग्रहों के मन्दिर सम्भवतः भारत में

बहुत कम हैं। ऐसे प्राचीन स्थान में पुरातत्व विभाग को अवश्य खुदाई करवानी चाहिए और इस दुर्लभ सामग्री की रक्षा करनी चाहिए।

२१–कालीमठ—

नारायणकोटि से २½ मील दूर सरस्वतीके तट पर प्रसिद्ध कालीमठ है जहाँ महाकाली, महासरस्वती और महालक्ष्मीके मन्दिर और अति सुन्दर मूर्तियां हैं। यह स्थान सीधे यात्रा मार्ग में नहीं पड़ता। उसका वर्णन आगे उत्तराखण्ड के तीर्थों में पुरातत्व-इतिहास की सामग्री नामक अध्यायमें दिया गया है। यात्रियों को मुख्य मार्ग छोड़कर २½ मील जाने और लौटने का कष्ट तो होता है पर इस तीर्थ में पहुँच कर जो अपार सुख-शान्ति मिलती है उसके सन्मुख यह कष्ट क्या है? यहाँ हरगौरी की दुर्लभ मूर्ति है। भैरवंडा में महिषमर्दिनी का मंदिर और हिंडोला है। रामपुरसे त्रियुगीनारायणको मार्ग जाता है। जो त्रियुगी नारायण नहीं जाते वे सीधे गौरीकुंड चले जाते हैं। गौरीकुंड में सोमनदी मन्दाकिनी में मिलती है। यहाँ सोम प्रयाग है। पुल पार एक मील पर छिन्न मस्तक गणपति है, जो रुहेलों द्वारा भग्न प्रतिमा है।

२२–(गौरीकुण्ड ६५०० फीट)—

यहाँ ठंडे पानी और गरम पानीके दो कुण्ड हैं। ठंडे पानीके कुण्ड में स्नान करनेके पश्चात् यात्री उन्हीं गीले-कपड़ो से कुछ दूर चलकर गरम कुण्ड (गौरी कुण्ड) में स्नान करते हैं। इसलिए गौरीकुण्ड का जल और भी गरम प्रतीत होता है। पार्वती का जन्म यहीं हुआ था, ऐसा माना जाता है। यहाँ पार्वती का मन्दिर और राधाकृष्ण का मन्दिर है।

२३–रामबाड़ा—

यहाँ से केदारनाथ दो मील है इसलिये यात्री रात्रिको यहीं ठहरते हैं और अपना सामान यहीं छोड़कर प्रातः केदारनाथ जाकर शामको यहीं लौट आते हैं। रुद्रप्रयागसे केदारनाथ तक अनेक चट्टियों के अतिरिक्त अगस्त्य मुनि, गुप्तकाशी, फाटा, रामपुर, गौरीकुण्ड और रामबाड़ामें काली कमली वाले की धर्मशाला हैं।

२४–मन्दाकिनी-उपत्यका का वैभव—

मन्दाकिनी-उपत्यकामें आगे बढ़ते हुए यात्रीको कई स्थानोंमें अत्यन्त सुन्दर दृश्यावली और प्रकृति की अकृत्रिम छटा देखने को मिलेगी। थोड़ी-थोड़ी दूर चलने पर, इत-तत, नाना प्रकार की मूर्तियों वाले मन्दिरों के पुंज मिलेंगे। उसकी दृष्टि को प्राचीन स्मारक और अवशेष आकर्षित करेंगे। सच पूछो तो मन्दाकिनी उपत्यकासे पता चलता है कि किस प्रकार यहाँ प्राक् ऐतिहासिक कालसे लेकर आज तक हिन्दू धर्म की एक के पश्चात् दूसरी लहरें आती रही हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि हिन्दू धर्म के प्रत्येक सुधारकने इस प्रदेशमें अपने प्रमुख देवी-देवता की स्थापना करने का प्रयत्न किया है। अगस्त्य मुनि फाटा, भैतू (नारायण कोटि) और नाला चट्टी, वैदिक महाकाव्य कालीन, बौद्ध, शङ्कर तथा पौराणिक हिन्दू धर्म और वैष्णव मतके स्मारक है। (पातेराम गढ़वाल, एनशिएंट एण्ड मोडर्न, १४८)

२५–अगस्त्यमुनि से केदारनाथ तक का मार्ग—

अगस्त्य मुनिसे आगे मन्दाकिनी की सारी उपत्यका में हिन्दू धर्म की ऐतिहासिक रङ्गस्थली रही है। इस क्षेत्र के अंतर्गत

यात्रा को नाना प्रकार की आकर्षक दृश्यावली मिलती हैं। नाला चट्टी से थोड़ी दूर आगे से दृश्यावली अत्यधिक मोहक है। इसके सौन्दर्य का वर्णन करना असम्भव है। त्रियुगी से आगे घाटी अधिक चढ़ाई वाली और अधिक निर्जन होती जाती है जिसमें अपार गहराई वाले गर्त हैं। और अनेक नदियां अपने हिम स्रोतों से बाहर भागती मिलती हैं और एक चट्टान से दूसरी चट्टान तक दौड़ती-टकराती उछलती कूदती चलती हैं। कई स्थानों पर नदी का घनघोष सर्वथा बधिर बना देता है। रामबाड़ा से आगे जो प्राचीन पर्वत शिखर खड़े हैं उनकी अकृत्रिम अद्भुत दृश्यावली तथा उनके चरणों पर प्राकृतिक रूप से उगने वाले अगणित पुष्पों की छटा मनुष्य को सब कुछ भुलाकर उसका ध्यान सृष्टि निर्माता की ओर आकर्षित कर देती है। (पातीराम, गढवाल, एनशिएट ऐण्ड मोडर्न, १६१)

२६—मन्दाकिनी-उपत्यकामें चढ़ाई—

मन्दाकिनी उपत्यका में सुन्दर दृश्यावली, भव्य प्राचीन खण्डहरों को देखकर जहाँ यात्री आनन्द से गद्‌गद् हो जाता है वहाँ अन्तिम पड़ाव पर उसे ऐसी सीधी खड़ी चढाई मिलती है जैसी चारों धामों की यात्रा में अन्यत्र कहीं नहीं मिलती।

जो मार्ग आपके सम्मुख है और जिस पर आप-जैसे लाखों यात्री चल चुके हैं, वह अत्यधिक खड़ी चढाई वाला और ऊबड़-खाबड़ है। यदि आपके फेफड़ों ने कभी ऊँचे स्थानों की वायु में साँस नहीं लिया है यदि घर की छत के अतिरिक्त और किसी ऊँचे स्थान पर आप नहीं चढे हैं, यदि आपके चरणों ने मृदुल बालू से अधिक कठोर वस्तुओं पर चलने का कभी अनुभव नहीं किया है तो ऐसे अनेक अवसर आयेंगे जब ऊँची पर्वत-शृंखलाओं पर चढते हुए आप हाँपने लगेंगे। जब कठोर

शिलाएँ, नुकीले शैल और हिमाच्छादित भूमि पर चलने से आपके पैर छिल जाएंगे, जब आप अपने हृदयको पूछने लगेंगे कि जिस फल-प्राप्तिके लिये यह असीम कष्ट उठाया जाता है, क्या उसका महत्व सचमुच इतना अधिक है कि यह सब यातनाएं सही जाए।

किन्तु हिन्दु होनेके कारण आप अपना श्रम न त्याग बैठेंगे, आप अपने मनको इस विचारसे सान्त्वना देते रहेंगे कि बिना कष्टके पुण्य प्राप्ति नहीं होती, इस जीवन में जितना अधिक कष्ट उठाया जायगा दूसरे जीवन मे उतना ही अधिक आनन्द प्राप्त होगा। (जिम कौरनेट, मैन ईटिंग लेपार्ड आव रुद्र प्रयाग, ३-४)

२७—केदार-बदरी यात्राः पादरी ओकले का वर्णन—

लगभग साठ वर्ष पूर्व केदार-बदरी यात्रा के सम्बन्धमें पादरी ओकलेने लिखा था—केदारनाथ और बदरीनाथ के युगुल शिखर एक दूसरे से केवल दस मील की दूरी पर खडे हैं। केदारनाथ शिखर २२-५२ फीट और बदरीनाथ शिखर २२६०१ फीट ऊँचा है। धरती पर सम्भवत कहीं भी हिमाच्छादित शिखरो की वह अतुल शोभा नहीं है, जो इन दो शिखरों की है। केदारनाथ से थोडी ही दूर नीचे मन्दाकिनी की घाटी में एक स्थान से ये दो नुकीले शिखर मानों आकाश को चीरते खडे प्रतीत होते हैं। और इनकी श्वेत पार्श्व, जिन पर अनन्त मृदुल और उज्वल हिम फैला है, बडे विस्मय पूर्ण ढङ्ग से आकाशमें स्तम्भसे खडे हैं। इस दृश्यावली का वर्णन प्रत्येक पर्यटकने बडे उत्साह से किया है यात्री के पैरों के नीचे जब वह मार्गमें तत्र-तत्र हिम पार करता रहता है, हिम के पास ही अत्यन्त

मादक सुगंध वाले ढेर के ढेर हलके गुलाबी रङ्ग वाले औरिकुला तथा पीले प्रिमरोज के पुष्प छिटकते मिलते है। वह अति प्राचीन एवं घने बंज के वनों से होकर, जिनके वृक्षों की शाखाओं पर स्थान-स्थान पर मोड़ आये हुए हैं, और जिनसे लम्बे श्वेत काई-पुञ्ज लटक रहे हैं, तथा अति सुन्दर लताएं लिपटी लटक रही है, तथा जिनमें यत्र-तत्र बड़े-बड़े अखरोट चेस्टनट मैपल और हेजल के वृक्ष मिलते हैं जब वह पर्वतों-पर और ऊपर चढ़ता है तो वन कम घने और विरले होने लगते है और उनका स्थान गुलाब तथा अत्यन्त तीव्र सुगन्ध वाले सिरंगा पुष्प की झाड़ियां ले लेती हैं। अनन्त हिम राशि के पास इन पुष्पों की सुगन्धि इतनी अधिक तीव्र है कि कभी-कभी पथिक उनके कारण मद विह्वल हो जाते हैं। पुष्पों की इस मादकता के साथ हलकी वायु शरीर मे जो दुर्बलता ले आती है अवश्य ही उसके कारण इन स्थानों मे देवताओं की विचित्र ढङ्ग से उपस्थिति माने जानी लगी है। इन प्रदेशों से जाने वाले यात्री अपने साथ बहुत सी काली मिर्च और लौंग ले जाकर चबाते रहते हैं, जिससे फूलों की तीव्र सुगन्ध और हलकी वायु से उनकी रक्षा हो सके। (ओक्ले, होलि हिमालय, १४-४३)

पतले वायुमण्डल मे विचित्र ध्वनियां भी सुनाई देती है जो सम्भवतः अति दूर हिमशिलाओं के टूटकर गिरने से उत्पन्न होती हैं। किन्तु जिन्हें श्रद्धालु यात्री क्रीड़ा और मंत्रणा के लिए उपस्थित देवताओं क शब्द मानते हैं। केदार का सारा क्षेत्र मन्दिरों और पवित्र स्थानों से भरा पड़ा है, जिनकी स्तुति और माहात्म्य के वर्णनों से स्कन्द पुराण भरा है। सचमुच विचित्र बातों के उस संग्रह (स्कन्द पुराण) के एक विशेष अध्याय या विभाग में केवल इसी प्रदेश का वर्णन है। (ओकले, होलि हिमालय, १४३)

शिलाएं, नुकीले शैल और हिमाच्छादित भूमि पर चलने से आपके पैर छिल जाएंगे, जब आप अपने हृदयको पूछने लगेंगे कि जिस फल प्राप्तिके लिये यह असाम कष्ट उठाया जारहा है, क्या उसका महत्व सचमुच इतना अधिक है कि यह सब यातनाएं सही जाए।

किन्तु हिन्दु होनेके कारण आप अपना श्रम न त्याग बैठेंगे, आप अपने मनको इस विचारसे सात्वना देते रहेंगे कि बिना कष्टके पुण्य प्राप्ति नहीं होती, इस जीवन में जितना अधिक कष्ट उठाया जायगा दूसरे जीवन मे उतना ही अधिक आनन्द प्राप्त होगा। (जिम कौरबेट, मैन ईटिंग लेपार्ड आव रुद्र प्रयाग, ३-४)

२७–केदार-बदरी यात्रा: पादरी ओकले का वर्णन—

लगभग साठ वर्ष पूर्व केदार बदरी यात्रा के सम्बन्धमें पादरी ओकलेने लिखा था–केदारनाथ और बदरीनाथ के युगुल शिखर एक दूसरे से केवल दस मील की दूरी पर खड़े हैं। केदारनाथ शिखर २२-५२ फीट और बदरीनाथ शिखर २२६०१ फीट ऊँचा है। धरती पर सम्भवत कहीं भी हिमाच्छादित शिखरों की वह अतुल शोभा नहीं है, जो इन दो शिखरों की है। केदारनाथ से थोड़ी ही दूर नीचे मन्दाकिनी की घाटी में एक स्थान से ये दो नुकीले शिखर मानों आकाश को चीरते खड़े प्रतीत होते हैं। और इनकी श्वेत पार्श्व, जिन पर अनन्त मृदुल और उज्वल हिम फैला है, बड़े विस्मय पूर्ण ढङ्ग से आकाशमें स्तम्भसे खड़े हैं। इस दृश्यावली का वर्णन प्रत्येक पर्यटकने बड़े उत्साह से किया है यात्री के पैरों के नीचे जब वह मार्गमें यत्र-तत्र हिम पार करता रहता है, हिम के पास ही अत्यन्त

मादक सुगन्ध वाले ढेर के ढेर हलके गुलाबी रङ्गवाले और किुला तथा पीले प्रिमरोज के पुष्प छिटकते मिलते हैं। वह अति प्राचीन एव घने बज्र के बनों से होकर, जिनके वृक्षों की शाखाओ पर स्थान-स्थान पर मोड़ आये हुए हैं, और जिनमे लम्बे श्वेत काई-पुञ्ज लटक रहे हैं, तथा अति सुन्दर लताए लिपटी लटक रही है, तथा जिनम यत्र-तत्र बडे-बडे अखरोट चेस्टनट मेपल और हजल के वृक्ष मिलते हैं जब वह पर्वतों पर आर ऊपर चढता है तो वन कम घने और विरले होने लगते है और उनका स्थान गुलाब तथा अत्यन्त तीव्र सुगन्ध वाले सिरगा पुष्प की झाड़िया ले लेती हैं। अनन्त हिम राशि के पास इन पुष्पों की सुगन्धि इतनी अधिक तीव्र है कि कभी-कभी पथिक उनके कारण मद विह्वल हो जाते है। पुष्पों की इस मादकता के साथ हलकी वायु शरीर मे जो दुर्बलता ले आती है अवश्य ही उसके कारण इन स्थानों म देवताओं की विचित्र ढङ्ग से उपस्थिति माने जानी लगी है। इन प्रदेशों से जाने वाले यात्री अपने साथ बहुत सी काली मिर्च और लौंग ले जाकर चबाते रहते हैं, जिससे फूलो की तीव्र सुगन्ध और हलकी वायु से उनकी रक्षा हो सके। (ओक्ले, होलि हिमालय, १४ -४३)

पतले वायुमण्डल में विचित्र ध्वनिया भी सुनाई देती है जो सम्भवत अति दूर हिमशिलाओं के टूटकर गिरने से उत्पन्न होती हैं। किन्तु जिन्हे श्रद्धालु यात्री क्रीडा और मलणा के लिए उपस्थित देवताओं क शब्द मानते हैं। केदार का सारा क्षेत्र मन्दिरों और पवित्र स्थाना से भरा पड़ा है, जिनकी स्तुति और माहात्म्य के वर्णना से स्कन्द पुराण भरा है। सचमुच विचित्र वार्ता के उस सग्रह (स्कन्द पुराण) के एक विशेष अध्याय या विभाग म केवल इसी प्रदेश का वर्णन है। (ओक्ले, होलि हिमालय, १४३)

२६–केदारनाथ–(११७५३ फीट) ३०°. ४४'. १५" × ७८°. ६. ३३"

केदारनाथ द्वादश ज्योतिलिंगों मे से एक है। केदारनाथ के तीन ओर महान् गगनचुम्बी शिखर खड़े होकर तीन ओर से दृष्टि पंथ को रुद्ध कर देते हैं। यहाँ पहुँच कर लगता है जैसे हम धरती के अन्तिम छोर पर पहुँच चुके हैं। इसके आगे और कुछ नहीं है। केदारनाथ शिखर २२०७४ फीट तथा इसके दो अन्य शिखर भारत खण्ड २२८४४ फीट और खरचा खण्ड २१६६५ फीट ऊँचे हैं। इन्हीं शिखरों के नीचे केदारनाथ तीर्थ है। इनके दक्षिणी पूर्वी भाग से मन्दाकिनी नदी निकलती है। केदारनाथ से भागीरथी उद्गम तक लगातार हिमालय चला गया है उसमें कितने ही शिखर २०००० फीट से अधिक ऊँचे हैं। केदारनाथ हिमानी पहले लटक कर रामबाड़ा तक तथा और आगे तक फैली रही होगी। अब खिसक कर केदारनाथ मन्दिर से एक मील पीछे हट गई हैं। मन्दिर से आगे हिमानी की ओर बढ़ने पर जो अद्भुत दृश्य देखा जाता है, उसे शब्दों में व्यक्त करना असंभव है। हिमकी भारी–भारी शिलाएं गगनचुम्बी शिखरों से वायु मे उछल कर घनघोष करती हुई नीचे गिरती और चूर्ण-विचूर्ण होकर वायु मे फैल जाती है। अपने नेत्रों के सन्मुख इतने निकट से हिमानियों के टूटने का रोमांचकारी अद्भुत दृश्य देखने की सुविधा बहुत थोड़े स्थानों पर होगी। कर्ण पटलों को बधिर बना देने वाला वह भीषण घोष सूर्य किरणों से पल–पलमें रङ्ग बदलने वाली वह हिमराशि और उन्हें टपक कर निकट आते देखने से रोम–रोम में उत्पन्न होने वाली कंपकंप, अनुभव की वस्तु हैं, वर्णन की नहीं।

केदारनाथ का विशाल मन्दिर हिमालय के सर्व श्रेष्ट और विशाल मन्दिरों में से है। गढ़ी हुई अति विशाल पाषाण शिलाओं

से इसका निर्माण किया गया है जिसे देखकर आश्चर्य होता है। मन्दिर ऊंचे चबूतरे पर स्थित है। जिसके सभा मण्डप के अन्दर उस दीवार पर जो गर्भ गृह के द्वार पर है, द्वार के दोनों ओर उसी प्रकार की शैव मूर्तियां लगी हैं, जैसी वैजनाथ (कांगड़ा) के प्रसिद्ध शिव मन्दिर में लगी हैं। अन्दर कोई निर्मित मूर्ति नहीं है। वरन् मेनाइट पाषाण की त्रिभुजाकार अति विशाल शिला है। इस शिला के चारों ओर दूसरे पाषाण का अर्घा बनाकर लगाया गया है। यह अर्घा (योनि) एक ही समूचे पाषाण का बना है। यात्री स्वयं जाकर पूजा करते और अङ्कमाल देते हैं। सभा मण्डप में आठ पुरुष प्रमाण मूर्तियां हैं, जिन्हें पाण्डव आदि कहकर यात्रियों को दिखाया जाता है। पर वास्तव में इनका सम्बन्ध शैवधर्म से है।" ऐसा राहुल का कहना है।

यहाँ के दर्शनीय स्थान भृगुपंथ, मधुगङ्गा, क्षीरगङ्गा (चोरा बाड़ी ताल), वासुकिताल, गूगुलकुण्ड, एवं भैरव शिला हैं। यहीं भीम गुफा और भीम शिला हैं। केदारनाथ में कई धर्मशालाएं हैं, पर शीताधिक्य के कारण यहाँ लोग कम ठहरते हैं। केदारनाथ मन्दिर के बाहर परिक्रमा के पास अमृत कुण्ड, ईशान कुण्ड, हंस कुण्ड, रेतस कुण्ड आदि तीर्थ बतलाये जाते हैं।

(५) केदारनाथ से बदरीनाथ यात्रा

२६—मोटर मार्ग—

केदारनाथ से गुप्तकाशी लौट आने पर अनेक यात्री वहाँ से मोटर द्वारा रुद्र प्रयाग पहुँचते हैं, और रुद्रप्रयाग से जोशीमठ तक मोटर से पहुँच कर जोशीमठ से बदरीनाथ १८ मील की यात्रा पैदल करते हैं। पैदल मार्ग में चट्टियों का क्रम इस प्रकार है।

३०-(१) केदारनाथ से नालाचट्टी (२३ मील)

केदारनाथ से बदरीनाथ जाने के लिये २३ मील तक वापिस नाला चट्टी तक उसी मार्ग से लौटना होता है, जिस मार्ग से केदारनाथ जाते हैं।

३१-(२) नालाचट्टी से चमोली (लालसांगा) ३४½ मील

नालाचट्टी—उखीमठ (३)-गणेश चट्टी (२½)-पोथीवासा (४),-डोगल भीड़ा (½),-बनिया कुण्ड (१½),-चोपता (१) तुङ्गनाथ (३),-जङ्गल चट्टी (३),- पागरवासा (३½),-मण्डल (४),-गोपेश्वर (४½),-चमोली (३)।

३२-उखीमठ-(४३०० फीट)

नालाचट्टी से नीचे उतरने पर मन्दाकिनी के पार उखीमठ है जहाँ शीतकाल में केदारनाथजी की चल मूर्ति की पूजा होती है। यहाँ "मन्दिर के भीतर बदरीनाथ, तुङ्गनाथ, ओंकारेश्वर केदारनाथ, ऊषा-अनिरुद्ध, मान्धाता तथा सत्ययुग, त्रेता, द्वापर की मूर्तियां एवं कई मूर्तियां हैं।" (*कल्याण तीर्थांक ५६*) किन्तु राहुलजी इनमें से कुछ को शैवाचार्यों, सामन्तों और राजकुमार, राजकुमारी की मूर्तियां मानते हैं। (गढवाल, ४४४) यहाँ की अनेक प्राचीन-नवीन मूर्तियां देखने योग्य हैं।

कालीमठ—

उखीमठ से एक पगडण्डी मद्महेश्वर (मध्यमेश्वर) तक जाती है। मध्यमेश्वर यहाँ से १८ मील दूर है। इसे द्वितीय केदारनाथ माना जाता है। ये पाँच केदार क्रमशः केदारनाथ, मध्यमेश्वर, तुङ्गनाथ, रुद्रनाथ और कल्पेश्वर हैं। इस मार्ग में कालीमठ जहाँ महाकाली, महालक्ष्मी, तथा महा सरस्वती के मन्दिर हैं, पड़ता है। कालीमठ से ३ मील दूर

चल शिला, ४ मील दूर पर राजेश्वरी का विशाल मन्दिर, तथा २ मील पर कोटि माहेश्वरी का मन्दिर है।

३३–तुङ्गनाथ–(१२०७० फीट)

चोपता चट्टी से ३ मील की चढाई चढने पर तुङ्गनाथ मन्दिर आता है। मन्दिर में शिव लिंग और कई अन्य मूर्तियां हैं। यहॉं आकाश गङ्गा नामक एक अत्यन्त शीतल जल धारा है। तुङ्गनाथ शिखर से हिमालय का विस्मय कारक दृश्य दिखाई देता है। पूर्व की ओर नन्दा देवी, पञ्चचूली और द्रोणाचल शिखरों की शृंखला अनन्त तक चली गई हैं। उत्तर की ओर रुद्रनाथ, बदरीनाथ, शतु स्तम्भ, केदारनाथ, यमुनोत्तरी, गंगोत्तरी शिखर शृंखलाएं गगन भेदती दृष्टिपथ में आती हैं। दक्षिण की ओर पौड़ी का कडोलिया पर्वत, चन्द्र वदनी पर्वत, तथा सुरखण्डा देवी के शिखर आदि दिखाई देते हैं।

चढाई चढने में असमर्थ व्यक्ति चौपता से सीधे १½ मील चलकर भुलकना चट्टी और वहॉं से १ मील भीम उड्यार होकर जङ्गल चट्टी पहुँचते हैं। पर जो चलने में समर्थ हों, उन्हें यहॉं की अति सुन्दर दृश्यावली देखने से न चूकना चाहिए।

३४–तुङ्गनाथ–प्रदेश का सौन्दर्य, वैटन का उल्लेख–

जिन्हें तुङ्गनाथ शिखर के बनों में भ्रमण करने का अवसर मिला है अथवा जिन्हें दिउरी ताल के तट पर एक दिन भी व्यतीत करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है, वे गढवाल नागपुर की उपत्यका को कभी न भुला सकेंगे। सारी उपरली पट्टियों में इतनी सुन्दर दृश्यावलियां यत्र–तत्र मिलती रहती हैं जिनके समान सुन्दर और महान अन्यत्र नहीं मिल सकतीं। और साधारण यात्री भी सरलता से उन तक पहुँच सकता है। इतने

अद्भुत सौन्दर्य का भण्डार कहाँ मिलेगा ? (एटकिनसन, हिमालयन डिस्ट्रिक्टस, खण्ड ३ में उद्धृत बैटन का लेख,)

३५—अमृतकुण्ड और रुद्रनाथ—

मण्डल चट्टी से एक मार्ग अमृत कुण्ड को जाता है जिसमें अनुसूया मठ, अत्रि आश्रम, दत्तात्रेय आश्रम और अमृत कुण्ड मिलते हैं। इस यात्रा को पूरी करके मण्डल चट्टी लौटने में ३ दिन लगते हैं। भोजनादि की सब सामग्री मण्डल चट्टी से साथ ले जानी पड़ती है। मण्डल चट्टी से एक मार्ग रुद्रनाथ को भी जाता है जो चतुर्थ केदार माने जाते हैं।

३६—गोपेश्वर—

"पहले उत्तराखण्ड के प्रमुख तीर्थों में रहा होगा। केदारनाथ के मन्दिर को छोड़ कर यहाँ का मन्दिर गढ़वाल और कुमांऊ का सबसे प्राचीन और विशाल मन्दिर है। कई दर्जन पुरानी टूटी-फूटी मूर्तियां इसके गत वैभव को बतलाती हैं। तेरहवीं शताब्दी के दो नैपाली विजेताओं ने यहाँ के विशाल लौह त्रिशूल पर अपने अभिलेख छोड़े हैं। त्रिशूल के डण्डे पर तो उससे भी पाँच-छः शताब्दियों पूर्व का अभिलेख है। गोपेश्वर के ऐतिहासिक महत्व से कौन इनकार कर सकता है ? विशाल मन्दिर के शिखर में एक ओर लम्बी दरार पड़ गई है, यदि उसकी मरम्मत न हुई तो मन्दिर का ध्वस्त हो जाना निश्चित है। मन्दिर के आगे सभा मण्डप, जान पड़ता है, किसी ने पीछे से बनाया। इसमें चित्रकारी भी की गई थी, लेकिन वह बहुत कुछ मिट गई है। यह मन्दिर भी बदरीनाथ समिति के अधीन है। चाहे यहाँ पर अधिक पूजा न चढ़ती हो किन्तु पुरातात्विक महत्त्व को देखते हुए इस पर अधिक खर्च करने की आवश्यकता है। (राहुल, गढ़वाल, ४५५-५६) मन्दिर के बाहर

और भीतर अनेक टूटी–फूटी मूर्तियां हैं जिनसे पता चलता है कि यहाँ और भी मन्दिर रहे होंगे। इन मूर्तियों में बूटधारी सूर्य, चार मुख वाला मुख, लिंग आदि अति प्राचीन हैं। यहाँ परशुराम का फरसा और उपरोक्त अष्टधातुमय त्रिशूल दर्शनीय हैं। यहाँ वैतरणी नदी है।

३७–चमोली (लाल सांगा) (३१५० फीट)

यहाँ ऋषिकेश से बदरीनाथ जाने वाला सीधा मोटर मार्ग मिलता है। यात्री यहाँ से मोटर पर जोशीमठ तक जा सकते हैं। यहाँ काली कमली वाले की धर्मशाला है।

रुद्रप्रयाग से बदरीनाथ की यात्रा, मुंशी का वर्णन–

"धर्मप्रिय यात्री रुद्र प्रयाग में मन्दाकिनी अलकनन्दा के सङ्गम पर अपने पाप धोने के लिये स्नान करते हैं। किन्तु यहाँ धारा बड़ी प्रबल और तीव्र है। ओर जो लोग तत्काल स्वर्ग नहीं जाना चाहते उन्हें अपने शरीर पर लोहे की जंजीरें बाँधनी पड़ती हैं।" (मुँशी, दु बद्रीनाथ, ८)

चमोली के निकट रात्रि को छिटकी हुई चाँदनी में प्रकृति का अद्भुत दृश्य होता है। "सहसा मैं जाग पड़ा, मेरे सन्मुख, नीचे की ओर अद्भुत दृश्य था। उसका कैसे वर्णन करूँ ? उसके लिये मुझे ऐसी सुनहरी लेखनी की आवश्यकता है जो इन्द्र धनुष के प्रकाश मे भरी हो। मैं केवल इतना कह सकता हूं कि मुझे अनन्त, महा अनन्त, ऐसी प्रशान्ति मिली जिसको भाषा द्वारा व्यक्त नहीं किया जा सकता, निस्तब्ध, साँस की ध्वनि में मुझे कुछ सुनाई दिया। मुझे प्रतीत हुआ मुझमें देवता का प्रवेश होगया है। देवता मुझसे वार्तालाप कर रहे हैं। मैं स्तब्ध था। पूजा में विलीन प्रायः साँस भी न ले

रहा था। मैं कितनी देर तक ऐसी अवस्था में रहा, मुझे ज्ञात नहीं। जब ध्यान टूटा तो मुझे सामने की पहाड़ी पर स्थित विद्यालय को जाते हुए बच्चे चींटियों–जैसे चढ़ते हुए दिखाई दिये, (मुंशी, टु बद्रीनाथ, १४)

इससे आगे पीपल कोटी में पहुँच कर वास्तविक महा-हिमालय के दर्शन होते हैं। बदरीनाथ की ओर आते हुए यात्री के बाएँ हाथ की ओर गङ्गा है उसके पार हिमालय सहस्रों फीट की ऊँचाई तक सर्वथा सीधा खड़ा है, नग्न और भीषण। दूसरी ओर अद्भुत दृश्य है। "हम एक नये संसार में पहुँच गये। यहाँ घाटी चौड़ी होकर धान के सीढ़ीनुमा खेतों में विभाजित है। हिमाच्छादित शिखर आकाश का चुम्बन कर रहे हैं। भेड़–बकरियां मानचित्र पर बने हुए बिन्दुओं के समान दूर, तीखी ढाल वाले पयालों पर आनन्द से चर रही हैं। सामने अद्भुत हरीतिमा वाला झरना, श्वेत दुग्ध धारा बहा रहा है। (मुंशी, टु बदरीनाथ, १५)

"पीपल कोटी से आगे जब हम उस खबर मार्ग से आगे बढ़े जो अलकनन्दा के तट से होकर जाता है, हमें उस भारत के दर्शन हुए जो अन्यत्र कहीं नहीं दिखाई देता। चार घंटे की छोटी सी यात्रा में मुझे एक सहस्र से अधिक तीर्थ यात्री मिले। वे सभी प्रकार के तथा विभिन्न वर्गों के थे। उनमें पुरुष, स्त्री और बच्चे सभी थे। और वे भारत के सभी भागों से आये थे। सबको एक ही इच्छा थी—बदरीनाथ के दर्शन। (मुंशी, टु बदरीनाथ, १५)

अलकनन्दा का अर्थ है अपार आनन्द, सचमुच यह नाम सार्थक है।

पाताल गङ्गा वाला मार्ग सचमुच रोमांचकारी है। और

जब आप उसे पार कर लेते हैं, तो कष्ट-मुक्ति की सांस लेते हैं। आपका हृदय गर्व से धड़कने लगता है। और आप सोचने लगते हैं कि जब हम घर लौटकर अपने नाती-पोतों को इस सङ्कटमय मार्ग की कहानी सुनाएंगे तो वे कैसे मुँह फाड़कर हमारी ओर देखते रहेंगे। इसमें सन्देह नहीं कि आप सारी कहानी को तेनसिंही-रूप दे देंगे। (मुंशी टु बदरीनाथ-१७)

बदरीनाथ मार्ग में हमें जो तीर्थयात्री मिले, उनमें से ८० प्रति सैकड़ा बूढे थे। कुछ तो बहुत बूढे, झुकी कमर वाले थे जो हॉफते चलते थे। फिर भी सब प्रसन्न हो हाथ में लठिया लिये आगे बढ रहे थे। और अपार हिमालय की सञ्जीवनी वायु में साँस ले रहे थे। वे नदियों और घाटियों को, ऊँचे पर्वतों और हिमाच्छादित शिखरों की दृश्यावली का आनन्द ले रहे थे। आनन्द पूर्वक उन पवित्र स्थानों और मन्दिरों के दर्शन कर रहे थे, जिनकी गाथाएं उनके जीवन से गुंथी थीं। (मुंशी, टु, बदरीनाथ, १६)

प्रत्येक दिन उन सङ्कीर्ण मार्गों पर सहस्रों तीर्थयात्री कभी समाप्त न होने वाली धारा के समान नीचे-ऊँचे रेंगते चल रहे थे। उन्हें देख-देखकर मेरा हृदय तीर्थ यात्रा की भावना से उद्वेलित हो उठा। जिससे मैं कुछ पूछता वही आनन्द से उछलता उत्तर देता, "बदरी विशाल की जै।" (मुंशी, टु बदरीनाथ, १६)

३६—(३) चमोली से बदरी नाथ (४२ मील)

चमोली में केदारनाथ से ऊखीमठ होकर आने वाला यात्री ऋषिकेश से बदरीनाथ जाने वाले सीधे मार्ग में, जिसे उसने रुद्रप्रयाग में छोड़ा था आ जाता है। इस मार्ग में यदि यात्री पैदल यात्रा करना चाहे तो निम्न चट्टियां मिलती हैं।

चमोली—मठचट्टी (२)-छिनका (१)-सियासैण (३)—हाट चट्टी (१)—पीपलकोटी (२)—गरुड़ गङ्गा (३३)—टंगणी (१३)—पाताल गङ्गा (१)—गुलाब कोटी (२)—कुम्हार चट्टी (हेलङ्ग) (२)—खनोटी (२३)—झड़कुला (१)—जोशीमठ (१)—विष्णु प्रयाग (३)—चलदौड़ा चट्टी (१)—घाट चट्टी (३)—पांडुकेश्वर (२)—शेषधारा (१)—लामबगड़ (१)—हनुमान चट्टी (३३)—घोरसिल पुल (१)—रड़गपुल (१)—कांचन गङ्गा (१)—देव देखनी (३)—बदरीनाथ। चमोली, पीपलकोटी, गरुड़-गङ्गा, दलदौड़ा चट्टी, पांडुकेश्वर, लामबगड़, हनुमान चट्टी और बदरीनाथ में काली कमली वाले की धर्मशाला हैं।

४०—पीपल कोटी (४००० फीट)

यहाँ मोटरों का अड्डा, बड़ा बाजार और डाक बङ्गला है। यहाँ से गोहना ताल को मार्ग जाता है जो यहाँ से केवल १० मील दूर है। बिरही गङ्गा में पर्वत शिखर के खिसक आने से पहले विशाल पाताल बन गया है। यहाँ का दृश्य बड़ा मनोहारी है।

४१—गरुड़ गङ्गा

यहाँ गरुड़ गङ्गा और अलकनन्दा का सङ्गम है। यहाँ गणेशजी और गरुड़जी के मन्दिर हैं। पाँख गाँव में नृसिंह का मन्दिर है। गरुड़ गङ्गा शिला का टुकड़ा घोटकर पिलाने से, कहते हैं, सर्प विष और अन्य प्रकार के विष उतर जाते हैं। (केदार खण्ड)

पाताल गङ्गा—

के पास पैदल मार्ग बहुत टूटा-फूटा है। नीचे मोटर मार्ग से जाना उचित है। यहीं जिपसम-सोपस्टोन की खान है।

४२—उरगाम

हेलङ्ग० (कुम्हार चट्टी) से सड़क छोड़ कर बाईं ओर अलकनन्दा को पुल से पार करके उरगाम को मार्ग जाता है। इस मार्ग से ६ मील दूर पर कल्पेश्वर जो पञ्चम केदार माना जाता है, मिलता है। यहीं ध्यान बदरी का मन्दिर भी है। उरगम में काली कमली वाले की धर्मशाला है। वंशी नारायण ओर रुद्रनाथ भी इसी मार्ग में आगे हैं। रुद्रनाथ (चतुर्थ केदार) की यात्रा करके यहाँ तक लौटने में लगभग ६ दिन लगते हैं। रुद्रनाथ को एक मार्ग मण्डल चट्टी से भी जाता है।

वृद्ध बदरी—

खनेटी चट्टी से मुख्य मार्ग छोड़कर आधा मील नीचे अणीमठ नामक स्थान में वृद्धबदरी का मन्दिर है जहाँ लक्ष्मी नारायण की प्राचीन मूर्ति है।

४३—जोशी मठ (६१५०फीट)

चारों ओर ऊँचे पर्वतों से घिरा अत्यन्त प्राचीन स्थान है। यहाँ बदरीनाथ जाने वाला मोटर मार्ग समाप्त होता है। यहाँ से नीती घाटी होकर कैलाश-मान सरोवर को मार्ग जाता है। जोशीमठ से ऊपर पर्वत, शिखर पर बुग्याल का दृश्य अत्यन्त मनोहर है। यहाँ से हाथी पर्वत का अद्भुत शिखर दिखाई देता है जिस पर हाथी पर सवार व्यक्ति की आकृति स्पष्ट दिखाई देती है। शीतकाल में बदरीनाथ की चल मूर्ति यहीं रहती है। यहाँ ज्योतीश्वर महादेव के प्राचीन मन्दिर के पास श्री शङ्कराचार्य द्वारा स्थापित ज्योतिर्मठ या ज्योतिष्पीठ है। यहाँ नभगङ्गा दड धारा में स्नान किया जाता है। यहाँ नृसिंह मन्दिर, वासुदेव मन्दिर, नव दुर्गा मन्दिर आदि अनेक छोटे-बड़े मन्दिर

हैं जिनमें वासुदेव मन्दिर में वासुदेव की पुरुष प्रमाण मूर्ति है। यह प्राचीन मन्दिर बहुत महत्व पूर्ण है। जो जोशीमठ कत्यूरी राजाओं की राजधानी रह चुका है। यहीं-कहीं प्राचीन कीर्तिपुर था।

४४–तपोवन और भविष्य बदरी–

जोशीमठ से नीती घाटी होकर कैलाश मान सरोवर जाने वाले मार्ग पर ६ मील की दूरी पर तपोवन नामक सुन्दर स्थान है। यहाँ एक स्थान पर तीन मूर्ति-शून्य अति प्राचीन मन्दिर हैं। आगे एक और विशाल मन्दिर है जिसमें अद्भुत सौन्दर्य वाली हरगौरी मूर्ति है, और द्वार पट पर, विस्मयकारक कलापूर्ण आदिनाथ की सुरप्राकृति है। आगे नये मन्दिर के पास गरम पानी का सोता है। स्थान अत्यन्त सुन्दर और सचमुच तपोवन है। कत्यूरीकाल में यहाँ ब्रह्मचारी आश्रम था, जैसा ललित शूर के ताम्रपत्र से स्पष्ट है।

पचास-साठ वर्ष पूर्व पादरी ओकले ने लिखा था— "तपोवन का अर्थ है तपस्वियों का वन। एक अल्मोड़ा के ब्राह्मण ने मुझे बतलाया है कि गढ़वाल के 'तपोवन' नामक स्थान में मैं जब गया था उस समय वहाँ लगभग •०० व्यक्ति तपस्या कर रहे थे। इनके अतिरिक्त अनेक तीर्थ यात्री भी वहाँ पहुँचते थे। इनके लिये यहाँ भोजन क्षेत्र भी बने हुए थे।" (ओकले, होलि हिमालय, १५०)

अब ऐसी व्यवस्था नहीं है। ब्रह्मचारी आश्रम ध्वस्त हो गया है। पर अब भी थोड़े से तपस्वी यहाँ निवास कर सकते हैं। (मेरा लेख तपोवन के पास प्राचीन ऐतिहासिक सामग्री कर्म भूमि, १ जनवरी ४७)

भविष्य बदरी—

तपोवन से ३ मील आगे सुबांई गाँव में है। यहाँ का ष्णु मन्दिर ही भविष्य बदरी कहलाता है। यहाँ एक शिला ध्यान पूर्वक देखने से भगवान की आधी आकृति दिखाई ती है। भविष्य में जब यह आकृति पूरी हो जायगी तो यहां यात्रा होने लगेगी, ऐसा कहा जाता है। इसी के पास लाता री का मन्दिर तथा "आकाश से गिरी खड्ग" है। चौबीसवें र्ष यहाँ बड़ा मेला लगता है।

विष्णु प्रयाग में—

विष्णु गङ्गा और अलकनन्दा सङ्गम है। यहाँ गङ्गा का वाह अत्यन्त तीव्र है। यहाँ विष्णु का मन्दिर है।

४५—पांडुकेश्वर—(६००० फीट)

यहाँ योगबदरी (ध्यान बदरी) का मन्दिर है जिसे पांडुकेश्वर भी कहते हैं। कहते हैं यहाँ राजा पांडु अपनी दोनों पत्नियों के साथ रहते थे और यहीं पांडवों का जन्म हुआ था। यहाँ मन्दिर में कैत्यूरी नरेशों के ताम्रपत्र थे जिन्हें यात्रियों को "पांडवों की पाटी" कहकर दिखलाया जाता है। यहाँ दो प्राचीन मन्दिर है।

४६—पांडुकेश्वर से लोकपाल—

पांडुकेश्वर से एक मार्ग लोकपाल, पुष्पघाटी, हेमकुण्ड तथा काकभुशुण्डि तक जाता है। पांडुकेश्वर से ११ मील पर हेमकुण्ड है। यहाँ पहुँचने के लिये ४ मील चलकर गङ्गा पार करनी होती है और आगे ७ मील जाना होता है। मार्ग कठिन चढ़ाई वाला है। अब इसके लिये सड़क बन गई है। पुष्पों की घाटी इतनी सुन्दर है कि यहाँ विदेशी पर्यटक भी बहुत आते

हैं। हेमकुण्ड में छोटा सा गुरुद्वारा है। नीचे घांघरिया में सिक्खों की दो धर्मशालाएं हैं। गुरुगोविन्द सिंह ने "विचित्र नाटक" में लिखा है कि मैंने ८० वर्ष में सप्तशृङ्ग पर्वत पर हेमकुण्ड में तपस्या करके महाकाल और महाकालिका की आराधना की थी। "आगे लोकपाल सरोवर (हेमकुण्ड) अत्यन्त स्वच्छ है। यहाँ लोकपाल (लक्ष्मणजी) तथा देवीजी का मंदिर है। अब गुरुद्वारा भी बन गया है। लोकपाल सरोवर का नाम "दण्ड पुष्करणी" है। लोकपाल से कागभुशुण्डि शिखर दीखता है। लोकपाल के दूसरी ओर नर पर्वत पर सुमेरु है। वहाँ जाना अति कठिन है।" (कल्याण तीर्थांक, ५८ पृ०)

लामबगड़ में—

कहते हैं राजा मरुत्त ने यज्ञ किया था और यहाँ यज्ञस्थल पर खोदने से जला चरु मिलता है।

देव देखिनी—

यहाँ से पहले पहल बदरीनाथ मन्दिर के दर्शन होते हैं। यहाँ यात्री साष्टांग दण्डवत करते हैं।

४७—बदरीनाथ (ओकले का वर्णन)—

पचास-साठ वर्ष पहले पादरी ओकले ने बदरीनाथ का जो वर्णन लिखा था, और उससे पहले १८८२ में एटकिनसन ने बदरीनाथ के सम्बन्ध में जो कुछ लिखा था, वह रोचक होने के साथ ही महत्वपूर्ण है। "बदरी का सम्बन्ध बदरी या बेर के वृक्ष से जोड़ा जाता है, किन्तु यह वृक्ष बदरीनाथ के निकटवर्ती क्षेत्र में उगता नहीं प्रतीत होता। जहाँ-कहीं विष्णु की पूजा चलती है यह नाम बदरीनाथ भी मिलता है। प्राचीन काल में इस देवता और बेर वृक्ष के बीच जिस सम्बन्ध की कल्पना की

गई होगी उसे अब भुला दिया गया है। कुमाऊँ में चार मंदिर बदरीनाथ मन्दिर कहलाते हैं और इतने ही गढ़वाल में हैं। नर-नारायण पर्वतों की बीच की घाटी में, जो लगभग एक मील चौड़ी है, नदी के निकट ही बदरीनाथ का मन्दिर है। कहा जाता है कि एक सहस्र वर्ष पूर्व यहाँ का पिछला मन्दिर भी शंकराचार्य ने बनवाया था। वर्तमान मन्दिर की छत पर ताम्बे के पत्र लगे हैं और कलस सुनहरा है। इस मन्दिर की प्राचीनता संशय पूर्ण है क्योंकि १८०३ के भीषण भूचाल में गढ़वाल के अनेक मन्दिर, बाड़ा हाट, श्रीनगर और प्रायः सारे गढ़वाल में नष्ट होगये थे। (एशियाटिक रिसर्चेज, खण्ड ११)। पहले भी बार-बार ऐसे भूचालों से गढ़वाल के प्रायः समस्त प्राचीन मन्दिर और भवन नष्ट होते रहे हैं।

"यहाँ तप्तजल का सोता है, जो इतना प्रतप्त है कि बिना शीतल जल मिलाये उसमें स्नान नहीं हो सकता। इस स्थान पर स्नान करने का इतना अधिक पुण्य माना जाता है और इस तक पहुँचने के लिये इतने अधिक कष्ट उठाये जाते हैं कि प्रति वर्ष ५ से १० सहस्र तक यात्री पहुँचते हैं और कुम्भ के वर्ष में तो उनकी संख्या २० से ४० सहस्र तक पहुँच जाती है। बदरीनाथ की यात्रा जून से नवम्बर तक चलती है, वर्ष के शेष भाग में यहाँ हिम छाया रहता है। केदार के समान यहाँ का प्रधान पुजारी भी रावल कहलाता है। इस पद के लिये अनेक व्यक्ति उत्सुक रहते हैं। केदारनाथ के रावल के समान ये भी मलाबार के नम्बूरी ब्राह्मण होते हैं। यहाँ यात्रियों को जो कुछ करना होता है, उसमें तनिक भी जटिलता नहीं है। थोड़ी सी स्तुति और स्नान में तथा विधवाओं की और माता-पिता हीनों की खोपड़ियां मूँड़ने में भी सारी धार्मिक क्रियाएं समाप्त समझली

जाती हैं। (ओक्ले, होलि हिमालय, १७०-७३)

४८-बदरीनाथ-पूजा अर्चा एटकिनसन का वर्णन-

एटकिनसन ने १८८२ में लिखा था,—"बदरीनाथ के मुख्य मन्दिर में मूर्ति काले पाषाण या काले सङ्गमरमर की लगभग ३ फीट ऊँची है। इसे प्राय बहुमूल्य सुनहरे वस्त्र से ढका रखा जाता है। इसके सिर पर एक छोटा-सा दर्पण रहता है जिस पर बाहर की वस्तुओ की छाया पड़ती रहती है मूर्ति के आगे कई दीपक निरन्तर जलते रहते हैं। आगे एक चौकी उसी प्रकार सुनहरे वस्त्र से ढकी रहती है। मूर्ति के दहिनी ओर नर और नारायण की मूर्तिया हैं। बदरीनाथजी की मूर्ति के शृङ्गार में एक भाति दीर्घ हीरा लगा होता है। मूर्ति के सारे उपकरण जिसमें वस्त्र, भोजन के पात्र, और अन्य वस्तुएं सम्मिलित हैं, सब मिलाकर पाँच सहस्र रुपये से अधिक मूल्य के नहीं हैं, पहले सम्भवत अधिक मूल्य के उपकरण रहे होंगे। एक बार कुछ गढवाली डाकू शीतकाल के हिम में किसी प्रकार बदरीनाथ पहुँच कर ६० पौंड (४५ सेर) सोना और कुछ चाँदी के पात्र चुरा लेगये थे। पर पीछे उन्हे गढवाल सरकार नें पकड़ लिया था।

"बदरीनाथजी की मूर्ति की सेवा की ओर पूरा-पूरा ध्यान रखा जाता है। प्रति दिन उसके सन्मुख भोजन रखकर भोग लगाये जाते हैं। द्वार बन्द करके मूर्ति को शान्ति पूर्वक भोजन करने की सुविधा दी जाती है। और सूरज छिपने से पहले द्वार नहीं खोले जाते। कुछ समय पश्चात उसके लिये बिछौना बिछाकर द्वार बन्द कर दिये जाते हैं और रात खुल जाने पर ही खोले जाते हैं। जिन पात्रों पर भोग लगाया जाता है वे सोने-चादी के हैं। मन्दिर म अनेक सेवक-सेविकाए

वेश्यानर्तकियां-(देवदासियां) होती हैं, और इनका प्रयोग बदरीनाथ मन्दिर के अविवाहित पुजारी उपपत्नी के रूप में करते हैं। मन्दिर के गर्भ गृहमें केवल मन्दिर के सेवक ही प्रवेश कर सकते हैं। और रावल के अतिरिक्त कोई व्यक्ति मूर्तिको नहीं छूसकता। (ओकले, होलि हिमालय १४४-५४;) अब मन्दिरमें देवदासियां नहीं हैं। किन्तु पहले होतीथीं। प्राचीनकालमें मन्दिरोंमें वेश्याएं रखना आवश्यक समझा जाता था। कालिदास के यक्ष ने मेघों को उज्जैनी के महाकाल मन्दिर में आरती के समय वेश्याओंका नृत्य देखने का आग्रह किया था। भारतके मन्दिरोंमें इस प्रथा को बन्द हुए पचास वर्ष नहीं हुए।

४६-बदरीनाथ दर्शन—

बदरीनाथ में अलकनन्दा में स्नान करना अति कठिन है। अलकनन्दा के तो यहां दर्शन ही किए जाते हैं। तप्तकुण्डमें स्नान करके यात्री मन्दिर में दर्शन करने जाते हैं। वन तुलसीकी माला चने की कच्ची दाल, गरी-गोला, मिश्री आदि प्रसाद चढ़ाने के लिए यात्री लेजाते हैं। मन्दिर जाते समय बाईं ओर श्री शङ्कराचार्यका मन्दिरहै। मुख्य मन्दिरमें सामने गरुड़जीकी मूर्तिहै।

बदरीनाथजी की मूर्ति शालिग्राम-शिलाकी बनीहुई ध्यान मग्न चतुर्भुज मूर्ति है। दो हाथ स्पष्ट दिखाई देते हैं, दो के चिह्न बने हैं। राहुल का कहना है एक हाथ कुछ भग्न है और संभवतः मुखभी, इस सम्बन्ध में आगे विस्तार से कहाजाएगा। बदरीनाथ जीके दाहिने कुबेरकी पीतलकी मूर्ति है। उनके सामने "उद्धवजी" हैं। यही बदरीनाथजीकी उत्सव मूर्ति है, जो शीतकालमें जोशीमठमें पूजी जाती है। "उद्धव" के पास चरणपादुका हैं। बाईं

ओर नरनारायणकी मूर्ति है। इनके समीपही श्रीदेवी और भूदेवी की मूर्तियां हैं।

मुख्य मन्दिर के बाहर के घेरे में श्रीशङ्कराचार्य की गद्दी है। यहीं मन्दिरका कार्यालय है। यहां भेट चढाकर रसीद लेलेने से दूसरे दिन प्रसाद मिल जाता है। जहां घण्टा लटकता है वहां बिना धड़के घण्टाकर्ण की मूर्ति है। परिक्रमामें भोगमण्डीके पास लक्ष्मीजी का मन्दिर है।

५०—बदरीनाथ के अन्य तीर्थ—

बदरीनाथ मन्दिर के सिंहद्वार से नीचे उतरकर श्रीशङ्कराचार्यका मन्दिर है। जिसमें लिंग स्थापित है। थोड़ा नीचे आदिकेदारका मन्दिर है। बदरीनाथ के दर्शन से पहले आदिकेदार का दर्शन आवश्यक है। केदारनाथ के नीचे तप्तकुण्ड है जिसे अग्नि तीर्थ कहते हैं।

५१—पंचशिलाएं—

तप्तकुण्ड से नीचे पाच शिलाएं हैं। (१) गरुड़ शिला, केदारनाथ मन्दिर और अलकनन्दा के बीच की शिला, इसी के नीचे से ऊष्ण जल तप्तकुण्ड में आता है (२) नारदशिला—तप्तकुण्ड से अलकनन्दा तक गई शिला जिसके नीचे नारदकुण्ड है। (३) मारकण्डेयशिला, नारदकुण्ड के पास अलकनन्दा की धारामें है। (४) नरसिंहशिला, नारदकुण्ड के ऊपर जलमें एक सिंहाकार शिला है। और (५) वाराहीशिला, अलकनन्दा के जलमें एक उच्च शिला है। ब्रह्मकपाल (कपालमोचन तीर्थ) तप्तकुण्ड से ऊपर सड़क लगभग तीनसौगज दूर अलकनन्दाके तटपर की एक शिला है। जिस पर यात्री पिंडदान करते हैं। इस ब्रह्मकपाल तीर्थ के नीचे ब्रह्मकुण्ड है।

५२ - मातामूर्ति—

ब्र कुण्ड से आगे गंगा तट पर ऊपर की ओर जाने पर अलकनन्दाके मोड़पर अग्नि—अनुसूया तीर्थ है। उससे आगे माला की सड़कपर चलने से इन्द्रधारा नामक श्वेत झरना इन्द्र पद तीर्थ कहलाता है। इससे आगे नरनारायण की माता, धर्म की पत्नी, मूर्ति देवी का छोटा सा मंदिर है। भाद्रशुक्ला द्वादशी को यहां मेला लगता है। और बदरीनाथकी उत्सव मूर्तिको उस दिन माता से मिलाने वहां लेजाया जाता है। यह स्थान बदरीनाथ मंदिरसे, लगभग ५ मील की दूरी पर है।

बदरीनाथ से आगे अलकनन्दा के इसी ओर दुर्गम मार्ग पर सत्यपथ तीर्थ है। उसकी यात्रा के लिये आठ दिन की भोजन सामग्री तम्बू और पूरी तय्यारी के साथ अगस्त सितम्बर मासमें जाना चाहिये, जून में हिम खण्ड और बरसात मे मार्ग में पत्थर गिरते हैं।

५३—सत्यपथ (सतोपंथ)—

गंगाजी के इसी ओर मातामूर्ति से आगे बढ़नेपर ४ मील दूर लक्ष्मी वन है। बदरीनाथ के आस पास वृक्षहीन भूमि है, किन्तु जहां भोज पत्र के बड़े—बड़े वृक्षोंका वन है। वहां एक छोटे से झरने का नाम लक्ष्मीधारा है। आगे कठिन मार्ग है। नारायण पर्वत सीधा ऊँचा खड़ा है। इसके पास कहीं पञ्चधारातीर्थ,द्वादशा दित्यतीर्थ तथा चतु.स्रोत तीर्थ हैं, जिनकी पहचान अब निश्चित नहीं हो सकती। इससे आगे चक्रतीर्थ है, जो तालाब के आकार का मैदान है। इससे भी आगे ३–४ मील दुर्लंघ्य मार्ग पार करके एक त्रिकोण सरोवर–'सत्यपथ' आता है।

५४-स्वर्गारोहण--

इससे आगे सोमतीर्थ बतलाया जाता है। अब हिम पर चलकर आगे सूर्यकुण्ड है। यहा नरनारायण पर्वत मिलगए हैं। यहीं आगे विष्णुकुण्डहै। आगे लिंगाकारत्रिकोणपर्वतहै। भागीरथी ओर अलकनन्दा के स्रोतों का यह सगम है। इसके आगे अलकापुरी नामक शिखर है। सत्यपथके आगे विष्णुकुन्डसे होकर अलकनन्दा की मूल धारा आती है। अलकनन्दा का सङ्गम भी नारायण पर्वत के नीचे ही है। सत्यपथ से स्वर्गारोहण शिखर दीखता है। हिमपर सीढियोंका आकार स्पष्ट दीखताहै। (कल्याण तीर्थांक, ६०)

५५-वसुधारा--

बदरीनाथ से अनेक यात्री वसुधारा तक आते हैं। यह स्थान बदरीनाथसे केवल पाच मील दूर गगा पार है। यहा बहुत ऊँचे से गिरने वाली जलधारा वायु से बिखर जाती है। वसुधारा जाने के लिये गगाजी पर शिला का प्राकृतिक पुल है। यह शिला भीमशिला कहलाती है। भीमशिलाके पास अनेकधाराए गिरती हैं। यहा मानसोद्भवतीर्थ मानाजाता है। वहा का जल अत्यन्त स्वास्थ्यकारी माना जाता है।

४६-कालगुफा--

भारती गाव में व्यासगुफा, गणेशगुफा मुचकुन्द गुफाए हैं। मुचकुन्द गुफा के पास एक बड़ा मैदान है। जिसकी पहचान कुछ लोग कलाप ग्राम से करते हैं। यहीं से होकर शुलिंग और वहा से आगे कैलास-मानसरोवर को मार्ग जाता है। माणा गाव भारत की उत्तरी सीमा पर अतिम गाव है। यहा भगवती और घण्टाकर्ण के मन्दिर हैं। धम का स्थान भी है।

५७—चरण पादुका उर्वशी तीर्थ—

बदरीनाथ के पीछे सीधे ऊपर पर्वत पर चढने पर चरण पादुका स्थान आता है। यहाँ शिवजी के चरणों के चिह्न हैं, जिनका उल्लेख कालिदास ने मेघदूत मे किया है। यहाँ से नल लगाकर बदरीनाथ मन्दिर में जल लाया गया है। चरण पादुका से उपर उर्वशी तीर्थ है। इससे आगे कूर्म तीर्थ तैमिगल तीर्थ तथा नर-नारायणाश्रम हैं। यहाँ से सत्पथ को मार्ग जाता है। यह मार्ग साधारण मनुष्यों के लिये अगम्य है।

५८–(१) ऋषिकेश से सीधे बदरीनाथ·

कुछ यात्री ऋषिकेश से यमुनोत्तरी, गगोत्तरी या केदारनाथ न जाकर सीधे बदरीनाथ जाते हैं। मार्ग में ऋषिकेश से जोशीमठ तक मोटर मिलती हैं। जोशीमठ से बदरीनाथ तक केवल १९ मील पैदल चलना पड़ता है। सारी यात्रा, (आना-जाना) ३–४ दिन में पूरी हो जाती है। इस मार्ग में चट्टियों की पहले बड़ी भरमार थी। मोटर मार्ग बन जाने से अब अधिकाश चट्टिया नष्ट होगईहैं। उन स्थानों पर बने मकान धर्मशालाएं, चट्टिया और मन्दिर आज खण्डहर बन रहे हैं, कई लाख की सम्पत्ति नष्ट हो रही है। फिर भी इस मार्ग से आज भी बहुतसे यात्री पैदल चलतेहैं। सारा मार्ग १४० मील लम्बा है जिस पर १०–१२ दिन मे बदरीनाथ पहुँच सकते हैं। चट्टियों का क्रम इस प्रकार है—

ऋषिकेश–लक्ष्मणझूला (२)–छोटी बिजनी (११)–बन्दरभेल (६)–सेमल चट्टी (८) व्यासघाट (८) बाह–देवप्रयाग (८¾)–रानीबाग (८½)–बिल्वकेदार (१¾)–श्रीनगर (२)–भट्टीसेरा (७½)–छातीखाल (३½)–रुद्रप्रयाग (६½)–

सुमेरपुर (२½)-शिवानन्दी (४½)-नगरासू (३)-कमेड़ा (३) गौचर (२)-चटुवा पीपल (२)-कर्ण प्रयाग (४)-उमट्टा (२)-लगांसू (४)-सोनला (४)-नन्द प्रयाग (३)-मैठाणा (३) चमोली (३)-मठ (२)-छिनका (१½)- बावला (२) मियामैण (१)-हाट (१)-पीपलकोटी (०)-गरुड़ गङ्गा (३½)-टंगणी (१½)-पाताल गङ्गा (३)-गुलाब कोटी (२) हेलङ (२)-खनोल्टी (२½ -भङ्कुला १½)-सिंहधार (३) जोशीमठ (½)-विष्णु प्रयाग (२)-घाट (४) पांडुकेश्वर (२)-लामबगड़ (३)-हनुमान चट्टी (३)-बदरीनाथ (५)।

रुद्र प्रयाग और चमोली के बीच,की चट्टियों को छोड़कर शेष का वर्णन ऋषिकेश से केदारनाथ तथा केदारनाथ से बदरीनाथ वाली यात्रा वर्णनमें आ चुका है। कर्ण प्रयागमें अलकनन्दा और पिंडार का तथा नन्द प्रयाग में नन्दाकिनी और अलकनन्दा का सङ्गम है। दोनों स्थानों पर कुछ सुन्दर मन्दिर है।

१ — दसर्ग व्यता
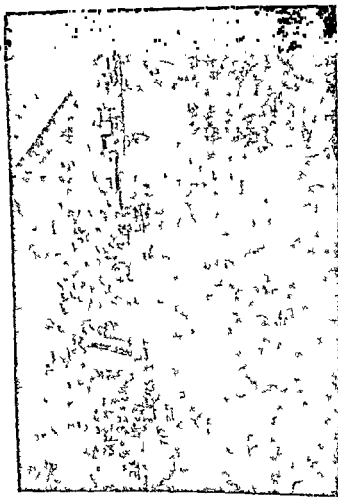
अध्याय १२

उत्तराखण्ड के यात्रा-मार्ग और मार्ग-सौन्दर्य

(३) बदरीनाथ से लौटने के मार्ग

१—बदरीनाथ से लौटना—

बदरीनाथ से लौटने के पाँच मार्ग हैं। पाँचों मार्गों के लिये पैदल लौटकर जोशीमठ आना पड़ता है।

(१) जोशीमठ-कर्णप्रयाग—आदि बदरी होकर रामनगर, काठगोदाम रेल स्टेशन पहुँचाने वाला मार्ग।

(२) जोशीमठ, तपोवन, बैजनाथ, अल्मोड़ा, काठगोदाम रेल स्टेशन पहुँचाने वाला मार्ग।

२—देवप्रयाग सङ्गम बाजार

(३) जोशीमठ, कर्णप्रयाग, श्रीनगर, देवप्रयाग होकर ऋषिकेश रेल स्टेशन पहुँचाने वाला मार्ग।

(४) जोशीमठ, कर्णप्रयाग, श्रीनगर, पौड़ी, दुगड्डा, होकर कोटद्वारा रेल स्टेशन पहुँचाने वाला मार्ग।

(४) जोशीमठ, कर्णप्रयाग, श्रीनगर, पौड़ी, अद्वाणी होकर कोटद्वारा रेल स्टेशन पहुँचाने वाला मार्ग।

प्रत्येक मार्ग पर कुछ न कुछ दूरी तक मोटरें मिलती हैं। अस्तु संक्षिप्त उल्लेख पर्याप्त होगा।

२—जोशीमठ-आदिबदरी-काठगोदाम मार्ग—

इस मार्ग में जोशीमठ से कर्ण प्रयाग तक और कर्णप्रयाग से आदि बदरी तक मोटरें मिलती हैं। आदि बदरी से धुनारघाट, मेलचौरी गणाई (चोकुटिया)—द्वाराहाट होकर रानीखेत
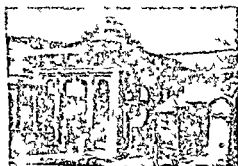
३—कमलेश्वर मन्दिर श्रीनगर

पहुँचते हैं। वहाँ से फिर मोटर द्वारा काठ गोदाम पहुचते हैं। यह मार्ग बदरीनाथ से काठगोदाम तक १७६ मील लम्बा है और पैदल चलने में लगभग ११ दिन लग जाते हैं। कर्णप्रयाग से आगे चट्टियों का क्रम इस प्रकार है—कर्णप्रयाग सिमली (२¾) सिरोली (२½), भरोली (१८), आदि बदरी (४½), खेती (¾), जगल चट्टी (१½), गडाबज (९), काली माटी (१), धुनारघाट (३½) मेलचौरी (४¾), सिमलखेत (२½), गणाई (चोकुटिया) (६), महाकालेश्वर (७), द्वाराहाट (५),

चण्टेश्वर (३), रानीखेत (११), खेरना (२५), भवाल (१०), काठगोदाम (८१)।

४—द्रप्रयाग सङ्गम मन्दिर

इस मार्ग में अच्छी सड़कें हैं और थोड़ी-थोड़ी दूरी पर

चट्टियां हैं। अनेक चट्टियां ऋषिकेश और कोटद्वारा से पीपल कोटी तक मोटरें आने के कारण नष्ट हो चली थीं। अब उनमें से कोई-कोई कर्णप्रयागसे आदि बदरी तक मोटर मार्ग बन जाने के कारण पुनः पनपने लगेंगी। पर उनमें पुरानी चहल-पहल आनी असम्भव है। विभिन्न पञ्च वर्षीय योजनाओं में इस मार्ग में मोटर सड़कों की वृद्धि होरही है। और कुछ ही वर्षोंमें जोशी-मठ से काठगोदाम तक सारे मार्ग पर मोटरें चल सकती हैं।
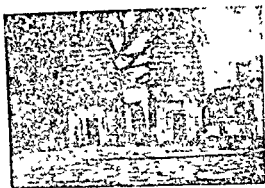
४—नारायण कोटि युगल मन्दिर

३—इस मार्ग का सौन्दर्य, ओकले का वर्णन—

प्राचीनकाल-से बदरीनाथ से लौटने के लिए, विशेषरूप से पूर्व के यात्री, इसी मार्ग का प्रयोग करते थे। जब सहारनपुर, मेरठ, नजीबाबाद, नगीना, रामपुर क्षेत्र तक रुहेले लूटमार मचाया करते थे, यात्रियों का जीवन घोर सङ्कटमें था। उन दिनों हरिद्वार होकर जाने का साहस बहुत थोड़े व्यक्ति कर सकते थे। अधिकांश यात्री, जो प्रायः साधु-सन्यासी होते थे, इसी मार्गसे बदरीनाथ पहुँचते थे। साठ वर्ष पूर्व पादरी ओकले ने इस मार्ग का वर्णन करते हुए लिखा था:—"इस मार्ग से यात्रा करने पर
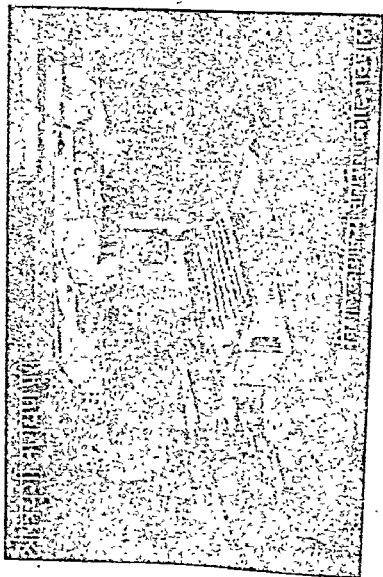
६—त्रियुगी नारायण पुरी
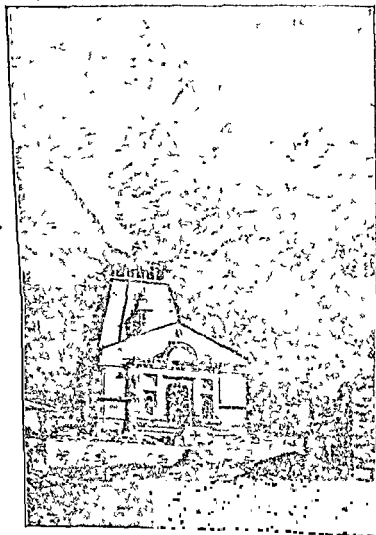
७—केदारनाथ मन्दिर हिमालय
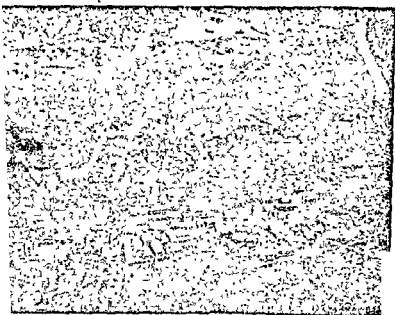
८—केदारनाथ पुरी

पग-पग पर दृश्यावली बदलती रहती है, जिससे आनन्द औ
आकर्षण की निरन्तर वृद्धि होती रहती है। कभी तो यात्री

९—बासुकी ताल

ऊँचाई के घाटे लाँघने पड़ते हैं तो दूसरे समय उसे अंधेरे गर्तों से होकर आगे बढ़ना पड़ता है। समय पर उसके दृष्टि-
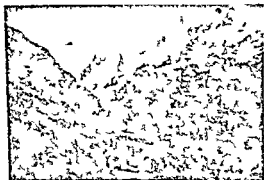
१ —केदारनाथ मार्गपथ

११ - केदारनाथ चाराबाड़ी ताल

थ में उच्च शिखर आते रहते हैं जो गहरे नीले आकाशमें अपनी चाँदी की उज्वल छटा छिटकाते हैं। मार्ग में उसे जो कष्ट उठाने पड़ते हैं उनका पुरस्कार उसे इस सुन्दर दृश्यावली से पूरा-पूरा मिल जाता है। सबसे आकर्षक और घनी वनस्पति ६००० से

१०००० फीट की ऊँचाई वाले भागों में मिलती है। यहाँ सैकड़ों प्रकार के फूल वाले पौधे होते हैं और अति स्वादिष्ट स्ट्राबेरी और राम्पबेरी (हिसुरा हिमालू) और किनगोड़ (दारूहल्दी) होते हैं। कुछ स्थानों में अब भी झूला (एक रस्सी वाले पुल) मिलते हैं यद्यपि मुख्य सड़क पर इन झूलों को अधिक निरापद बना
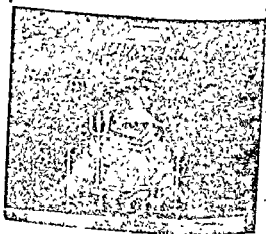
१०—शृङ्गार दर्शन केदारनाथ

दिया गया है। (ओकले, होलि हिमालय, १४४–४५) इस म
अनेक प्राचीन और महत्वपूर्ण मन्दिर आते हैं जो सिद्ध कर
, कि यहाँ से होकर प्राचीन यात्रा मार्ग चलता था।

४—सिमली के मन्दिर—

कर्णप्रयाग से आदि बदरी जाने वाले मार्ग पर केवल
ल दूर पिंडार नदी के तट पर सिमली चट्टी में कुछ अत्यन्त
चीन और विचित्र मन्दिर हैं जिनका विस्तृत वर्णन मैंने अपने
त्र "सिमली के प्राचीन और विचित्र मन्दिर" कर्मभूमि दिनाङ्क
अप्रैल ५७ में किया है। यहाँ के मुख्य मन्दिरमें अब प्रधान

मूर्ति नारायण की है। उसके साथ मन्दिर के अन्दर अनेक सुन्दर प्राचीन मूर्तियां हैं। प्रधान मन्दिर के पास दो-तीन भग्न मन्दिरों में अनेक अति सुन्दर गणेश, हरगौरी, महिषमर्दिनी आदि की
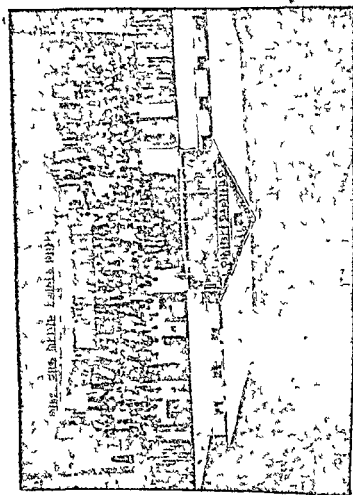
१२—उत्तराखण्ड विद्यापीठ

१०००० फीट की ऊँचाई वाले भागों मे मिलती है। यहाँ सैकड़ों प्रकार के फूल वाले पौधे होते हैं और अति स्वादिष्ट स्ट्राबेरी और रास्पबेरी (हिंसुरा हिंसालू) और किलगोड़ (दारुहल्दी) होते हैं। कुछ स्थानों मे अब भी झूला (एक रस्सी वाले पुल) मिलते हैं यद्यपि मुख्य सड़क पर इन झूलों को अधिक निरापद बना

१.—शृङ्गार दर्शन केदारनाथ

दिया गया है। (ओक्ले, होलि हिमालय, १८४-९५) इस मार्ग में अनेक प्राचीन और महत्वपूर्ण मन्दिर आते हैं जो सिद्ध करते हैं, कि यहाँ से होकर प्राचीन यात्रा मार्ग चलता था।

४—सिमली के मन्दिर—

कर्णप्रयाग से आदि बदरी जाने वाले मार्ग पर केवल ४ मील दूर पिंडार नदी के तट पर सिमली चट्टी में कुछ अत्यन्त प्राचीन और विचित्र मन्दिर हैं जिनका विस्तृत वर्णन मैंने अपने लेख "सिमली के प्राचीन और विचित्र मन्दिर" कर्मभूमि दिनाङ्क ३० अप्रैल ५७ मे किया है। यहाँ के मुख्य मन्दिरमें अब प्रधान

मूर्तियां हैं। एक मन्दिर में अति सुन्दर सांवल मूर्ति है। ऐसी प्राचीन सांवल मूर्ति सम्भवत गढ़वालके मन्दिरों में दूसरी नहीं है, और भारत भर में ऐसी मूर्तियां कम ही हैं। इनमें मानव शिर के दोनों ओर दो शिर क्रमशः वाराह और नृसिंह के हैं।

१५—तुङ्गनाथ हिमालय
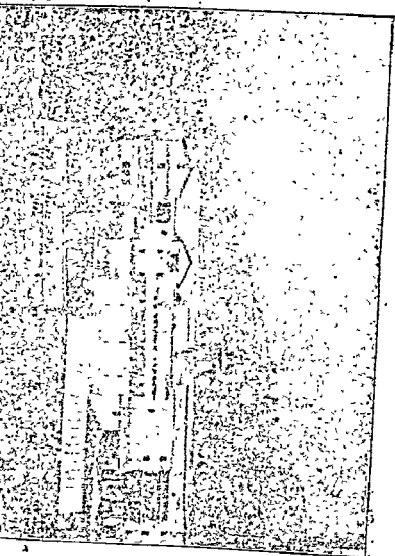
१४—ऊखीमठ केदारनाथजी का शीतकालीन स्थान

मूर्तियां हैं। एक मन्दिर में अति सुन्दर सात्वत मूर्ति है। ऐसी प्राचीन सात्वत मूर्ति सम्भवत गढ़वालके मन्दिरों में दूसरी नहीं है, और भारत भर में ऐसी मूर्तियां कम ही हैं। इनमें मानव शिर के दोनों ओर दो शिर क्रमशः वाराह और नृसिंह के हैं।

१५—तुङ्गनाथ हिमालय
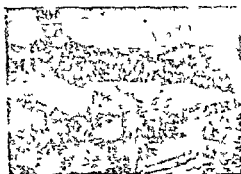
प्राचीन गढ़वाल में सात्वत वैष्णवों का महत्व पूर्ण सम्प्रदाय था। बाण ने अपने हर्ष चरित में सात्वता का उल्लेख किया है। कला की दृष्टिसे सिमली की यह मूर्ति सातवीं–आठवीं शताब्दी की ज्ञात होता है। यहां वक्रतुण्ड गणेश, हर-गौरी, महिषमर्दिनी आदिकी अति सुन्दर मूर्तियां हैं। बूटधारी सूर्य की मूर्ति है और एक मन्दिर के शिखर पर चक्र उसका मूलरूप में सूर्य मन्दिर होना सिद्ध करता है। मुख्य मन्दिर के शिखर के नीचे आदिनाथ की मूर्ति लगी है जो गढ़वालमें नाथों के प्रभाव की द्योतक है। मन्दिर के गोपुर के ऊपर शिखर के पास हाथी पर झपटते हुए सिंह की दो मूर्तियां हैं। ऐसी मूर्तियां उत्तर गुप्तकाल के मन्दिरों में लगी होती थीं और अज्ञान पर ज्ञान के प्रकाश का आक्रमण सूचित करती थीं। गढ़वाल में विभिन्न सम्प्रदायों के प्रचार के

इतिहास के लिये मन्दिर बहुत महत्वपूर्ण हैं। मुख्य मन्दिर में नारायण की मूर्ति है जो अधिक पुरानी नहीं है। मन्दिर के एक कमरे में लकड़ी की बनी काली की भयङ्कर मुखाकृति है जिसके सन्मुख अग्न्यवलियां होती हैं। (मेरा लेख सिमली के प्राचीन और विचित्र मन्दिर, कर्मभूमि, ३० अप्रैल ५७)

५-आदि बदरी (३०°. १'. २"×७६°. १६.'२")

सिमली से ४ मील आगे चलने पर चाँदपुर गढ़ी नामक

१६—गोपेश्वर मन्दिर

स्थान पर सड़क की दहिनी ओर टीले पर चाँदपुर गढ़ी के किले के खण्डहर हैं जहाँ पहले गढ़वाल के राजाओं की राजधानी थी, यहाँ से एक मील आगे आदिबदरी में १६ मन्दिरों का पुञ्ज है, जिनमें से कुछ मन्दिर अत्यन्त प्राचीन हैं और गुप्तकाल के उत्तरार्द्ध के प्रतीत होते हैं। एक नये मन्दिर को छोड़कर शेष सभी ४२'×८५' के छोटे से क्षेत्रमें आगये हैं। प्रधान मन्दिर नारायण का है जिसमें लगभग ३ फीट ऊँची काले पाषाण की विष्णु

मूर्ति है। बदरीनाथ के मार्ग में सबसे पहले मिलने के कारण इसका नाम आदि बदरी पड़ा होगा। मन्दिर में अनेक प्राचीन मूर्तियाँ हैं। मन्दिर के द्वार के ठीक सन्मुख हाथ जोड़े गरुड़ की अति सुन्दर मूर्ति एक छोटे मन्दिर में है। अन्य मन्दिरों में हर-गौरी, लक्ष्मीनारायण, गणेश, महिषमर्दिनी आदि की अत्यन्त सुन्दर मूर्तियां हैं, प्राचीन मन्दिरों के द्वारपटों पर गङ्गा-यमुना,
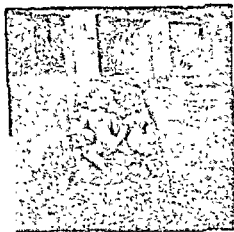
१७—गोपेश्वर प्राचीन मूर्ति

नृत्य करते गन्धर्व, कीर्तिमुख व्याल, आदिके सुन्दर चित्र हैं। (मेरा लेख, आदि बदरी के प्राचीन मन्दिर ११ दिसम्बर ५६ धर्म भूमि)

६—द्वाराहाट (५०३१ फीट)

यहाँ कत्यूरी वंश की एक शाखा की राजधानी थी। यहाँ ६४ देवालय और बावड़ियां हैं। प्रायः सभी कत्यूरी कालके हैं। अनेक मन्दिर भग्न होचुके हैं, और बहुतों में मूर्तियां नहीं हैं। कुछ मन्दिरों में अति सुन्दर प्राचीन मूर्तियां हैं। यहाँ भी उसी

प्रकार के मन्दिर पुञ्ज हैं, जैसे आदि बदरी में यहाँ के गणेश मन्दिर का निर्माण शक सम्वत् ११०३ में हुआ था। किन्तु कई मन्दिर इससे अधिक प्राचीन हैं।

७—चण्डेश्वर—

द्वारहाट से ३ मील आगे चण्डेश्वर में अत्यन्त प्राचीन शिश्नाकार के विशाल शिव लिंग हैं और वहीं पर शिला पर प्यालाकार वृक्ष खुदे हैं। ये प्यालाकार वृक्ष दक्षिण के पठार में और यूरोप में भी मिले हैं। इनका पता लगाने का श्रेय करनाथ को है। जिन्होंने १८७७ ई० में इस सम्बन्धमें लेख और पुस्तकें भी

१८—जोशीमठ

प्रकाशित कीथीं। हिमालय प्रान्त में ये प्यालाकारलेख सबसे प्राचीन हैं और दर्शनीय हैं। इनसे पता चलता है कि अत्यन्त कालसे यह मार्ग प्रचलित था। ऐसे चिह्न दूधातोली मार्गपर तुङ्गनाथ मार्गपर तथा ऊँचे डाडों पर भी मिलते हैं।

८—(२) जोशीमठ-तपोवन-बैजनाथ अल्मोडा-काठगोदाम मार्ग—

इस मार्ग में चट्टियों का क्रम इस प्रकार है। जोशीमठ-तपोवन (१)—[illegible]लारा (६)—कुआरी डाडा (१२४०० फीट) पार

फरके ढकवानी (६)–कालीघाट (८)–सेमखरक (८)–रामणी(६)–कनोल (६)–वान (६)–लोहाजंग (८)–देवाल (८)–बैजनाथ (४)–गरुड़(२)–कौसानी(१)–सोमेश्वर(६)–हवालबाग (१२)–अल्मोड़ा (५)–रानीखेत (२)–खैरना (१५)–भँवाली (१२)—काठगोदाम
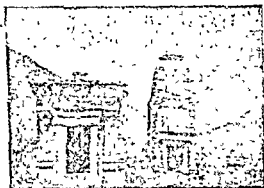
१६—तपोवन

(२१)। यह मार्ग कुल १८५ मील लम्बा है, इसमें पैदल चलनेसे लगभग ११ दिन लगते हैं। बैजनाथ से काठगोदाम तक मोटर मार्ग है।

तपोवन—जोशीमठसे केवल सात मील दूर गङ्गाजीके तट पर तपोवन का रमणीक स्थान है, जिसका वर्णन ऊपर केदारनाथ से बदरीनाथ की यात्रा में दे दिया गया है।

९–अद्भुत प्राकृतिक सौन्दर्य—

बदरीनाथ से लौटने वाले मार्गों में सबसे अधिक प्राकृतिक छटा से भरे स्थान इसी मार्ग में मिलते हैं। सारा क्षेत्र अवर्णनीय महान् सौन्दर्य और अनन्त दृश्यबहुलतासे भरा है। जोशीमठ से तपोवन तक गङ्गातट से होकर जाने में जहां गङ्गातट की अपार शोभा मन मुग्ध कर लेती है, वहां ऊपरले नये मार्ग से रैंगांवपर-

सारी आदि से होकर जानेमें ऊँचे पर्वतोंके वनों की छटा देखने को मिलती है। तपोवन से आगे कुआरी डाडेसे नन्दा घुघटी शिखर पुञ्जोंकी विस्मयकारक सुन्दरता सामने आती है। जिसे निरन्तर देखते रहने पर भी नेत्र तृप्त नहीं होते।

१०—वान, विशतोला, वैदनी बुग्यालों का सौन्दर्य—

गोनाव ल, वान, विसतोला, वेदिनी बुग्याल और रूपकुण्ड जाने के लिए इसी मार्ग से सबसे अधिक सुभीता है। कोई भी

२०—लोकप लसप्तसरोवर
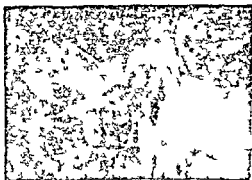
दृश्यावली इतनी अधिक आनन्ददायक नहीं होती, जितनी उच्च हिमालय की बुग्यानें होती हैं। अधिकांश पर्यटक मोटर मार्गोंके समाप्ति वाले स्थानों से आगे बढ़ने का साहस नहीं करते। इन स्थानों से आगे बुग्याला म जो सौन्दर्य छाया है, उसे देख कर विस्मय-विमुग्ध रहना पड़ता है। यहां मधुर हरियाली की चादर बिछी है। जिसमें प्राकृतिक पुष्पोंकी छटा निरखते हैं। विसतोला, आली और वैदिनी बुग्यालोंतक पहुंचनम जो कष्ट होता है, उसका पूरा-पूरा भगतान मीलों तक फैली हरियाली और उसमें दमकती पुष्पावलीसे हो जाता है। कुमाऊं कमिश्नरी के पर्वतीय प्रान्तोंमें

ऊबड़-खाबड़ पर्वतों के शिखरों पर, चौरस घास भरे मैदानों पर, भीषण सीधीखड़ी ढेलोंपर, और नदी नालोंकेतटोंपर इसी कोमल हरी बुग्याल का साम्राज्य है। इन बुग्यालों से केवल ३ मील दूर हिमाच्छादित त्रिशूल रक्षक-सा खड़ा है। चार मील आगे रहस्य और मृत्यु का सरोवर रूपकुण्ड है।" (. धार्मस्पौट्स आंव उत्तर प्रदेश, गढ़वाल, १०)

"१० सहस्र फीटतक नाना प्रकारके रङ्गों वाले पुष्प खिलते हैं। कम ऊँचाईपर उज्वल केशरी,लाल और पीले, अधिक ऊँचाई पर गहरे-नीले बिशतोला बुग्याल की गहरी हरियाली की चादर
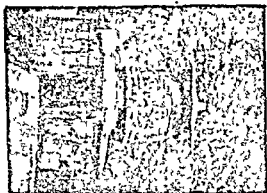
२१—पांडुकेश्वर

१२५०० फीट तक चली गई है। और धीरे-धीरे उतरकर ढलुव घासक्षेत्रों और नालों में फैल गई है। बिशतोलासे विशाल त्रिशूल शिखर तथा नन्दा घुंघटी के शिखर-पुञ्ज केवल ६ मील दूर हैं उन्हीं शृङ्खला बदरीनाथ,नीलकंठ और केदारनाथतक फैलीदिखा देती है। बिशतोला से प्रत्येक दिशा में जो अपार सौन्दर्य बिखर दिखाई देता है, उसका वर्णन करना असम्भव है। इन ऊँचे पर्वत पर प्रकृति बड़ी उदारता से सुन्दर वनस्पतियोंका वितरण करती

जिससे गढ़वालकी इस छतपर प्रकृति अपनी अद्भुतकला-कुशलता प्रकट कर रही है और उसने वेदनी बुग्याल को सबसे ऊँचा ऐसा पर्वतीय उपवन बना दिया है जिसमें प्राकृतिक दृश्यों की अगणित लहरें फैली हैं। मुस्कराती हुई घाटियां, कल-कल करते पर्वतीय नाला और खुले घासक्षेत्रों के बीच यह हरी बुग्यालोंका पठार है मील लम्बा है। २०० फीटपर फैली यह बुग्यालें परियोंके देश या अप्सराओं की नगरी सी लगती हैं। (परोक्त, १०-१०)

११-रहस्य और मृत्यु का सरोवर रूपकुण्डः—
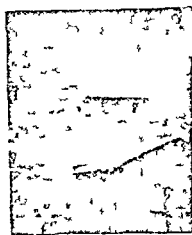
७९—पातुरनगर

रामण —वेदनी बुग्यालसे यात्रामार्गपर उतर आनेके पश्चात् घगचुआ—पा र,नाचनी-शिखर,लो धार, कलेवा,विनायक,बगुआ बासा, वहथा, रानी क मुलेरा, छिड़ानाग हार   पथुण्ड पहुँचते हैं। कर्णप्रयाग से धराली, दवाल, ला नुश्घाटा, वान,शिर तोला बुग्याल, घगचुआ होकर भी आगे उपरान्त मार्गसे रूपकुण्ड पहुँच सकते हैं। बाङ्गा ग्राम से गाड्यारी शिखर व्यालसे भी रूपकुण्ड पहुँचने का मार्ग है। १६३६० फीट उच्च त्रिशूल शिखर का जड़

पर १८००० फीट की ऊँचाई पर प्रसिद्ध रूपकुंड है, जहाँ ५००से अधिक मानवों की अस्थियां हिममें बिखरी मिली हैं।

१२–बैजनाथ —

गोमतीनदीके बाएं तटपर बागेश्वरसे 13 मील दूर उत्तर पश्चिम में बैजनाथका प्राचीन तीर्थ है। यहां १२वीं–१३वीं शताब्दी के अनेक मन्दिर और मूर्तियं हैं। इन मन्दिरों में से अनेक नष्ट होने लगे हैं। यहां की मूर्तियोंमें से हरगौरी, महिषमर्दिनी, गणेश

२३—प्रवेशद्वार बद्रीनाथ

आदि की मूर्तियां अत्यन्त सुन्दर हैं और उसी शैली की हैं जिस शैली की गढ़वालमें तपोवन, ज्योतिर्मठ सिमली और आदि बदरी में मिलती हैं। मन्दिर पुञ्ज भी उसी शैली के हैं। जोशीमठ से अल्मोड़ा आने पर कापूरी नरेश यहीं आबसे थे।

१३–कौसानी (६०६० फीट —

कौसानीमें डाक बंगलेके निकट से 10 मील लम्बी हिम-

२८—पुरी बद्रीनाथ
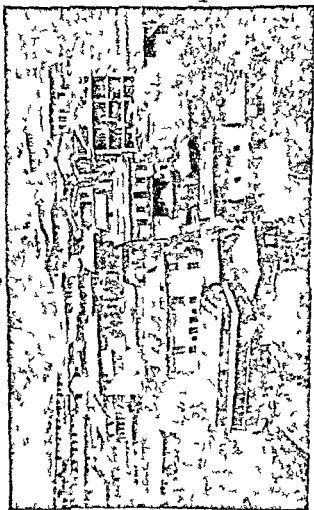
शिखरों की असीम रेखा मन्त्रमुग्ध करलेती है। दूर क्षितिज तक एक के पश्चात दूसरी पर्वत मालाएं, जो नाना प्रकार के वृक्षों के
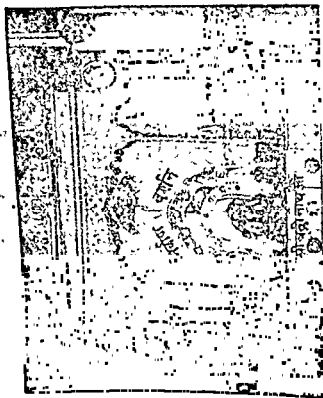
२४—निर्वाण दर्शन बद्रीनाथ

घनोंसेढकेहैं इन सबके पीछे श्वेतहिमकी यह अपारदीवार आकाश वेध कर खड़ी है। महात्मागांधी कुछ समय तक कौसानी रहेथे।

१४—जोशीमठ-श्रीनगर-देवप्रयाग मार्गः—

जोशीमठ—कर्णप्रयाग—श्रीनगर—देवप्रयाग होकर ऋषिकेश

पहुँचने वाले मोटर मार्ग के ऊपर — पिकेर से बद्रीनाथ यात्रामार्ग के शीर्षक के नीचे वर्णन हो चुका है।

१५—(४) जोशीमठ-रुद्रप्रयाग श्रीनगर पौड़ी दुगड्डा होकर कोटद्वार रेलस्टेशन पहुँचाने वाला मोटर मार्गः—

६—बद्रीनाथ मन्दिर

इस सारे मार्ग पर मोटर चलती हैं। जोशीमठ से सीधे कोटद्वार का टिकट मिलजाता है,और प्रायः गाड़ियां बदलनी नहीं पड़ती। इस मार्गमें श्रीनगर तक तो चट्टियां हैं किन्तु आगे चट्टियां नहीं हैं। प्रायः वे ही यात्री इस मार्गसे लौटते हैं जिन्हें मोटरद्वारा यात्रा करनी होती है। मार्ग निरापद है। इसलिये छोटी टोलियां में यात्रा करने वाले यात्री भी पैदल लौटते हैं। प्रायः होटलों में ठहरने को स्थान मिलजाता है। पड़ाव इस प्रकार हैं। श्रीनगर पौड़ी (१६) आखा (३) पैडुल (?) अमोटा (१४) सतपुली (८) गूमखाल (१३) फतेपुर (१) दुगड्डा ( ) कोटद्वार (१) इसमार्ग में अमोठा से पहले नयार के पुल के पास ज्वालपा देवी को मार्ग जाता है। देवीका मन्दिर केवल एक फर्लांग दूर नयार तटपर है। एकेश्वर तीर्थकेलिएभी यहीं से मार्गजाताहै। गूमखाल से भैरोंगढी को मार्ग है जहां भैरव का मन्दिर है।

१६—जोशीमठ कर्णप्रयाग श्रीनगर पौड़ी अद्वाणी होकर कोटद्वार रेलस्टेशन पहुँचाने वाला पैदल मार्गः—

इस मार्ग मे पौड़ी तक म टरें भी मि ती हैं। इ र्गमे भी चट्टियां नहीं हैं। छोटी—छोटी टोलियों में जाने वाले यात्रियों को ठहरने का स्थान मिल ाता है। पर अधिक या त्रयों के लिये प्रबन्ध नहीं है। मार्ग मे पड़ने वाले छोटे—छोटे बा ार इस प्रकार हैं। पौड़ी—अद्वाणी (डाडा २००० फीट से उ र) (१०)—बाघाट (१२)—द्वारीखाल(१)—डाडमडी (६)—दुगड्डा (?)—कोटद्वारा—(११) अब कोटद्वारा और डाडामन्डी के बीच मोटर चलती है। मार्गमें डाडामडी के पास मतियाने दो मठ मिलते है। डाडामडीमें देवी का मन्दिर है। डाड मडी से ५ मीलपर तिमली गा में ब गेश्वर का सिद्धलिंग वाला महादेव का मन्दिर है। यहा शिव और देवी के मन्त्रादी सिद्धिके लिये अतिउत्तम स्थानहै। कुल र्णव मे लिखा है—"पश्चिमायतन लिंगं वृषशून्य पुरातनम्।" यह न्दिर ठीक इसी प्रकार का बना है। इसी के पास नन्दा भगवती क मन्दिर है। तीन मीलदूर त्रिवेणी नामक स्थानप व्यासगङ्गा ौर हिंवल गङ्गा तथा गुप्त सरस्वती का सङ्गम है। यहां उत्तर वाहिनी गङ्गा है। यहीं वशिष्ठका आश्र। ओर अतिप्राचीन शिवालय है। दुगड्डा के पास सिद्धका मन्दिर है। ओर प्रा ी देवी और शिवके स्थान हैं। आगे कोटद्वारा के पास सिद्धवली—हनु ान का मन्दिर है। कोटद्वारा से ६—७ मीलदूर मोटर मार्गपर शकुन्तलाकी जन्मभूमि कठवाण्वाश्रमहै। कोटद्वारासे लेकर लक्ष्मणझुलातक सारे हिमालय के पादप्रदेशमें प्राच न स्थानाके खडहर फैले हैं। इन्हींमे लालढांग के पास प्राचीन ब्रह्मपुर के खण्डहर हैं जहाँ चीनी यात्री युवान च्वाँग गयाथा। (र—मान्टगुमरीटर्नर राज आफ नार्थ वेस्टर्न प्राविन्सेज, भाग २)

— ※ —

अध्याय १४
उत्तराखण्डकी कुछ विचित्र यात्राएं
१-भृगुपतन

१-भृगुपंथ—

भृगुपथ जिसे महापंथ आदि नामों से भी पुकारा जाताहै, अत्यन्त प्राचीन कालसे ही प्रसिद्ध होगया था। महाभारतके अनुसार अर्जुन यहां गये थे। वन पर्व, पहले घोर पातकों से मुक्तिके लिये, अथवा सीधे स्वर्गलोक पहुँचने के लिये यहां से हिमानी पर कूद पड़ते थे।

शिवकुंड के ऊपर भृगुतुङ्ग है, जो पापियों को मुक्ति देने वालाहै। गौहत्या करने वाला,कृतघ्न, ब्रह्महत्याकरनेवाला, विश्वासघातक आदि जो भृगुतुङ्ग से छलांग लगाकर श्रीशिला पर गिर कर प्राण त्याग करता है, वह ब्रह्मत्वको प्राप्त होता है। इस तीर्थके ऊपरले मार्ग में दो योजनकी दूरी पर लाल रङ्गका जल बुद्‌बुद्‌के रूपमें निकलताहै। इस जलका रहस्य अत्यन्त गुप्त रखनाचाहिए। इसकी सूचना अन्य लोगों को न देनी चाहिए। इसके स्पर्श मात्र सभी लौहादि धातु स्वर्ण बनजाते हैं। यह सत्य है ध्रुव सत्य है, यह हिरण्यगर्भ नामक तीर्थ अत्यन्त दुर्लभ है, जिसके दर्शनमात्रसे मनुष्य नारायण बनजाता है। (केदारखण्ड, ४०,७-११)

न जाने कितने व्यक्ति धातुओं को स्वर्ण बनाने के प्रलोभन में इस बुद्‌बुदाकार जलको ढूंढतेहुए इच्छा न रहते हुए भी हिम में नष्ट हुए होंगे।

हे पार्वती, मैं सदा महापथ में रहा करता हूँ, मुझे इससे अधिक प्रिय स्थान दूसरा नहीं है। जो मनुष्य नित्य भक्ति पूर्वक

केवल इतना कहता हूँ कि मैं महापंथ जाकर प्राण त्याग करूँगा। हे देवि! वह व्यक्ति भी मुझे अत्यधिक प्रिय लगता है। (केदारखण्ड ४२,)

२–डेढ़सौ वर्ष पहले स्किनर का कथन—

केदारनाथ के सर्व प्रथम यूरोपियन यात्री स्किनर ने लिखा है, कि अकेले १८२६ में महापंथ जाकर प्राण उत्सर्ग करने वालों की संख्या १४००० थी। इसमें सन्देह नहीं कि स्किनरके इस कथन में अत्युक्ति है। क्योंकि १८२०में ट्रेलने बदरीनाथ जानेवाले यात्रियोंकी संख्याका अनुमान २ ००० लगाया था। पर इससे इस प्रथा के व्यापकत्वका कुछ अनुमान लग सकता है।

३–भैरव झांप-महोत्सव, ओकले का वर्णन—

पादरी ओकले ने पचास वर्ष पहले लिखा था-केदारनाथके उत्तर की ओर जाते हिम और पाषाण के ढेरके ढेर बड़ी ऊँचाई तक चले गए हैं, और उत्तर पूर्व की ओर केदारनाथ या महापंथके उच्च शिखर हैं। घाटीमें कुछ फीट की ऊँचाई पर हिमसे नदी निकल रही है। इसकी सीधी खड़ी चट्टान का भेल प्रसिद्ध भैरव-झाप है, जहाँ से लोग देवता को अपना जीवन अर्पित करते थे। ब्रिटिश राज्य में (१ ३१) से पहले इस आत्महत्या का उत्सव बड़े प्रभावशाली ढङ्गसे मनाया जाता था बाजा बजाते ए लोगोंका जलूस आत्महत्यारे के साथ-साथ जाता था। पूरे मङ्गलाचरण,स्तोत्रपाठ और मङ्गल-गीतों के साथ उसे ब्रह्मलोक भेजा जाता था। अनेक यात्री झांप (कूद) लगानेकी अपेक्षा हिम शिखरपर चढ़ते चले जाते थे, और अन्त में थकावट और शीत के कारण अनन्त निद्रामें विलीन होकर अपना शरीर महादेवको अर्पित करदेते थे। यह असम्भव नहीं कि किसी न किसी रूपमें यह प्रथा अबभी चल रहीहो। इससे बन अब भी अनेक भूखे, नंगे, किन्तु कट्टर धार्मिक

यानी इसी प्रकार थककर प्राण देते मिलते हैं। (ओक्ले, होली, हिमालय, १५०-५१)

४—सारे भारत में प्रचलित, स्लीमैन का वर्णन—

यद्यपि १८३१ में गढवाल मे अँग्रेज सरकार ने इस प्रथा पर रोक लगादीथी, किन्तु यह प्रथा इससे पीछे भी भारतके अनेक

२७—मातामूर्ति मन्दिर

भागों में प्रचलित रही। १८३४-३६ मे मेजर जनरल स्लीमैन ने लिखा था-सतपुडा के मगन्द पर्वत-शृंखला, जो नर्मदा तट पर खडीहै,४-५ सहस्रफीट ऊँचीहै। इसके सबसेऊँचे भागपर पहले एक मेला लगता था, और सम्भवत अब भी लगता है। इस मेले में दर्शकजन वहासे कुछ युवकोंको भृगुपात करते देखने लिये जमा

जिन माताओं की, अनेक साधारण मनौती मनाने पर भी सन्तान नहीं होती, वे अन्तमें महादेव से प्रतिज्ञा करती है कि यदि उनका पुत्र होगया तो वे अपने पहले पुत्र को महादेव के अर्पित कर देंगी। पुत्र होजाने पर, जब वह युवावस्था को प्राप्त हो जाता है, उसकी माता उससे मनौती का रहस्य खोलती है और उसे भृगुपात के लिये प्रेरित करती है। उस दिन से वह युवक अपने को महादेव के लिये अर्पित समझने लगता है। वह किसी से भी इस रहस्य को न खोलकर साधुओं या यात्रियों का भेष

२८—सिमली मन्दिर

धारण करके सारे देश भर में फैले हुए शिव मन्दिरों की यात्रा करता है और अन्त में महादेव पर्वत पर इस मेले के दिन अपने को ४-५ सौ फीट ऊँचे सीधे शिखरसे नीचे चट्टानों पर पटककर टुकड़े-टुकड़े हो जाता है। पहले गिरिनार से भी भृगुपात करते थे (स्लीमैन, रू रैम्बलस ऐंड रिकलेक्सन्स, खंड 1, पृ० 1२४-२५ तथा टि०)

५—इत्सिंगका उल्लेख, गयामें भी भृगुपतन—

गुप्तकाल से बहुत पहले ही बौद्धों में भृगुपतन प्रथा चल

पड़ी थी। महायान के बौधिसत्वों ने भूखे सिंह को अपना शरीर अर्पित किया था। गङ्गा नदी में प्रतिदिन अपने को अनेक मनुष्य डुबाते हैं। बुद्ध गया के पर्वत पर भी आत्महत्याएं होती हैं। कुछ लोग उपवाससे अपनेको मारते हैं। कुछ लोग वृक्षोंपर चढ़कर अपने को नीचे गिरा देते हैं। (इत्सिंग की भारत-यात्रा, १५६)

६—स्मृतियों में भृगुपतन का निषेध—

धर्मसिन्धुमें, जिसका रचनाकाल १७९०-९१ ई० में माना जाता है, भृगुपतनका उल्लेख नहीं है, किन्तु वृद्धरुग्णादिमरणं जलाग्नि पतनादिभिः" इन्हें कलिवर्ज्य कहकर निषेध किया गया

८९—देवदारु वन में बिनसर

है। इस वाक्यमें भृगु शब्द न आने पर भी पतनादिभिः कहक ऊँचे शिखरों से गिरकर आत्महत्या करने का स्पष्ट उल्लेख है धर्मसिन्धुके लेखक काशीनाथ उपाध्यायके समय भारतके विभिः भागों में भृगुपतन व्यापक रूप से प्रचलित था, जैसा कि ऊप स्लीमैन के लेख से विदित होता है। यह प्रथा १८२६ ई० (सं १८८३) तक बराबर चलती रही, सम्भवतः इससे भी बहुत पीछे तक।

१४६०-१५१२ ई० के बीच दलपतिने अपने नृसिंह प्रसाद नामक ग्रन्थमें कलियुग में महाप्रस्थान-का निषेध कियाहै।

इसी के लगभग बने नारदीय पुराण में कलिवर्ज्यमें महाप्रस्थान गमन को स्थान दिया गया है।

चैतन्यके समकालीन रघुनन्दन ने, जिसका जन्म १४६० ई० (स० १५४७) के लगभग माना जाता है, अपने उद्वाहतत्व नामक ग्रन्थ में "भृग्वाग्निमरणं चैव" पदमें भृगुपंथमें या अग्निमें कूदकर आत्महत्या करने का कलियुगमें निषेध किया है।

३०—बालेश्वर का मन्दिर

११५० और १२०० ई० (सं० १२०७-१२५७) के बीच श्रीधरने स्मृत्यर्थसार नामक ग्रन्थ में कलियुगमें महाप्रस्थानगमन का निषेध किया है। (भट्टाचार्य, कलिवर्ज्य)

सातवीं शताब्दी में बाणभट्ट ने हर्ष चरित में केचित् आत्मानं भृगुपुपवन्तु:" कहकर इस प्रथा का उल्लेख किया है।

महाभारत में पाण्डवों का महाप्रस्थान के समय केदारनाथ जाने और वहाँ शिव का महिष रूप धारण करने का उल्लेख नहीं है। ऐसा प्रतीत होता है कि ईसा-विक्रम की पहली शताब्दी के आस-पास, आज से दो सहस्र वर्ष पूर्व, यह प्रथा आरम्भ हुई होगी। तबसे लेकर पिछले १६०० वर्षों में निरन्तर यात्री भृगु-पंथ पहुँचकर आत्मघात करते रहे हैं।

७—अब भी प्रचलित —

पिछले वर्ष उत्तर प्रदेश के मुख्य मन्त्री श्री सम्पूर्णानन्दने केदारनाथ-बदरीनाथ की यात्रा की थी। उन्हें वहाँ सूचना मिली कि कुछ लोग अब भी इस उद्देश्यसे इस मार्ग में उत्तर की ओर चुपके से चले जाते हैं। ऐसा आजकल होता है या नहीं, इसमें सन्देह है। केदारनाथ से थोड़ी दूर पर ही महापंथ नामकी चोटी है। कहा जाता है कि पाण्डव लोग यहीं से सदेह स्वर्ग गये थे। केदारनाथ मन्दिर से लगभग ६ मील पर स्वर्गारोहणी नदी का उद्गम स्थान है। इस स्थान की ऊँचाई १६० फीटहै। जनश्रुति यह है कि इसी नदी के पास की भूमि में लोग प्राण छोड़ा करते थे। इस स्थान का नाम ही मृत्यु की घाटी पड़ गया था। बहुत दिनों से सरकार ने इस घाटी की ओर यात्रियों का जाना बन्द कर रक्खा है, इसलिये अब कोई खुलकर तो इधर प्रयाण नहीं कर सकता। (सम्पूर्णानन्द, त्रिपथगा, नवम्बर ५८, पृ० ८३-८६)

२—नन्दा और रूपकुण्ड की जात

८—नन्दा की जात की प्राचीनता—

दूसरी विचित्र प्रकार की तीर्थयात्रा नन्दा की जात है।

हम पहले देख चुके हैं कि ईसा की सातवीं शताब्दी में बाण ने हर्ष चरित्र में भीष्मकाल में हिमालय की ओर उत्सुक जात देने का उल्लेख किया है। उत्तर गुप्तकालके कत्यूरी ताम्रशासनों में कत्यूरी नरेशों ने अपने को गर्व से "नन्दा भगवती-चरण-कमल-कमला मनायमूर्ति" कहा है। नन्दा या उमा इसोंकी अति प्राचीन हिमा देवी है, जिसके कारण नगाधिराज हिमालय कहलाता है। महाभारत कालमें नन्दा तीर्थ की यात्रा प्रचलित थी और पांडवों ने इन तीर्थों की यात्रा की थी।

९–नंदाकी जात, एटकिनसन का उल्लेख–

१८८२ में एटकिनसन ने लिखा था–नन्दा के उपासक सम्मिलित होकर नन्दाष्टमी को शिव–पार्वती का विवाह मनाते हैं। नौटी गाँव से एक जलूस आरम्भ होता है यहाँ देवी को पालकी में रखकर त्रिशूल–शिखरके नीचे वैदिनी कुण्ड तक लेजाकर वहाँ उसकी पूजा करते हैं। प्रति बारहवें वर्ष बहुत बड़ा उत्सव मनाया जाता है। उस समय नन्दा का सेवक लाटू भी, जिसका मन्दिर चानपुर के नौटी गाँव में है, देवी के साथ चलता है। देवी को, वेदिनी कुण्डसे आगे, हिममें वहाँ तक लेजाते हैं, जहाँ तक मनुष्य चढ़ सकते हैं। वहाँ दो शिलाओं के रूप में, जिनमें अभ्रक की भरमार है, और जो सूर्य की किरणोंके पड़ने से बहुत जगमगाती रहती हैं, देवीको पूजा की जाती है। (एटकिनसन, हिमालयन डिस्ट्रिक्टस खण्ड २ पृ० ७९२–९३)

१०–नंदाकी नरबलि–

ब्रिटिश राज्यसे पहले प्रति बारहवें वर्ष नन्दाको नरबलि देने की प्रथा थी। इस प्रथाको बन्दकर दिया गया है। दूधातोली प्रदेश में भ्रमण करने पर मुझे सूचना मिली कि उत्तर गढ़वाल के

कुछ गाँवों में अब नरबलि ने दूसरा रूप धारण कर लिया है। प्रति बारहवें वर्ष इन गाँवों में सयाने लोग एकत्रित होकर किसी अति वृद्ध व्यक्ति को नन्दा को अर्पण करने के लिये चुनते हैं। प्रायः वृद्ध स्वय ही अपनेको नन्दाको अर्पित करने के लिये प्रस्तुत हो जाता है। उचित समय पर उसके केश नाखून काट दिये जाते हैं। उसे स्नान कराकर तिलक लगाया जाता है। फिर उसके शिर पर नन्दाके नाममे ज्यूं दाल, चावल, पुष्प, हलदी और जल मिलाकर डाल देते हैं। उस दिन से वह अलग मकान में रहने लगताहै। अपना भोजन स्वयं बनाता और एक बार भोजन करता है। उसके परिवार वाले उसकी मृत्युके उपरान्त होने वाले सभी संस्कार कर डालते हैं। एक वर्ष से भीतर ही वह व्यक्ति स्वर्ग पहुँच जाता है।

११—नंदाके प्राचीन मन्दिर—

८० वर्ष पूर्व अलमोड़ा में रणचुला (कैत्यूर) और भागर (दानपुर) में नन्दा के प्रसिद्ध मन्दिर थे। गढवाल में मल्ली दशौलीमें कुण्ड, तल्ली दशौलीमें ननोग और सिन्दौल, पिंडरवार पट्टी में सेमली, मिग और तल्ली धूरा, तल्ली चान्दपुर में नौटी और लोभा पट्टी में गेर मे नन्दा के मन्दिर हैं। (एटकिनसन, हिमालयन डिस्ट्रिक्ट्स खण्ड २, पृ० ७६२)

डबरालस्यूं के देवीखेत गाँव में नन्दाक पट्टी से आये हुए नन्दाक-नेगी रहते हैं, जो नन्दा के उपासक हैं। इन्होंने निकट के यशेश्वर महादेवके अन्दर की एक प्राचीन महिष मर्दिनी की मूर्ति के लिये अपने गाँव में एक नया मन्दिर बनाया है। मूर्ति यद्यपि वर्षों तक गीली मिट्टी में पड़े रहने से घुल गई है, फिर भी पर्याप्त अच्छी है।

१२–वर्तमानकाल में नन्दा की जात—

स्वर्गीय पण्डित रविदत्त (रविपुर–चाँदपुर) में अपने हस्तलिखित ग्रन्थ से मुझे पढ़कर सुनाया था कि नन्दा आज से १३०० वर्ष पहले चौवनगढ़ (चाँदपुर) के राजा भानुप्रताप की पुत्री थी। जिसका विवाह उज्जैन–धाराके राजकुमार कनकपालसे हुआ था। १२ साल में नन्दा के मैतसे ससुराल जाने की भावना निश्चित की गई। नोटीगॉव मैत और हिमालय–कैलाश ससुराल माना गया। तब से यह प्रथा चली आ रही है।

३१—नन्दा मन्दिर देवी खेत

प्रति बारहवें वर्ष जब नन्दा की जात चलती है तो महाराजा टेहरी की ओर से कुछ सामग्री और जात का आधा खर्च मिलता है। शेष आधा खर्चा नौटियाल गढवालसे इकट्ठा करते हैं।

जात- के लिये इधर-उधर से ढूँढ़कर चौसिंग्या, चार सींग वाला (खाड़ू) मेंढा लाया जाता है। रूपकुण्ड के निकट महापर्वत त्रिशूल के पाद प्रदेश के स्थल में पूजा की जाती है। और नन्दा के भेंत की सामग्री, वस्त्र आभूषण, खाद्यपदार्थ, चावल, चूड़ा, अरसा, उगला (गेहूँ के अंकुर) धौणी की बाल, ककड़ी, गोदड़ी, दाड़िम, नारङ्गी आदि सब फल एक कंवरन्या (बकरी की पीठ की थैली) में रखकर चौसिंग्या खाड़ू पर लाद कर कैलाश की ओर भेज देते हैं। वह मेंढा स्वयं ही कैलाश की ओर चल पड़ता है। उसका सिर कुछ समय पश्चात कटकर नीचे आजाता है। शिर लुढ़कते ही जात वाले बिना पीछे देखकर ही भाग जाते हैं। इस जात में हरिद्वार से लेकर टेहरी-गढ़वाल दोनों जिलों के लोग सम्मलित होते हैं।

बान गाँव में, जो देदिनी बुग्याल के पास है, लाटू और हित देवताओं के स्थान हैं, ये देवता नन्दा के भाई माने जाते हैं। यही इस यात्रा में अग्रग्य होते हैं। रास्ता यही बतलाते हैं। चान्दपुर के १२ स्थानों के लगभग सभी लोग जाते हैं। बधाण (बौधायन) पैनखण्डा (पर्णखण्डा) और दशौली (दशमौली) से सभी लोग, जिनके हक-दस्तूर हैं, सब जाते हैं। यह प्रथा अभी तक बनी हुई है, कुछ न्यूनता अवश्य आगई है।

त्रिशूल लाट और हित के भक्तों के हाथ में होता है। नन्दा की डोली चोटी से निकलती है। उसमें नन्दा की चान्दी की मूर्ति होती है। नन्दा की पूजा में भाग लेनेवाले १७ थान ये हैं—नौटियाल, खंडूडी, देवली, नैनुवाल, मलेटा, मैठाणी, मौनी, गैरोला, हटवाल, थपलियाल, रतूड़ी और चमोली। इनमें देवली वेद-चंदन, तांत्रिक गाहदी होते हैं, नैनुवाल भगवती की आराधना करनेवाले

ते हैं। इनके १२ थान चान्दपुर गढ़ी के चारों ओर हैं। (रविदत्त, हस्तलेख।)

सन् १६५३ में नन्दाकी जो जात चलीथी, उसमें बान गांव में लाटू या भक्त घर मे अपने भाई की स्त्री की मृत्यु का अशौच (पातक) होने पर भी जातमे आगे-आगे गया तो भीषण हिमपात होने लगा। जात उचित स्थल न पहुँच सकी। जात वाले आधे मार्ग से ही चलते-चलते पूजा करके भाग आए।

१३-दक्षिणी-गढ़वाल में नन्दा-पूजा—

डबरालस्यूं के देवीखेत गांव में उत्तर गढ़वाल की नन्दाक पट्टीसे आए हुए नन्दाकनेगी बसे हैं। इन्होंने वहां नन्दाका मन्दिर भी बनाया है, जिनमें महिष मर्दिनी की प्राचीन मूर्ति बंगेश्वर से लाकर रखी गई है। इनके ब्राह्मण-पुरोहित तो निकट प्रदेश के ही हैं, पर नन्दाका जागरी-पुजारी चौन्दकोट के वीड़ी गांव से आता है। वह प्रति बारहवेंवर्ष वहां पहुँचाहै। ७-८ दिनतक पूजा करता है। अब बकरा-बलिके स्थान पर हवन करते हैं। १०दूण। ८ मन। चावलका भात पकायाजाता है। उस भातकी ढेरी धरती पर पठालोंपर लगाईजाती है। नन्दाकी पूजा समाप्त होते ही भात की ढेरी स्वयं फटजाती है। यह भात प्रसाद रूप मे बांटा जाता है। उपस्थित लोगोंके लिये भोजनकेलिये दाल-भात अलग बनता है। भोजन करके लोग प्रसाद अपने घर लेजाते है। इस प्रसाद को लेने मे ब्राह्मण-राजपूत कोई परहेज नहीं करते। भोजन तथा प्रसादका व्यय नन्दाके नेगी ही पूरा करते हैं। इन नन्दाक नेगियों के लगभग ६० घर ढौंरी गांव मे, ४-५ ईड़ा गांवमें, १ग्वीराल गांव मे और ३ महाबगढ में है।

१४-नन्दा-पूजा में ननद-पूजा—

नन्दा की पूजा मार्गशीर्ष मे की जाती है। ढौंरी गांव की

लड़कियां, जो दूसरे गांवों में व्याही जाती हैं, उस पूजा में अवश्य बुलाई जाती हैं। और पूजा के पश्चात् उन्हें वस्त्र, कलेऊ, तथा दक्षिणा दीजाती है। पुजारी को भी गुड़ की भेली और चावल का दायजा दिया जाता है। इस प्रकार नन्दा-पूजामें ननदोंकी पूजा की जाती है।

१५–घंडयाल की जात---

नन्दाकी जातके समान, उसी से मिलती-जुलती, कुछ और जात होती हैं। इनमें घड़ियाल (घण्टाकर्ण) लाटू, हित, हरू आदि की जातें जाती हैं। हिमाचल प्रदेशमें ऐसे सैकड़ों देवताओं की जातें निकलती हैं। वहां इन देवताओं के चान्दी या सोने की मुखाकृतियां बनी होती हैं, जिनमें देवियों की नथ और मूछें भी मिलती हैं। इन्हें पालकियों में रखकर गांव-गांव में घुमाते और चावल और बकरे एकत्रित करते रहते हैं। फिर एक मास पश्चात् किसी ऊँचे पर्वत-शिखरपर मेला लगता है जिसमें बकरीके रुधिर से देवता को स्नान कराते हैं। और एकत्रित किए बकरों का मांस और चावलों का भात खाकर चावलोंकी सुरा–चाटकी पीकर तथा दिन–रात नृत्य करके सप्ताह तक आनन्द मनाते हैं। १९४०ई० में ऐसे एक मेलेमें, जो दलाश (कैलास) नामकस्थानपर (१५०००फी०) पर हुआ था, मैं पहुँचा था।

१६–गढ़वाल में घड़ियाल की जात—

घड़ियाल देवता का लिंगगांज के वृक्ष के नीचे चबूतरे पर रहता है। और श्वेत पाषाण का होता है। उसके पास लोहे की एक छड़ी खड़ी रहती है। उसके पास एक दो अनगढ़ पत्थर के लिंग और खड़े रहते हैं। लोहेका दीपक भी खड़ा रहताहै। घड़ि-यालकी पूजा दास लोग या अन्य लोग जो चाहें स्वयं करलेतेहैं। सालमें एक बार कार्तिक–[illegible] में, कहीं सालमें दो बार–पूजा,

करते हैं और बकरे की बलि चढ़ाते हैं। घंडियाल के जागर भी लगाते हैं और जिसपरदेवता चढ़ताहै, वह नाचतातक भी है।

जातकेलिये घंडियालकी चान्दी की प्रतिमा लगभग ६इञ्च की होती है। घंडियाल १८–२० सालके पश्चात् भ्रमण करताहै। प्रत्येक गांव का घंडयाल अपनी इच्छानुसार चलता है। सारे गांवों के घडयाल एक साथ मिलकर चलें, ऐसा आवश्यक नहीं है। घंडयाल के पश्वा (भक्त) के हृदयमें प्रेरणा होनेपर वह इसकी सूचना गांव वालों को देता है। घंडयाल को पालकी मे रखकर ले चलते हैं। बामका लकड़ी पर लाल–पीले रङ्गकासाड़ा (फरारा-ध्वजा) लगाकर गांव-गांव मे घुमाया जाता है। यह भ्रमण मार्गशीर्ष से फाल्गुन तक होता है। बांस लेकर पुजारी, देवता मनानेवाले, सारे गांव के लोग चलते हैं। बजगीर के पास ढोल-दमामा, पुजारी के पास शंख (घंडाला) घड़ियाल। ओर मंकोर,(लम्वाताम्बेकासिंघा): होता है जिसे मुँह से बजाया जाता है। साथ ही नगाड़ा भी बजता रहता है। पूजा--सामग्री लेकर साथ जाते हैं। जिस दिन चलते हैं उस दिन पहले पूजा की जाती है। घड़ियाल को लेकर श्रीनगर में उमादेवीके मन्दिरमे जाते हैं। वहां उनकी पूजा-भेंट-प्रतिष्ठाकी जातीहै। घण्टाकर्ण उमादेवीका धर्मभाई है।

गावकी पञ्चायत जातके यात्रियोंको भोजनदेती है। यात्री देवरी कहलाते हैं। उन्हे भोजन एकही बार करना होताहै। जिस गांवमें अपनी धियाणी (पुत्री गांवकी लड़की) ब्याही हो, वहां पहुँचते है। धियाणीके ससुराल वाले घंडियालकी यथाशक्ति-पूजा प्रतिष्ठा करते है। और देवरी (यात्रियों) को भोजन देतेहैं,जिसे भात्तो कहतेहैं। पुजारी धियाणोको श्रीसम्बाद (पत्र पुष्प आशीर्वाद) देता है, जिस पर घंडयाल खेलता है, वह श्री सम्वाद देता है।

देयरी के साथ दो व्यक्ति ऐरवाला चलते हैं। रातमें जिस गांवमें जात ठहरतीहै वहां रातको भोजके पश्चात् ' जाके पश्चात् ये ऐरवाला नृत्य करते हैं। रास्तेमें गांव मिलने पर वहाँ भी नृत्य करतेहैं। यदि अन्न और रूपए-पैसा चढ़ता है तो देवताके भंडार में जमा किया जाता है। किन्तु यदि कोई आभूषण चढ जाता है, तो उसे ऐरवाले लेते हैं। जात म मुख्य कार्य निम्न व्यक्तियों का होता है:—

१—पुजारी

२—ऐरवाला

३—गणार्द-देवता का वास्तविक रहस्य जानने वाला, उसी की आज्ञानुसार देवता सब काम करता है।

४—डोंडिया-ऐरवालाको नचानेवाला, जिसके पास लकड़ी का छोटा ढोलक होता है।

५—बालदेव-एक आदमी के पास काठ या बांस की मूर्ति होती है, जिसे वह व्यक्ति(बालदेवा जैसे बच्चे को बिठाते हैं। उसी प्रकार कन्धेपर बिठाकरलेजाता है। जब तक घड़ियाल नहीं बैठता, तब तक व्यक्ति बैठजाए पर बालदेवा नहीं बैठसकता।

६—भूमिया घडियाल देवता को नचाने वाला।

संख्या १ से ४ तक पृथक-पृथक गावों के होते हैं। किन्तु भूमिया तथा बालदेवा उसी गाव के होते हैं। जात के यात्रियोंको जहां भी भोजन मिलेगा भात्तो ही पकाजाएगा। देवताको बलियां भी दी जाती हैं।

देवता का भ्रमण लगभग १ मील की परिधिमे होताहै। इस परिधिके अन्दर जहां-कहोभी धियाण ब्याही हो,वहां घड़ियाल पहुँचता है। यदि धियाण अपना पहला पति छोड़कर दूसरेके घर में बैठगई हो तो वहां भी घड़ियाल देवता पहुँचताहै। इसमें कोई [illegible] नहीं माना जाता है।

घंडियालके साथ लाटू और हित भी चलते हैं। घंडियाल हित और लाटू तीनों भाई-भाई हैं। कभी-कभी देवता एक ही गांव में तीन-चार दिनतक रहजाताहै। धियाणो चाहें तो अलग-अलग अपने घर में भात्तो दे सकती हैं।

जात जब वापिस लौटती है तो भंडारा किया जाता है। भंडारे में जो पहुँचजाए उसे भोजनदिया जाता है। शामको रोटी हलुवा-पूरी और दिन में दाल-भात दिया जाता है। दाल-भात सरोला पकाता है।

पहले आटेसे और चावलसे बारगबनाया जाताहै। प्रत्येक घार पर ३० पथा (१ मन) अन्न लगता है। जो अन्न बचता है, उससे भोजन बनाया जाताहै। भातको, जो ४--५ दून (४-मन) चावलोंका बनाया जाता है, उसे इकट्ठा एक स्थान पर रखते हैं, और वस्त्रादि से ढक देते हैं। तब किसी वृद्ध, साधु, महात्मा या ब्राह्मण को बुलाया जाता है। उसे १५-२० रुपए दक्षिणा देते हैं। वह व्यक्ति भातके ऊपर कपड़ा हटाकर उसे चार भागोंमें काटता है। यह प्रसाद है कि कोई गृहस्थी भात का कोठा काटता है, तो उसकी मृत्यु हो जाती है, इसलिये कोई गृहस्थी इसके लिए तैयार नहीं होता। यह भात बदरीनाथजीके प्रसादके समान बांटा जाता है। केवल भात ही बँटता है, उसके साथ दाल नहीं बँटती। उस प्रसाद को उसी समय खालेते हैं। यह प्रसादी सायं को ४ बजे के लगभग बांटी जाती है। दिनमें सरोला का बनाया हुआ दाल-भात उपस्थित जनता को खिलाया जाता है।

हीत या लाटू स्वतन्त्र रूप से नहीं घूमते।

१७-घंडियालके सम्बन्धमें एटकिनसनकी कल्पना—

१८८२ में एटकिनसन ने लिखा था, कि घंडियाल देवता बौद्धोंका वीतराग अब्जपाणि देवता है। कुमांऊ गढ़वालमें १८८२

में घडियालके ११ प्रमुख मन्दिरथे । जिनमें से एक में उसकी पूजा नागराजा के रा , जिसे वैष्णव माना जाता है, होती थी । वह लिखता है कि घंडियालकी पूजा जलकलशके रूपमें होतीहै । और विश्वास किया जाता है कि वह सरने वाले रोगों का दूर कर देता है । इसलिये उसके प्रति बड़ा आकर्षण पाया जाता है । यह वही देवता है जो नेपाल का अजपाणि है, क्योंकि उसका चिन्ह भी जलकलश है । खसिया ब्राह्मण उसकी वर्षमें दोबार दोनों फसलों के समय पूजा करते हैं । इनमें से एक पूजा भादों में होती है । (एटकिनसन, हिमालयन डिस्ट्रिक्ट्स खण्ड २, पृ० ८१)

एटकिनसन का यह कथन कि घडियाल और अजपाणि दोनों का चिन्ह जलकलश होने के कारण दोनों एक हैं,अमान्य है । घण्टाकर्ण खसों का प्राचीन देवता है । जिसका प्राचीन ग्रंथों में घण्टाकर्ण ऋषि के नाम से उल्लेख हुआ है, मल्लिनाथ ने किरा-तार्जुनीयम् की टीका में घण्टापथ नाम दिया है । उसे भी ज्ञात था कि घण्टाकर्ण और किरातों का क्या सम्बन्ध है ।

१८–घण्टाकर्ण-यक्ष—

घण्टाकर्ण किरात-खसों का देवता है कुछ प्रसंगोंमें घण्टाकर्णकी गिनती यक्षोंमें कीगईहै । बौद्ध और जैन साहित्यमें अनेक यक्षों-ज्वरदत्त, सूंखर,मणिभद्र,मन्डीर,शूलपाणि, नरप्रिय,घंटिक, पूर्णभद्र आदि के नाम मिलते हैं । इसी प्रकार अन्य यक्षिणियों के नाम मिलते हैं । (मोतीचन्द्र, सम आस्पेक्ट्स आफ यक्षकल्ट, बुलेटिन आवदि प्रिंस आव वेल्स म्यूजियम व बई १९ ५० ४३; दत्त वाजपेयी उत्तर प्रदेश म बौद्ध धर्म, १-१)

१९–घण्टाकर्ण के मन्दिर—

गढ़वाल के अनेक बड़े मन्दिरों में घंटियाल द्वाररक्षक का कार्य करता है । उसका स्थान मन्दिर के द्वार पर बना होता है ।

बदरीनाथ के द्वाररक्षक घंडियाल का बड़ा मन्दिर जो बिलकुल घर जैसा है, माण गाव में है। पट्टी मन्यारस्यू में एक पहाड़ी पर घंडियाल देवता का मन्दिर है, जहां उसकी पूजा नैथाणा गाव के ब्राह्मण करते हैं। गढ़वाल में घंडियाल के कुछ मुख्य मन्दिर इन गावों में हैं। थापली (पटवालस्यू) और माणा (पैनखण्ड) तथा मैंगाड़ा खास्यू में। इनके अतिरिक्त सिली चान्द १८,ढेंजुली चौथान और गाणीगढ़ मे घंडियाल के मन्दिर हैं। भरसिंसे थलीसैंण जाते समय बपरौली गावकी धार पर ८००० फीटपर घंडियालका विशाल और प्राचीन मन्दिर है।

२०—रूपकुंड की जात—जागरों की जात—

रूपकुण्ड में पाएगए मानव-शरीरों के कारण उसके संबध में अनेक कल्पनाएं की जाने लगी हैं। दशौली ओर चान्दपुर में अब भी रूपकुण्डकी जात प्रचलित है। और कुछ गीत इस दुर्घटनाके सम्बन्ध में प्रचलित हैं जिनका सार नीचे दियाजाताहै—

चान्दपुरगढ़ीकी राजकुमारी बलम्पाका हिमवन्तकीलड़की नन्दा से धर्मचारा बचपन मे ही होगया था। दोनों धर्म-बहिन बन गई थीं। चान्दपुरगढ़ीके गढ़नरेशने अपनी पुत्रीका विवाह कन्नौज के राजा जसोधवल (यशोधवल) से कर दिया और हिमवंत ने नन्दा का विवाह कैलाशके महादेव से किया। कुछ समय पश्चात नन्दा बलम्पाके प्रेमकी परीक्षा लेनेकेलिए कन्नौज गई और उससे आधा राज्य मांगा। बलम्पा ने इसे अस्वीकार कर दिया। नन्दा रुष्ट होकर चली गई। कुछ समय पश्चात बलम्पा ने अपने पतिको प्रेरणा दी कि हम भी जाकर नन्दाकी परीक्षा लें। जब वे रूपकुण्ड पहुँचे तो नन्दा को ज्ञात होगया। उसने लोहे की वर्षा करके उन्हें नष्ट कर दिया। (नौटीगाव निवासी श्री महेशानन्द मैठाणीके द्वारा जागरों की व्याख्या के आधार पर)

भीषण ओले गिरनेसे चोटें खाकर यात्री फिसले कुण्डकी ओर गिर कर मरगए। कई खोपड़ियोंके ऊपर चोटें दिखाई पड़ी हैं।

४—जागर, ताम्रपत्र का लेख तथा अन्य पुराने लेखों के अध्ययनसे पता लगता है कि रूपकुण्ड-दुर्घटना पन्द्रहवीं शताब्दी विक्रमी (चौदहवीं ईसवी) में हुई।

५—इस दुर्घटनास्थलसे कुण्ड में कोई हिमखण्ड गिरनेकी सम्भावना नहीं है, क्योंकि कई अस्थियां तथा कई अन्य वस्तुएं १६५८ में भी (अर्थात् घटना से ६५० वर्ष पश्चात्) रूपकुण्डके २०० फीट ऊपर खड़ी दीवालों से और ज्यूंरागली के ७०० फीट नीचे इकत्रित की गई हैं।

६—ये अस्थिपञ्जर न तो तिब्बतसे लौटते हुए तिब्बती व भोटिये व्यापारियों और न उत्तर से आए हुए शरणार्थियोंके होने की सम्भावना है, क्योंकि अबतक कोई पर्वतारोही दल रूपकुण्ड होकर होमकुण्डको ओर ऋषि गंगाके मार्गको छोड़कर अन्य मार्ग से नहीं गया है। काफिला जाना तो दूरकी बात है, उधर से एक व्यक्तिके जाने का भी मार्ग नहीं है।

७—ये अस्थिपञ्जर मोहम्मद तुगलक या काश्मीरी सेनानी जोरावरसिंह के कदापि नहीं हो सकते क्योंकि रूपकुण्ड पर अब तक किसी भी प्रकार की युद्ध सामग्री उपलब्ध नहीं हुई है।

८—रूपकुण्ड, वेतुवाविनेक, और वैदिन बुग्यालों में पाए गए गणेश तथा महिषमर्दिनी की मूर्तियां और शिला लेख रूप-कुण्डकी घटनासे कुछ सम्बन्ध नहीं रखते हैं। ये सातवींसे दसवीं शताब्दी तक के हैं। (प्रणवानन्द रूपकुण्ड का रहस्य, नव भारत टाइम्स, ६ फरवरी १९)

२५—ऐशोधवल की ऐतिहासिकता—

ऐसा प्रतीत होता है कि बाण ने हर्षचरित में जिस हिमा-

[illegible] चौदहवीं शताब्दी

तक भी उसी प्रकार चलती रही। चौदहवीं-पन्द्रहवीं शताब्दी में कन्नौजपर मुसलमानोंका अधिकार होचुका था। इस समय यशो-धवल राजा कन्नौज का नहीं हो सकता। कोई प्रतिष्ठित व्यक्ति या पुराने राजवंशों का वंशज हो सकता है। कन्नौज के मौखरियों के शिलालेखों में यशोधवल नाम मिलते हैं। राखालदास बंद्योपाध्यायने अपने शशांक नामक ऐतिहासिक उपन्यासमें यशो-धवल मौखरिको गुप्त सम्राट शशांकका समकालीन माना है। गुप्त युग तथा उसकेपश्चात् छटी-सातवीं शताब्दीतक ऐसे नाम उत्तर भारतमें प्रचलितथे। चचनामासिन्धमें धवल वम्मनका उल्लेखहै।

२६--जात, खसों की तीर्थयात्रा---

उपरोक्त वर्णनों से दो बातें स्पष्ट हैं।

१--प्राचीन कालमें सारे उत्तर भारतमें जात देनेकी प्रथा प्रचलितथी। इन जातोंमें मदकन-निवासी भी हिमालयमें पहुँचते थे। अब भी सारे हिमालयमें सर्वत्र इस प्रकार की जात किसी न किसी रूप में प्रचलित हैं।

२--जातके भंडारे में प्रसाद के रूपमें भात बांटनेकी प्रथा प्राचीनकालसे चली आती हुई प्रथा है। बद्रीनाथ में भातके प्रसाद बांटने की प्रथा इसी प्रकारकी है। जगन्नाथ में इसी प्रकार भात, आज भी बँटता है। इन दोनों प्रथाओं का गहरा अध्ययन बड़ा मनोरञ्जक होगा और उससे हमारे तीर्थों और धार्मिक प्रथाओं पर महत्वपूर्ण प्रकाश पड़ेगा।

३--नागराजा-तीर्थ सीम-मुखीम की यात्रा--

२७--नाग-भूमि--

उत्तराखण्डकी तीसरी विचित्र यात्रा सीम-मुखीमके नाग राजा तीर्थ की यात्रा है। इस यात्रा का प्रचार हिमाचल प्रदेश,

जौनसार-बावर, टेहरी, गढवाल और अलमोड़ा-नैनीताल के हिमालय-निवासी तीर्थों में तो घर-घर नागराज की पूजा होती है। यहा कई जातिया अपने को नागवंशी बतलाती हैं। अनेक प्राचीन स्थानों के नाम नागके नामपर रखे गए हैं—नागपुर, नाग नाथ, नागन्द, उरूगम, पाडुकेश्वरमें शेषनाग, रतगावमें मेकलनाग, तलौर में सगलनाग, मरगाव में वनपुरनाग, जेलम (नीति) मे वनपुरियनाग, नागनाथ (नागपुर में पुष्करनाग पूजे जाते हैं। नागपुर दशोली और पैनखण्डानागोंके गढये। उद्गम में योरचा नाग, नागपुर में वासुकि और पुष्करनाग तथा दशोली में अवभी तक्षकनाग की प्रतिष्ठा है। (राहुल, गढवाल, २१)

गढवालके प्राय प्रत्येक गाँवमें नागराजा-चौक मिलते हैं। गाव-गावमें पेड़ों के नीचे नागराजा का स्थान बना होता है, जहाँ लोहे का नाग, लोहे का दीपक और त्रिशूल गढा रहता है। कहीं-कहीं इनके साथ एक अनगढ पाषाण या लिंग भी खड़ा किया मिलता है। घरों में नागराजा के लिये एक ताक बना रहता है। ब्राह्मण, राजपूत और हरिजन सभी जातियों में नागराजकी पूजा प्रचलित है। और पूजा न करने पर उसका दोष (कोप) माना जाता है। उसका घड़ियाल रखा जाता है, जागर लगते हैं और पूजा भंडारा कियाजाता है। यदि इतनेसे ही देवताको तुष्टि नहीं होती, तो सीम-मुखीम की यात्रा की जाती है।

२८—सीम-मुखीम जाने वाले मार्ग—

सीम-मुखीम नामक नागराजा का स्थान टेहरी जिले में ८००० फीट से अधिक ऊँचाई पर है। यहाँ पहुँचने के लिये गढ-वालमें मुख्यत चार मार्ग जाते हैं।

१—ऋषिकेश, टेहरी, प्रतापनगर होकर सीम।

२—श्यामघाट, देवप्रयाग, टेहरी, प्रतापनगर होकर सीम।

३—चन्द्रवदनी, घुत्तू, बूढाकेदार होकर सीम।

४—त्रियुगी नारायण, पवाली, घुत्तू, बूढाकेदार होकर सीम। टेहरी राज्य के उपरले भागोंमे लोग, तथा रामपुर-बुशहर से जाने वाले यात्री डूंडा से यहाँ पहुँचते हैं।

टेहरी से प्रतापनगर तक ७—८ मील की खडी चढाई है। मार्ग मे फलों के मौसम में सेव—नासपाती आदि फल मिलते हैं। मार्ग रमणीय घने वनके बीच से होकर जाता है। और यद्यपि मार्ग मे यात्री को कष्ट उठाना पड़ता है, पर उसके पुरस्कार मे अद्भुत प्राकृतिक दृश्य देखने को मिलते हैं। प्रताप नगर मे टेहरी राज्य की पिछली राजधानी होने से अच्छे भवन बने हैं। यह स्थान टेहरी के मध्यमे है।

प्रताप नगरसे आगे उतार आता है और मार्ग मे सिंचाई वाले उत्तम खेत मिलते हैं। जो धानकी उपजके लिये प्रसिद्धहैं। इस भागमें बहुत अन्न उत्पन्न होता है ओर सस्ते भाव पर बिकता है। प्रतापनगर से ३—४ मील दूर सेरा नामक स्थान है। यहॉ से ३ मील दूर मुखीम गॉव है।

२६—मुखीम गाँव—

पाच सो से भी अधिक मवासों का गाव है। इसके बाई ओर पोखरी और दहिनी ओर दिनागाव नामक दो और बडे-बडे गॉव हैं। मुखीम गाँवके आस–पास आमणी–सीम, वारुणी-सीम, तलवला सीम, गुप्तसीम, काला सीम आदि सात सीम वतलाये जाते हैं। जहाँ गुप्त रूप से अनेक सिद्ध योगी और स्वय योगीश्वर भगवान कृष्ण निवास करते हैं। और श्रद्धालु भाग्य-शाली भक्तों को यदा–कदा दर्शन दिया करते हैं। ये सभी सीम प्रकट नहीं हैं। और खासकर गुप्त सीम तो गुप्त ही है। इन सभी सीमों की यदि कोई खोज करना चाहे तो वह या तो अन्धा हो

जायगा या भूल भुलैयों में खुद ही खो जायेगा। (उमरावसिंह रावत, उत्तरापथ की एक झांकी)

३०—सीम शब्द का अर्थ—

सीम शब्द का शाब्दिक अर्थ वह स्थान है जहाँ जमीन के नीचे पानी हो। इस दृष्टि से यह स्थान केदार क्षेत्र से ही मिलता जुलता है। इन सीमों में और खासकर तलवला सीम में तो जमीन के जरा दब जाने से ही पानी ऊपर तलवल दिखाई देने लगता है। (उमरावसिंह रावत, उत्तरापथकी एक झांकी, १०५-६)

३१—नागराजा की पूजा वीर पूजा—

उमरावसिंह रावत का कहना है कि नागराजा की पूजा वीर पूजा है। ये नागराजा ९ भाई और ९ बहिन, ९ भाई रौतेले और ९ बहिन रौतेली के नामसे प्रसिद्ध हैं। ये वासुकिनाग और जिया ब्राह्मण की सन्तानें हैं। जिस प्रकार धर्म्याली माता कुन्ती से पाँच पांडवों की विचित्र और अलौकिक ढङ्ग से उत्पत्ति कही जाती है उसी प्रकार इन ९ भाई-बहिनों की उत्पत्ति भी जिया माता बामणी के मत अथवा सतीत्वके अंश से कही जाती है। गढ़वाल ने इन दोनों सती माताओं को माता रूप में और उनकी सन्तानों को देवता रूपमें स्वीकार करके एक प्रकार की धार्मिक भावना से ओत-प्रोत वीर पूजा की परिपाटी चलाई है। रौतेला और रौतेली का अर्थ राजकुवर और राजकुवरि होता है। इसलिये निश्चित हुआ कि रमौली पट्टी के अन्तर्गत इस नागवंशी राज्य परिवार का राज्य था।

इन भाई-बहिनों के नाम ब्रह्म, सूर्य, धर्म, नियम, जत, मत आदि शब्दों से आरम्भ होकर कंवल (कमल), कंवली (कमलिनी) से समाप्त होते हैं। इन बातों से दो बातों का पता

चलता है। एक तो यह कि भाई-बहिन धार्मिक अंश से उत्पन्न होने के कारण अत्यन्त धर्मात्मा लोग थे दूसरा यह कि इनके राज्य में कमल खूब खिलते थे।

ये लोग पाडवों के जमाने में हुए थे, क्योंकि इन बहिनों में से एक बहन को पांडव-विवाह कर लेगये थे। इन नाग-रौतेलों का विवाह-सम्बन्ध भूटान आदि देशों से भी रहा है। सूर्ज-कौल प्राणों को बाजी लगाकर भूटान की एक राजकुमारी को ब्याह के लाया था। (भूटान का तात्पर्य है भोटान्तिक या हूणदेश)

इन लोगों के दीवान रमोला जाति के लोग थे। जिनमें गंगू रमोला और सिद्ध रमोला बड़े प्रसद्धि हुए। गंगू रमोलाको कहते हैं कि भगवान कृष्ण ने स्वयं अपना मन्दिर बनवाने को कहा, जब कि वे अपने माता-पिता बसुदेव-देवकी को बदरीनाथ यात्रा को ले जा रहे थे।

वह मन्दिर जिसके हमने दर्शन किये, कहते हैं कि गंगू रमोला का ही बनाया हुआ है। उस मन्दिरके अन्दर वसुदेव की मूर्ति है, जो पगड़ी पहने हुए है। प्रधान प्रतिमा भगवान कृष्णकी है जो नाग रौतेलोंके बड़े भाई कहकर पूजे जातेहैं और वास्तविक नागराजा हैं। कहा जा सकता है कि यह नागपूजा विशुद्धरूप में भगवान कृष्ण की उपासना है और विकृत तथा गौरवरूप मे उन नाग-रौतेलों की वीर-पूजा।

३२—नाग और विष्णु कथा—

वास्तवमें इन नागवंशी राजकुमारों की पूजा का कारण उनका कृष्णोपासक होना ही है। इनकी सारी कथा-वार्ताएं (अथवा जागर) अधिकांश मे कृष्ण भगवान की कीर्तिगाथाओं से ही ओत प्रोत हैं। स्वयं उनकी वार्ताएं तो उसके अन्दर नाम मात्र की हैं। मन्दिर के अन्दर भी इनकी कोई प्रतिमा नहीं।

प्रतिमाएं या तो भगवान कृष्णकी हैं या उसके सम्बन्धियों बसुदेव, गोपी आदि की। दूसरे शब्दों मे हम यह कह सकते हैं कि पांडवों की ही भांति इनकी भी महत्ता और पूजा के कारण भगवान कृष्ण ही हैं। यह वास्तवमें भगवान और उसके श्रेष्ठ भक्तों की पूजा है किसी साधारण मानव की नहीं। (उमरावसिंह रावत, उत्तरापथ की एक झांकी, १०५–१०७)

शेषनाग विष्णु को शय्या माने जाते हैं। गढ़वाल की नागपूजा में शय्या और शयनकारी, अर्थात् विष्णु और शेषनाग का तादात्म्य होगया है। जो चान्दी का नागदेवता बनाकर मंदिर मे चढ़ाया जाता है वह सर्पाकार बनाया जाता है, पर नागपूजामें जो जागर लगते हैं,वे कृष्णको जोवन कथाओं से संबंधित होतेहैं।

३३—नागराज भोट नरेश की पूजा—

उत्तरकाशी के परशुराम मन्दिर के दक्षिण की ओर एक छोटी सी कोटरीमें, जो दत्तात्रेय मन्दिर कहलातीहै, एक बुद्धकी मूर्ति है, जिसके पाद पीठ मे सामने की ओर तिब्बती अक्षरों में लिखा हुआ है, ल्ह–वचन-पौ–न–ग–र–जुडि–थुवस–प। देव भट्टारक नागराज के मुनि। यह मूर्ति ९०० वर्ष से अधिक पुरानी है। पश्चिमी तिब्बती गूगे में (शुङ्–शुङ्) मे १०३० ई० के आस पास खोर–दे नामक राजा राज्य करते थे। उन्होंने ही थोलिंग का महाविहार बनवाया था। बौद्ध धर्म मे उनकी बड़ी श्रद्धा थी। राज्य अपने भाई को देकर वह स्वयं अपने दो लड़कों नागराज और देवराज के साथ भिक्षु होगये थे। राहुल का कहना है कि टेहरी में भल्याणाका डाडा उस समय गूगे के राज्य की सीमा थी। और बाहाहाट (उत्तरकाशी) उनके राज्य के अन्दर था। उपरोक्त नागराजने ही दत्तात्रेय मन्दिर की बुद्धमूर्ति को बनवाया था। तिब्बती इतिहास मे इतना ही जानते थे कि

नागराज अपने पिता के साथ भिक्षु होगये थे। इस मूर्ति में उन्हें ल्ह-वचन-पौ (देव भट्टारक) कहा गया है, जो राजा के लिये ही लिखा जा सकता है। इसका अर्थ हुआ कि नागराजा का पश्चिमी तिब्बत पर राज था और अपने राज्य के इस स्थान (बाड़ाहाट-उत्तरकाशी) पर उन्होंने १०२५ ई० (सं० १०८२) के आसपास एक अच्छा बौद्ध बिहार बनवाया था। (राहुल, मेरी जीवन यात्रा, खड २, पृ० ५६-६५७)

उत्तरकाशी से आगे पहले गुमगुमा सुखी की चढाई तक एक राजा राज्य करता था, जिसकी राजधानी कछौरा थी, उसका भाई सीमतमें रहताथा ।दोना भाइयोंमें झगड़ा होगया। छोटा भाई भागकर भोट चला गया और वहाँ से भोट राजा की सेना अपने साथ ले आया। उसी समय कछौरा नष्ट हुआ। राजा घायल होकर मर गया। उसके वशज भाग कर रमोली चले गये। (राहुल, मेरी जीवन यात्रा, खण्ड २, ६६५-६६६)

३४-धार्मिक क्रान्ति

हमारा अनुमान है, कछौरा के राजा का यह वंशज ही जो भागकर रमोली गया था, गगू रमोला है। यह या तो बोद्ध था, अथवा अन्य किसी प्रकार के देवी-देवताओं का उपासक था। जागरों में कहा जाताहै कि भगवान कृष्णने बार-बार उसे अपनी पूजा करने और अपने लिये चौंरी या पूजास्थान-चबूतरा-चौरतेन बनवाने को कहा, पर गगू नहीं माना। गगू के पास कंकड़ों पत्थरों की भांति प्रचुर धन और रेते के टीलों की तरह अनाज के ढेर थे। गगू बड़ा अधर्मी था, उसे देवताओं में विश्वास न था। वह बड़ा घमण्डी भी था। और किसी को सलाम न करता था। भगवान कृष्ण ने उसे इस अधर्मका दण्ड देना चाहा। अचानक गगू की पीठ पर जोरों का दर्द हुआ। उसका सारा धन मिट्टी

होगया और अनाज को चींटियां लेगई। उसके मवेशी मरने लगे और फसल सूखने लगी। गंगू का परिवार भूखों मरने लगा किन्तु फिर भी उसने अधर्म न छोड़ा। फिर कृष्ण भगवानने उसे चल्या पर्वत की चोटी से पुकारा और कहा, मैं तुम्हारा कुलदेव हूँ। अगर तुम वारुणी सीम में मेरा मन्दिर बनवाओ तो मैं तुम्हारा सारा धन लौटा दूं।

गंगू को ब्राह्मणों ने बताया कि तुम पर तुम्हारे कुलदेव भगवान कृष्ण का कोप है, तुम द्वारका जाकर उन्हें मनाओ। अंत में गंगू पछताया, द्वारका जाकर उसने कृष्णको मनाया। कृष्णजी के आदेश से उसने सीम में आसिन सीम, बरासिम सीम, गुप्त सीम, लुका सीम, युका सीम, मुख सीम, प्रकट सीम में कृष्णजी के मन्दिर बनवाये। इन मन्दिरोंके बनते ही रकमेलीहाट (गंगू-रमोले का स्थान) समृद्ध होगया। गंगू भी पहले जैसा स्वस्थ और धनवान होगया। (ओकले-गैरोला, हिमालय की लोक कथाएं, ६६-७०-७१)

इस कथासे स्पष्ट है कि गंगू रमोला को बाध्य होकर कृष्ण की उपासना करनी पड़ी। अर्थात् रमोली हाटमें पहले कृष्ण की पूजा प्रचलित न थी।

३५—जोशीमठ से कत्यूरी नरेशों का भागना—

जोशीमठ के नरसिंह मन्दिर के सम्बन्ध में कहा जाता है कि पुराने राजा वासुदेव का एक वंशज जब शिकार खेलने गया तो भगवान विष्णु ने ब्राह्मण का वेष धारण करके उसकी रानी से भोजन मांगा और भोजन खाकर राजाके पलङ्ग पर लेट गया। राजा ने लौटकर अपने पलङ्ग पर अपरिचित व्यक्ति को देख तलवार से उसके हाथ पर प्रहार किया, किन्तु रुधिर के स्थान पर दूध निकला। राजा भयसे कांपने लगा। रानी ने कहा संदेह

नहीं, यह कोई देवता है। देवता ने कहा-मैं नरसिंह हूँ। मैं तुमसे प्रसन्न होकर तेरे दरबार में आया था। अब तूने जो अपराध किया है, उसका फल भोगना ही पड़ेगा। तू इस सुन्दर ज्योर्ति-धामको छोड़कर अब कत्यूर (बैजनाथ) में जा बस। यह घाव तू मन्दिर में उपस्थित नरसिंह की छोटी मूर्ति में भी देखेगा। जब वह मूर्ति गिरकर खण्ड-खण्ड हो जायेगी और हाथ न रह जायगा तब तेरा वंश उच्छिन्न हो जायेगा।

मन्दिर में नरसिंहजी का एक हाथ पतला है। जब बांह टूटकर गिर जायेगी, तब धौली उपत्यका में नये बदरीनाथ प्रकट होंगे। (राहुल, गढ़वाल ३३५)

कत्यूरी नरेश तब जोशीमठको छोड़कर कथूर (बैजनाथ) में जा बसे। इस कथा के अन्तर्गत भी विद्वान कोई ऐसा धार्मिक कारण मानते हैं, जिससे कत्यूरी नरेशों को अपनी राजधानी जोशीमठ से हटानी पड़ी।

३६—नाग और विष्णु का तादात्म्य—

नाग और विष्णु का तादात्म्य प्राचीनकाल में ही होने लगा था। गीता में भगवान ने कहा है-"सर्पाणामस्मि वासुकिः" तथा "अनन्तश्चास्मि नागानाम्।" अर्जुन और कृष्णने खांडव-वन से नागों को भगाया था। परीक्षित की हत्या नागराज तक्षकने की थी। जन्मेजय ने बदला लेने के लिये सर्पसत्र किया था, जिसमे उत्तर भारत के मुख्य नागवंश नष्ट होगये तथा धीरे-धीरे नाग हिमालय की दुर्गम घाटियों में जा, बसे, जहाँ पहले से भी कुछ नाग रहा करते थे। पीछे सम्भवतः ये बौद्ध धर्म त्यागकर वैष्णव बन गये, अथवा बल पूर्वक बना दिये गये।

३७—सीम-मुखीम के पंडा, फिस्वाल—

सीम-मुखी के नाग देवताके पण्डा जो फिस्वाल कहलाते

हैं, गढ़वाल में शीतकाल में भिक्षा माँगने जाते हैं। फिक्वाल शब्द सम्भवतः भिक्वाल है, जिसका अर्थ होगा भीख माँगने वाला, क्या इनका सम्बन्ध पहले बौद्ध भिक्षुओं से था, कहना कठिन है। बौद्ध ग्रन्थोंमें नागराज का बुद्ध पर अपना फन फैला-कर छाया करने का बार-बार उल्लेख आता है। इन नागों का यदि बौद्ध उपासकों से कोई सम्बन्ध रहा हो तो असम्भव नहीं। इन फिक्वालों में ब्राह्मण-राजपूत दोनों जातियों के लोग भीख माँगने जाते हैं और उन्हें अन्न भिक्षा दी जाती है। इनमें से कुछ ज्योतिष या हस्तरेखा देख कर भी कमाई करते हैं। कुछ भृगु-संहिता लिये चलते हैं। बहुतसे गङ्गाजल बेचने दूर-दूरके नगरों तक चले जाते हैं। इस कार्यमें उत्तरकाशी तक के ब्राह्मण-राजपूत लगे रहते हैं। यद्यपि ये सब अपने को भिक्षा माँगते या जल बेचते समय ब्राह्मण बतलाते हैं, ये चावल पीसकर उसका श्वेत या हल्दी मिला पीला तिलक बनाते हैं और प्रातःकाल उठकर पहले माथे पर तिलक चढ़ाते हैं। फिक्वाल दल बनाकर चलते हैं, और भिक्षा एकत्रित होजाने पर नदी आदि जलाशय-तटों पर भोजन पकाकर खातेहैं। शीतकाल व्यतीत होजाने पर अपने घर खेती करने चले जाते हैं।

३८—अध्ययन की आवश्यकता—

भृगुपात नन्दा आदि की जात और नागराजा की पूजा तथा फिक्वाल जाति की गहरा अध्ययन अपेक्षित है। इनके अध्ययन से हिन्दू धर्म के इतिहास आदि पर महत्त्वपूर्ण एवं मनोरञ्जक प्रकाश पड़ेगा।

-०-::-(✿)-::-०-

अध्याय १४

कैलाश मानसरोवर यात्रा मार्ग

१—प्राचीन उल्लेख—

महाभारत के आदि पर्व के आठवें अध्याय तथा वन पर्वके बियासीवें अध्यायमें मानसरोवर का उल्लेख है। और कहा गया है कि उस उत्तम तीर्थ में स्नान करने से रुद्रलोक प्राप्त होता है। वाल्मीकि रामायण में विश्वामित्र कहते हैं—हे नरश्रेष्ठ राम! कैलाश पर्वत पर ब्रह्मा ने संकल्प मात्रसे मानसरोवर की उत्पत्ति की थी, इसलिये यह मानसरोवर कहलाताहै। (बालकांड २४-८)

स्कन्द पुराणके काशीखण्ड के अध्याय १३, तथा हरिवंश के अध्याय २०१ (दाक्षिणात्य पाठ) के अनुसार कैलाश भगवान विष्णु की नाभि से उत्पन्न हुआ, श्रीमद् भागवत (५–१६–२२) के अनुसार कैलास देवता, सिद्ध तथा महात्माओं का निवासस्थल है। देवी भागवत मे भी यही विश्वास प्रकट किया गया है। श्रीमद् भागवत (४–६–६) के अनुसार कैलाश में भगवान शङ्कर का निवास है, यह स्थान अत्यन्त रमणीक है और यहाँ मनुष्यों का निवास सम्भव नहीं है। हरिवंश॰ के (दाक्षिणात्य पाठ) के अध्याय २०४ और २८१ में कैलाशका विस्तृत वर्णन है।

२—मार्ग की कठिनाई—

गढ़वाल के चारों धाम १० सहस्र और १२ सहस्र फीट के बीच ऊंचे हैं। इनके मार्ग में कहीं १२ सहस्र फीट से अधिक ऊँचा घाटा नहीं पार करना पड़ता। गौमुख, हेमकुण्ड, लोकपाल तथा कश्मीर में अमरनाथ अवश्य कुछ अधिक ऊंचेहैं, पर इनमें

भी किसी ऐसे घाटे को पार नहीं करना पड़ता जो १५-१६ सहस्र फीट से अधिक ऊँचा हो। कैलाश-मानसरोवर यात्रा में लगभग १७ सहस्र फीट ऊँचे घाटे हैं। दूसरी बात यह है कि हिन्दुस्थान के सभी तीर्थ हिमालय के इसी ओर हैं। केवल कैलास-मानसरोवर की यात्रा में यात्री हिमालय पार करके तिब्बत जाता है। तीसरी बात यह है कि हिन्दुस्थान की यात्राओं में अधिक दिन नहीं लगते, पर कैलाश मानसरोवर यात्रामें लगभग तीन सप्ताह तो तिब्बत में ही लग जाते हैं। तिब्बत में सारे समय बारह सहस्र फीट से अधिक ऊँचाई पर रहना होता है। ऊँचाई तथा और अधिक उत्तर की ओर होने के कारण शीत और भी अधिक है। और तीखी, चुभने वाली वायु का क्या कहना। मार्ग में पशुओं की मेंगनी के अतिरिक्त और कोई ईंधन नहीं मिलता। न कहीं कोई चट्टी है, न कोई होटल या टिकने का स्थान। भोजन सामग्री और अन्य आवश्यक वस्तुएं भी कहीं नहीं मिलतीं। इसके अतिरिक्त वहाँ के निवासियों के लिये भारत की बोलियां समझना और भारत वासियों को तिब्बती बोली समझना बहुत कठिन है।

२—ऊँची चढ़ाई की पतली वायु—सबसे अधिक कष्ट पहुँचाती है। रक्त चाप वाले तो वहाँ जा ही नहीं सकते। अन्य व्यक्ति भी अभ्यास न रहने के कारण १२ सहस्र फीट से अधिक ऊँचाई पर चढ़ने में बहुत कष्ट पाते हैं। यात्री को या तो दो चार दिन बारह सहस्र से अधिक ऊँचाई पर रहने का अभ्यास बना लेना चाहिये अथवा आक्सीजन मास्क नामक यन्त्र साथ ले जाना चाहिये। गैस पात्र सहित इस मास्क का भार केवल ५ सेरके लगभग होता है। कलकत्ते या बम्बई की

किसी वैज्ञानिक सामग्री बेचने वाली कम्पनी से लगभग १०० रुपये में मिल सकता है।

४—कैलाश जाने वाले मार्ग—

हिमालय के समस्त घाटों से तिब्बत जाने वाले मार्ग हैं। काश्मीर, लाउल, रिपती, कनौर, टेहरी, गढ़वाल, अलमोड़ा नैपाल आदि से कैलास-मानसरोवर-तीर्थ यात्री जाते हैं। किन्तु सरल मार्ग टेहरी, गढ़वाल और कुमाऊं होकर ही है।

५—तीन मुख्य मार्ग—

हिन्दुस्तान के उत्तर पश्चिमी तथा उत्तर-पूर्वी मार्गों के निवासियों को छोड़कर अन्य यात्री प्रायः निम्न तीन मार्गों से कैलाश-मानसरोवर की यात्रा करते हैं—

१—पूर्वोत्तर रेलवे के टनकपुर स्टेशन से मोटर द्वारा पिथौरागढ़ (अलमोड़ा) जाकर फिर वहाँ से पैदल यात्रा करते हुए लिपूलेख नामक घाटा पार करके मानसरोवर पहुँचाने वाला मार्ग।

२—उसी रेलवे के काठगोदाम स्टेशनसे मोटर द्वारा कपकोट (अलमोड़ा) जाकर फिर पैदल यात्रा करते हुए ऊँटा जयन्ती, तथा कुंगरी-विंगरी घाटों को पार करके मानसरोवर पहुँचाने वाला मार्ग।

३—उत्तर रेलवेके ऋषिकेश स्टेशनसे मोटर द्वारा जोशी मठ पहुँचकर वहाँ से पैदल मार्ग द्वारा नीती घाटी अथवा माणा घाटा होकर कैलाश पहुंचाने वाला मार्ग।

६—पासपोर्ट या आज्ञापत्र—

मानसरोवर-कैलाश के हिन्दुस्तानी यात्री को चाहे वह किसी भी घाटे को पार करके जाये, कहीं कोई पास, परमिट या

आज्ञापत्र नहीं लेना पड़ता। केवल इन द्वारों पर स्थित भारत-सरकार के चैक-पोस्ट पर सारा विवरण देना पड़ता है।

इन तीनों मार्गों में भारतीय सीमाके अन्तिम बाजारों तक पहुँचने में यात्री को कोई कठिनाई नहीं होती। उसे ठहरने के लिये स्थान और भोजनादि सामग्री सरलता पूर्वक मिलती रहती है। यहाँ भाषा और मार्ग दर्शन-सम्बन्धी कोई कठिनाई नहीं होती। जिस कुली या घोड़े को वह अपने सामान ढोने अथवा सवारी के लिये साथ ले जाता है, वही उसके मार्ग निर्देश को पर्याप्त है। जैसे पर्वत में एक ही मुख्य मार्ग होने से मार्ग भूलने का कोई भय भी नहीं रहता।

जोशीमठ के मार्ग को छोड़कर शेष दो मार्गों में कुली तथा सवारी पूरी यात्रा के लिये नहीं मिलते। वे निश्चित दूरी के लिये ही मिलते हैं। जिससे आगे के मार्ग के लिये सवारी और कुली का प्रबन्ध करना पड़ता है। न मिलने पर कभी-कभी एक-दो दिन तक रुकना भी पड़ता है।

७—तिब्बत में कुछ न मिलेगा—

तिब्बतमें सारी यात्रा में तम्बू में ही रहना पड़ेगा। यह तम्बू भी या तो अपने साथ ही लेजाना पड़ेगा, अथवा भारत की अंतिम मण्डी से किराये पर ले जाना होगा। इस प्रकार तिब्बत के शीत से बचने के लिये किरायेके भारी चुन्के (मोटे कम्बल) तथा भोजन बनाने के बर्तन भी उसी मण्डी से साथ ले चलने होंगे। वहाँ आटा—चावल, दाल, मसाला कुछ न मिलेगा। केवल कुछ नमक मिल सकता है। कहीं-कहीं दूध, मक्खन दही और मट्ठा मिल जाता है। पर सर्वत्र नहीं मिलता। अस्तु-अपनी यात्रा के दिनों का अनुमान लगाकर सारी भोजन सामग्री साथ ले चलनी चाहिये। तिब्बत के ऊंचे पठार की हल्की वायु में दाल

नहीं गलती। रोटी भी ईंधन की कमी के कारण कठिनता से बनती है। अस्तु यात्री प्रायः सत्तू अपने साथ ले चलते हैं। तिब्बत वासियों का तो यह मुख्य भोजन ही है। यूरोपियन् पर्यटक जो हिमालय शिखरों पर चढ़ते हैं, सत्तू पर निर्वाह करते हैं। आटा, चावल, आलू, चीनी, चाय डिब्बों में बन्द दूध-पाउडर, अचार, डिब्बों में बन्द साग चटनी, मुरब्बे आदि, मिट्टी या तेल, मसाले, मोमबत्ती, दियासलाई, औषधियां, धूपचश्मे, आदि समस्त उपयोगी और आवश्यक वस्तुएं अपने साथ लेचलनी चाहिए। तिब्बती क्षेत्र में कुछ भी न मिलेगा।

८—मार्ग व्यय—

कैलास—मानसरोवर की यात्रा में कम से कम डेढ़ मास का समय लग जाता है। यात्री कैलासकी कमसे कम एक परिक्रमा लगभग २७ मील, अवश्य करते हैं। कोई-कोई १०८ तक परिक्रमा करते हैं। मानसरोवर की परिक्रमा की जाती है। इन सब पर कई मास लग सकते हैं। पर साधारण यात्रा डेढ़ मासमें हो सकती है। इसमें व्यय की मुख्य मदें इस प्रकार हैं—

१—भोजन सामग्री ९५ दिन के लिये।

२—तम्बू का किराया।

३—चौगटे का किराया।

४—दो याक या घोड़ों का ४५ दिन का किराया।

५—मार्ग प्रदर्शक का ४५ दिन का वेतन।

यह सब मिलाकर एक सहस्र रुपया होता है। इसलिये साधारण स्थिति के व्यक्ति के लिये यह भार-वहन करना कठिन है। ५—७ व्यक्तियों की टोली सरलता से इस व्ययका भार उठा सकती है। और ५—७ व्यक्ति साथ रहने से चित्त प्रफुल्ल रहता है। दुःख-सुख में साथ रहता है।

पहले तिब्बत में भारतीय मुद्रा तो काम दे देती थी, पर भारतीय नोट नहीं चलते थे। इसलिये जो धन तिब्बत में व्यय करना हो, उसे नकद रुपये में ले जाना होता था। तिब्बतमें कोई विशेष व्यय होता ही नहीं क्योंकि वहाँ कुछ खरीदना नहीं होता। जिन घाटों से पूरी यात्रा के लिये सवारी और कुली नहीं मिलते, वहाँ तिब्बतमे भी धन खर्च करना होता है। अब तिब्बत में मुद्रा-विनिमय करना होता है।

६—सावधान—

१—मानसरोवर-कैलाशके यात्रियों की तिब्बत की सीमा पर पहुँचते ही कौम्युनिष्ट चीन के सैनिक तलाशी लेते हैं। वे पूजा-पाठ की पुस्तकों के अतिरिक्त और कोई भी पुस्तक, नक्शे, समाचार पत्र, दूरबीन, कैमरा, तथा बन्दूक, पिस्तौल जैसे अस्त्र-शस्त्र छीन लेते हैं। अस्तु यदि ऐसी वस्तुएं यात्री के पास हों तो उन्हें अन्तिम डाकखानेसे या तो अपने घर भेज देना चाहिये अथवा भारतीय चैक-पोष्ट की अन्तिम सीमा पर स्थित चौकी में छोड़ देना चाहिये।

२—ऊँची जोतों पर, जहाँ से हिम मिलना आरम्भ हो, वहाँ से लेकर तिब्बतके सारे मार्गमें तथा लौटते समय तक नित्य प्रात, साय, दोनों समय, मारे मुख पर, और हाथों पर, विशेषतः हथेली की पीठ पर वैसलिन भली प्रकार मल लेनी चाहिये। ऐसा न करने से हाथ फट जाते हैं और मुख विशेषकर नाक पर हिमदंश के घाव होजाने का भय रहता है।

३—जोते पार करते समय सूर्योदय से पहले ही जितना शीघ्र हो सके चल देना चाहिये। सूर्य की धूप तेज होने पर हिम पिघलने लगता है और उसमें पैर गड़ने लगता है। हिम पर धूप

की चमक आँखों को चकाचौंध लगती है और पीड़ा होती है। ऊँचे शिखरों पर इस चकाचौंध से कभी-कभी नेत्र अन्धे होजाते हैं। प्रसिद्ध फारसीसी पर्वतारोही मौरिस हरजौग के नेत्र अन्नपूर्णा शिखर पर इसी प्रकार अन्धे होगये थे। (हरजौग,अन्नपूर्णा)

४—तिब्बत में कुली नहीं मिलते। भार-वहन के लिये घोड़े-गदहों की अपेक्षा याक अधिक मिलते हैं। यह हिलता हुआ चलता है। बिगड़ जाने पर भागता भी पागल-सा है। सामग्री को फेंककर तोड़-फोड़ भी देता है। इस पर सवारी करने से शीत नहीं लगता। इसके बड़े-बड़े बालों से ढके शरीर से लगकर यात्री भी शीत से अकड़ता नहीं।

५—आक्सीजन मास्क—कैलाश मानसरोवर की यात्रा में यदि यात्री आक्सीजन मास्क साथ ले जायें तो वह पतली वायु और आक्सीजन की कमी से होने वाले श्वास कष्ट से बच जायेगा। गैस पात्र के साथ इस मास्क का भार लगभग ५ सेर होता है, और वैज्ञानिक सामग्री बेचने वाले कलकत्ते या बम्बई की कम्पनियों के यहाँ यात्रा के उपयुक्त मोड़कर रखने योग्य (फोल्डिंग) मास्क सौ रुपये से कम में ही मिल जाता है।

१०—लिपूलेख मार्ग—

इस मार्ग में १ जून से १० जून तक टनकपुर से यात्रा आरम्भ कर देनी चाहिये। यह मार्ग अन्य अन्य मार्गोंसे १५-२० दिन पहले खुल जाता है। १५ जून तक घाटा पार कर लेना चाहिये। बरसातमें मार्ग खराब हो जाता है। इसमें एक ही घाटा पार करना होता है। मार्ग छोटा भी है। पर इस लिपूलेख-मार्ग में चढ़ाई-उतराई अधिक है। मार्ग में कोई अन्य तीर्थ भी नहीं पड़ता। प्रायः यात्री पड़ावों पर ठहरते हैं, जिन्हें संख्या द्वारा सूचित किया गया है। पड़ावों से आगे जहाँ दुकानादिका प्रबन्ध

है और ठहरने की व्यवस्था भी है उन्हें चट्टी से व्यक्त किया गया है और संख्या नहीं दी गई है। यात्री यदि नम्बर वाले पड़ाव पर न ठहर कर कुछ अधिक चलना चाहें तो उन स्थानों पर भी ठहर सकता है। चट्टी से यह न समझना चाहिये कि वहाँ वही सुविधा होगी जो बदरीनाथ आदि चारों धामों के यात्रा-मार्ग की चट्टियों पर मिलती हैं। यहाँ की चट्टी दुकान या पड़ाव मात्र है-

पड़ावसंख्या	चट्टी	
१—	—	रेलवे स्टेशन टनकपुर, बाजार और डाक-बङ्गला।
२—	—	पिथौरागढ़-टनकपुरसे मोटर बस द्वारा ९५ मील, डाक बङ्गला, और बाजार। अन्य स्टेशनों काठगोदाम, रामनगर, मुरादाबाद आदि से भी यहाँ मोटर द्वारा पहुँचते हैं।
३—	—	कनाली छीना-१४ मील, डाक बङ्गला।
	चट्टी	सात-१ मील।
	चट्टी	मलान-२ मील।
४—	—	अस्कोट, ९ मील, डाक बङ्गला, धर्मशाला।
	चट्टी	जौलजेवी-५ मील, काली गङ्गा, गौरीगङ्गा का सङ्गम, पवित्र तीर्थ, बाजार।
५—	—	बलवाकोट- ६½ मील, डाकबङ्गला।
	चट्टी	कालसा-५ मील।
६—	—	धारचूला-१½ मील, डाक बङ्गला, और धर्मशाला। यहाँ कुली और सवारी बदलनी पड़ती है।
७—	—	खेला (५५०० फीट) १० मील। अथवा नीचे के मार्ग से खेला ६ मील।

५—दरचिन ६ मील।

११—जोहरर जयन्ती मार्ग—

इस माग में घाटे सबसे देर में खुलते हैं। अस्तु २५ जून से १५ अगस्त तक किसी भी समय काठगोदाम से यात्रा आरंभ की जा सकती है। २५ जून से पहले इस मार्ग पर यात्रा करनेसे मिलम पहुँचकर घाटा खुलने की प्रतीक्षा करनी पड़ती है।

यह मार्ग अपेक्षाकृत सबसे लम्बा है। इसमें समय भी कुछ अधिक लगता है। और एक साथ तीन घाटे पार करने पड़ते हैं। जो अन्य मार्गों के घाटों की अपेक्षा अधिक ऊँचे हैं। किन्तु इन अन्तिम घाटोंके अतिरिक्त पूरा मार्ग शेष मार्गोंसे अपेक्षाकृत उत्तम है। चढ़ाई-उतराई कम है। मार्ग के दृश्य सुन्दर हैं। इस मार्गके आस-पास तीर्थ भी हैं, और इस मार्ग से कैलास की परिक्रमा

पड़ाव संख्या	चट्टी
	पड़ती है। यहाँ से १६ मील दूर खोचरनाथ तीर्थ है। जहाँ राम-लक्ष्मण जानकी की भव्य मूर्तियाँ बतलाई जाती हैं, जो वास्तवमें बौद्ध-मूर्तियां हैं। यात्री प्रातः घोड़ेसे जाकर शाम तक लौट आते हैं।
१९-	— माचा-१२ मील मैदान। अथवा दूसरे मार्ग से गुरलाफुग्न (गौरी-उड्यार) १२ मील।
२०-	— राक्षसताल-१२ मील।
२१-	— मानसरोवरके तटपर गुसुल-६ मील, मैदान।
२२-	— मानसरोवरके तट पर ज्युगुम्पा-८ मील, मैदान।
२३-	— बरखा,-१० मील गाँव।
२४-	— बागट्टू ७ मील, मैदान, मंडी।
२५-	— दरचिन (कैलास) ४ मील, मैदान, मंडी। यहाँ से कैलास-परिक्रमा आरम्भ होती है। यहाँ सवारी बदलनी पड़ती है।

कैलाश परिक्रमा

१—दरचिन से लंडीफू (नन्दी गुफा)-४ मील मार्गसे। परन्तु मार्ग से १ मील और सीधी चढ़ाई चढ़कर उतर आना पड़ता है।

२—डेरफू-८ मील। यहाँ से सिन्धु नदी का उद्गम १ मील ऊपर है। (कल्याण तीर्थांक, ३७)

३—गौरीकुण्ड-(१८००० फीट से ऊपर) ३ मील कड़ी चढ़ाई। हिम पर चलना होता है।

४—जडलफू-११ मील, २ मील कड़ी उतराई।

प्रकार है—गोमचीन–८ मील–चुगंड १२ मील, जुटम १० मील, तीर्थपुरी १२ मील ।

१६— — शिलचक–२० मील, मैदान, मार्ग में यत्र–तत्र जलकी सुविधा होने से ठहर सकते हैं ।

१७— — तंडीफूय (नन्दी गुफा) २० मील, बौद्ध मन्दिर ।

१८— — डेरफू–८ मील, बौद्धमन्दिर ।

१९— — गौरीकुण्ड–३ मील, कड़ी चढ़ाई ।

२०— — जंडलफू–११ मील, (२ मील उतराई) बौद्ध मन्दिर ।

चट्टी कालमुनि २ मील ।
चट्टी तिक्सैन (मुनस्यारी)—४ मील यहां सवारी बदलती है ।
४— — राती (मुनस्यारी)-३ मील, डाकबङ्गला ।
६— — बोगड्यार-(८६·० फीट) १·मील, डाकबङ्गला, मैदान ।
७— — रीलकोट ।- +७ मील. धर्मशाला, यहां से १० मील दूर जाकर नन्दादेवी का दृश्य दिखाई देता है । यात्री जाकर उसी दिन लौट आते हैं ।
८— — मिलम—(११२३२ फीट) धर्मशाला, भारतीय सीमाका अन्तिम गांव,बाजार तथा पोस्टआफिस, (यहींसे सब सामान लेजानाहोगा)यहां सवारी और कुली बदलते हैं ।
९— — पुण्ड-६ मील,धर्मशाला, मैदान, (चढ़ाई)
१०— — छिरचुन-२० मील, मैदान, (ऊँटा धुरा) जयन्ती तथा कुङ्गरी-बिगरीये १८०० फीट ऊँचे घाटेपार करने पड़ते हैं । तीनों में ही कड़ी चढ़ाई-उतराई है । यहां हिम पर चलना पड़ता है ।
११— — ढाजंड०-१० मील मैदान ।
१२— — नानीर्यगा-७ मील, मैदान ।
१३— — सिङ्ग्लुङ-२४ मील, मैदान । इस में मार्गों में १२ मील तक पानी नहीं है । खिङ्गलुङ पहुँचकर गरमपानीका सोता मिलता है । बौद्ध मन्दिर है ।
१४— — गुरच्याङ०-१० मील, बौद्ध मन्दिर ।
१५— — तीर्थपुरी-६ मील, बौद्ध मन्दिर, गरम पानी का सोता । ढाजङ० से तीर्थपुरीको दूसरा मार्ग इस

प्रकार है—गोमचीन-८ मील—चुगइ १२ मील, जुटम १० मील, तीर्थपुरी १२ मील ।

१६— — शिलचक-२० मील, मैदान, मार्ग में यत्र-तत्र जलकी सुविधा होने से ठहर सकते हैं ।

१७— — तंडीफूथ (नन्दी गुफा) २० मील, बौद्ध मन्दिर ।

१८— — डेरफू-८ मील, बौद्धमन्दिर ।

१९— — गौरीकुण्ड-३ मील, कड़ी चढ़ाई ।

२०— — जंडलफू-११ मील, (२ मील उतराई) बौद्ध मन्दिर ।

२१— — बांगटू-८ मील, मैदान, मंडी ।

•२— — ज्यू गुफा-मानसरोवर तट, १२ मील ।

२३— — बरखा-१२ मील, गांव ।

२४— — ज्ञानिमा मूडी या डंचू—२२ मील (यहां सवारी बदलती है) लौटते समय दाजाङ० छिरचन होकर जाते हैं ।

१२-नीत-माणा घाटी-(बदरीनाथके निकटसे) होकर जाने वाले मार्ग—

यह मार्ग भी जून के मध्य तक खुलता है । अस्तु जून के अन्तिम सप्ताह से लेकर अगस्त के मध्य तक इस मार्ग से यात्रा हो सकती है । सभवतः ये मार्ग सबसे अधिक प्राचीन हैं । महाभारतमें पांडवोंका बदरिकाश्रम होकर पहुँचानेका वर्णन है । अस्तु बदरीनाथ से आगे माणा होकर कैलाश जाने का मार्ग २५०० वर्ष से अधिक पुराना है । इस मार्गमें माणा गांव में पथमार्गोंके देवता मणिभद्र यक्षका स्थान होने से भी यह मार्ग अति प्राचीन माना जासकता है । कालिदास के समय में भी यह मार्ग पूर्ण प्रचलित

था। मेघदूतमें मेघको यक्षने कनखल, बदरिकाश्रम चरण पादुका तीर्थ होकर कैलास-अलका भेजा है। पुराणों का क्रौंचद्वार अवश्य माणाघाटा है। नीती मार्ग पुराणों का शौर्य द्वार है। पाणिनिको भी इन दोनों घाटों का पता था।

१३—मार्ग के तीर्थ—

इस मार्ग से यात्रा करने में दूसरा बड़ा लाभ यह है कि यात्रीको मार्गमें हरिद्वार, ऋषिकेश, देवप्रयाग, केदारनाथ, बदरीनाथ आदि तीर्थों की यात्राका अवसर भी मिल जाता है। यदि यात्री मई में यात्रा आरम्भ कर दे, तो मई मास तथा जून के मध्य तक यमुनोत्तरी, गंगोत्तरी, केदारनाथ, बदरीनाथकी यात्रा करके घाटा खुलने के समय माणा नीती पहुँच सकता है।

इस मार्ग में सबसे कम पैदल चलना पड़ता है। व्यय भी कम लगता है और समय की बचत रहती है। जोशीमठ से आगे घाटों तक सड़क बन गई है। फिर भी मार्ग में कठिनाई है ही। यात्री को मोटर छोड़नेके तीन-दिन पश्चात् ही हिम शिखरों पर, चढ़नापड़ताहै। और सहसा कम ऊँचे स्थानोंसे अधिकऊँचे स्थानों पर पहुँच जानेके कारण यात्री को पतली वायु और आक्सीजन की कमी में रहने का अभ्यास पूरा नहीं होपाता। इसलिये अधिक कष्ट प्रतीत होताहै। नीती या माणामें तम्बू, भोजन सामग्री आदि वस्तुएं नहीं मिलती हैं, ये जोशीमठ से लेजानी पड़ती हैं। तम्बू जोशीमठ में भी कठिनाई से मिलता है। कम्बल आदि किराए पर मिल सकते हैं किन्तु तब, जब उसी मार्ग से लौटना हो।

१४—नीती घाटी होकर कैलाश मार्ग—

१—ऋषिकेश, रेलवे स्टेशन, धर्मशाला, बाजार।
२—मोटर द्वारा जोशीमठ, १४४ मील, बाजार।
३—तपोवन—६ मील, धर्मशाला, ओवरसियर, क्वार्टर।

४—मुराईटोटा—७ मील, ओवरसियर, क्वार्टर।

५—जुम्मा—११ मील, यहांसे अत्यन्त सुन्दर घाटी आरम्भ होती है। ओवरसियर क्वार्टर।

७—वाम्पा—७ मील, ओवरसियर क्वार्टर।

८—नीती—६ मील, भारतीय सीमा का अन्तिम ग्राम। यहां से कुली-सवारी का प्रबन्ध करना होगा।

९—होती घाटी—५ मील कड़ी वर्फीली चढ़ाई-उतराई।

१०—होती—६ मील, चीनी सेना की चौकी। भारत-तिब्बती-सीमा।

यहां से दो मार्ग हैं:—

१—होती से शिवचिलम्-खिङ०लुङ० होकर तीर्थपुरी १६ मील। दूसरा मार्ग नीचे दिया जाता है —

११—ज्यूताल—११ मील।

१२—भ्यूंगुल—११ मील।

१३—अलङ०तारा—११ मील।

१४—गौजामरू—८ मील।

१५—देगी—११ मील (यहां सवारी बदलती है)

१६—गुरङाम—१० मील।

१७—तीर्थपुरी—६ मील, गरम पानी का सोता।

यहांसे आगे का मार्ग, जो मार्ग संख्या २ (जोहार मार्ग) में पड़ाव संख्या १५ से २३ तक बताया गया है, उसके पश्चात् उसी मार्गसे लौटनेकेलिए संख्या २३ वाले पड़ाव बरखासे ८ मील दरचिन आना पड़ता है। वहां से १८ मील शिलचक तथा आगे २० मील पर तीर्थपुरी है। दरचिन से तीर्थपुरी तक ३८ मील केवल मैदान है। जिसमें कहीं भी जलकी सुविधा देख कर ठहर सकते हैं। (कल्याण तीर्थांक, ३५-३६)

१५–मानसरोवर—

तिब्बत के पठार में मानसरोवर और राक्षसताल नामक ो सरोवर हैं। राक्षसताल विस्तार में बहुत बड़ा है। वह गोल ा चौकोर नहीं है। उसकी कई भुजाएं मीलों दूर तक टेढी मेढ़ी ोकर पर्वतों में चली गई हैं। कहा जाता है कि यहां राक्षसराज ावण ने शिवजी की आराधना की थी। इसी के पास प्रसिद्ध ानसरोवर है। उसका जल अत्यन्त स्वच्छ और अद्भुत नीलाभ ै। उसका आकार लगभग गोल अंडाकार है। उसका बाहिरी घेरा लगभग ·२ मील का बताया जाता है। मानसरोवर ५१ शक्ति ीठोंमें से एक पीठ माना जाता है। मानसरोवरका जल सामान्य शीतल है। उसमें मजेमेंस्नान कियाजासकता है। उसके तटपर रङ्ग बिरंगे पत्थर और कभी–कभी स्फाटिक के भी छोटे टुकड़े पाए जाते हैं। (कल्याण तीर्थां ६, ४०)

१६–कैलास—

मानसरोवर से कैलास लगभग २० मील दूर है। इसके दर्शन मानसरोवर पहुँचने से पहले होने लगते हैं। जोहार मार्ग में–कुङरी–बिङरी शिखर से ही यदि आकाश स्वच्छ हो तो कैलास के दर्शन हो जाते हैं। तिब्बती लोगों की कैलास–के प्रति अपार श्रद्धा है। अनेक तिब्बती यात्री सारे कैलास की परिक्रमा दण्डवत् प्रणिपात् करते हुए करते हैं।

कैलाश के दर्शन करते ही यह स्पष्ट हृदय में आजाती है, कि यह असामान्य पर्वत है। देखे हुए समस्त हिमशिखरोंसे सर्वथा भिन्न और दिव्य।

पूरे कैलाश की आकृति एक विराट शिवलिंग जैसी है। ...ो पर्वतों से बने हुए एक षोडशदल–कमल के मध्य रखा है। ये

कमलाकार शृङ्ग वाले पर्वत भी इसप्रकार हैं कि ये उस शिवलिंग के लिये अर्घा बने जान पड़ते हैं। उनके चौदह शृङ्ग तो गिने जा सकते हैं, किन्तु सन्मुख के दो शृङ्ग झुककर लम्ब होगये हैं। और उन्हें ध्यान देने पर ही लक्षित किया जा सकता है। उनका यह भुका हुआ भाग ऐसा होगया है जैसे अर्घेका आगेका लम्ब भाग इसी भागसे कैलाशका जल गौरीकुण्डमें गिरताहै। शिवलिंग कार कैलास पर्वत आस-पासके समस्त शिखरोंसे ऊँचाहै। यह कसौटी के ठोस काले पत्थरका है। और ऊपरसे नीचे तक सदा दुग्धोजल हिमसे ढका रहता है। किन्तु उससे लगेहुए वे पर्वत जिनके शिखर कमलाकार होने हैं कच्चे लाल मटमैले पत्थर के हैं। आस-पास के सभी पर्वत इसी प्रकार के कच्चे पत्थरों के हैं। कैलाश अकेला ही वहा ठोस काले पत्थर का शिखर है। कच्चे पत्थर का होने के कारण कमलाकार शिखरों के शिखर गिरते रहते हैं। एक ओर की चारपखड़ियों जैसे शिखर इतने गिरगएहैं कि अब उनके शिखरों के भाग कदाचित कुछ वर्षों में बराबर होजाएं।

एक बात और ध्यान देने योग्य है कि कैलाश-शिखर के चारों कोनों मे ऐसी मन्दिराकृति प्राकृतिक रूप से बनी है। जैसी बहुतमे मन्दिरों के शिखरों पर चारों ओर बनी होती है।

कैलाशकी परिक्रमा ३०मीलहै। जिसे यात्री प्रायः ३ दिनों मे पूरा करते हैं। यह परिक्रमा कैलाशके चारों ओरके कमलाकार शिखरोंके साथ होती है। कैलाश शिखर अस्पृश्य है। उसका स्पर्श यात्रा मार्ग से लगभग डेढ मील की सीधी चढ़ाई पार करके ही कियाजासकताहै। और यह चढ़ाई पर्वतारोहणकी विशिष्ट तैयारी केबिना शक्यनहींहै। कैलाश शिखरकी ऊँचाई समुद्रतटसे १८००० फीट कही जाती है।

कैलास के दर्शन एव परिक्रमा करने पर जो अद्भुत शांति

एवं पवित्रता का अनुभव होता है, वह तो स्वयं अनुभव की वस्तु है। (कल्याण, तीर्थांक, ४०)

१७–कैलास-परिक्रमा हूणिया-विधि—

धर्माचारी हूणिया लोग कैलाश मानसरोवर की ३ अथवा १३ परिक्रमा करते हैं। अधिकश्रद्धालु,हूणिया इस पवित्र परिक्रमा को साष्टांग-दण्डवत्-प्रणामकी विधि से पूरा करते हैं। इस विधि से मानसरोवर की परिक्रमा पर २८ दिन और कैलाशकी परिक्रमा पर १५ दिन लगते हैं। कई हूणिया लोग कैलाशकी परिक्रमा एक दिन में समाप्त करदेते हैं। ऐसी परिक्रमा निङ०कोर कहलातीहै। १५००० फीट की ऊँचाई पर तथा इतने शीतल और पतली वायु वाले जलवायु में एक दिन में ३२ मील चलना बड़ा कठिन कार्य है। जो धनी या रुग्ण हूणिग स्वयं कैलाश और मानसरोवर की परिक्रमा नहीं कर सकते वे कुछ रुपए और भोजन देकर निर्धन व्यक्तियों और मजूरों द्वारा इस यात्राको पूरी कर जाते हैं। धनी हूणिया अपने स्वर्गवासी संबंधियोंकी सद्गति के लिये भी परिक्रमा करवाते हैं। जिनके लिये वे ३ से लेकर ६ रुपए तक तथा एक भेड़ दिया करते हैं। ऐसा कहा जाता है कि कैलाश की एक परिक्रमा एक जन्म के और दस परिक्रमा एक कल्प के पाप नष्ट देती है। १०८ परिक्रमा करनें पर तो इसी जीवनमें निर्वाण प्राप्त हो जाता है।

१९४२-४४ में कर्नाटकके कैलास-शरण नामक एक लिंगायतने एक ही यात्रा में कलाश की १०० तथा मानसरोवर की १२ परिक्रमाकीथीं। १५००० फीटकीऊँचाईपर निरन्तर ३२००मील की कैलाश परिक्रमा और १५००० फीटकी ऊँचाई पर ६४८ मील की मानसरोवर-परिक्रमा कुल मिलाकर ४००० मील की सवारी

पैदल यात्रा करना किसी बिरले ही भाग्यवान और भगवत-कृपा प्राप्त व्यक्ति के लिए ही सम्भव है। हुणिया लोग जो कैलाश की १०० परिक्रमा करते हैं कई वर्षों में पूरी करते हैं। (प्रणवानन्द, एक्सप्लोरेशन, इन तिबेट पृ० १६२)

कैलाश-परिक्रमा में पांच गोम्बा भी आते हैं। परिक्रमा करते स य उनमें भी दर्शन करना होता है। ये पांच गोम्बा ये हैं-१-पश्चिम में न्यानरो या चुकु-गोम्बा, -उत्तर में दिर-फुक गोम्बा, ३-पूर्व में जुथुल-फुक गोम्बा, '-दक्षिण में ङ-ङल्ता गोम्बा और ५-सिलुङल्स गोम्बा।

परिक्रमा में चार शर्पंज अर्थात बुद्ध के चरण-चिह्न चार छकता या शृङ्खलाएं तथा चार छग-छल गङ० या चङछ्ज-ग्ङ० हैं। कैलाश के पश्चिमी पार्श्व पर शेरशाङ०में एक विशाल ध्वजा है, जो तरबोचे कहलाता है। प्रति वर्ष बुद्ध पूर्णिमा के दिन इस अति ऊँचे ध्वज को बड़े प्रयत्न से खड़ा किया जाता है।

वैशाख शुक्ला चतुर्दशी और पूर्णमासी को बुद्ध-पूर्णिमा के दिन शेरशाङ० में मेला लगता है। जिसमें हूणदेश के विभिन्न भागोंसे, मुख्यतः पुरङ० घाटीसे ६० से लेकर १००० तक यात्री पहुँचते हैं। \

१८-थुक-जिङ०-ष्टू (गौरी-कुण्ड)—

कैलाश-शिखरके पूर्वकी ओर थुकी-जिङ ष्टू नामक सरोवर है जिसे भारतीय गौरी-कुण्ड कहते हैं। यह ३ मील लम्बा और ३ मील चौड़ा है और वर्ष भर हिम से ढका रहता है। इसमें दक्षिणकी ओरके शिखरोंसे हिमानी टूट-टूटकर आती रहती हैं।

१९-सेदुङ०-चुकसुम—

कैलाश-शिखर के दक्षिणी पार्श्व पर उसके पाद-प्रदेश में गोल-मटोल पाषाण कौंगलोमरेटकी सीधी खड़ी दीवार पर गोल

कर १९ चौरतन बनाए गए हैं सो सेरदुड०—चुकसुम कहलाते हैं। वे तीन पुञ्जों में विभक्त हैं। जिनमें क्रमशः ८, ६ वीर और २ चौरतेन हैं।

कैलाश—शिखरके निकट जानेपर चारों ओरकी दृश्यावली अति अद्भुत और प्रभावोत्पादक मिलती है। दक्षिण की ओर कैलाश—शिखरके पाद—प्रदेशमें कुछ दूरी तक नङ्गी चट्टानें बाहर निकली हैं। कैलाश—शिखर से बार—बार अति विशाल मात्रा में बिखरा हिम उतरकर सेरदुड०—चुकसम के सम्मुख उपरोक्तकङ्ग गो-मरेठके ऊपर सीढ़ी—जैसा ढेर लगा देता है। मध्यान्ह में १०बजे के पश्चात् हिमकी लम्बी पतली शिलाएं कैलाश शिखरके पार्श्वों से टूट—टूटकर भीषण गति से और घोर—घोष करती हुई चौरतेन मालाके सम्मुख गिरने लगती हैं। दूरसे देखनेपर कैलाश—शिखर की सीधी खड़ी दीवारों में खुदे ये चौरतेन अति सुन्दर दिखाई देते हैं।

सेरदुड०—चुकसुमसेबरखाकामैदानऔर राक्सतालतथाभारतकी सीमातक के अगणित पर्वत—शिखरोंकी पंक्तियोंका अति आकर्षक दृश्य दिखाई देताहै। सेरदुड०—चुकसुमसे पूर्व की ओर दो झीलें मिलतीहैं, त्सो—कपाल या त्सो—कपाली,तथा त्सो—कयल या त्सो—कयाली। त्सो कपाल का जल जङ० (हुणिया मदिरा) जैसा पतला दिखाई देताहै और त्सो—कयलका जल हिमसा श्वेत दिखाई देता है।

२०—राजहंस हनुमानजी और नन्दी—

गङ्गा—छु या बरखा से कैलाश—शिखर की दक्षिणी ढाल पर एक अति विशाल हंस बैठा दिखाई देता है, जिसकी गरदन लम्बी बाहर निकली शिला से बनी है। तिजुङ के दक्षिण की ओर एक अति विशाल शिला बैठे बन्दर के आकार की है। जो

काङ०री-करछक में और त्यू-जुनजङ० या हनुमानजी बतलाई गई है। यही पुराणोंके हनुमानजी हैं। बड़ी दूरस भी यह प्रतिमा स्पष्ट दिखाई देती है।.

कैलाश के दक्षिणी पाद-प्रदेश में एक पर्वत नेतेन-येलक जुङ० कहलाता है। यह एक अति विशाल नन्दी-वृषभके आकार का है जो प्राकृतिक शिवमन्दिर कैलाशके द्वार पर बैठा है।

देवताओं के सिंहासन कैलाश पर्वत की महान् अद्भुत शोभा है। यह शिखर चैनरेमिग और जगनार्दोर्जे शिखरोंके बीच गगन-चुम्बन कररहा है। कैलाशके पूर्वी पाद-प्रदेशम एक छत्राकार अति विशाल हिमानी है। दक्षिण-पूर्वी पाद-प्रदेशमे चरोक फुरदोद-लाके पास अति विशाल चरण पादुकाके आकारकी एक अति विशाल हिमानी है। यहीं दक्षिणी ढाल पर विशाल हस शिव-पार्वती को पीठ पर उठा कैलाश का दृश्य दिखा रहा को प्रस्तुत है। नेतेन-येलक-जुङ० पर्वतपर विशाल नन्दी बैठाहै। और तिजुङ० में हनुमानजी बैठे हैं।

२१-हिन्दुओं की शिवलिंग पूजा--

हिन्दुओं की शिवलिंग पूजा कैलाश के दृश्यसे लीगई है। अष्टदल के मध्य शिवलिंग, उस पर हिम के समान श्वेत दधि,घृत या दुग्ध का अभिषेक, उसके पास कपाल में काला मादक द्रव्य और दूसरी ओर कपाल मे दुग्ध, एक ओर अति विशाल चरण पादुका, दूसरी ओर राजहस, एक ओर विशाल नन्दी और दूसरी ओर हनुमानजी, इन सबकी कल्पना हिन्दुओं ने सब कैलाश से ली है। क्षण-क्षण बदल कर ताडव-नृत्य तथा शिव-मस्तक पर अर्धचन्द्र की कल्पना भी कैलाश से ग्रहण की है, हिन्दुओंने कम से कम तीन सहस्र पूर्व शिवलिंग, कैलाश आदि की उपरोक्त कल्पना करली थी, जैसा महाभारत में कैलाश वर्णनमे स्पष्ट है।

२२–त्सो–मफम् या त्सो–मवड०–(मानसरोवर)–

३०½ उत्तरी अक्षांश और ८१½ पूर्वी देशान्तर पर संसार का सबसे प्रसिद्ध सरोवर मानसरोवर है। मानसरोवर समुद्र की सतहसे १४९५० फीटपर स्थित है। इसकी गहराई ३०० फीट है। इसका घेरा लगभग ५४ मील है और क्षेत्रफल लगभग २०० वर्ग मील है। मानसरोवर से २ से लेकर ५ मीलकी दूरी पर पश्चिम की ओर राक्षस ताल है।

मानसरोवर संसार की समस्त झीलों से सबसे अधिकाधिक पवित्र, सबसे अधिक मनमोहक, सबसे अधिक स्फूर्ति दायक और सबसे अधिक प्रसिद्ध है। सबसे पहली झील जिसका उल्लेख भौगोलिक ग्रन्थोंमें मिलता है, मानसरोवर है। मानसरोवर हिन्दू पुराण–शास्त्रों में अति प्रसिद्ध है। सभ्य संसार ने जबसे जैनेवा–झील के सौन्दर्य को समझना आरम्भ किया इससे अनेक शताब्दी पहले मानसरोवर ख्याति प्राप्तकरचुकाथा। ऐतिहासिक युग आरंभ होने से पहले ही मानसरोवर पवित्रता प्राप्त कर चुका था। और पिछले चार सहस्र वर्षों से यह उसी ख्याति को अटल बनाए आ रहा है। (बरार्ड ऐंड हैडन, ए स्केच आव दि ज्यौग्रैफी ऐंड ज्यौलौजी आव दि हिमालय मौनटेनस ऐण्ड तिब्बत, भाग ३, पृ० २२८ ।

स्वामी प्रणवानन्द लिखते हैं—मानसरोवरमें गंभीर शांति और महानता है। दो अति विशाल और समान महानता वाले चाँदी–जैसे उज्वल पर्वतों–उत्तरमें कैलाश और दक्षिणमें गुरला मानधाता के बीच मानसरोवर स्वच्छ नीले–हरे नीलम या शुद्ध पुखराज के समान दमकता है। ऐसीही अद्भुत छटा वह पश्चिम को ओर राक्षसताल और पूर्व की–ओर अन्य पहाड़ियों के मध्य होने के कारण धारण करता है। इसके लहराते वक्षस्थलपर अस्त

होते सूर्यकी किरणें प्रतिभासित होती हैं और आकाश के अतिरंजित रङ्गों की प्रति छाया पड़ती है। अथवा उसकी शान्त जल सतहपर उदय होते सूर्य या चन्द्रमा की पाटल या रजत किरणें जगमगाती हैं। जिससे इस अति अद्भुत मोहक सरोवर में और भी अधिक मोहिनी उत्पन्न हो जाती है। (प्रणवानन्द, एक्सप्लोरेशन इन तिब्बेट, पृ० ८)

२३—यदि तीर्थ यात्रियों ने अपना यात्रा-वर्णन लिखा होताः—

सहस्त्राब्दियों से भारत के तीर्थयात्री हिमालय की उच्च शृङ्खलाओं, दुर्गम घाटों और भीषण तूफानों की चिन्ता न करके मानसरोवर के दर्शन करते हैं। इस सरोवर की असीम आकर्षण शक्ति सारे भारत के कोने-कोनेसे हिन्दुओं को और दक्षिण पूर्वी एशिया के अनेक देशों से बौद्धों को अपने चरणों में खींच लाती रही है। यद्यपि यह परम्परा कमसे कम तीन-चार सहस्त्राब्दियों से चली आरही है, पर महाभारत और कुछ पुराणों को छोड़ कर अन्यत्र मानसरोवर यात्रा का विस्तृत वर्णन नहीं मिलता। स्वेन हेडिन लिखता है-निरन्तर युग-युग में प्रत्येक वर्ष तीर्थ-यात्रियों ने अपनी आत्मशुद्धि के लिए तथा ब्रह्म और शिवके लोकोंको प्राप्त करने की आशा से इस सरोवर की परिक्रमा की है। पर जब वे बनारस में चिता पर चढ़कर परलोक के प्रकाशहीन मार्गपर आगे बढ़े तो अपने अनुभवों को भी अपने ही साथ लेगये और उनकी ज्ञात बातें उसी प्रकार विस्मृतिके समुद्र में लुप्त होगईं जिस प्रकार उनकी अस्थियां गंगाजी की लहरों से बङ्गाल की खाड़ी में पहुँच कर नीले सागर में लुप्त होगईं। अहा! यदि हमारे सन्मुख उन सब घटनाओं और दृश्यों का वर्णन आ सकता जिन्हें वे निरन्तर एक वर्षके पश्चात् दूसरे वर्ष देखते रहे हैं। अपने पवित्र चरणोंके

निरन्तर चलते रहने से उन्होंने मानसरोवर के तट पर परिक्र मार्ग बना डाला है। सम्भव यहाँ तक भिक्त भक्तों ने इस सरो के तट पर परिक्र ा-नृत्य किया, जिसका उद्देश्य उन्हें कलि स्वर्ग में पहुंचाना था। अ ा। यदि प्रति वर्ष कमसे कम एक भ भी अपने देखे-सुने का वर्णन मन्दिर में किसी शिला पर लि जाता तो कितना लाभ होता?'

यदि हम इस जान लेते कि युग-युगसे इन पर्यटकोंने अ नेत्रा से क्या-क्या देखा था, यदि हम प्राचीनतम तीर्थयात्री लेकर आज तक के तीर्थयात्रियों द्वारा देखे गए दृश्यका पता ल जाता तो हम ऋतुओं के अनुसार मानसरोवर के जल की मा में होने वाले चढ़ाव—उतारका चित्र बना सकते थे। हम यह दे सकते कि ग्रीष्मकालीन वर्षा के पश्चात् इस सरोवर में जल सतह कितनी ऊँची होजाती है और वर्षा के सूखे से कितनी गि जाती है। पर्वतों पर मानसून के प्रभाव का पता हम मा सरो से ज्ञात करलेते और समझ लेते कि ब्रह्मा का यह म ि्दर जीवि है और उसकी नाड़ी प्रकृतिके अज्ञात नियमोंके अनुसार धड़क है। किन्तु दुर्भाग्य से यात्रियों ने अपने रहस्य को गुप्त ही र आर इसलिये हमारे लिये केवल एकही चाराहै कि थोड़से पर्यट ने जो—कुछ वर्णन लिख छोड़ा है, उसी के आधार पर अध्ययन करें। स्वनहेडिन, ट्रान—हिमालय,भाग ३, पृ० २०६—७)

२४—मानसरोवर की परिक्रमा—

मानसरोवर का घेरा ५४ मीलके लगभग है, यद्यपि कि किसी पर्यटक ने ८० मील तक बतलाया है, जो भ्रांतिपूर्ण है। कैलाश के समान मानसरोवर की भी परिक्रमा की जाती है। स्वामी प्रणवानन्द ने मानसरोवर की २५ परिक्रमाओं से कुछ च

दिनमें, कुछ तीन दिनमें और एक दो दिन में पूरी की। इसलिये ५४ मील का अनुमान सत्य से दूर नहीं है।

मानसरोवर, मानव—कपाल के समान दक्षिण की अपेक्षा उत्तर की ओर अधिक चौड़ा है। सरोवर के पूर्वी,दक्षिणी,पश्चिमी और उत्तरीतट क्रमशः १६,१०,१३ और १५ मील हैं। मानसरोवर की चौड़ाई १४ से लेकर १५½ मील तक है। मानसरोवर के तट पर परिक्रमामें ८ गोम्बा हैं। परिक्रमा करते समय उन गोम्बाओं तक पहुँचते रहनेसे परिक्रमा ६४ मील लम्बी होजातीहै। हूणिया लोग मानसरोवर की परिक्रमा, जो कोरा कहलाता है—शीतकाल में करते हैं। क्योंकि उन दिनों मानसरोवर तथा उस में मिलने वाले और परिक्रमा—मार्ग में पड़ने वाले सारे नाले जम जाते हैं और मानसरोवरके तट के पास से होकर चलने में बाधा नहीं रहती। जो शीतकालमें नहीं पहुँच सकते वे शीतकाल के आरम्भ अथवा वसंत में परिक्रमा करते हैं। उस समय छोटे नाले सूखे रहते हैं, और बड़े नालोंमें जल कम होनेके कारण उन्हें सरलता से पार किया जा सकता है। ग्रीष्मकाल या बरसात में सारी परिक्रमाके तट पर चलना असंभव हो जाता है। फिर हिम पिघलने से मानसरोवर में मिलने वाली सारी नदियोंमें बाढ़ आ जाती है, और प्रायः मध्यान्ह के पश्चात् उन्हें पार करना असंभव होजाता है जिससे स्थान—स्थान पर रात्रि को रुक कर अगले दिन प्रायः नदिया पार करनी पड़ती हैं।

२५—मानसरोवर में नौका विहार—

शेरिंग ने लिखा है कि मानसरोवर में सबसे प्रथम नौका विहार १८५५ या १८६० में बरेलीके कमिश्नर डमंडने किया था। स्वामी प्रणवानन्द ने पूछ-ताछ के आधार पर लिखा है कि शेरिंग

के इस कथन की पुष्टि नहीं होती। पर वेबर ने इसकी पुष्टि कीहै और लिखा है कि जब हम मानसरोवर पहुँचे तो हूणियां लोगोंने हमसे रथड की नाव की गाथा कही। (शेरिंग, वेस्टर्न तिबेट एँड ब्रिटिश बोर्डर लैंड, (प्रणवानन्द, एक्सप्लोरेशन, तिबेट, पृ० १४२ वेबर, फॉरेस्टस आफ अपर इंडिया, पृ० १२६)

पर स्वेन हेडिन ने मानसरोवर पर केवल नौका विहार ही नहीं किया वरन् उसने कई स्थानों पर उसकी गहराई की भी नाप फीथी। उसके पश्चात् स्वामी प्रणवानन्द तीसरे व्यक्ति थे जिन्होंने मानसरोवर में नौका विहार किया, गहराइयां नापीं और उनका चित्रण किया।

२६—मानसरोवर का जमना और पिघलना—

मानसरोवर के सौन्दर्य का आभास प्राप्त करने के लिए उसके तट पर कमसे कम एक वर्ष बिताना आवश्यक है। उन लोगोंके लिये, जिन्हे एक बार भी मानसरोवर के दर्शन करने का अवसर नहीं मिला है, इस बातका अनुमान लगाना, यदि असंभव नहीं तो अति कठिन अवश्य है, कि यह सरोवर विभिन्न ऋतुओं में कैसी छटा धारण करता है। मनुष्य जीवन में यदि कोई सबसे महान् और सबसे रोम ञ्चकारी दृश्य देखा जा सकता है, तो वह शीतकाल में मानसरोवर जमने और बसंत में उसके पिघलने का दृश्य देखना है। केवल दैवी प्रतिभाशाली कवि या दैवी कलाकार ही अपने जादू भरे रंगों से उन दृश्यों को अङ्कित कर सकता है जो सूर्योदय और सूर्यास्त के समय मानसरोवर में देखा जाता है। (प्रणवानन्द, एक्सप्लोरेशन इन तिबेट, पृ० ८६)

२७—मानसरोवर जमने से पहले का दृश्य—

स्वामी प्रणवानन्द ने मानसरोवर के जमने और पिघलने

था स्वयं देखा वर्णन लिखा है। प्राय. सितम्बरके मध्यसे मानसरोवर प्रदेश में शीत बढने लगती है। १ अक्टूबर से मई के मध्य तक न्यूनतम तापमान हिमांक से नीचे रहता है। जुलाई मास में वर्ष का अधिकतम तापमान होता है। १९३७ मे मानसरोवर प्रदेश में सबसे अधिक तापमान १९ जुलाईको कमरेके बरामदेमें ६० डिग्री फार्नेहाइट तक पहुँचा था। उसी दिन न्यूनतम तापमान केवल—१८४ फार्नेहाइट था।

१८ फरवरी को इतना अधिक शीत था कि छज्जे से थूकने पर धरती पर पहुँचने से पहले ही थूक हिम मे परिणित होजाता था। १६ फरवरीको अधिकतम तापमान केवल दो फार्नेहाइट था। जो उस वर्ष के अधिकतम तापमानोंमें सबसे कम था। ३½महीने तक अधिकतम तापमान सदा हिमांक से नीचे रहा। कई बार मध्यान्ह के समय भी तापमान केवल १० फार्नेहाइट रहता था। १९३६-३७मे कैलाश-मानसरोवर मे अत्यधिक शीत पड़ी थी। १९४३-४४ के शीतकाल मे न्यूनतम तापमान १८ फार्नेहाइट था।

सितम्बर के द्वितीय सप्ताह से कभी-कभी हिमपात होने लगा। पर मानसरोवर के तट पर कभी डेढ फीटसे अधिक हिम-पात न हुआ। यद्यपि कैलाशके चारों ओर कई फीट ऊँचा हिम-पात हुआ था। प्रथम नवम्बर से भीषण तीन आंधियां चलने लगीं। दिसम्बर के मध्य से मानसरोवर के तटों पर दो फीट की दूरी तक जल जमने लगा था। २१ दिसम्बर से मानसरोवर के मध्य के आस-पास जल जम कर २ इञ्च से लेकर ४ इञ्च मोटे हिम मे परिणित हो गया। और ४० गज से लेकर १०० गज तक हिम शिलाएं तटों की ओर बढती दिखाई देती थीं। मानधाता के शिखरोंसे आने वाले झमावत सरोवरमें समुद्री लहरोंके समान अति ऊँची लहरें उठा रहे थे, जो गरजती और घनघोष करती

थीं। लामा और अन्य हुणिया लोग कहरहे थे, कि मानसरोवर मार्गशीर्षकी पूर्णिमा को (दिसम्बर-जनवरी) जम जाएगा।

२८—मानसरोवर जमने का दृश्य—

सोमवार २८ दिसम्बर १९३६ को प्रायः ७ बजे चारों ओर का दृश्य अर्द्धरात्रिका सा था। पूरी निस्तब्धता और अपार शांति चारों ओर फैली थी। कारण जानने के लिये मैं गोम्बा के चबूतरे पर जाकर खड़ा होगया। उसी क्षण मुझे रोमांच हुआ और कुछ समय के लिये मैं शारीरिक चेतना भूल गया। जब मुझे चेत आया तो मैंने उत्तर-पश्चिम में पुनीत कैलाश को प्रातःकालकी सूर्योदय की प्रथम किरणों से रंजित शिखर को नीलाकाशमें शिर उठावेदेखा। यह शिखर अपनी महानता और गरिमासे मानसरोवर पर झाकता और निष्प्राण प्रकृतिपर भी मोहिनी फेरता प्रतीत होता था।

पुनीत सरोवर पर दृष्टि डालतेही मैं अपनी सुध-बुध खो बैठा। और सरोवरको भी भूलगया। और अब मुझे पुनः सरोवर को देखने की सुध आई तो पूर्व की ओर आकाश पर सूर्य बहुत ऊँचा चढ़ चुका था। मान सरोवरके तटों पर एक मीलसे अधिक [illegible] जल जमकर श्वेत दुग्ध बनगया था। यह ऐसा दृश्यथा। कभी भुलाया—बिसराया नहीं जा सकता। मानसरोवर के मे अभी तक नीला जल, अत्यन्त शान्त और गंभीर दिखाई [illegible] था। जिसमें कैलाश और पीनरी शिखरों तथा प्रात कालीन [illegible] की किरणों की आभा दर्शनीय थी। मैं आनन्दमग्न हो गया कैसे कहूँ ? जो परमानन्द मुझे प्राप्त हुआ उसे व्यक्त करना मेरे लिये सर्वथा असंभव है। इस जादू भरी सरोवर को मोहनी का वर्णन करना संभव नहीं है। आनन्द के आंसू गालों पर लुढ़क

पड़े। पर चबूतरे पर पहुँचते ही हिम बन गये। सर्वत्र गम्भीर निस्तब्धता थी, निर्वाण की चिरस्थायी शान्ति के समान चारों ओर परम शान्ति फैली थी। धरती पर कौन ऐसा होगा जो ऐसी शान्ति मे भगवान मे तन्मय न हो जाये ?

१० बजेके लगभग मेरा ध्यान छूटा। जब मैंने सारे गांव वालों को आनन्द-उल्लास से चिल्लाते सुना। गॉव के सारे निवासी घर की छतों पर चढ़े थे। वे रङ्गीन ध्वजाएं लगा रहे थे और उच्च स्वर से देवताओं का वन्दन कर रहे थे। सो-सो-सो लुड्-ता-रो लुड्-ता-रो-लुड०-ता रो। पौष शुक्ल चतुर्दशी को सारा मानसरोवर जमकर दधिसागर बन गया। (प्रणवानन्द, एक्सप्लोरेशन इन तिबेट, पृ० ४१-४२)

२६—मानसरोवर जमने के पश्चात् दृश्य—

१ जनवरी से कभी-कभी मानसरोवर मे घोष और गड़गड़ाहट सुनाई देने लगे। ७ जनवरी से ऐसे घोष और गड़-गड़ाहट बढ़ गये। और उनमें भीषण तीव्रता आगई। मानो मानसरोवर अभी तक सर्वस श्वेत आवरण धारण करनेको प्रस्तुत न था। ज्यों-ज्यों शीत ऋतु बढ़ती गई ये घोष और गड़गड़ाहट शान्त होगये मानो कुछ कालके लिये हिमावरण धारण करने के लिये सरोवर प्रस्तुत होगया। किन्तु वसन्त के आरम्भ मे मान-सरोवर के पिघलने से पूर्व फिर इसी प्रकार का घोष और गड़-गड़ाहट की पुनरावृत्ति होने लगी।

लगभग एक मास पश्चात हिमके नीचे मानसरोवर की सतह १२ इञ्च नीची होगई। इसलिये जल के ऊपर फैलती हुई हिमका आवरण अपने ही भारसे टूट गया और उसमें दरारें पड़ गई। ये दरारें ३ से ६ फीट तक चौड़ी थीं और इन्होंने समस्त सरोवर को कई भागों मे बांट डाला था इन दरारों के

बीच पानी जमता और फटता रहता था। और ऊपर चढ़कर ६ फीट तक ऊँचा होजाता था।

स्वामी प्रणवानन्द का कहना है कि मानसरोवरकी तलहटी में स्थित तप्त जल के सोतों के कारण भी मानसरोवर के हिमावरण पर दरारें पड़ सकती हैं। इन दरारों के कारण शीतकालमें हिम पर चलकर मानसरोवर को पार करना अति कठिन और सङ्कट पूर्ण है। पर राक्षसतालमें दरारें नहीं पड़तीं। उसके हिमावरण पर लदी हुई भेड़, बकरियां, याक, टट्टू यहाँ तक कि घोड़ों पर चढ़कर मनुष्य भी पूर्व से पश्चिम और उत्तर से दक्षिण निरापद पार कर सकते हैं। अनुमान लगता है कि राक्षसताल का जल नीचे ही नीचे, बाहर निकल जाता है। और पूर्ति के लिये मानसरोवर का जल राक्षसताल में आजाता है। इसलिये राक्षसताल के हिमावरण पर दरारें नहीं पड़तीं। (प्रणवानन्द, एक्सप्लोरेशन, इन तिबेट, ४०–४३)

३०—मानसरोवर के पिघलने से पहले का दृश्य—

मानसरोवर के जमने से भी अत्यधिक रोमांचकारी और भावोत्पादक दृश्य मानसरोवर के हिमावरण के टूटने और हिम पिघल कर निर्मल नीला बनने के समय होता है। मानसरोवर की सारी सतह पर हिम पिघलने से लगभग १ मास पूर्व उसके तटों का हिम पिघलने लगता है। और मध्यवर्ती श्वेत हिमावरण के चारों ओर नीले स्वच्छ जलकी १०० गजसे लेकर आधी मील तक चौड़ी नीली परिधि बना डालता है। इस नीली परिधि पर इधर-उधर हंस तैरने लगते हैं। प्रातःकाल ये हंस पानी में क्रीड़ा करने या पेट उद्योगमें व्यस्त नहीं हो जाते। वरन अधखुले नेत्रों से ध्यान लगाकर शान्ति पूर्ण तैरते हुए सूर्य की ओर जाते हैं और ध्यान के अतिरिक्त सूर्य स्नान भी करते हैं। हंसों का

मानसरोवर में इस प्रकार ध्यान मग्न होकर तैरने का दृश्य दर्शकों को जितना अधिक ध्यान मग्न कर सकताहै, उतना सैकड़ों कृत्रिम धर्मोपदेश, ध्यान सिखाने वाले पाठ या मन्त्रों से रटे हुए उपदेश नहीं कर सकते। (प्रणवानन्द, एक्सप्लोरेशन इन तिबेट, पृ० ५०)

हिम पिघलने से लगभग ११ दिन पहले प्रातः ६ बजे से १० बजे तक मानसरोवरमें भीषण उथल-पुथल बढ़ने लगती है। ऐसा विचित्र और तुमुल घन-घोष होता है जिसमे गड़गड़ाहट, कराहट, सिंहों और व्याघ्रों की दहाड़ और हाथियों की चिंघाड़ सी सुनाई देती है। ऐसा प्रतीत होता है कि मानो डाइनामाइटसे पर्वतों को तोड़ा जा रहा हो, या सौ-सौ तोपें एक साथ छोड़ी जा रहीं हों। इसी भीषण तुमुल ध्वनि के बीच-बीचमें नाना प्रकारके सीत-वाद्यों की ध्वनियाँ तथा अनेक पशुओं ने रांभने के शब्द सुनाई देते हैं।

ये सब गड़गड़ाहटें और घोष सम्भवतः हिमावरण में बड़ी-बड़ी दरारें और छोटे-छोटे छिद्रों के बन जाने से उत्पन्न होतेहैं। मानसरोवर में हिमावरण के बीच-बीचमें ४० से लेकर ८० फीट तक चौड़ी दरारें पड़ जाती हैं जिनमें नीला जल भरा होता है। मानसरोवर विस्तृत और अति सुन्दर बङ्गाली साड़ी सा दिखाई देता है। जिसके किनारों पर तथा मध्यमें गहरी नीली किनारियां बनी हों। सरोवर के पिघलने से ८ दिन पूर्व हिमकी भारी-भारी शिलाएं तैरती हुई किनारे की ओर जाती दिखाई देती हैं। जो हिमशिलाएं अब भी सरोवर में रह जाती हैं वे वायु द्वारा एक-दूसरे से टकराकर चूर-चूर होजाती हैं। छोटी-छोटी हिमशिलाएं एक-दो दिन में पिघल जाती हैं। बड़ी शिलाएं तटों के पास कई दिन तक पिघलती रहती हैं। ये हिमशिलाएं जब जल पर तैरती

तटा की ओर बढती हैं तो धीरे धीरे चलती प्रतीत होती हैं। पर वास्तव में ये बड़े वेग से चलती हैं और तटों पर ६ फीट से लेकर ६० फीट दूर तक जा पड़ती है। इन हिमशिलाओं को बिजली के वेग से तटों पर पहुँचते और शब्द करते हुए देखकर शरीर रोमांचित हो जाता है।

३१—मानसरोवर पिघलने का दृश्य—

इस प्रकार कुछ समय तक रोचक दृश्य दिखलानेके पश्चात एक दिन सहसा रात्रि के समय सारा मानसरोवर स्वच्छ, सुन्दर और अति आकर्षक नीलावरण धारण कर लेता है, जिसे देखकर ग्रामीणों और तीर्थ यात्रियों के आनन्द और आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहता। अगली प्रात ये लोग अपने घरों की छतों पर चढ़कर अपने सन्मुख आकाश के समान स्वच्छ नीले और विस्तृत सरोवर को देखकर उसका स्वागत करने लगते हैं जिस उत्साहसे वे शीतकाल में जमे मानसरोवर का स्वागत करते हैं। वे रङ्गीन ध्वज लगाते हैं, धूप जलाते हैं स्तोत्र पाठ करते हैं और स्वर्ग के देवताओं की स्तुति करते हैं। (प्रणवानन्द, एक्सप्लोरेशन इन तिब्बेट, पृ० ५२)

पिघले मानसरोवर का दृश्य अद्भुत होता है। कभी तो आकाश तक चढती लहरें उठने लगतीहैं जो महासागरकी लहरों के समान तर्जन-गर्जन करती हैं, तो कभी मानसरोवर शान्त, स्वच्छ, नीले जल का दर्पण बनकर चन्द्रमा, तारे, कैलाश या मानधाता का चित्रण करने लगता है। कभी तो प्रात काल धूप म पिघले स्वर्ण का सरोवर बन जाता है तो कभी पूर्णिमा के प्रकाश म पिघली चाँदी का सागर बन बैठता है। कभी तो कैलास और मानधाता के शिखरों को हलकी लहरों के पालने पर झुलाता है तो कभी शान्त गम्भीर और अनन्तके समान निस्तब्ध

बन जाता है। कभी तो क्रुद्ध होकर तर्जन-गर्जन करके तटों को तोड़ने-फोड़ने लगता है तो कभी भीषण झंझावात उठाकर निकट प्रदेश में चरती भेड़-बकरियों तक को उद्वेलित कर देता है। कभी तो सुन्दर नीला द्रव बना रहता है तो कभी कठोर श्वेत ढेर बन जाता है। मानस तेरा स्वागत हो। राजर्षियों और राजहंसों की क्रीडास्थली, तेरी जय हो। (प्रणवानन्द, एक्स-प्लोरेशन इन तिबेट, पृ० ४४)

३२— मानसरोवर का दृश्य, वेवर का वर्णन—

मानसरोवर के अद्भुत दृश्यों का अनेक पर्यटकों ने वर्णन किया है। वेवर लिखता है—हमारे सन्मुख, कुछ मील दूर, अत्यंत उज्वल सौन्दर्य का भण्डार नीला समुद्र था। यह था प्रसिद्ध मानसरोवर। चपटी, ऊँची, नीची पहाड़िया और पर्वत-शृङ्खलाएं धीरे-धीरे मानसरोवर की ओर ढलुवां हो रही थीं। सारा पहाड़ियां नग्न खड़ी थीं। उनका रङ्ग लाल, पीला, नारङ्गी जैसा दिखाई दे रहा था। यहाँ से उत्तर और पश्चिम की ओर सैकड़ों मील दूर एक के पश्चात् दूसरी ऊपर नीची पर्वतों की शृङ्खला के पीछे शृङ्खला खड़ी थीं, जो एक दूसरे के समान प्रतीत होती थीं। और जिनका क्रम अनन्त तक फैला था। इन सबके ऊपर आकाश चूमता हुआ हिमसे ढका कैलाश का शिखर खड़ा था। (वेवर, फौरेस्ट्स आफ अपर इण्डिया, १२६)

३३—मानसरोवर का दृश्य, स्वेन हेडिनका वर्णन—

स्वेन हैडिन ने लिखा है-मानसरोवर पवित्रता और शान्ति का घर है। धरती पर कोई ऐसी भाषा नहीं है जिसके शब्द मानसरोवर की दृश्यावली का वास्तविक वर्णन कर सकें। इस सरोवर को देखकर मैं भी रोमांचित और विमुग्ध

होगया और खड़ा रहने के लिये मुझे चबूतरे को पकड़ना पड़ा। मैं सोचने लगा कि सरोवर को देखकर क्या मुझे चक्कर तो नहीं आने लगा था।

आश्चर्यजनक, आकर्षक और मोहिनी बखेरने वाले सरोवर कथाओं में और गाथाओं में तेरा ही वर्णन है। तू तूफानों की और विविध रङ्गों के परिवर्तन की क्रीड़ास्थली है। देवताओं और मनुष्यों के नेत्र तेरे लिये तड़पते हैं। थके-मांदे यात्रियों का लक्ष्य तू ही है। त्सो-मवाङ्! तू धरती पर पवित्रतम झीलों में से अति पवित्रतम है। तू प्राचीन जम्बूद्वीप की नाभि है, जहाँ से अति विशाल शिखरों से संसार की चार अति प्रसिद्ध नदियां ब्रह्मपुत्र, सिन्धु, सतलुज और गङ्गाजी निकलती हैं। संसार की सभी झीलों में मानसरोवर मोती है। तू उसी प्राचीन युग की है जिस युगमें वेद लिखे गये थे।

जहाँ मानसरोवर कितना विचित्र सरोवर था। मैं शब्दों में वर्णन नहीं कर सकता। अपनी मृत्युके दिन तक मैं इस सरोवर को न भूल सकूंगा। आज भी यह सरोवर मेरे मनमें प्राचीन गाथा, कविता या गीत के रूप में गूञ्ज रही है। अपने सारे पर्यटन में मैंने जो अगणित दृश्यावलियां देखीं उनमें से एक की भी तुलना उससे नहीं हो सकती जो मैंने मानसरोवर में रात्रिमें नौका-विहार करते देखी।

मानसरोवर में नौका बिहार प्रकृति के हृदय की शान्त और महान् धड़कनों को सुनने के समान था। ऐसा प्रतीत होता था मानो धरातल, जो क्षण-क्षण पर धीरे-धीरे बदल रहा था, असत्य-असार था। मानो वह इस संसार से परे था और स्वर्ग के निकट परलोक से सम्बन्ध रखता था। मानो वह स्वप्नों और कल्पनाओं का लोक था, मानो वह आशा और तृष्णाओं का लोक

था, मानो वह विचित्र परी-देश था और इस धरती के पापी, सांसारिक और अभिमानी मनुष्यों का लोक न था।

मैंने त्सो-मवाङ् पर अन्तिम दृष्टि डाली और मुझमें एक खेद की लहर दौड़ पड़ी कि अब वह मुझे इस सरोवर के तट से जाना ही पड़ेगा। (स्वेन हेडिन, ट्रांस, हिमालय,)

३४-लङ्क-त्सो-(राक्षस-ताल या रावणह्रद)-

मानसरोवर से २ से लेकर ४ मील की दूरी पर पश्चिम की ओर लङ्क-त्सो लङ्का-झील राक्षस ताल या रावणह्रद है। जहाँ, कहा जाता है, लङ्कापति रावणने तपस्या करके शिवजी को प्रसन्न किया था। स्वामी प्रणवानन्द का कहना है कि लङ्क-त्सो का अर्थ हूणादेश की भाषा में (ल- पर्वत,ङ्-पाँच, त्सो-झील) पाँच पर्वतों की झील है। ऐसा नाम पड़ने का कारण इस झील में पाँच पर्वतों की छाया पड़ना है। (प्रणवानन्द, एक्सप्लोरेशन इन तिब्बेट, पृ० ८२)

पर इससे अधिक समीचीन अर्थ लंक-त्सो या लङ्का-झील ज्ञात होता है। क्योंकि इसे राक्षसताल और लङ्का-ह्रद या रावण-ह्रद भी कहा जाता है। रावण का हिमालय से अवश्य सम्बन्ध रहा है। उत्तर भारत में नगर-नगर और गाँव-गाँव में रावण जलाया जाता है। यहाँ किसी का नाम रावण नहीं रक्खा जाता। पर हिमालय के पहाड़ी लङ्कापति और रावण नाम बड़े उत्साह से रखते हैं।

३५—राक्षसतालकी परिक्रमा में दृश्यावली—

राक्षस ताल की परिक्रमा करने की प्रथा नहीं है। कहते हैं कि पहले उसमें राक्षस रहते थे। पर राक्षसताल की परिक्रमा में भी दृश्यावली अति अद्भुत है। स्वामी प्रणवानन्दने लिखा है—पथ प्रदर्शक के अभाव और जलवायु की विषमता के कारण मुझे

राक्षसताल की परिक्रमा शीघ्रता से करनी पड़ी। तीव्र झंझावात चल रहे थे और मार्ग तीखी नोकों वाले पत्थरों से भरा था। अक्टोबर मास था। रातको तापमान हिमांक से १६ डिग्री कम हो जाता था। कई बार मुझे अति विशाल शिलाओं पर कूदते हुए आगे बढ़ना पड़ा था। क्योंकि कई स्थानों में राक्षसताल के तट पर नियमित मार्ग नहीं था। पर पग–पग पर परिवर्तित होने वाली दृश्यावली अत्यधिक रोमांचकारी और सुन्दर है। वास्तव में प्रत्येक घण्टे के पश्चात् इतना नया दृश्य सम्मुख आता है। और प्रत्येक मोड़ पर्वतों की इतनी सुन्दर और विविध दृश्यावली सामने लाता है कि दर्शक मुग्ध और आश्चर्यचकित हो जाता है।

प्रातःकाल राक्षसताल क्रुद्ध और भयावह बना था। उसमें ऊँची लहरें तरजन–गरजन कर रही थीं। और उसकी सारी सतह फेन से श्वेत बनी हुई थी। कुछ ही समय पश्चात् मैं एक खाड़ी के तट पर पहुँचा। जिसमें नीलम–जैसा स्वच्छ हरित जल भरा था। यहाँ जल इतना स्थिर और शान्त था कि ताल की तलहटी में पड़े प्रत्येक कंकड़को और जलमें चलती प्रत्येक मछली को स्पष्ट देखा जा सकता था और उसका फोटो चित्र लिया जा सकता था। सर्वत्र शान्ति का अटल राज्य था। (प्रणवानन्द, एक्सप्लोरेशन इन तिबेट, पृ० २२–२३)

राक्षसताल का घेरा लगभग ७७ मील है। इसके पूर्वी, दक्षिणी, पश्चिमी और उत्तरी किनारे १८, २२, २८½ और ८½ मील हैं। उत्तर से दक्षिण को उसकी लम्बाई १७ मील और पूर्व से पश्चिम की ओर सबसे अधिक चौड़ाई १३ मील है। तट से २½ मील की दूरी पर उत्तर–पश्चिमी तट पर चेप–गे गोम्बा है। राक्षसताल के तट पर यही एक गोम्बा है।

३६—राक्षसताल में द्वीप—

राक्षसतालमे दो द्वीप हैं। एक का नाम लचाटो और दूसरे का तोप् सेरमा या द्वीप-सेरमा है। शीतकाल मे, अप्रैल मास तक राक्षसताल जमा रहता है और इन द्वीपों तक हिम पर चलकर पहुँचना सरलहै। लचाटो का घेरा लगभग एक मीलहै। यह द्वीप चट्टानी और पर्वतीय है, और इसमें दलदली भाग बिलकुल नहीं है। इस द्वीप के पहाड़ी भागों पर अनेक हंस रहते हैं जो अप्रैल मास मे अण्डा देते हैं। उन दिनों थारदुङ् गॉव के गोवा (मालगुजार के प्रतिनिधि) यहॉ अण्डे एकत्रित करने आते हैं। ये लोग हिम पर चलकर आते है। यदि सहसा राक्षसताल पिघल जाय तो इन्हे शीतकाल तक राक्षसतालके इस द्वीप मे ही फॅसा रहना पड़ता है। (प्रणवानन्द एक्सप्लोरेशन इन तिबेट, २५)

दूसरा द्वीप तोप-सेरमा भी उसी प्रकार चट्टानी है किन्तु अधिक बड़ा है। यह लगभग एक मील लम्बा और पौन मील चौडा है। कहते हैं, एक बार यहॉ एक लामा ने सात वर्ष तक तपस्या की थी।

३७—गङ्गा-छु—

बहुत से लोगों की धारणा है कि गङ्गाजी मानसरोवर से निकलती हैं। और केदारखण्ड तथा अन्य पौराणिक ग्रन्थों में भी गङ्गाजी की अनेक धाराओं में से एक का उद्गम मानसरोवर माना गया है। गङ्गाजी शिवजी की जटासे निकली हैं। शिवजी का स्थान कैलाशहै। अस्तु कैलाशसे या उसके निकट मानसरोवर से गङ्गाजी की उत्पत्ति होने की धारणा चल पड़ी है।

भूगोलके अनुसार गङ्गाजी मानसरोवर या कैलाशसे नहीं निकलती, पर मानसरोवर और राक्षसताल के बीच एक धारा

कहती है जो दोनों सरोवरों को मिलाती है जो गङ्गा छु कहलाती है, जिसका अर्थ हुआ गङ्गा-जल या गङ्गा नदी।

प्राचीनकाल मे सम्भवत मानसरोवर और राक्षसताल दोनों एक ही सरोवर थे। कालान्तर में उनके बीच एक बड़ी पहाड़ी खड़ी होगई और उसने प्राचीन सरो र के दो भाग कर दिये। उनको मिलाने वाली केवल गङ्गा-छु धारा रह गई जो मानसरोवर से राक्षस ताल में गिरती है। यह धारा ७० फीट से लेकर १०० फीट तक चौड़ी है और बरसात में २ फीट से लेकर ३ फीट तक गहरी रहती है। यह सर्पाकार होकर चलती है। और लगभग ६ मील लम्बी है। शीतकाल मे भी कभी-कभी गङ्गा छुमे मानसरोवरसे जल आताहै। प्रणवानन्द, एक्सप्लोरेशन इन तिबेट, पृ० २२१)

हूणदेश की एक गाथा के अनुसार राक्षसताल में राक्षस रहा करते थे और कोई जल न पीता था। पर गङ्गा छु के द्वारा मानसरोवर का जल राक्षसताल में पहुचने से राक्षसताल भी पवित्र बन गया।

कभी २ गङ्गा छुको सर्वथा शुष्क पाया गयाहै। इस सबध में डाक्टर स्वेन हैडिनने १५६० से लेकर १६०८ तक तथा स्वामी प्रणवानन्द ने १६४५ तक के आकडे तैयार किये हैं। इन ३३ आकड़ों में से २२ आँकड़ों से व्यक्त होता है कि मानसरोवर का जल गङ्गा छुमे बहता देखा गया। १० आँकड़ों मे गङ्गा छुमें जल नहीं पाया गया। और १ आकडे में पर्यटकने स्पष्ट नहीं लिखा। (स्वेन हैडिन, सौदर्न तिबेट, भाग २ पृ० २२६)

३८—कैलाश-मानसरोवर प्रदेश का जलवायु—

इस प्रदेश का जलवायु भी हूणदेशके अन्य भागोंके समान ही अति शीतल है। पर इस प्रदेश में इतनी वर्षा नहीं है जितनी

खम् प्रदेश में होती है। भारत में गङ्गा की उपत्यका के समान हूणदेश में सांपू की घाटी में भी पूर्व से पश्चिम की ओर जाने पर वर्षा की मात्रा तथा वार्षिक वर्षा की मात्रा घटती जाती है। कैलाश-मानसरोवर प्रदेश दक्षिणी खम् प्रदेश की अपेक्षा अधिक उत्तरी अक्षांशों में पहुँच गया है। इसलिये दक्षिणी-पूर्वी खम् प्रदेश की अपेक्षा कैलाश-मानसरोवर प्रदेश में जलवायु अधिक शीतल, अधिक शुष्क और अधिक तीखी वायु वाला है।

३९—कैलाश मानसरोवर क्षेत्रमें वर्षा—

कैलाश-मानसरोवर प्रदेश में मानसून देर से पहुँचता है और वर्षा कम होती है। जब वर्षा होती है तो मूसलाधार होती है। *वर्षा के कोई आंकड़े उपलब्ध नहीं हैं। पर अनुमान किया* जाता है कि यहाँ ल्हा-साकी वर्षा के एक तिहाई के लगभग २०-२५ इञ्च तक वार्षिक वर्षा होती है। शीतकाल में पर्याप्त हिमपात होता है जिससे समस्त पर्वत मालायें हिमाच्छादित हो जाती हैं और नदियां तथा मानसरोवर और राक्षस ताल जम जाते हैं। हिमपात कभी-कभी सितम्बर के अन्त या अक्टोबर से आरम्भ हो जाता है।

१९०८ में लगभग सितम्बर के अन्त, से ही हिमपात आरम्भ होगया था दिन में जल वृष्टि होती रही जो कि रात को हिम वृष्टि में परिवर्तित होगई। सवेरे उठकर देखा तो सारे मैदान और पहाड़ के ऊपर बर्फ की सफेद चादर पड़ी हुई है। कहीं रास्ते का पता नहीं है। सर्दी के लिये तो पहले ही से तैयार थे, लेकिन बर्फ पड़ने के बाद हवा तेज होगई, जिसके कारण शीत और भी दूनी होगई। तिरट्टतिया बाबा जाने के ही दिन मानसरोवर में नहा आये थे। अब इस सर्दी में भला किसकी हिम्मत थी कि मानसरोवर में डुबकी ले, चाहे उसके लिये धर्मराज ने

स्वयं स्वर्ग से विमान भेजा हो। विहारी बाबा ने दूसरे दिन फिर हिम्मत की, लेकिन सर्दी के मारे डुबकी लगाते ही न लोटा उठा न लंगोटी निचोड़ सके। शरीर अकड़ गया, मुश्किल से गुम्बा तक पहुँचे। चूल्हे के पास उन्हें बिठाया गया। नहीं तो प्राण पखेरु उड़ने में देर नहीं थी।

जो हिमवृष्टि मानसरोवर के तट पर हुई थी वह वहीं तक सीमित नहीं थी उसने सारे पहाड़ी डांडों पर (घाटों, जोतों) को बर्फ़ से ढक दिया था। अब वह पार नहीं किये जा सकते थे। गर्मी के आने तक मानसरोवरके किनारे पड़े रहने के सिवाय अब उनके लिये कोई चारा नहीं था। (राहुल घुमक्कड़ स्वामी, पृष्ठ ५७)

जब तक आकाश खुला रहता है, तीव्र धूप पड़ती है। पर ज्योंही आकाश पर बादल छा जाते हैं, अथवा सूर्य को ढकेलते हैं, तुरन्त वायु मण्डल अति शीतल हो जाता है। जुलाई-अगस्त में जब कैलाश मानसरोवर की यात्रा का समय है, प्रायः कैलाश और मानधाता शिखर बादलों से ढक जाते हैं और क्षण-क्षणमें बादलों की घूंघट हटाते और खींचते रहते हैं। बदली के समय और रात्रि में असह्य शीत पड़ती है।

४०—मानसरोवर कौन परसे। बिना बादल मेंह बरसे—

अनेक लेखकों ने कैलाश-मानसरोवर प्रदेश के क्षण क्षण परिवर्तन शील जलवायु का उल्लेख किया है। स्वामी प्रणवानन्द ने अपने अनुभव के आधार पर लिखा है—नवम्बर के आरम्भसे मई के मध्य तक तीखी वायु चलती है। मौसम क्षण-क्षण पर बदलता रहता है। कभी तो तीव्र धूपमें पर्यटक पसीने से लथपथ हो जाताहै। कभी तुरन्त ही शीतल वायु चलने लगती है। थोड़ी ही देर में आकाश बादलों से घिर जाता है। भीषण वज्र गर्जन

होने लगता है। बिजली चमकती है तथा ओलों की वर्षा या मूसलाधार पानी गिरने लगता है। अभी तो आकाश में इन्द्र धनुष की छटा दिखाई देती है तो अभी तड़ातड़ ओले गिरने लगते हैं और उनके पीछे हिमपात होने लगता है। यहाँ पर धूप चमक रही है। थोड़ी दूरी पर वर्षा की झड़ी लगी है और उससे भी आगे वर्षा और झंझावात चल रही है। यहाँ पर यदि अभी बिलकुल शान्त वातावरण है तो दूसरी घड़ी अति वेग से चलने वाली वायु घोर घोप करती हुई चल पड़ती है।

ऊँचे शिखर पर चमकीली धूप पड़ रही है किन्तु नीचे घाटी में धुंए के समान बादलों के स्तम्भ खड़े हो रहे हैं। उससे भी नीचे घाटी की तलहटी में वर्षा की झड़ी लगी है। नुकीले पर्वत शिखर पर धूप में हिम शिखा चाँदी के डण्डे सी चमक रही है। पास ही गोलाकार शिखरों पर स्वर्णरञ्जित छत्र चढ़ रहे हैं। दूर के पर्वत-शिखरों पर काली मसि के समान बादलों की कालिमा पुती है। कैलाश के मण्डलाकार शिखर पर पाटल रङ्ग के मेघों ने घेरा डाल दिया है अथवा सप्तरङ्गी इन्द्र धनुप अर्द्धचन्द्राकार बनकर उसे घेरेहै। अथवा जब सूर्य पश्चिम सागर में गोता लगाने को प्रस्तुत होता है, उस समय मान्धाताके गगन-चुम्बी शिखरो पर लाल ज्वालाएं उठने लगती हैं। अथवा अति अल्प हिमसे आच्छादित पौनरी शिखर घने तमीभूत मेघों के बीच अपना शिर खड़ा करते है।

कभी तो सूर्यास्त के समय हिमसे ढके कैलाश और मान-धाता पर्वत श्रेणियोंको नीलाकाशके परदे पर दमकते हुए देखकर मन मुग्ध होता है, तो कभी सूर्य उदित होकर अति रमणीय मानसरोवर की नीली सतह पर पिघले सुवर्ण की वर्षा करताहै।

दूर किसी घाटी में तप्तोदकके सोतों से गन्धक की भाप उठ रही है। एक ओर से तो गरम वायु आपका स्वागत करती है और दूसरी ओर से किसी घाटी से कपा देने वाली शीतल वायु के झोंके आप पर आक्रमण करते हैं। कभी ऐसा प्रतीत होता है कि रङ्गमञ्च पर दिन और रात्रि, प्रातःकाल और मध्याह्न तथा सध्या सब एक साथ ही अपना स्वरूप दिखा रहे हैं, या वर्ष की छहों ऋतुओं का आगमन एक साथ ही होने लगता है। (प्रणवानन्द कैलाश–मानसरोवर, तथा एक्सप्लोरेशन इन तिबेट पृष्ठ ६९)

४१—गौधूलि और उषाकाल—

गौधूलि और उषाकाल भारत की अपेक्षा अधिक लम्बे होते हैं। सूर्योदय से एक घण्टे से अधिक पहले से पर्याप्त प्रकाश हो जाता है जिसमें यदि शीत का भय न हो तो घर से बाहर काम किया जा सकता है। इसी प्रकार सूर्यास्त के पश्चात् भी एक घण्टे से अधिक समय तक प्रकाश बना रहता है।

अत्यधिक ऊँचाई और धूल रहित तथा पतली वायु के कारण अति दूर के दृश्य और वस्तुएँ अति निकट दिखाई देती हैं। यात्रियों को इन सब बातों का ध्यान रखकर पूरी तैयारी के साथ यात्रा करनी चाहिये।

अध्याय १५

उत्तराखण्डके मन्दिरों के पण्डे और रावल

१—पण्डों की आवश्यकता—

मैदानी तीर्थों के समान गढ़वालके चारों धामों-यमुनोत्तरी, गंगोत्तरी, केदारनाथ, बद्रीनाथ के पण्डे हैं। इनके अतिरिक्त गढ़वाल मे सीम-मुखीम के पण्डे भी होते हैं। पण्डों के स्वार्थ और छल-कपट पूर्ण जीवन के संबंध में दूसरे लेखक बहुत कुछ, संभवत सत्य और आवश्यकता से बहुत अधिक, लिख चुके हैं। अस्तु मुझे लिखने की आवश्यकता नहीं है। पाखण्डों के घोर विरोधी राहुलके इस कथनसे सहमत हूँ-हम पण्डा प्रथाके विरोधी नहीं हैं। क्योंकि जानते हैं कि अपरिचित दूरदेशीय तीर्थयात्रियों की इनके द्वारा बड़ी सहायता होती रही है। काशी, मथुरा, जैसे नगरों मे तो बेचारे यात्री लुट जाते, यदि पण्डों की आत्मीयता उनकी सहायक न होती। हमने निश्चय कियाकि किसीको पण्डा बनाएं, लेकिन यह शर्त रक्खी कि वह ७० वर्ष स कम का न हो और यहां के इतिहास-भूगोल की अच्छी जानकारी रखता हो। (राहुल, गढ़वाल, ४१८-१९)

२—बदरीनाथके पण्डेका सबसे प्राचीन उल्लेख—

बदरीनाथ के पण्डे का संभवतः सबसे प्राचीन उल्लेख ८-९ सौ वर्ष पहले लिखेगए केदारखंड-ग्रंथमे मिलता है। जिसके अनुसार बदर्याश्रम निवासी धर्मदत्त नामक ब्राह्मण अवंती-नगर के एक धर्मात्मा और धन सम्पन्न चन्द्रगुप्त नामक वैश्य के पास धन याचन के लिये गया। और उसे उसने बदरिकाश्रम का माहात्म्य,

और यात्रा-मार्ग बतलाकर उसे तीर्थयात्रा के लिये प्रेरित किया। (केदारखण्ड, अ. ६२)

ऐसा लगता है कि केदारखण्ड-ग्रंथ संभवतः पण्डों की ही रचना है। वैसे सारा स्कन्दपुराण ही, (जिसका भाग केदारखण्ड माना जाता है, पर वास्तव में नहीं है) एक प्रकार से विभिन्न तीर्थोंके पण्डों की रचना या पण्डों की प्रेरणा से रचा गया कहा जा सकता है।

चाहे केदारखण्ड, मानसखण्ड या स्कन्दपुराण-जैसे तीर्थों की प्रशंसा करने वाले ग्रंथ पण्डोंकी ही रचना हों, चाहे उन्हें पंडों ने अपनी स्वार्थ सिद्धिकेलिये ही रचा हो, पर यह अस्वीकार नहीं किया जासकता कि ऐसे साहित्य से हिन्दू जनताका भारी उपकार हुआ है। तीर्थ-माहात्म्य के प्रलोभन से हिन्दू जनता को घरों से बाहर निकलने,देशाटन करने, सुन्दर-सुन्दर स्थानों को देखने और ज्ञानवृद्धिके साथ-साथ स्वास्थ्य लाभ करने का अवसर मिला है। जिन तीर्थों के कारण सारी हिन्दू जातिका जीवन गड्ढे का सड़ता हुआ जल-रूप में न रहकर कल-कल करती सरिता के समान गतिशील बना है, उनकी प्रशंसा झूठी प्रशंसा ही सही,-करने वालों का महत्व भुलाया नहीं जा सकता।

३-देवप्रयागी पण्डों का महत्व—

सारे भारत के तीर्थ-स्थानों के पण्डों में बदरीनाथ के देवप्रयागी पण्डों का स्थान सर्वोच्च है। इनमें जो लगन देखी जाती है, हिन्दुस्थान के नगर-नगर में पहुँचकर ये जिस प्रकार प्रचार करते हैं, लाखों व्यक्तियों-स्त्री, पुरुष-बच्चों और बूढ़ों को भी-जिन्होंने जीवनभर एक पत्थरका टुकड़ा तक न देखा, उन्हें ये जिस प्रकार दस सहस्र फीट से अधिक ऊँचे [illegible] ...त्रा पर चलने

के लिये प्रेरित करते हैं, उसकी प्रशंसा किये बिना नहीं रहा जा सकता। सच पूछो तो आज जहां मोटरें दौड़ती हैं, और उत्तम सड़कें बनगई हैं वहां पहले दुर्गम पर्वतोंपर अपने जजमानों के पद चिन्हों से पगडण्डी बनाने वाले यही देवप्रयागी पण्डे थे। इन्होंने न जाने कितने तीर्थों,प्रयागों और कुण्डों तथा शिलाओंकी कल्पना करडाली, और उनके माहात्म्योंको यात्रियोंको सुना-सुनाकर सारे भारत में पहुँचा दिया। कितनी चट्टियों और मन्दिरों की रचना इनके द्वारा लायेगये जजमानोंकी सेवा और उनसे लाभ उठाने के लिये होगई। यात्रामार्गों की सड़कें, मोटरमार्ग, औषधालय.धर्मशालाएं चट्टियां, डाकबङ्गले, और मन्दिर, यात्रा मार्गका व्यापार, उसमें भार ढोने वाले गढ़वाली और डोटियाल, यात्रा–साहित्य, जनता और सरकार को होने वाले नाना प्रकार के लाभ,यात्रामार्ग संबंधी नाना प्रकार के सरकारी कार्यालय आदिके ऊपर जब दृष्टि जाती है तो पता लगता है कि इन पण्डोंने कितनी भारी हलचल उत्पन्न करदी है। वैशाख आरंभ होते ही ऋषिकेश से तथा अन्य मार्गों से जो नर–नारियों, बालक–वृद्धों की पंक्तियां पर पंक्तियां हिमालय की ओर चल पड़ती है, भारत के कोने–कोने से हिन्दु-सागर में जो लहर उठकर ऋषिकेशकी ओर आनेलगती हैं, स्थान स्थान पर हैजे की रोक–थामके लिये जो दौड़–धूप की जाती है, मोटर लारियोंकी जो कतार ऋषिकेश और कोटद्वारसे दौड़ पड़ती हैं, गांव–गाव से, यहां तक कि सुदूर पूर्व में नेपाल से भी, जो डोटियल मजूर दौड़ पड़ते हैं, और गांव–गांव में लोग अपनी भैंसों–गायों को लेकर यात्रा-मार्ग के वनों, गुफाओं; और खुली भूमि पर छप्पर बनाने निकल पड़ते हैं, इस भारी हलचलके पीछे कौन है ? और जब महामारी फैलतीहै, मारे मार्ग और घाटियां सैकड़ों शवों से ढकजाते हैं और इनके कारण नर–भक्षी व्याघ्र

सम्पन्न होकर सैकड़ों व्यक्तियों की बलि लेलेते हैं, तो इन सबके पीछे किसकी प्रेरणा परोक्ष रूपसे छिपी है ?

संसारकेकिसीभी भागमें कोईभी पर्यटक कम्पनी देवप्रयागी पण्डोंके समक्ष नहीं पहुँचती। जितने व्यक्ति इनकी प्रेरणा से १० सहस्र फीट से अधिक ऊँचाई के मार्गों को पार करते हैं, उतने थोमसकुक जैसी विश्वविख्यात कम्पनियोंकी प्रेरणा से भी नहीं।

कुछ वर्षोंमें केदारनाथऔर त्रियुगीनारायणकेपण्डेभी थोड़ी बहुत दौड़-धूप करने लगे हैं। इन्हीं की प्रेरणा से मस्तासे पंवाली कंठा होकर त्रियुगीनारायण.केदार का प्राचीन मार्ग फिर से चल पड़ा है और अब वहांभी सड़क, औषधालय, चट्टियां और मन्दिर बनने लगे हैं।

४-पंडे-धार्मिक गाइड—

सच पूछो तो देवप्रयागी पण्डों को धार्मिक जगत में उसी प्रकारका गाइड कह सकते हैं, जिस प्रकार के गाइड यरोप के पर्वतारोही—जगत में आल्पस पर्वत के निचले नगरों में मिलते हैं। अन्तर इतना ही है कि यूरोप के गाइड आल्पस के सौन्दर्य की छटा दिखाकर मार्गों की दुर्गमता के नाम पर पर्यटक से धन ऐंठते हैं, और पण्डे तीर्थों का महिमा गाकर यात्री की श्रद्धा का लाभ उठाते हैं।

यह एक अजीब बात है कि पण्डों पर भी, जो कि धर्मकी निगाह से यात्री से तीर्थकृत्य कराने और उसको सफल देने के सिवाय कोई फर्ज मजहबी नहीं था, और यह फर्ज तब तक रहा जब तक यात्री लोग तीर्थ में आकर ही उसका पूजन करतेथे और चन दाना खाते और उनकी तरफ से किसी तरह की खिदमत लेनी अपनी यात्रा को निष्फल समझते थे।

लेकिन अब पण्डा पर मिल जरूर यात्रीके मुताल्लिक कोई

फर्ज रखा गया है और वह यह है कि बतवा तरकी लालच नए यज-ान बनानेकी गरजसे बजात खुद ओर बजरिए गुमास्तों के और दल्लालों के हिन्दुस्तान के हर इजलाय में घूम-घूम कर यसद खुशामदों के यजमान बनाना और उनको तीर्थयात्राके लिए तैयार कराना और रास्ते में यजमान की इतनी खिदमत करनाकि जो शायद है जमाने गुजिश्ता में यजमान अपने पण्डे की करता था। नतीजा यहकि पण्डेकी वेसबरी और यजमानका सेवा दान।

मगर दूसरे पहलू में चलते जमाने ी तासीर के मुतालिक पण्डा की जानिब से यजमान की इस कदर खिदमत रनी वेजा नहीं मालूम होती और अमूमन पहाड़ी तीर्थक पण्डोंके मुतालिक देशी यजमानों के निस्बत जब कि यात्री हरद्वार से गङ्गोत्तरी, यमुनोत्तरी, बदरीनाथ, केदारनाथ जाते हैं, जो मुकामात हर एक हरद्वार से सो-सवा सौ माइलके फासले पर वाके हैं, जो हिमालय की गोद में है। हरिद्वार से आगे हर पड़ाव पर अगर्चे सरकारी इन्तजाम यात्रियों के आराम के लिये मौजूद हैं, ताहम पहाड़ी जिला होने से बिला इमदाद प०ा लोगों के यात्री सभी तरह से यात्रा करनेमें सहूलियत हासिल नहीं करसकता। पण्डा या उसके गुमास्ते के साथ रहने से यात्री हर तरह से आराम पा सकता है। लिहाजा पण्डा देशी यात्री के सफर के लिये एक तरह का गायड (रहबर) समझना चाहिए और इसमे कोई शक नहीं कि यजमान पण्डा की वजह से बइमदाद से व आराम सफर करेगा तो वह बिल जरूर दक्षिणा में पण्डेको अच्छी रकम देगा (रतूड़ी, नरेन्द्र हिन्दू लॉ,+७८०-८८)

५-पंडा मिलते ही निश्चिन्त—

दक्षिण भारत के तीर्थों को छोड़कर प्रायः समस्त भारत के

तीर्थों में पण्डा प्रथा है। यह प्रथा यात्री के लिये सुविधा जनक थी और इससे अब भी बहुत सुविधा प्राप्त होती है। एक यात्री अपरिचित स्थान में पहुँचता है। वह न वहां के दर्शनीय स्थान जानता है, और न मार्ग। और संभव है कि वहां की भाषा भी न जानता हो। उसका पण्डा उसे मिल गया तो उसे किसी बात की चिन्ता नहीं करनी पड़ती। आजकल भी आवश्यकता होने पर यात्री अपने पण्डेसे ऋण पाजाता है, जिसे वह घर पर जाकर वे सुविधापूर्वक लौटा देते हैं।

६—पण्डा-प्रथा में सुधार की आवश्यकता—

जहां पण्डा प्रथा इतनी उपयोगी है, वहीं यह प्रथा यात्री के लिये सबसे अधिक उबा देने वाली, तंग करने तथा शोषण करने वाली भी होगई है। यात्री के तीर्थमें पहुँचने से लेकर वहां से चल देने तक एक भीड़ उसे घेरे रहती है। पता नहीं कितने लोग उससे नाम, पता पूछने पहुँचते हैं। वह ऊब जाता है और झल्ला उठता है। स्नान, भोजन, पूजन-उसे कोई कार्य शान्तिपूर्वक नहीं करने दिया जाता, (तब भी उससे पता पूछना बन्द नहीं कियाजाता, जब उसके साथ कोई मार्गदर्शक पंडा भी रहता है।

यात्री से अब प्रसन्नता पूर्वक मिले दान पर सन्तुष्ट रहने वाले पण्डे नहीं हैं, ऐसा नहीं कहा जा सकता। ऐसे आदर्श पण्डे भी हैं, किन्तु बहुत थोड़े। अधिकांश तो ऐसे ही लोग हैं जो धर्म भीरू यात्रीकी धर्मभीरुता से अधिकसे अधिक लाभ उठालेने का भरपूर प्रयत्न करते हैं। यात्री के आवश्यक वर्तन एवं वस्त्र तक उससे लेलेते हैं। यात्री को कर्जदार बनाकर विदा करने में कोई सङ्कोच नहीं कियाजाता। अधिकांश पण्डे अशिक्षित,या साधारण शिक्षित होते हैं और संस्कृत भाषा से अपरिचित होते हैं। अनेक

पण्डे सन्ध्यावन्दनादिक कुछभी नहीं जानते और यदि जानते भी हों तो उसका पालन करते नहीं दिखाई देते।

सबसे बड़ी त्रुटि यह है कि पण्डों का एक बड़ा भाग ठीक सङ्कल्प तक नहीं पढ़ सकता। तीर्थ के कर्मों का इन्हे पूरा बोध नहीं होता। कल्पित अशुद्ध मन्त्रों से पूजन, श्राद्धादि सब कर्म वे बिना झिझक कराते है। कुछ स्थानों में विशेष भीड़ के अवसरों पर कुछ पण्डे अब्राह्मण नौकर रखलेतेहैं और वे अपने को ब्राह्मण बतलाकर यात्रियों से तीर्थपूजनादि करवाते हैं।

पण्डो में अनेक दुर्व्यसन एवं आचार सम्बन्धी त्रुटियां आगई हैं, यह एक स्पष्ट सत्य है। ये त्रुटियां केवल पण्डों में ही नहीं, समाज के अन्य वर्गों में भी हैं। किन्तु हमारे तीर्थ पुरोहितों में ये दोष बड़ी मात्रामें हैं और बहुत खटकने वाले हैं। एक अपरिचित श्रद्धालु, यात्री जिसे अपना मार्ग दर्शक एवं पुरोहित चुने, उसे विश्वसनीय, संयमी और सदाचारी होनाचाहिये (कल्याण, तीर्थांक, ५६८)

७—तीर्थ—पन्डे, तीर्थ—पुरोहित, गंगापुत्र आदि का मनोरंजक इतिहास—

हमारे तीर्थों पर भारतवर्ष भर मे जो पण्डे तीर्थ-पुरोहित गंगापुत्र, पुजारी, रावल, भोजकी, बुटुकनाथ, गुसांई, पाधा आदि नाना प्रकारके नामोंसे पुकारे जाने वाली एवं दानग्रहण करनेवाली जातियां मिलतीहैं, उनके इतिहासकी गहरी छानबीन और अध्ययन अत्यन्त आवश्यक हैं। इस छानबीन और अध्ययन से केवल तीर्थों के इतिहास पर ही नहीं, वरन् हिन्दूधर्म के विभिन्न मतों के इतिहास आदि पर भी महत्वपूर्ण प्रकाश पड़ेगा। शिवके अधिकांश मन्दिरोंमें अभी तक ब्राह्मण पुजारी नहीं मिलते। ब्राह्मण ही नहीं,

अन्य जातियोंके भी बहुत प्राचीन विचार याने लोग शिवमन्दि के नैवेद्य को निर्माल्य समझकर ग्रहण नहीं करते। इन मन्दिरों गुसांई, गिरि आदि, कांगड़ा के ज्वालामुखी, चिंतपुर्णी, ब्रजेश्व आदि मन्दिरों के भोज की, गढ़वाल के यमुनोत्तरी, गंगोत्त केदारनाथ और बदरीनाथ के पंडे, पुजारी और रावल, मीम मुखीम के फिरयाल, अलमोड़ा के कई मन्दिरों के बटुक, नेपाल पशुपतिनाथ,खोचरनाथ, आदि मन्दिरोंकेपुजारियों आदिके पिछ इतिहास को देखकर स्पष्ट होता है कि एक समय ऐसा अवश्य था जब इन तीर्थोंपर यहांके आदि निवासी किरातखस आदि जाति का अधिकार था, जब इन तीर्थोंपर दान ग्रहण करनेकेलिये ब्राह्म कम मिलते थे, या प्रस्तुत न होतेथे, जब इन तीर्थों या इनके दे ताओंका दूसरा रूप था, और जब इन पर इधर उधर घूमने-फिर वाले, साधु, सन्यासी, बौद्ध भिक्षु, अड़ालुशील व्यक्ति तथाकथित ब्राह्मणादि ने अधिकार कर लिया, और धीरे-धी आवश्यकतानुसार अपना चोला बदल दिया।

रतूड़ी ने लिखा है शिवमन्दिरोंके पुजारी प्रायः गुसांई भल्डे हैं, कुंजापुरी के पुजारी ब्राह्मण नहीं, राजपूत हैं,यमुनोत्त के पंडे खस-ब्राह्मण–जैसे हैं, गङ्गोत्तरी के पंडे अपने को सेमवा वंश के ब्राह्मण जाहिर करते हैं बारहाट और यमनोत्तरी के पंडे से रिश्तेदारी करते हैं। शायस्तगी की रोशनी अब कुछ इन प पड़ने लगी है। याने बदतरीज इनके बीचमें वहशी रिवाज निक लतेजाते हैं और अच्छे रिवाज और वर्णव्यवस्था बढ़ती जाती है देवप्रयाग के पंडे नाना जातियों के हैं, जिनमें द्राविड़, कर्नाट तैलंग, महाराष्ट्री, गुजराती आदि जातियांहैं और अबभी भार के अन्य भागों से भट आकर मिलते रहते हैं। (रतूड़ी, नरेन्द्र हिन्द सो, ३१–३२)

गढ़वाल के बदरी-केदार तथा अलमोड़ा के कई मन्दिरों और नेपाल के पशुपतिनाथके रावल-पुजारी धुर दक्षिण से आते हैं, या अपनी परम्परा दक्षिण से जोड़ते हैं। बदरीनाथ के पंडे, तथा भोग पकाने वाले और गढ़वाल भरमें अत्यन्त पवित्र समझे जाने वाले डिमरी ब्राह्मण दक्षिणसे आये नम्बूरी रावलकी सन्तान है। (रतूड़ी, गढ़वाल का इतिहास, ५७-५६)

इन सब बातों से स्पष्ट है कि इनके मनोरञ्जक इतिहास में हिन्दू धर्म के एक आवश्यक अङ्ग का इतिहास है, (और उसका अध्ययन करना आवश्यक है)

८-गंगा-पुत्रों के सम्बन्धमें कुकका मत—

६४ वर्ष पूर्व गंगा-पुत्र पंडोंके सम्बन्धमें कुकने जो सूचनाएं एकत्रित की थीं, उनमें से कुछ बड़ी मनोरञ्जक हैं। वह लिखता है-गंगा-पुत्र एक प्रकार के ब्राह्मण हैं, जो बनारस में तथा अन्यत्र गंगा तट पर यात्रियों से स्नान, श्रद्धा और अन्य धार्मिक कृत्यकर वाते हैं। उनका कहना है कि जब भागीरथ गंगाजी को स्वर्ग से लाये तो उन्होंने कुछ ब्राह्मणों की पूजाकी थी, और उन्हें अधिकार दिया था कि वे भविष्य में गंगाजी को दीजाने वाली भेंट ग्रहण करलें। इन्हीं ब्राह्मणों की सन्तान ये अपने को मानते हैं। (कुक, दि ट्राइब्ज ऐंड कास्ट्स, खंड, • पृ० ३८७)

ये अपनेको गौड, सरवरिया (सरयूपारी) और कनोजिया आदि बतलाते हैं। यद्यपि इनका व्यवसाय अत्यधिक लाभप्रद है, पर वे धूर्तता और लोभ के लिये कुख्यात हैं। उनके लिये उच्च ब्राह्मणों के साथ विवाह करना अति कठिन है, इसीलिए वे आपस में ही विवाह करलेते हैं।

पंडा स्नान के लिये आये यात्रियों का धार्मिक पथ-प्रदर्शक बनता है। वह अपनी बही में उनके नाम और पते लिखता है।

जो उसके जजमान बनना स्वीकार करते हैं। स्नान-पर्वोंके अवसरों पर वह और उसके गुमास्ते तीर्थस्थानों और मन्दिरों के मार्गों पर छाजाते हैं। और यात्रियों को अपनी ओर आकर्षित करते हैं। पंडा यात्रियोंका आतिथ्य करता है और उनसे धन लेता है। वह उन्हें मन्दिरों और पवित्र स्थानोंके दर्शन कराता है। घाटोंपर कई बार वह गाएं लेकर गौदान भी करवाता है। (कुक, ट्राइब्ज ऐंड कास्ट्स, खंड, २, ३८७)

९—पंडों द्वारा धर्म प्रचार—

यही लेखक लिखता है कि पंडा, पुरोहित, जोगी और सन्यासी ब्राह्मण हिन्दू धर्मके इतने कार्यकुशल प्रचारकहैं कि संसार का कोई मिशनरी इनकी समानता नहीं कर सकता। ज्यों-ज्यों आवागमन के साधन सुलभ और सरल होते जारहे हैं, त्यों-त्यों हिन्दुओं की अधिकाधिक संख्या तीर्थ-स्थानों में पहुँच रही है। ब्राह्मण धर्म के उपरोक्त पंडा आदि प्रचारकों के संक्रम में जाकर हिन्दुस्थान की जातियां अपने जीवन के पुराने रङ्ग-ढङ्ग तीव्र वेग से खोरही हैं और उन सब रोचक बातों को खोकर हिन्दू धर्म के पूरे रङ्गमें रङ्गी जारही हैं, जो बातें मानवशास्त्र के विद्यार्थीके लिये महत्वपूर्णहैं। (कुक, ट्राइब्ज ऐंड कास्टस, खंड १, प्राक्कथन,४)

१०—गंगा पुत्रों के संबंध में शेरिंग का कथन—

८० वर्ष पूर्व पादरी शेरिंगने, बनारस में गंगापुत्रोंके संबंध में जो कुछ देखा-सुना था, उसका विस्तृत वर्णन अपनी प्रसिद्ध पुस्तक हिन्दू ट्राइब्ज ऐंड कास्टस ऐज रैप्रेजेन्टेड इन बनारस में दिया है। यह पहली पुस्तक थी जो हिन्दू जातियों के संबंधमें लिखी गई थी। यह लिखता है—गंगापुत्र ऐसे समाज के व्यक्ति हैं जो अपने रूखे व्यवहार,विषयलोलुपता और धूर्तताकेलिए कुख्यात हैं। इसलिये इस पादरी ने यह देखकर बड़ा आश्चर्य प्रकट किया

है कि फिर भी सहस्रों यात्री जो प्रतिवर्ष बनारस पहुँचते हैं, क्यों बिलकुल इनकी ही कृपापर निर्भर रहते हैं। वे बिना किसी प्रकार की शङ्का किए अपने को इन गंगापुत्रों के हाथों में सौंप देते हैं। इन गंगापुत्रों की धूर्तता की सारी कलई घर पर सब को विदित रहती है पर बाहर ये अपनी धार्मिकता के लिये प्रसिद्ध रहते हैं। ये गंगापुत्र यात्रियों को ऐसा जकड़ते हैं कि रुपए-पैसेसे नङ्गा करके ही छोड़ते हैं। जो इनके चंगुलमें नहीं फंसता उसके साथ निर्लज्जतापूर्वक व्यवहार करते हैं। बेचारे असहाय यात्री यहांसे सर्वथा अपरिचित होने के कारण, और सङ्कट निवारण का अन्य साधन न देखकर इनके दुर्व्यवहार और दुष्टता को चुपचाप सहजाते हैं। (शेरिंग, हिन्दू ट्राइब्ज ऐंड कास्टस, खंड,१, २६) शेरिंग पादरी के लिये यह समझना कठिन था कि पंडा-प्रथा में अवश्य कुछ ऐसी सुविधाएं हैं, जिनसे यह प्रथा इतनी अधिक प्रचलित है।

११-कांगड़ा-शिमला प्रान्त की भोजकी—

टिहरी-गढ़वाल की पश्चिमी सीमा से मिले हुए हिमाचल प्रदेश तथा कांगड़ा जिलेके मन्दिरोंके पुजारी जो भाजकी कहलाते हैं, बड़ी मनोरञ्जक जाति हैं। उनका इतिहास सूचित करता है कि हमारे तीर्थों पर किस प्रकार पंडों, पुजारियों, जोगियों आदि का अधिकार हुआ।

कांगड़ा और शिमला के पहाड़ों के मन्दिरों के पुजारियोंकी एक पृथक् जाति बनगई है। ऐसा कहा जाता है कि यह आरम्भ में ऐसे नाई, ब्राह्मण, राजपूत और जोगियों के मिश्रण से बनी है, जो सब आपस में विवाह करने लगे थे। बड़े-बड़े मन्दिरों जैसे ज्वालामुखी और भवन (कांगड़ा-नगर) के मन्दिर के ये पुजारी भोजकी कहलाते हैं। ये सब देवी मन्दिरों के पुजारी हैं और कहा जाता है पूजकी से भोजकी बन गए हैं। मिस्टर मारनेसने लिखा

है कि यद्यपि ये भोजकी प्रसिद्ध मन्दिरोंकेवंश परम्परागत पुजारी हैं पर ये ब्राह्मण नहींहैं। ये सब जनेऊ पहनतेहैं। वे केवल अपने बीच ही विवाह करते हैं। ये मांस खाते हैं और मदिरा पीते हैं, और विषयवासनाओं में लीन तथा आचरण हीन लोग हैं। इनमें पुरुष तो निरन्तर न्यायालयोंमें मुकदमेबाजीके लिए पहुँचे मिलते हैं और इनकी नारियां अपने दुराचार के लिये कुख्यात हैं।

कांगड़ा के डिप्टी कमिश्नर कोलोनल जैनकिन्स ने उनके सम्बन्धमें लिखा था-भोजकी इस जिलेके विचित्र जीव हैं। उनका सम्बन्ध कांगड़ा की (वज्रेश्वरी) और ज्वालामुखी के महान् मन्दिरों से है। और इनकी आय पर ही ये निर्भर हैं। वे अपने को सारस्वत ब्राह्मण बतलाते हैं। यदि उनका यह कथन सत्य है, तो निश्चय ही वे समाज में बहुत नीचे गिर चुके हैं क्योंकि कोई साधारण ब्राह्मण भी इनके हाथकी कच्ची रोटी नहीं खाता। उनकी वही स्थिति विदित होतीहै जो बनारसके गंगापुत्रोंका है। अधिक सम्भावना इस बातकी है कि ये केवल जोगी-मात्र हैं, जिन्हें देवी के मंदिर में पूजा—अधिकार प्राप्त होजाने के कारण सेंत-मेंत में पवित्रता मिलगई है। यह शब्द भोजकी संस्कृत धातु भोजसे बना है जिसका अर्थहै भोजन जिमाना। इससे इनके पिछले व्यवसाय (मन्दिरों में जिमाया जाना) पर प्रकाश पड़ता है। ये या तो आपस में विवाह करते हैं या बोध पंडित कहलाने वाले जोगियों से विवाह करते हैं। ये बड़े भगड़ालू मुकदमेबाज और आचार हीन होते हैं। (कांगड़ा-गजेटियर, ए, १६-अ पृ० १६०-१६१)

कांगड़ा-गजेटियर और शेरिंग पादरीके मतसे हम सहमत नहीं हैं। कांगड़ा-गजेटियर में साथी भोजकी जाति पर और और भी अनेक आक्षेप किए गए हैं। मेरा कांगड़ा में वज्रेश्वरी और ज्वालामुखी मन्दिरों के भोजकी पुजारियों से कई वर्षों तक

संसर्ग रहा है। उनमें पंडित चन्द्रमणि,पंडित तुलसीराम (कांगड़ा) तथा पंडित भैरवदत्त (ज्वालामुखी) से विद्वान् हुए हैं। प्रत्येक समाज में सभी प्रकार के व्यक्ति होते हैं। दो – चार व्यक्तियों के दोषपूर्ण जीवन को देखकर सारे समाज के जीवन को ही दोष पूर्ण बतलाना न्यायसङ्गत नहीं है। मैं अपने अनुभव के आधार पर कहसकता हूँ कि भोजकी जातिका जैसा चित्रण कांगड़ा गजेटियरमें किया गया है, वे वैसे नहीं हैं। यदि उनमें कोई त्रुटियां हैं तो वे अन्य तीर्थों के पंडों से अधिक नहीं हैं।

देवी की उपासना में मद्य और मांस का प्रयोग प्राचीन कालसे चला आता है इसलिए यदि भोजकी आजभी इन वस्तुओं का उपासना में प्रयोग करते हैं, तो उनका यह कार्य उतना गर्हित नहीं कहा जासकता, जितना उन पंडे–पुजारियों का जो वैष्णव मन्दिरोंमें पूजा करतेहुए भी इन वस्तुओंका सेवन करते हैं। हिमाचल प्रदेश के शिवमन्दिर में बलिदान होते हैं।

भोजकियों के इतिहास के सम्बन्ध में दो अनुमान लगते हैं। वे बौद्ध वज्रयानिया से हिन्दू बने हैं, या भारत की प्राचीन भोजक ब्राह्मण जातिके हैं।

कांगड़ा—वज्रेश्वरी का मन्दिर, पहले बौद्ध वज्रयानियों का मन्दिरथा जैसाकि उसका नाम ही सिद्ध करताहै। यदि भोजकी प्राचीन–काल से इस मन्दिरके पुजारी चले आरहे हैं। तो निश्चय ही ये बौद्ध वज्रयानियोंसे हिन्दू पुजारीबनेहैं। बोध पंडित नामक जोगियोंका बौद्ध भिक्षुओंका वंशज होना और भोजकियोंमें उनके साथ विवाह करनेकी प्रथाका पाया जानाभी यही सिद्ध करताहै।

१२–भविष्य पुराण में भोजक और मग—

भविष्य पुराण में मुख्यतः सूर्य भगवान की उपासना क

वर्णन है। उसमें भारत में ईरान से आकर बसने वाली मग जाति का मनोरञ्जक वर्णन दिया गया है।

पूर्वार्द्ध में ११३ अध्याय से १३६ अध्याय तक भोजकों की उत्पत्ति और उनके द्वारा सूर्य-पूजा का वर्णन है। १ ३वें अध्याय में भोजकों की उत्पत्ति और लक्षण दिए गए हैं। ११:वें अध्याय में साम्ब द्वारा श द्वीप (शकस्थान) से मगों को लानेका वर्णन है। यहां मगों को उत्पत्ति भी दीगई है। १२५ वें अध्यायमें मगों के विवाद और सन्तान का वर्णन है। १३८ वें अध्याय में मगोंकी प्रशंसा और १३६ वें अध्याय में व्यासजी के द्वारा श्रीकृष्ण को मग-ज्ञान-योग सुनाने का वर्णन है।

भविष्य पुराण में मगों के वर्णन का सार यह है कि जब श्रीकृष्ण के पुत्र साम्ब को कुष्ठ रो । हो गया तो उन्होंने इस रोग को दूर करने के लिए सूय क' विधिवत उपासना करनी चाही। उस स य भारतमें इसके लेए उपयुक्त आचार्य नहीं रह गए थे। इसलिए वे अपने आचार्य के आदर्श से शाक द्वीप शकस्थान, ईरान) से मगाचार्योंको लाए। इन मग ब्राह्मणोंसे उन्होंने मू स्थान (मुलतान) में सूर्य-मन्दि की प्रतिष्ठा कराई। यह सूर्य-मन्दिर या इसके स्थान पर बना सूर्य-मन्दिर मुलतानमें सातवीं-अ ठवीं शताब्दी तक विद्यमान था। (देखिए चचनमा, ईलियट ऐ'ड डौसन, हिस्टरी आव इंडिया, भाग १)

मग ब्राह्मणों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में कहा गया है, कि मिहिर गोत्रके सुजिह्व नामक ब्राह्मणकी निक्षुभ नामकी एक कन्या थी। जिस पर भगवान भास्करने कृपा की और उसे जराशब्द या जरशस्तनामक एक पुत्रदिया। मग ब्राह्मण इन्हीं जरशस्तके वंशज हैं। वे कमर में अव्यङ्ग पहनते हैं।

पारसियोंकी छन्दावस्था के मिहिरयस्तखण्ड से पता लगता

है कि एक बार सूर्योपासक और अग्नि उपासक पारसियों में झगडा हुआ। फलतः सूर्योपासक मग भारतमें आकर रहने लगे। इससे भविष्य पुराणकी कथाकी पुष्टि होती है।

साव द्वारा भारत में लाए गए मग-ब्राह्मणों के साथ यहां की किसी भी ब्राह्मण जातिने विवाह-संबंध करना अस्वीकार कर दिया। क्योंकि मग-ब्राह्मण सूर्य-मंदिरों का चढावा ग्रहण करते थे जो प्रायः कुष्ठ रोगियों द्वारा चढ़ाया जाता था। शिव, भैरों, सूर्य आदि अनेक-क्रूर देवताओं के मंदिरोंका चढावा ग्रहण करना लोग अनुचित समझते थे। फिर कुष्ट रोगी साम्ब द्वारा स्थापि मन्दिर के पुजारियों को पुत्रियां देना कौन पसन्द करता? इस कठिनाईके कारण कोई मग-ब्राह्मण यहा टिकनेको तैयार न हुआ तब साम्ब के कहने-सुनने से भोजकों ने, जो स्वयं भी पुजारी थे मग-ब्राह्मणों से विवाह-सम्बन्ध स्थापित करदिया।

इससे स्वयं भोजक जाति के इतिहास पर भी मनोरञ्ज प्रकाश पड़ता है और ज्ञात होता है कि प्राचीनकाल में ही भोज जाति का हिन्दू समाजमें उच्च स्थान नहीं रहा और प्राचीनकाल ही इनका मन्दिरों के पुजारियों से कुछ सम्बन्ध रहा है।

मिहिर जाति भी पारिस से भारतमें आकर बसी थी वराहमिहिर ज्योतिषी इसी जाति का था मिहिर सूर्योपासक थे और ज्योतिषके लिये प्रसिद्ध थे। सम्भव है, उनके ज्योतिष-ज्ञा के कारण ही उन्हें पारिस से यहाँ बुलाया गया हो। ईरानी आर भाषाओं के ह का स्थान भारत की आर्य भाषाओं में स ले लेन है। इसलिये ईरानी-पारसी भाषा का मिहिर भारतीय भाषाओं मे मिसर या मिश्र बनता है। जो पारिस की मिहिर जाति और भारत की मिश्र जाति के एक होने की सम्भावना प्रकट करताहै। भारत के अनेक भागों में छोटी-मोटी पूजा करने वाले, तथा

मढ़ी का दान लेने वाले ब्राह्मणों को अभी तक मिसर कहते हैं। जिससे पता चलता है कि बाहिर से आये इन पुजारी-ज्योतिषी ब्राह्मणों का काम मन्दिरों में पूजा करना, जन्मपत्री बनाना, मढ़ी का दान लेना आदि था। जिसके लिये उन दिनों उच्च समझे जाने वाले ब्राह्मण तैयार न होते थे।

१३—यमुनोत्तरी के पण्डे—

यमुनोत्तरी के पण्डे शीतकालमें खरसाली के पास गाँवमें चले जाते हैं। कुछ समय तक वहाँ मन्दिर का न बनना और अब तक छोटा सा मन्दिर रहना सिद्ध करता है कि इस तीर्थ में पहले अधिक यात्री नहीं पहुँचते थे, और इसकी आय अधिक न थी। इसलिये बाहर के चतुर व्यक्तियों ने इस तीर्थ पर अधिकार करने में कुछ लाभ नहीं समझा और यहाँ प्राचीन काल से चले आने वाले पुजारी ही अधिकारी बने रहे। इस तीर्थ का अधिक प्रचार न होने के कारण वे शिक्षा-सभ्यता में आगे न बढ सके। रतूड़ी ने लिखा है—यह लोग जातके ब्राह्मण हैं, मगर कौन ब्राह्मण हैं, यह कुछ नहीं मालूम। इनके ताल्लुकात शादी गङ्गोत्तरी के पण्डों से और अपने ही गिर्दनवाह के ब्राह्मणों से रहता है, जिनके बीच रस्म-रसूमात भिन्न खस, ब्राह्मणा के हैं। बल्कि वे लोग खस ब्राह्मण ही हैं। (रतूड़ी, नरेन्द्र हिन्दू लौ, ३-)

खस-ब्राह्मण का अर्थ है, यहाँ के प्राचीन ब्राह्मण, जो अपने लिये नकली पूर्वज ढूंढने दूर-दूर मैदान में नहीं भटक्ते और इसलिये इस तीर्थ की प्राचीन परम्पराओं की आज तक रक्षा करते आ रहे हैं, और बुराइयों से दूर हैं।

ये गृहस्थी ब्राह्मण हैं। विभिन्न थोक बारी-बारी से पूजा करते हैं इनके बीच शिष्य रखने की प्रथा नहीं है। पुजारी अधिकार वंश परम्परागत है। जब तक पुजारी पूजा करता है, उसे

ब्रह्मचर्य में रहना होता है। अशिक्षित होने के कारण ये लोग उस परगने के रीति रिवाजों से मुक्त नहीं हैं। (रतूड़ी, गढ़वालका इतिहास, ६१-६३)

१४--उत्तरकाशी के पण्डे—

यह लोग जोशी जात के ब्राह्मण हैं। और ब्राह्मण व्यवस्था इनके बीच अच्छी हालत पर है। कर्म-संस्कार सब होते हैं। इनके ताल्लुकात शादी गङ्गोत्तरीके पण्डों मे और दूसरे मुकामात के ब्राह्मणों से हैं। (रतूड़ी, नरेन्द्र हिन्दू लॉ, ३९)

१५—गङ्गोत्तरी के पण्डे—

गङ्गोत्तरी के पण्डे ब्राह्मण हैं और अपने को सेमवाल कौम के ब्राह्मण जाहिर करते हैं। इनका ताल्लुक रिश्तेदारी बारहाट के पण्डों से और यमुनोत्तरी के पण्डों से ज्यादतर है। और हिन्दुस्तान के आखिरी पहाड़ी हिस्से मे यानी हिमालय के करीब ही इनकी सकूनत होने से शायस्तगी की रोशनी अब कुछ इन पर पड़ने लगी है। याने बतदरीज इनके बीच से वहशी रिवाज निकलते जाते हैं। और अच्छे रिवाज और वर्ण व्यवस्था बढ़ती जाती है। ताहम यह कहा जा सकता है कि अभी मजहबी तालीम की कमी होने से पूरी शायस्तगी मुत्ताबिक वर्ण धर्म के पूरी होने में कुछ ही देर है। लेकिन उम्मीद है कि जल्दी ही पूरी हो जायेगी। (रतूड़ी, नरेन्द्र, हिन्दू लॉ, ३२)

१६—गङ्गोत्तरी के प्राचीन पण्डे—

अब यह भी प्रमाण मिला है कि प्राचीन कालमें गङ्गाजी के पूजक अर्चक धराली ग्राम के बुढ़ेरे (किरात) थे, जो अपने को राजपूत बताते हैं। जब ब्राह्मण जाति के लोग यहाँ तक पहुँच गये तब उन्होंने क्रमशः धराली वालों से मन्दिर के सब अधिकार

ले लिये। और मुखबा ग्राम में जो धराली के सामने गङ्गाजी पार है, बस गये। अब तक भी वहीं रहते हैं। अब इनकी संख्य अधिक होगई है। अब यही लोग गङ्गोत्री-मन्दिर के कितनी ह पीढ़ियों से पण्डे और पुजारी हैं। ये लोग अपने को सेमवाल जा क ब्राह्मण बताते हैं। किन्तु अपूर्ण शिक्षा के कारण उस प्रान्त रीति-रिवाजों से मुक्त नहीं पाये जाते हैं। यहाँ रावल-प्रथा नह है। इनके पांच थोक हैं। पाँचों बारी-बारी से पूजा करते हैं इनके नीच शिष्य रखने की प्रथा नहीं है। ये गृहस्थी ब्राह्मण हैं जब तक पुजारी पूजा में रहता है, उसे ब्रह्मचर्य में रहना पड़त है। यह प्रथा प्राचीनहै। (रतूड़ी,गढ़वालका इतिहास, पृ० ८६-६०

१७—बदरीनाथ के देव प्रयागी पण्डे—

बदरीनाथ के पण्डे जो वर्गों में बांटे जाते हैं, १—देव प्रयागी पण्डे और २—डिमरी पण्डे। देवप्रयागी उन सब यात्रियं के पण्डे हैं जो हिमालय को छोड़कर हिन्दुस्तानके अन्य भागों बदरीनाथ आते हैं। हिमालय के विभिन्न भागों, कश्मीर से लेक नैपाल तक से आने वाले यात्रियों के पण्डे डिमरी होते हैं।

देव प्रयागी पण्डों का एक विचित्र वर्ग है जो हिन्दुस्था के विभिन्न भागों से आई हुई जातियों की खिचड़ी है। गढ़वाल चारों धामों के द्वार—देवप्रयाग में बसे हुए इन पण्डों का इतिहा बड़ा मनोरञ्जक है, और उसका विशेष अध्ययन अपेक्षित है इन्हें तीन वर्गों में बांट सकते हैं—

(क) जिनके मूलस्थान का निश्चित पता नहीं है— जो सम्भवतः पहले मन्दिरों में विभिन्न प्रकार की सेवा करते थे जैसे उनमें से कुछ जातियों के नाम सूचित करते हैं। इस वर में ये जातिया हैं—मालिया (माला बनाने वाले) २—टोडरिय

(प्रबन्ध करने वाले) ३—कोटियाल (भण्डारी) ४—पुरोहित ५—घयाणी (शिर पर देवता बुलाकर भविष्य कथन करने वाले) ६—अर्जुन्या, ७—परयाल, ८—वावलिया (जलाशय-वाड़ी पर जल पिलाने वाले) ९—अलखणिया (अलख अलख पुकारने वाले) १०—रेवानी, और ११—तिवाड़ी । अलखणिया जातिका सम्बन्ध सम्भव है अलखणिया सन्त सम्प्रदाय से रहा हो । तिवाड़ी और पुरोहित जातियां सर्वत्र मिलती हैं। यह कहना कठिन है कि ये जातियां पहले कहाँ रहती थीं, किन मन्दिरों से इनका सम्बन्ध था और ये कबसे बदरीनाथ के पण्डा बनीं। पर हमारा अनुमानहै कि इस वर्गकेपण्डे सम्भवतः बदरीनाथके सबसे प्राचीन पण्डे हैं और दाक्षिणात्य जातियों के पण्डा बननेसे पहले यह जातियां पण्डाचारी करती हैं। रतूड़ी का भी यही मत है। (रतूड़ी, गढ़वाल का इतिहास, १६१)

१८—(ख) दक्षिणात्य के जातियों के पंडे—

इस वर्ग मे देवप्रयागी पण्डों की वे जातियां आती हैं जो विन्ध्याचल नर्मदाके दक्षिणसे आई बतलाई जातीहैं। निश्चय ही ये जातियां क वर्ग की जातियों से पीछे आई हैं। इस वर्ग में देवप्रयागी पण्डों की ये जातियां गिनी जा सकतीहैं—१-भट, २-द्राविण, ३—कर्नाटक, ४—तेलंग, ५—महाराष्ट्र, ६—गुजराती।

ये जातियां दक्षिणी ब्राह्मणों की औलाद में से हैं, जो देवप्रयाग में रघुनाथजी के मन्दिर की पूजा के लिये बुलाये या रखे जाते हैं। और वहाँ पण्डों की लड़कियों से विवाह करके देवप्रयाग-निवासी बन जाते हैं। बल्कि पण्डों की लड़की से विवाह करना ही उनकी जमानत मानली जाती है। और उनकी सन्तान पण्डों में गिनी जाती है। और वे जजमान बनाते हैं। तप्तकुंड और देवप्रयाग के घाटमें जजमान नहलाते हैं और

दान-दक्षिणा लेते हैं। किन्तु पूजा में उन्हें भाग (हक) नहीं मिलता। (रतूड़ी, नरेन्द्र, हिन्दू लॉ, ३१)

१६—(ग) गढ़वाली ब्राह्मण जातियां जो देवप्रयागी पण्डा बन गई हैं—

उपरोक्त दोनों प्रकार के पण्डों ने घर-जमाइयों के लिये द्वार खोला हुआ है। अनेक गढ़वाली ब्राह्मण जातियों के युवक घर-जमाई बनकर देवप्रयागी बन गये हैं। तथा इनके लिये और अपने लिये कमाते हैं। इनमें कुछ धर्मपुत्र भी बनकर देवप्रयागी बने हैं। रतूड़ी ने १—डोभाल २—डङ्गवाल ३—नौटियाल ४—बहुगुणा, ५—जुयाल, ६—मिस्मर (मिश्र) ७—उन्याल, ८—घुगत्याल, ९ डबराल, १०—थपल्याल और ११—घलौणी जातियां इस वर्ग में गिनी हैं। (रतूड़ी उपरोक्त, ३१)

पण्डाचारी पर इनका अधिकार वही है जो दूसरे पण्डों का है। इससे सिद्ध है कि जो भी ब्राह्मण धर्मपुत्र या घर-जँवाई बनकर पण्डा में सम्मलित होता है वह सचमुच पण्डा ही हो जाता है। उसे पण्डाचारी के सारे अधिकार मिल जाते हैं। इनमें यह प्रतिबन्ध नहीं है कि जिसे कोई पण्डा अपना धर्मपुत्र या घरजँवाई बनाये वह पण्डे का ही पुत्र हो, पर उसका ब्राह्मण होना आवश्यक है। (रतूड़ी, उपरोक्त, ३१-३२) इससे रतूड़ी का यह कथन विश्वसनीय है कि देवप्रयागी पण्डे शुद्ध ब्राह्मण हैं।

वर्ग ग में जो गढ़वाली जातियां गिनी गई हैं उनके केवल वे व्यक्ति (या उनकी सन्तान) पण्डों में गिनी जाती हैं जो देवप्रयागी पण्डा के दामाद (या पुत्री के पुत्र) घरजवाई होते हैं।

२०—देवप्रयागी पण्डों की घरजँवाई प्रथा—

पुत्री की सन्तान को अपना उत्तराधिकारी बनाने की प्रथा

स्मृतियों में भी मिलती है, पर उत्तर भारत की अपेक्षा दक्षिणी भारतमें इस प्रथा का अधिक प्रचार था। जहाँ आज भी नायर जैसी जातियों में सम्पत्ति का उत्तराधिकार पुत्र को न मिलकर पुत्री को मिलता है। यह प्रथा दक्षिण से ही देवप्रयाग आई हो, तो असम्भव नहीं। सारा देवप्रयाग घर जँवाइयों से भरा है। देवप्रयागी पण्डों में पुत्रों की अपेक्षा क्या पुत्रियां अधिक उत्पन्न होती हैं, कहना कठिन है। पर इतना अवश्य कहा जा सकता है कि इस प्रथा ने बदरीनाथ की यात्रा को प्रोत्साहित करने में बड़ा योग दिया है। पण्डों के पुत्र ही नहीं, पुत्रियों के पति भी इसी व्यवसायमें जुट जातेहैं। पण्डे अपनी पुत्रियों को भी देवप्रयाग में ही रखना चाहते हैं। हिन्दुस्थान और हिन्दू जाति इतनी विस्तृतहै कि जितने अधिक घरजँवाई पण्डे बनेंगे, उतने ही अधिक जजमानों को वे अपने वशमें ला सकेंगे।

कुछ वर्षों से देवप्रयागी पण्डों ने निश्चय किया है कि धर्म-पुत्र या घरजँवाई देवप्रयाग मे पहले से बसे पण्डे–परिवारों में से ही लिये जाँय और उन्हीं मे विवाह सम्बन्ध किया जाय, इस कारण देवप्रयागी पण्डों मे विवाह का समस्या बड़ी जटिल होगई है। गढ़वालमे दादा, नाना और माता की जातियों में विवाह न करने की प्राचीन प्रथा है जिसका पालन करना देवप्रयागी पंडों के लिये असम्भव होगया है, अनेक घरों मे २०-२५ वर्ष तक की अविवाहिता कन्याएं हैं। अति संकीर्ण क्षेत्र में विवाह सम्बन्ध करने से एक परिवार से दूसरे परिवार मे रोग फैलने का भय रहता है। कन्याओं की उत्पत्ति बढ़ रही है और अनेक नई समस्याएं और बुराइयां उत्पन्न हो रही हैं, जिन्हें दूर करने के लिये पण्डों की इस अलकापुरी को शीघ्र या देर में इस नियम को हटाना पड़ेगा।

देवप्रयागी पण्डों के वैभव और विलासपूर्ण जीवनसे लोग चौंकते हैं। तीर्थों और मन्दिरों से इनका सम्बन्ध होने के कारण इनमें और पथ प्रदर्शक या गाइडमें अन्तर है। पर पण्डोंसे सर्वथा त्याग, तितीक्षा और कठोर तपस्यापूर्ण जीवन की आशा करना समयके विपरीत है। और पण्डों को भी अपना जीवन इस प्रकार रखना चाहिये जिससे उन पर और तीर्थों पर यात्रियों की श्रद्धा बनी रहे।

२१–डिमरी पंडे–

ये गढ़वाल में डिम्मर जाति के निवासी हैं और उच्चकोटि के सरोला ब्राह्मण माने जाते हैं। इनकी उत्पत्ति के सम्बन्ध में रतूड़ी ने लिखा है–जब बदरीनाथ पूजक सन्यासी मर गया था और कोई सन्यासी वहाँ विद्यमान न होने के कारण महाराजा टिहरी ने गोपाल नामक नम्बूरी जाति के ब्राह्मण को, जो गृहस्थी था, और 'जो मन्दिर में पाचक था, रावल बनाया था। तब उसने निवेदन किया था कि मेरे मठाधीश होने से मेरी जाति बिरादरी के लोग मेरी सन्तान से विवाह सम्बन्ध छोड़ देंगे। अब मुझे यहाँ की प्रथा के अनुकूल गृहस्थ छोड़ कर ब्रह्मचर्य में रहना पड़ेगा। मेरे पश्चात् मेरी सन्तान मेरी उत्तराधिकारी न होगी। इसलिये इनकी आजीविका का स्थायी प्रबन्ध होना चाहिये। महाराजने वहाँ के ब्राह्मणों को आज्ञा दी कि तुम लोग इनकी सन्तान के साथ अपना विवाह-सम्बन्ध स्थापित करलो। उन्होंने राजाज्ञा शिरोधार्य की। विवाह-सम्बन्ध जुड़ गया। लक्ष्मी-मन्दिर की वृत्ति और मन्दिर में रसोई का काम भी और मन्दिर की प्रतिदिन नौकरियों का भी प्रबन्ध कर दिया। तबसे यह वृत्तियां इनके वंश में चली आती हैं। और डिमर ग्राम इनको रहने के लिये दिया था, जिसमें रहने से इनकी डिमरी

संज्ञा हुई। (रतूड़ी गढ़वाल का इतिहास, ५७–५८) एटकिनसन ने भी डिमरियों को नम्बूरी रावल की गढ़वाली ब्राह्मणी से उत्पन्न सन्तति माना है।

गोपाल नम्बूरी जबसे रावल बने तबसे (सं० १८३३ से) नम्बूरी, चोली या मुकाणी नामक केरल प्रदेश की जातियों में से ही बदरीनाथ का रावल चुनने की प्रथा चल पड़ी और इसी प्रकार उस गोपाल रावलके वंशजों के हाथ में बदरीनाथ का भोग पकाने और बदरीनाथ का पण्डा बनने का अधिकार आगया। ऐसा प्रतीत होता है कि देवप्रयागी पण्डों में से कमसे कम पहला वर्ग डिमरी पण्डों से अधिक प्राचीन है, क्योंकि डिमरी जातिके बने २०० वर्ष भी नहीं हुए।

२२–केदारनाथ के पंडे–

त्तरी तथा १४—उत्तरकाशीके पंडोंका उल्लेख किया है, वहां केदारनाथके पंडोंके सम्बन्धमें कुछ भी नहीं लिखा है। पर यहीं (१६) पैरामें और दूसरे मुकामातके पंडे शीर्षक में लिखा है—और दूसरे मान्दिरों में जो विभिन्न स्थानों में स्थिति हैं, केवल शिव-मन्दिरों को छोड़कर जहां प्रायः गुसांई या भहडे पुजारी हैं, शेष सब मन्दिरों में पंडे व पुजारी ब्राह्मण जाति के हैं, चाहे उनके आचार विचार में कुछ विभिन्नता भी हो नरेन्द्र हिन्दू लॉ, (सं० १६७४, ३२)

२५—राहुल का मत—

संवत २०१० में राहुल ने गढ़वाल में लिखा है—केदारनाथ के इतिहास या अध्ययन करने पर यह पूरा विश्वास हो जाता है, कि केदारनाथके पंडा लोग प्राचीनकालसे ही उसके तीर्थ पुरोहित होते आए हैं। यह शुद्ध ब्राह्मण हैं। और इस भूखंड के सबसे पुराने ब्राह्मणों में हैं। (राहुल, गढ़वाल, पृ० ८-६ के बीच जोड़ा हुआ पत्र)

केदारनाथ के पंडोंको मैं अब्राहमण नहीं मानता। अब्राह्मण मानने के लिए यह भी मानना पड़ेगा कि केदा नाथ का मन्दिर और तीर्थ सभी सौ—दो सौ वर्ष तक परित्यक्त रह गया, जिसे खस क्षत्रियोंने पीछे दखल किया। वास्तविकता यह मालूम होती है कि केदारनाथ के पंडे—जो बीस-पच्चीस गांव में बिखरे हुए हैं-बहुत प्राचीनब्राह्मण हैं। प्राचीन होनेकेकारण पहले वह क्षत्रियों की भी लड़कियां लेलिया करते होंगे, जिसे पीछे मैदान से आए ब्राह्मण बुरा मानते, उनको ओर सन्देह की दृष्टि से देखते थे। (राहुल गढ़वाल. ३२१) केदारनाथ के पण्डे प्राचीन ब्राह्मण हैं। कुञ्जापुरी देवीके पुजारीभी खस हैं। (राहुल,उपरोक्त ३३०)

रावल कहलाता है। कुछ मन्दिरों में पुरोहित होते हैं जो मन्दिर मे यज्ञ आदि करते हैं। कुछ मन्दिरोंके पुजारी मन्दिरके प्रबन्धकों या प्रबन्धक समिति द्वारा नियुक्त किए जाते हैं। दूसरे मन्दिरोंमें पूजा का अधिकार किसी जातिको प्राप्त है, उस जाति के विभिन्न परिवार अपनी-अपनी बारी पर मन्दिर की पूजा करते हैं।

अनेक पुजारियों ने विशेषकर दक्षिणी पुजारियोंने, जिनमे ब्रह्मचर्य पूर्ण जीवन यतीत करने की आशा की जाती है, कुछ समय से छोटी जाति की उपपत्नियां रखना आरम्भ कर दिया । ऐसी उपपत्नियों या उनकी सन्तान का मन्दिर पर अथवा

की सीमाके अन्दर सुव्यवस्था रखनेके लिए उचित नियम बनाएं। १६०७ में केदारनाथके पंडों और रावलके बीच जो मुकदमा चला था, उसमें पंडे यह सिद्ध न कर सके, कि उन्हें मन्दिरमें सामलिया और भंडारी पदों का एकाधिकार प्राप्त है। (स्टोवेल, कुमाऊं रूलिंग्ज, १०१, पन्नालाल, कस्टमरी लॉ, ५४–५५)

२८—पंडों, पुजारियों के अधिकार, पन्नालाल का कथनः—

१६१६ में कुमाऊंकी रीति-नीतियों (कस्टम्स) के संबंध में जांच–पड़ताल करनेके लिये उत्तर प्रदेश सरकारने श्रीपन्नालाल को नियुक्त कियाथा। जांच–पड़तालके पश्चात् उन्होंने जो रिपोर्ट दी उसमें कुमाऊँ-प्रदेश के मन्दिरों के पुजारी, पंडे आदिके संबंध में भी अपनी रिपोर्ट में अनेक मनोरञ्जक बातें लिखी है।

२६–पंडा—

पन्नालालने लिखा है इन लोगोंको तीर्थ–यात्रियोंके गाइड (पथ-प्रदर्शक) होनेका एकाधिकार प्राप्त है। और विभिन्न तीर्थों पर यात्रियों से मेचुइटी (सङ्कल्प) लेनेका भी एकाधिकार इन्हीं कोहै। किसी भी मन्दिरके प्रबन्धमें उनका कोई हाथ नहीं होता। न किसी मन्दिर की सम्पति में या चढ़ावेमें उनका कोई अधिकार होता है। पंडों में मुख्य-१–रुद्रप्रयागी पंडा हैं, जिनका संबंध बदरीनाथ की यात्रा से और बदरीनाथ के निकट तप्तकुंड से है। २–केदारनाथके पंडा, जिनका सम्बन्ध रुद्रप्रयागसे ऊपर मन्दाकिनी उपत्यका के मन्दिरों से है। इनके अतिरिक्त और भी पंडा हैं। (पन्नालाल, कस्टमरी, लॉ, ४६)

३०–पुजारी—

ये मन्दिरोंमें पूजा करते हैं। कुछ मन्दिरोंका प्रधान पुजारी

रावल कहलाता है। कुछ मन्दिरों में पुरोहित होते हैं जो मन्दिर मे यज्ञ आदि करते हैं। कुछ मन्दिरोंके पुजारी मन्दिरके प्रबन्धकों या प्रबन्धक समिति द्वारा नियुक्त किए जाते हैं। दूसरे मन्दिरोंमें पूजा का अधिकार किसी जातिको प्राप्त है, उस जाति के विभिन्न परिवार अपनी-अपनी बारी पर मन्दिर की पूजा करते हैं।

अनेक पुजारियों ने विशेषकर दक्षिणी पुजारियोंने, जिन्से ब्रह्मचर्य पूर्ण जी न व्यतीत करने की आशा की जाती है, कुछ समय से छोटी जाति की उपपत्नियां रखना आरम्भ कर दिया है। ऐसी उपपत्नियों या उनकी सन्तान का मन्दिर पर अथवा मन्दिर की सम्पत्ति पर किसी भी प्रकार का अधिकार नहीं मा I जा सकता। ये पुजारी अपनी वर्णशङ्कर सन्तान और पत्नियों को अपनी व्यक्तिगत सम्पति में से इच्छानुसार भाग देसकते हैं, पर यह वर्णशङ्कर सन्तान और पत्नियां मन्दिर-सम्पत्ति प अपना कोई अधिकार नहीं जमासकती। (पन्नालाल, कस्टमरी लॉ, ४९)

३१-मन्दिरों के जोगी पुजारी—

अनेक मन्दिरों में, विशेषकर शिव मन्दिरों में, गृहस्थी जोगी पुजारी मिलते हैं जो विभिन्न नामों, नाथ, गिरि, पुरि, वन, भारती, गुसाईं, बैरागी और गुदार नामासे पुकारे जाते हैं। आज कल भी हम देखते हैं कि किसी नए या पुराने मन्दिर में जहां कोई निश्चित पुजारी नहीं होता, कोई साधु वेषधारी व्यक्ति आकर डेरा जमा लेता है, और मन्दिर की भेंट का स्वामी बन बैठता है। धीरे-धीरे वह या उसके चेले किसी चलती-फिरती साधुनी माई या अन्य स्त्रीसे सन्तान उत्पन्न करलेते हैं। और मन्दिरके परम्परागत पुजारी बन बठते हैं। समय आने पर यदि उस मन्दिर की मान्यता से किसी सम्पन्न व्यक्ति को सन्तान आदि की प्राप्ति हो जाती है तो वह मन्दिर को भूमि आदि अर्पित कर देता है। इस

प्रकार इन गृहस्थी पुजारियोंको भूसम्पत्ति भी मिलजातीहै। समय आने पर ये अज्ञात कुलशील वर्णशङ्कर ब्राह्मणों से अपना संबंध जोड़ लेते हैं और मन्दिर की पूजा में इन्हें लगा देखकर लोग इन्हें ब्राह्मण ही मान बैठते हैं। इस प्रकार मन्दिर केवल अविवाहित साधु को गृहस्थी और सम्पत्ति-वान् ही नहीं बना डालते वरन् उसको द्विजत्व भी प्रदान करते हैं। अनेक छोटे मन्दिरों में यही प्रक्रिया मिलती है। पर कई ऐसे मन्दिर भी हैं, जिनका निर्माण राजाओं या सम्पन्न व्यक्तियोंने किया है और उनमें ब्राह्मण पुजारियोंको नियुक्तकरके उनके भोजनादि,निर्वाह तथा मन्दिर-सेवाके लिए मन्दिरोंको भूमि भी अर्पित होती है अथवा मन्दिरकी आय पर्याप्त होती है, तो पुराने पुजारियों के वंशज आज तक पूजा करते मिलते हैं।

३२–गृहस्थी जोगियों के सम्बन्धमें पौ की रिपोर्ट–

जोगी पुजारियोंने बहुत पहले से ही पत्नियां रखना आरंभ करदिया था। सन् १८८४ में पौ ने लिखा था—जोगियोंकी बहुत सी जातियों में जो गिरिपुरी, नाथ, बैरागी आदि नामों से प्रसिद्ध हैं, उत्तराधिकार चेलाको मिलता है, पुत्रको नहीं मिलता। इससे सिद्ध होता है कि परम्परा तब से चली आरही है जब इन सम्प्रदायोंके साधु ब्रह्मचारी हुआ करते थे। आज कल ब्रह्मचर्य का पालन स्वप्न हो चुका है। इन जोगियोंमें से अधिकांश, विशेषकर श्रीनगर के निकट के गिरे किसान बनचुके हैं। दूसरों और उनके बीच की पहचान केवल उनका भगवां वस्त्र रहगया है। और कुछ अपने कानों में बड़े-बड़े लकड़ी के मूँदड़े पहने रहते हैं। (पौ, गढ़वाल, सेटलमेंट रिपोर्ट, पृ० ४४)

३३–आजकल इनकी दशा—

आज से चालीस वर्ष पहले पन्नालाल ने लिखा था–अब

ब्रह्मचारी रहने की प्रथा सर्वथा लुप्त होगई है। नाम मात्र के लिए ऐसी आशाकी जातीहै कि कुछ मन्दिरों या अन्य धार्मिक संस्थाओं के केवल महन्त या प्रधान पुजारी अविवाहित रहें। किन्तु उनमें भी उपपत्नियां, यहां तक कि विवाहिता पत्नियां रखने की प्रथा तीव्रवेग से बढ़रही है। अब (१६१८) में इन सम्प्रदायोंके लोगों को राजपूतों से भिन्न करने वाली कोई बात नहीं रह चुकी है। अलमोड़ा में तो उन्होंने दैनिक जीवन में भगोयावस्त्र पहनना तक छोड़दिया है। उनमें से जो पुजारी नहीं हैं, प्रत्येक व्यक्ति अवश्य ही गृहस्थी और स्त्री–बच्चों वाला घरबारी मिलता है। इसलिए यह स्वाभाविक ही है कि उन्होंने चेला मूँडनेकी प्रथा बन्द करदी है, जिससे चेला उनकी सम्पत्ति में से भाग न मांगे। कुछ अपने पुत्रों को ही अपना चेला बनालेते हैं। दो भाइयों में प्राय यह देखा जाता है कि वे एक दूसरेके पुत्रों को अपना चेला बनाडालते हैं। जिससे घर की सम्पत्ति घर में ही बनी रहे। बाहरी व्यक्ति को चेला बनाने और उसे अपना उत्तराधिकारी बनाने की प्रथा अब समाप्त हो चली है। कमलेश्वर मन्दिर श्रीनगर के गुसांइयों में अभी तक (१६१६) यह प्रथा है कि यदि महन्त का चेला न हो तो पुत्र को उत्तराधिकार मिल सकता है। पर यदि चेला हो तो उसे केवल वही सम्पति मिलेगी जो उसका पिता उसे अपने जीवनकाल में दे चुका है। (पन्नालाल, कस्टमरी लौ, १४)

इसलिये या तो महन्त चेला मूँडते ही नहीं अथवा अपने भाई-भतीजे को ही मूँडते हैं। बूढ़ाकेदार (टिहरी) और उत्तर काशीके विश्वनाथ मन्दिरके पुजारी गृहस्थी जोगी–गुसांई हैं और पुत्र को ही चेला बनाते हैं।

३४–पण्डे–पुजारियों की रीति–नीतियां—

पंडे–पुजारी आदि मन्दिरों या तीर्थोंसे सम्बन्धित-जातियों

की कुछ निराली रीति-नीतियां हैं। उनकी सम्पत्ति तीन प्रकार की मानी जाती हैं:—

१—साधारण चल या अचल सम्पत्ति,

२—जजमानी अधिकार-अर्थात् उन व्यक्तियों के, जो उनके जजमान कहे जा सकते हैं, मन्दिर या तीर्थमें धार्मिक कृत्य करना और उनसे दक्षिणा लेना।

३—मन्दिर या तीर्थमें पूजा या अन्य प्रकारकी सेवा करने का अधिकार और उसके बदले में मन्दिर या तीर्थ मे आए हुए चढ़ावे का सम्पूर्ण या कुछ अंश प्राप्त करने का अधिकार।

३५—साधारण चल-अचल सम्पत्तिका विभाजन—

पंडे और पुजारियों की चल-अचल सम्पत्तिका विभाजन इन जिलों में प्रचलित साधारण प्रथाओं के अनुसार ही होता है। किन्तु पण्डों में प्रायः पण्डा जातियों को छोड़कर अन्य जाति के व्यक्ति को धर्म पुत्र या घरजंभाई बनानेकी प्रथा नहीं है। यद्यपि प्रतिवाद भी कभी-कभी मिलजाते हैं। डिमरी लोग केवल डिमरी को ही धर्मपुत्र बनाते हैं और घरजंवाई नहीं रखते।

३६—जजमानी अधिकार—

साधारण व्यक्तिगत सम्पत्ति के नियम इन पर लगते हैं, पर निम्न प्रथाओं को ध्यान में रखते हुए:—

१—जजमानी अधिकार उसी जाति को मिल सकते हैं, जिस जाति के पण्डा-पुजारी हैं। यदि कोई पण्डा-पुजारी अन्य जाति वाले व्यक्ति को धर्मपुत्र बनाता है, या घरजंवाई रखताहै, या कमअसल, गंगाड़ी, गगाड़ी पत्नियों से उत्पन्न अथवा दूसरे वर्ण की पत्निय मे उत्पन्न पुत्रों को यह अधिकार देना चाहे तो नहीं दे सकता।

२—ये अधिकार विधवाओं को भी प्राप्त होते हैं। और वे अपने स्थान पर अपना प्रतिनिधि नियुक्त कर सकती हैं। प्रतिनिधि प्रायः उसी वर्ग से चुना जाता है।

३—जजमानी अधिकार, जहांतक उनका सम्बन्ध जजमानों से है, उत्तराधिकारियों में से किसी व्यक्ति को छोड़ कर अन्य व्यक्तियों को नहीं दिये जा सकते।

३७—मन्दिरों में पूजा या सेवाकार्य—

इनके सम्बन्ध में भी अभ्यास के साधारण नियमोंके अतिरिक्त कुछ विशेष नियम हैं:—

१—इन अधिकारों का प्रयोग और कर्तव्योंका पालन उसी वर्ण के व्यक्ति कर सकते हैं, जिस वर्ण या जाति के व्यक्तियों में ऐसा करने की प्रथा है। अन्य वर्ण या जातियों के व्यक्ति जो धर्मपुत्र या घरजंवाई बनादिए गए हों, अथवा कमअसल, गंगाड़ी ढांड़ी या अन्य वर्णों की पत्नियोंसे उत्पन्न सन्तान को ये अधिकार नहीं मिल सकते।

२—नारियों को इन अधिकार या कर्तव्यों का अधिकार नहीं दिया जाता है।

३—ये विशेषाधिकार उन वर्गों या जातियों के लोगों को नहीं सौंपे जा सकते जिन्हें इनके प्रयोग का अधिकार समाज में प्राप्त नहीं है।

४—कुछ मन्दिरों में पुजारी आदि पद वंश परम्परागत न होकर चुनावसे दिएजाते हैं। (पन्नालाल, कस्टमरी लॉ, १२-१३)

३८—पण्डे-पुजारियों की आय, दक्षिणा—

यात्री प्रायः निम्न स्थानों पर पंडे-पुजारियों को दक्षिणा देते हैं:—

१—स्नान करने की दक्षिणा-किसी पवित्र नदी या कुण्ड

में स्नान करने से पूर्व यात्री को सङ्कल्प पाठ के साथ कुछ दक्षिणा देनी पड़ती है। इस दक्षिणा को वे व्यक्ति ही ले सकते हैं, जो प्राचीन प्रथा के अनुसार उसे लेने के अधिकारी हों।

२—मन्दिर में देवता के सन्मुख जो भेंट चढ़ाई जाती है वह मन्दिर के अधिकारियों के पास जाती है। कुछ मन्दिरों में पुजारी इस सारी भेंट को अथवा इसके कुछ अंश को भोग-पूजा या अपने वेतन के रूप में लेलेते हैं।

३—यात्री, चाहे तो, पण्डा, या पुजारी, या मन्दिरके किसी सेवक को भेंट दे सकता है। यात्री को पूरी स्वतंत्रता है कि जिसे चाहे और जितना चाहे देवे। किन्तु जिसे दानदेना हो उसे मन्दिर का कर्मचारी होना चाहिए। उदाहरण के लिए कोई बाहरी व्यक्ति आकर पण्डाचारी नहीं करसकता। (पन्नालाल,कस्टमरी लौ,४०)

३९—पण्डों के झगड़े—

कांगड़ा के भोजकी-पुजारियों के समान गढ़वाल के पण्डों और पुजारियों को भी मुकद्दमेबाजी में पड़ना पड़ता है। अकेले स्टोवेल मेन्युएल में ही केदारनाथ मन्दिर के रावल द्वारा किए गए अनेक मुकदमों का उल्लेख है। १८९४ में पौ ने लिखा था—यदि कोई पण्डा बदरीनाथ मे किसी दूसरे पण्डे के जजमान से दक्षिणा लेलेता है तो पण्डा न्यायालय की शरण लेता है। ऐसे मुकदमें बहुत पहले से ही होने लगे थे। पौ ने ०६ जनवरी १८७० को मैठाणा, तल्ला दशोली के बेलम आदि के विरुद्ध धामरूप और रघुनाथके मुकदमे और २० अगस्त १८७३ को महिमादत्तके विरुद्ध नंदरामके मुकदमेका उल्लेख किया है। (पौ, गढवाल सेटलमेंट, रिपोर्ट, ४३)

हरिकृष्ण रतूड़ी ने तो अनेक मुकदमों,का उल्लेख करके बतलाया है कि पण्डों के बीच किन सिद्धान्तों को लेकर मुकदमे

बाजी होती है। उसका कथन है कि मुकदमबाजी के मुख्य कारण ये हैं:—

१—दूसरे के जजमान को जानबूझकर धोखा देकर अपना जजमान बनाना और उससे दान दक्षिणा लेना। अर्थात् जजमान को—(क) यह बतलाना कि इस तीर्थ में अभी तक तुम्हारे परिवार का कोई पण्डा नहीं है। (ख) अथवा यह बतलाना कि तुम्हारा पण्डा अमुक व्यक्ति था और उसका उत्तराधिकारी मैं हूँ। (ग) अथवा झूठी बही दिखाकर यात्रीको बतलाना कि मैं तुम्हारे परिवारका पण्डा हूँ। और यह छिपाना कि उस यात्री (जजमान) के परिवार का उल्लेख उसी तीर्थ के दूसरे पण्डे का बही में है। (घ) अथवा अपने को यात्री (जजमान) के वास्तविक पण्डे का (झूठमूठ में) गुमास्ता बताकर यात्री से तीर्थकृत्य कराना और दान-दक्षिणा लेना और (ङ) ऐसे कार्य करना जिससे वास्तविक पण्डा को हानि पहुँचे।

२ अन्य जाति के ब्राह्मण का जो पण्डा जातिका न हो, पण्डा बनना और पण्डाचारी करना।

३—शूद्र वर्ण के किसी व्यक्ति का गुमास्ता बनना और पण्डाचारी करना।

४—दूसरे के जजमानको तीर्थमें स्नान कराना और उससे दान-दक्षिणा लेना।

५—उत्तराधिकारमें पण्डाचारी आदि प्राप्त होनेपर वहियां प्राप्त करने के लिये, और बही-वृत्तियों के बटवारे के लिये।

६ नया जजमान बनाने के लिए (आदि) (रतूड़ी, नरेन्द्र हिन्द लौ, पृ० ५९०-९६)

४०—केदारनाथ के रावल—

केदारनाथ के रावल तथा पूजक दक्षिण में मालाबार के

जंगम जाति के होते हैं। रावल को एक से अधिक शिष्य रखने का अधिकार है। उसके शिष्य भी इसी जंगम जाति के दक्षिणी होते हैं। रावलको विवाह करनेका अधिकार नहीं,न उसके शिष्यों को इस प्रकार का अधिकार है। रावल स्वयं पूजा नहीं करता, उसके शिष्य और गुरुभाई पूजा करते हैं। रावलके उत्तराधिकारी उसके चेलों में से होते हैं। प्रायः बड़े चेले को उत्तराधिकारित्व मिलता है। कभी-कभी बड़े शिष्य में अयोग्यता होने के कारण इस पद के लिए चुनाव पञ्चोंके मताधिकारसे भी होता है। रावल को मन्दिर पर सर्वाधिकार होता है, परन्तु कभी-कभी रावलोंकी अयोग्यता पर मैनेजर भी मन्दिर का प्रबन्ध करते हैं। (रतूड़ी गढ़वाल का इतिहास, (सं० १६२८,६६)

अब केदारनाथ मन्दिरके प्रबन्धका सारा अधिकार बदरीनाथ-मन्दिर-समितिके हाथमें है, जिसका सहायक मन्त्री केदारनाथ या ऊखीमठ में रहता है।

४१-भृङ्ग—

केदारनाथ की प्राचीन बहियों में ऐसा लिखा बतलाते हैं, कि जब पांडुपुत्र युधिष्ठिर स्वर्गारोहणको गएथे, उस कालमें गणों के स्वामी वीरभद्र से कुछ अवज्ञा होजाने के कारण शिवजी के श्राप से उसे चोल देश में वेदपाठी ब्राह्मण के घर में भृकङ्ग नाम से जन्म लेना पड़ा। युवावस्था में वह काशी, गङ्गोत्तरी होकर केदारपुरी आया और तुङ्गनाथ, रुद्रनाथ, कल्पेश्वर आदि स्थानों में तपस्या करता रहा। इसी भृङ्गु के शिष्य सम्प्रदाय में तबसे केदार-लिंग की पूजा अर्चा चली आरही है। यह पौराणिक कथा नहीं, केवल केदारनाथ मन्दिर की प्राचीन बहियों में ऐसा लिखा बतलाते हैं। यह लेख कहां तक सत्य या असत्य है, इसका कोई प्रमाण नहीं। (रतूड़ी, गढ़वाल का इतिहास, ६७-६८)

इसी भृकंडु से अपनी परम्परा आरंभ करके केदारनाथके वर्तमान रावल ३२२ में पुजारी माने जाते हैं।

४२–रावलों की बनावटी सूची—

श्री राहुल का कहना है—रावलों की बनावटी वंशावली बड़ी लम्बी-चौड़ी है। उसका प्रारम्भ पाखण्डों के समकालीन भृकंडु विश्वलिंग रावल तक ३१९ पीढ़ियां गिनाई गई हैं। एक शताब्दीमें सात पीढ़ियां लेनेपर दसवीं सदी (ईसवी) के आरंभ में २५२ वें रावल उदार लिंग के बाद निम्न रावल हुए। प्रत्येक रावलके नामान्तमें लिंग और जुड़ता है। जैसे उदार लिंग, कारण लिंग आदि।

उदार, कारण, पद्मनाभ, अघोर, जयनाथ, वीतराग, चन्द्र, विचित्र, सुन्दर, अष्टमूर्ति, यत्न, सत्यरूप, स्वरूप, कल्याण, पुराण, स्वभाव, विशेष, वैद्य प्राणेश्वर, घनद, प्रकाश, प्रज्ञाण, निर्मल, श्वेत, नारायण, गौर, प्रकाश, विदेह, प्रमाण, स्वस्तिक, सदानन्द, दुर्गम, चिरन्तन, वसन्तर, रहस्य, ज्ञानदीप, विशोक, जनार्दन, कृतज्ञ, धर्मराज, जटाधर, ख्यात, दुर्लभ, विराल, कल्पराज, अभिरामरत्न, अजर, देवदेव, कपिल, भालचन्द्र, मुरारी, अमल, राम, त्रिराम, चान्द, वीरभद्र, शिव-(प्रथम) शिव (द्वितीय) सितम्बर (प्रथम) महानीलकंठ (प्रथम) वसु, सितम्बर, (द्वितीय) वैद्य केदार, गणेश, विश्व, नीलकंठ (द्वितीय) जय, विश्वनाथ।

४३–रावल की उपाधि —

रावल की उपाधि गढ़वाल के राजा ने सन १७७६ ई० (सं० १८३३) के आस पास बदरीनाथ और केदारनाथके महन्तों को दी थी। लेकिन उस से पहले रावल की उपाधि नहीं थी, यह मानना मुश्किल है। बैजनाथ के अभिलेखों से पता लगता है कि

इससे बहुत पहले से ही पहाड़ में महन्तों के लिए रावल या राउल की उपाधि प्रयुक्त होती थी। (राहुल, गढ़वाल, ३१०)

४४—केदारनाथ के प्राचीन महन्त—

वर्तमान समय में कई पीढ़ियों से केदारनाथ के रावल कर्णाटक देश स आरहे हैं। पर प्राचीनकाल में इस भाग में लकुलीशि शैवोंकी प्रधानता थी। कुशाण कालसे लेकर गुर्जर-प्रतिहार काल तक अर्थात् ईसा-विक्रमकी पहली सारी सहस्त्राब्दीमें उत्तर भारत का ब्राह्मण धर्म वास्तवमें शैव मत था। कुषाणोंकी मुद्राओं में शिव औ नन्दी होते ही थे। गुप्त सम्राट यद्यपि अपने को परम भागवत कहते थे, पर उस काल के साहित्य और कला में शैव-मतकी ही प्रधानता थी। मौखरियों और हर्ष-वर्द्धनके समय भी उत्तर भारत में शैव धर्म की प्रधानता थी, जैसा कि हर्षचरित से प्रकट होता है। हिमालय में गुप्तों के समय कत्यूरियोंके राज्य काल में शैव मन्दिरों की प्रधानता थी। उस समय की हरगौरी मुखलिंग, तथा ऐसे शि लिंग जिन रेख ओं द्वारा शिवलिंग को शिश्न का रूप देने का प्रयत्न मिलता है, सारे मध्य हिमालय में सतलज ी उपत्यका से काली (सरयू) की उपत्यका तक फैले हैं। उत्तर मे ईसा की बारहवीं शताब्दी तक शैव सम्प्रदाय का खब प्रचार मालूमहोताहै। और आजसे कमसेकम ३-४ शताब्दियों पहले ही दक्षिणा से यहां धर्माचार्य रावल आने लगे। ऐसा जान पड़ता है कि ईसा की बारहवीं और सोलहवीं शताब्दियों के बीच में किसी समय उत्तर भारतीय शैवाचार्य का स्थान दक्षिण भारतीय शैवाचार्य ने लेलिया। (राहुल, गढ़वाल, ४०५)

४५—समय का सम्प्रदाय और केदार के रावल—

वर्तमान रावल का कहना है कि हम बसव के वीर शैव

सम्प्रदाय के अनुयायी नहीं हैं। वस्तुतः उत्तर वाले इतिहासकारों और विद्वानों में अक्सर यह भ्रम देखा जाता है। वह समझते हैं, दक्षिण में जो वीर शैव सम्प्रदाय प्रचलित है, वह बसव को ही अपना प्रधान आचार्य मानते हैं। केदारनाथ में, जिस-शैव-सम्प्रदायके रावल आते हैं, वह बसव के सुधार से बहुत पहले के हैं। उनका और बसव के सम्प्रदाय का वही सम्बन्ध है, जो सनातनी और आर्य-समाजी हिन्दुओंका, अथवा पुराने सिक्खों तथा वाली सिक्खों का। बसबने कोई सुधार-वधार नहीं किया। वह तो एक राज-मन्त्री था। और अपने राजनीतिक दल को मजबूत करनेके लिए ही उसने प्राचीन शैव-धर्म में बिगाड़ पैदा किए। अस्तु यह निश्चित है कि केदारनाथ के रावलोंका सम्प्रदाय दक्षिणके प्राचीन शैव सम्प्रदायसे सम्बन्ध रखता है। (राहुल, गढ़वाल,४४--४५)

४६—बदरीनाथ के रावल—

श्री शङ्कराचार्य द्वारा स्थापित ज्योतिर्मठ (जोशीमठ) के प्रथम अध्यक्ष तोटकाचार्य हुए, जिन्हें अथर्ववेदी होने के कारण चुना गया था। यह रोचक बात है कि अथर्ववेद टोना-टोटकों के लिए प्रसिद्ध है। और ज्योतिर्मठ के प्रथम आचार्य का नाम भी तोटक था। लगता है या तो तोटके जाननेके कारण ही ये तोटकाचार्य कहलाए अथवा इनके नामसे ही टोटका शब्द चल पड़ा। ऐसी मान्यता है कि ज्योतिर्मठ के अध्यक्ष ही बदरीनाथ के भी अध्यक्ष होते थे। तोटकाचार्य से आरंभ होने वाली आचार्य-परम्परा इस प्रकार बतलाई जाती है। इस श्लोक को पर्वतके पंडित लोग प्रातस्मरणीय मान कर सदा याद रखते हैं।

तोटको विजयः कृष्णः कुमारो गरुडध्वजः।
विन्ध्यो विशालो वकुलो वामनः सुन्दरोऽरुणः॥

श्री निवासः सुखानन्दो विद्यानन्दः शिवो गिरिः।
विद्याधरो गुणानन्दो नारायण उमापतिः ॥

एते ज्योतिर्मठाधीशा····· (उपाध्याय,श्री शङ्कराचार्य,१८३-८४)

यदि इन आचार्यों के लिए औसत काल २० वर्ष माना जाए तो यह परम्परा श्रीशङ्कराचार्यके पश्चात् लगभग ४०० वर्षों तक चलती रही। उसके पश्चात् परम्परा छिन्न होगई।

४७–महन्तों के स्थान पर स्वामी—

आरंभसे ही बदरीनाथके पूजन–अर्चन का भार ज्योतिर्मठ के सन्यासी महन्तों के सुपुर्द था। जब से ज्योतिर्मठ का सम्बन्ध बदरीनाथ के मन्दिरके साथ है तब से मठका अधिकारी सन्यासी मन्दिरका अधिकारी तथा पूजक भी रहता आरहा है। १५००सं० से बदरीनाथ के महन्तों की नामावली मिलती है। इससे प्रतीत होता है कि ये ज्योतिर्मठ के भी अध्यक्ष थे। (उपाध्याय, श्री शङ्कराचार्य, १८४)

इससे आगे उपाध्याय नें २१ स्वामी नाम वाले और २२ रावल नाम वाले महन्तों की सूचियां दी हैं जो रतूड़ी द्वारा गढ़वाल के इतिहास में दी हुई सूचियों में से पूरी–पूरी मिलती हैं। बीच में गोपाल–ब्रह्मचारी के वर्णन आदि में इतना शब्द–साम्य है, कि उपाध्याय ने जैसी सारी सूची गढ़वाल के इतिहास से ली है। अथवा दोनों का एक ही आधार हो सकता है। सूचियां इस प्रकार हैं—

संख्या आचार्य	पूजाधिकार पानेका संवत	पूजाकाल वर्ष
१–बालकृष्ण स्वामी	१५००	५७
२–हरिब्रह्म स्वामी	१५५७	१

संख्या आचार्य	पूजाधिकार पानेका संवत्	पूजाकाल वर्ष
३–हरिस्मरण स्वामी	१५५८	८
४–वृन्दावन स्वामी	१५६६	२
५–अनन्तनारायण स्वामी	१५६८	१
६-भवानन्द स्वामी	१५६९	१४
७–कृष्णानंद स्वामी	१५८३	१०
८–हरिनारायण स्वामी	१५९३	८
९-ब्रह्मानंद स्वामी	१६०१	२०
१०–देवानंद स्वामी	१६२१	१५
११–रघुनाथ स्वामी	१६३६	२५
१२–पूर्ण देव स्वामी	१६६१	२६
१३–कृष्णदेव स्वामी	१६८०	९
१४–शिवानंद स्वामी	१६८६	७
१५–बालकृष्ण स्वामी	१७०३	१५
१६–नारायण उपेन्द्र स्वामी	१७१७	३३
१७–हरिश्चंद्र स्वामी	१७५०	१३
१८–सदानंद स्वामी	१७६३	१०
१९–केशव स्वामी	१७७३	८
२०–नारायण तीर्थ स्वामी	१७८१	४२
२१–रामकृष्ण स्वामी	१८२३	१०

(उपाध्याय, श्री शङ्कराचार्य, १८४-८५; रतूड़ी, गढ़वाल का इतिहास, ५४-५६)

४८–नम्बूदरी रावलों की परम्परा—

रामकृष्ण स्वामी के पश्चात् बदरीनाथ का मन्दिर दंडी-स्वामियों के हाथ से निकल गया, और ब्रह्मचारी रावलों के हाथ

में आगया। सम्वत् १८८३ में रामकृष्ण स्वामीकी मृत्युके अनंतर उनका कोई उत्तराधिकार न था। उसी समय गढ़वाल नरेश महाराज प्रतापशाह यात्रा के लिए वहां पधारे। पुजारी का अभाव देखकर उन्होंने गोपाल नामक ब्रह्मचारी को-जो नम्बूदरी जातिका ब्राह्मण था; तथा भगवान के लिए भोग पकाता था; रावल की पदवी से विभूषित किया और छत्र-चंवर आदि आवश्यक उपकरणों के साथ उन्हें रामकृष्ण स्वामीके स्थान पर नियुक्त किया। तब से मन्दिर का पूजन इन्हीं रावलों के हाथ में है। ये आचार्य स्वयं केरल के नम्बूदरी ब्राह्मण थे।

अतः उन्होंने अपने समय मे अपनी ही जाति के ब्राह्मण को बदरीनाथ-पूजन-अर्चनके लिए नियुक्त किया। तबसे रावल उसी जाति का होता आया है। (उपाध्याय,श्रीशङ्कराचार्य, १ ५, रतूड़ी, गढ़वाल का इतिहास, ,७)

उपरोक्त उल्लेख से स्पष्ट है कि चाहे केवल नम्बूदरी जाति मे बदरीनाथ के पुजारी गोपाल रावल के समय से ही चुने जाने लगे हों, पर उनका बदरीनाथ मन्दिर में महत्वपूर्ण अधिकार पहले से अवश्य चला आता था। कमसे कम दाक्षिणात्य ब्राह्मणों की महत्ता बदरीनाथ मन्दिर में अवश्य बहुत पहले से चली आती रही होगी। नहीं तो गढ़वाल-जैसे भूखण्डमें, जहां, अब भी एक दूसरे के हाथ का भोजन (भात) खाने में इतना अधिक बंधन प्रचलित है,कोई दुर दक्षिणके विदेशी और अज्ञातकुलशील ब्राह्मण गोपाल को इस मन्दिर में भी पकाने को न नियुक्त करता। इस से यह भी सिद्ध होता है कि शङ्कर अथवा उनके शिष्यों का संबंध बदरीनाथ मन्दिरसे होने की जो कल्पनाकी जाती है, इसमें कुछ न कुछ आधार अवश्य है।

४६—रावलों की सूची—

संख्या रावल	पूजाधिकार प्राप्तिका सं०	पूजाकाल वर्ष
१—गोपाल	१८३३	६
२—रामचन्द्र रामब्रह्म रघुनाथ	१८४२	१
३—नीलदत्त	१८४३	५
४—सीताराम	१८४८	११
५—नारायण (प्रथम)	१८५६	१४
६—नारायण (द्वितीय)	१८७२	२५
७—कृष्ण	१८६८	४
८—नारायण (तृतीय)	१६०२	१४
६—पुरुषोत्तम	१६१६	४१
१०—वासुदेव (पहली बार)	१६५०	१
११—राम	१६५८	४
१२—वासुदेव (दूसरी बार)	१६६२	२०
१३—गोविन्द	१६६६	४
१४—कृष्णन्	२००३	

५०—रावलों की उपपत्नियां—

प्रथम रावल गोपाल गृहस्थी था। गढवाली नारीसे उत्पन्न उसकी सन्तान ही डिमरी लोग है। किन्तु रावलों से यह आशा की जाती थी कि वे ब्रह्मचर्य से रहें। १८८२ ई० (संवत् १६३६) में एटकिनसन ने लिखा था कि बदरीनाथ मन्दिर में अनेक परिचारिकाएं होती हैं जो ब्रह्मचारी रावलों की उपपत्नियां होती है। (हिमालयन डिस्ट्रिक्टस,)

रावलको विवाह करने का अधिकार नहीं। क्योंकि विवाह करके सन्तान पैदा होने से अथवा पातक होजाने से रावल मंदिर

में नहीं जा सकेगा। और न रावल के अतिरिक्त कोई दूसरा मूर्ति छू सकता है। न कभी पूजा बन्द रह सकती है। इसलिये रावल की स्थिति वह होती है जो एक नैष्ठिक ब्रह्मचारी या यतिकी होती है। नारायण रावल के समय में टिहरी दरबार से किसी रानीने एक दासी शूद्र जाति की उनकी सेवा के लिये दी थी। इसी प्रकार उनके उत्तराधिकारी रावल पुरुषोत्तम को महाराज सुदर्शन-शाह की महारानी ने एक दासी उनकी सेवा के लिये दी थी, तबसे रावल लोग असवर्ण विवाह करने लगे थे। राम रावल ब्रह्मचर्य में ही रहे। वर्तमान रावलने असवर्ण विवाह किया है। रतूड़ी, गढ़वाल का इतिहास, ५०–५१ टि०

बदरीनाथ मन्दिर के भूतपूर्व मैनेजर शालिग्राम वैष्णव लिखते हैं–हिन्दू जाति के सर्वश्रेष्ठ इस पवित्र धामके इस पवित्र मन्दिर के पुजारी का पद आजकल ऐसी निकृष्ट अवस्था को पहुँच गया है कि हिन्दू मात्र को उससे लज्जित होना पड़ता है। जिस मन्दिर के पुजारी निस्पृह, विरक्त, साधु ब्रह्मचारी ही हुआ करते थे, उस पद पर इन्द्रिय लोलुप, हीनवर्ण स्त्रियों से संसर्ग रखने वाले विषयी पुरुष पुजारी बनकर भगवान श्रीबदरीनाथकी मूर्ति को स्पर्श करते दृष्टि गोचर होते हैं। पहले कोई रावल कभी बदरीनाथ में स्त्री को अपने साथ नहीं रख सकता था। अब वे रावल निशंक होकर बदरीनाथमें पूजा करते हुए भी स्त्री को साथ रखते हैं। (उत्तराखण्ड, रहस्य १५०–१५१)

रावल द्वारा उपपत्नी रक्खे जाने का, तथा मन्दिर की आय का स्वेच्छापूर्वक दुरुपयोग किये जाने का बीसवीं शताब्दी में प्रबल विरोध किया जाने लगा।

५१—मन्दिर पर सरकारी नियंत्रण—

बदरीनाथ टिहरी राज्यवंश के इष्टदेव होनेसे टिहरी नरेश

को बदरीनाथ का राजा कहा जाता है, क्योंकि यह पवित्र गद्दी बदरीनाथ की गद्दी कही जाती है। श्रद्धालु यात्रियों में यह विश्वास है कि बिना पहले राजा के दर्शन किये यात्रा सफल नहीं होती। राजा के इष्टदेव होने से और राजगद्दी बदरीनाथ की होने से मन्दिर के धर्म सम्बन्धी सभी इन्तजाम-सम्बन्धी शक्ति टिहरी नरेश के हाथ में रखी गई। यद्यपि बदरीशपुरी इस काल ब्रिटिश गढ़वाल में है। इसके अतिरिक्त गजटियर में इसका उल्लेख इस प्रकार पाया जाता है।

अख्तियारात कुमाऊँ के कमिश्नर के हाथ में चले जाने पर हाकिमलोग मन्दिर के कार्यों में हस्तक्षेप करने लगे। बहुत सी स्कीमें बनाई गई। १८९३ में पुरुषोत्तम रावल ने, जो वृद्ध था, मन्दिर का अधिकार छोड़ दिया। कोई भी योग्य नायब न मिलने से दो या तीन मैनेजर समय-समय पर नियुक्त किये जाते रहे। अन्त में १८९९ में गवर्नमेण्ट की आज्ञा से जाब्ता दीवानी की धारा ५३९ के अनुकूल मुकदमा चलाया गया और इसका फल यह हुआ कि मन्दिर के सारे प्रबन्ध टिहरी नरेश के अधिकार में रावल के हाथ में दिये गये जो कि नायब रावल को भी मुकर्रर कर सकता है। परन्तु यह बात नवीन नहीं, बहुत प्राचीन है। क्योंकि दावा होने से पहले तीन मैनेजर टिहरी दरबार की ओर से रावल पुरुषोत्तम के विद्यमानता में रह चुके हैं। रतूड़ी, गढ़वाल इतिहास, ९८-९८

४२—रावल को सर्वाधिकार प्राप्त—

रावल की नियुक्ति में पहले गढ़वाल के राजा को काफी अधिकार था गढ़वाल के दो टुकड़े होने पर टिहरी महाराजा इस मन्दिर के नाम मात्र के ही अधिष्ठाता रह गये। उनका अधिकार केवल रावलऔरलेखवारोंकोनियुक्त करनेतथामन्दिरकेकपाटखोलने

का मुहूर्त ठहराने भरका ही रह गया। उनको इतना भी अधिकार नहीं रहा, कि वे मन्दिर के किसी कर्मचारी को उसके अपराध के लिये कुछ दण्ड दे सकें। रावल और उसके कर्मचारी निर्भयता पूर्वक मन्दिर की सम्पत्ति को हड़पते रहे। आगे मन्दिर की दुर्व्यवस्था के कारण जिलाधीश ने मुकदमा कर दिया। दावे के फैसले के साथ सन् १८९९ ई० से अदालत कमिश्नरी से एक स्कीम मन्दिर के सम्बन्ध में तैयार हुई। इस स्कीम से टिहरी महाराज का रहा-सहा अधिकार भी जाता रहा। अर्थात् उनको अब रावल और लेखवार के नियुक्त करने का अधिकार भी न रहा। सारा अधिकार अब रावल को प्राप्त होगया। अब टिहरी महाराज केवल रावल के नियुक्त किये हुए नायब रावल को मंजूर करने के अधिकारी रह गये। रावल अब कुछ भी परवाह नहीं करता। मन्दिरके धनको मनमाना खर्च कर देना तो रावल महाशय का बायें हाथ का खेल है। प्रतिवर्ष न्यूनाधिक एक लाख तक रुपया मन्दिर के भेंट-चढ़ावा और मन्दिर के गांवों की रकम से आजाता है। पर सालके अन्त में मन्दिर का कोष प्रायः खाली ही नजर आता है। (राहुल, गढवाल, ३४--४३ में शालिग्राम वैष्णवके उत्तराखण्ड रहस्य पृ० १५०-५१ से उद्धृत)

५३—रावल के स्वेच्छाचार के विरुद्ध आन्दोलन—

हम देख चुके हैं कि किस प्रकार ब्रह्मचारी महन्तोंके स्थान पर एक गृहस्थी गोपाल नम्बूरी को गढ़वाल-नरेश ने रावल बनाया और किस प्रकार रावलों में उपपत्नियां रखने की प्रथा चल पड़ी। उपपत्नियां रखने और सन्तान वाले बनजाने के कारण तथा बदरीनाथ की सम्पत्ति और आय को मनमाने ढङ्गसे खर्च करने की सुविधा होने से रावल मन्दिर की आय और सम्पत्ति

का अपने परिवार और अपनेविलास के लिये दुरुपयोग करने लगे। इसके विरुद्ध समय-समय पर अनेक श्रद्धालु यात्रियों ने अपने विचार व्यक्त किये, किन्तु कुछ न बना। बड़े-बड़े राजकीय कर्मचारियों का मुख बन्द करना रावल महोदय भली भांति जानते थे।

अन्त में उसी दक्षिण से जहाँ से समय-समय पर हिन्दू धर्म के सुधारक उत्तर भारतमें आते रहे, श्रीस्वामी वेंकटाचारियर (भूतपूर्व डिपुटी कलक्टर) ने आकर इस स्वेच्छाचारके विरुद्ध घोर आन्दोलन आरम्भ किया। इन्होंने गढ़वाल तथा हिन्दुस्थान के विभिन्न भागों में जाकर स्थान-स्थान पर सभाऐं की, अधिकारियों से निवेदन किया। बदरीनाथ और केदारनाथके रावलों के ऐसे फाटोग्राफ जनता को दिखलाये जिनमें वे गणिकाओं के मध्यमें अंकित थे। इन्होंने समय-समय पर अनेक विज्ञप्तियां प्रकाशित कीं जिनमें से संख्या १४ वाली विज्ञप्तिका कुछ अंश नीचे दिया गया है।

बदरिकाश्रम भारतवर्ष के चारों धामों में श्रेष्ठ तथा पवित्र माना गया है, इस परम पवित्र तीर्थ में भगवान के पूजनका भार दक्षिणी ब्राह्मणों में से सचरित्र नम्बूरी ब्रह्मचारियों को दिया जाता रहा।

वर्तमान वासुदेव रावल भी जिस वक्त महाराज टिहरी नरेश से नियुक्त किया गया तो तिलक होने के पहले रावल महोदय ने सहर्ष ब्रह्मचर्य रखने की प्रतिज्ञा की, जो नीचे दी जाती है। आज वही रावल कामान्ध तथा मदोन्मत्त होकर एक दीनवर्ण युवती से शादी कर मंदिरकी सारी सम्पत्ति गृहणी देवी के मनोरंजनार्थ दुरुपयोग तथा समर्पण कर रहा है। जिसके फल-

स्वरूप मन्दिर दिनों दिन कर्जदार होता जारहा है। यह हीनवर्ण युवती न तो ब्राह्मण युवती है, न इसको क्षत्री ही कहा जा सकता है, बल्कि यहाँ तक भी कहना ठीक हो। कि यह किसी वर्ण का वर्णसंकरीहै। इतना पाप होने पर भी उन पर इस समय भगवान की पूर्ण कृपा दीखती है। क्योंकि शादी होने के बाद छः ही महीने के अन्दर ही रावल महोदय की नववधू से एक कन्या उत्पन्न होगई। रावल साहब कन्यासूतक होने पर भी भगवान को स्पर्श करते रहे। यह धार्मिक परिताप का विषय है। ऐसा अनर्थकारी पुजारी यदि पूजा करता रहेगा तो न जाने कितने अनर्थ होंगे।

५४—रावल का प्रतिज्ञा-पत्र—

इस विज्ञप्ति के नीचे रावल का वह प्रतिज्ञापत्र छापा था जो विज्ञप्ति के अनुसार उन्होंने स्वयं लिखकर ५ फरवरी १९२६ को टिहरी महाराजाको भेजा था। इस पत्रकी अविकल प्रतिलिपि नीचे दी जाती है—

॥ श्री बद्रीशो विजयते ॥

श्री बदरीनाथ के पुजारी का प्रतिज्ञापत्र—

नमोस्त्वनन्ताय सहस्रमूर्तये सहस्रपादाक्षि शिरोरुबाहवे।
सहस्रनाम्ने पुरुषाय शाश्वते सहस्र कोटी युगधारिणे नमः॥

स्वस्ति श्री १०८ बद्रीश्चर्यापरायण गढवाल महि महेन्द्र, धर्म वैभव, धर्म रक्षक शिरोमणि श्री १०८ टिहरी नरेशजु चरण-कमलेषु मैं नाम रावल वासुदेव नम्बूरी १०८ श्रीबद्रीनाथ की रावलचारी के तिलक की याचना करते हुए श्री १०८ परमपूज्य बद्रीशावतार टिहरी नरेश के समक्ष श्री दरबार में निष्कपट और स्वच्छ हृदयमें यह प्रतिज्ञा करता हूं कि मैं जब तक रावल पद

पर रहूंगा तब तक अविवाहिता रहकर ब्रह्मचर्य का पालन करता हुआ शुद्ध आचरण पूर्वक श्री बदरीनारायणजी के पूजन-अर्चन में तत्पर रहूंगा जो बदरीश मन्दिर में शास्त्रोक्त लोकसम्मत होते हुए परम्परगत से अथवा जो प्रति समय श्री टिहरी दरबार में मुझसे मिलते रहेंगे १—जो-जो कुरीतियां प्राचीन प्रथाओं के विरुद्ध कुछ समय से कतिपय रावलों में आगई थी उनका अवलम्बन कदापि नहीं करूंगा।

मैं यह भी प्रतिज्ञा करता हूँ कि टिहरी-दरबार के प्रति रावलों की ओर से जो आचार-व्यवहार परम्परा से चले आते हैं, उनका शुद्ध हृदय से और मद्‌गतिसे अपनी पदस्थिति पर्यन्त पालन करता रहूँगा। यदि मैं ऊपर लिखी प्रतिज्ञाओं के विरुद्ध कोई कार्य करूँ अथवा करने के लिये अपने को विवश पाऊँ तो मैं स्वत रावल पद को परित्याग कर दूंगा। इसमें मुझे कोई आपत्ति न होगी। परमात्मा मुझको इन प्रतिज्ञाओंको पालन करने की शक्ति प्रदान करे। ॥ शुभम् ॥

ता० २५-२-२६। श्री १०८ दरबारका भिक्षुक वासुदेव
गुरुपुष्प शुक्लपक्ष त्रयोदशी। नम्बूरी नायब रावल।

स्वामी वेंकटाचारीयर श्रीरङ्गजी का मन्दिरवृन्दावन
द्वारा प्रकाशित विज्ञप्ति १४, टिप्पणी।

स्वामी वेंकटाचारीयर ने यह आन्दोलन १६०८ ई० में आरम्भ किया था और निरन्तर कई वर्षों तक आन्दोलन करते हुए उन्होंने जनभावना को मन्दिर के प्रबन्धके लिये इतना उत्कृष्ट बना दिया कि १६३६ में उत्तर प्रदेश सरकार को बदरीनाथ मन्दिर विधेयक पास करना पड़ा।

५५—श्रीबदरीनाथ मन्दिर विधेयक—

इस अधिनियम में उत्तर प्रदेश सरकारने १६४१, १६४२, १६४८, १६४८ (दूसरी बार) में संशोधन किये और फिर १६५० में इसमें कुछ सुधार-संशोधन के आदेश निकाले।

यद्यपि इस अधिनियम का नाम बदरीनाथ मन्दिर अधिनियम रखा गया किन्तु इसके अधी बदरीनाथ और केदारनाथ दोनों मन्दिर तथा इनसे सम्बन्धित अनेक मन्दिर रखे गये।

५६—मन्दिर-प्रबन्धक-समितिका-निर्माण—

इस अधिनियम की पाँचवीं धारा के अनुसार मन्दिर के प्रबन्ध के लिये एक समिति बनाने का विधान किया गया।

५—मन्दिरका शासन ओर मन्दिर को सम्पत्ति का प्रबन्ध एक समिति के हाथमें होगा, जिसका सङ्गठन निम्न प्रकारसे किया जायेगा:—

(अ) टिहरी-राज्यकी ओरसे ४ सदस्य-जिनकी नियुक्ति या चुनाव की विधि का निश्चय उत्तर-प्रदेश सरकार और टिहरी महाराज मिलकर करेंगे।

(ब) गढ़वाल जिले के दो व्यक्ति, जिनमें से कमसे कम एक चमोली तहसील का निवासी होगा। इन दो सदस्यों का चुनाव गढ़वाल जिला बोर्ड के हिन्दू सदस्य करेंगे।

(स) उत्तर-प्रदेश ले० असेम्बली के हिन्दू सदस्य इस मन्दिर समिति के लिये एक सदस्य चुनेंगे।

(द) उत्तर-प्रदेश सरकार इस समितिके लिये दो सदस्य और उत्तर प्रदेश ले० कौंसिल के हिन्दू सदस्य समिति के लिये एक सदस्य चुनेंगे।

(द) उत्तर-प्रदेश सरकार इस समिति के लिये दो सदस्य तथा सभापति नियुक्त करेगी। (ऐक्ट पृ० ५)

इस प्रकार टिहरी द्वारा ४, जिलाबोर्ड गढ़वाल द्वारा २, असेम्बली द्वारा २, कौंसिल द्वारा २, उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा २ कुल मिलाकर १२ सदस्य और १ सभापति इस समिति के लिये निश्चित किये गये।

(२) इस पाँचवीं धारा के अधीन यह विधान किया गया कि ऐसा व्यक्ति जिसे बदरीनाथ मन्दिर में प्रचलित हिन्दू धर्म के स्वरूप पर विश्वास न हो, मन्दिर-समिति का सदस्य या सभापति न हो सकेगा।

(३) सदस्यों और सभापति की नियुक्ति या चुनाव की सूचना सरकारी गजट में प्रकाशित की जायेगी।

(४) श्रीबदरीनाथ और श्री केदारनाथ मन्दिरों के प्रबन्ध के लिये केवल एक ही समिति होगी जिसके अधीन इन मन्दिरों से सम्बन्धित अन्य छोटे मंदिर और तीर्थ भी होंगे। (ऐक्ट पृ०४)

५७—कार्यकाल—

अधिनियम की धारा ८ के अनुसार समिति के सदस्यों और सभापति का कार्यकाल ३ वर्ष रखा गया।

५८—कर्मचारियों की नियुक्ति—

अधिनियम की धारा १४ के अनुसार समिति रावल और नायब रावल की नियुक्ति करेगी। और मन्दिर के शासन के एक सचिव (सेक्रेटरी) नियुक्त करेगी जो मन्दिर का सर्वोपरि कर्मचारी होगा।

१—धारा १४ के अनुसार वर्तमान रावल तब तक कार्य करेगा जब तक मृत्यु, त्याग पत्र, या निष्कासन द्वारा उसके स्थान पर दूसरी नियुक्ति की आवश्यकता नहीं उत्पन्न होती।

२—स्थान रिक्त होने पर समिति रावलके स्थान पर नायब रावलको नियुक्त कर देगी।

३—रावल और नायब रावल के कर्तव्यों—कार्यकलापों का निश्चय समिति करेगी।

—समिति राज्य सरकार की स्वीकृत लेकर मन्दिर के कर्मचारियों, सेवकों आदि के वेतन, वेतनक्रम (ग्रेड) तथा अन्य देय राशि आदि के नियम तथा रावल, नायब रावल, सचिव के संबध में भी इसी प्रकार के नियम बनाएगी। (ऐक्ट, पृ० ७)

५६—आय—व्यय की जांच—

धारा १६ के अधीन मन्दिर की आय-व्यय की जांच के लिए आडीटरों की नियुक्ति और उनको परिश्रमिक देने का विधान किया गया।

६०—मंदिर—सूचियां—

अधिनियम के साथ दो सूचियां भी दीगई। सूची १ में उन २५ मन्दिरों और तीर्थों का उल्लेख है जो बदरीनाथ मन्दिर के अधीन माने जाते हैं। सूची २ में उन १६ मन्दिरों और तीर्थों का उल्लेख किया गया जो केदारनाथ मन्दिर के अधीन मानेजाते हैं। (ऐक्ट, पृ० ११—२३)

६१—अधिनियम का प्रभाव—

अधिनियम बनजानेसे मंदिर की सम्पत्तिका शासन रावल के स्वेच्छाचार से हट गया है। ओर सरकार उस आय का यथा संभव उचित प्रयोग करने का प्रयत्न कररही है। अब धनके अप-व्ययका दोषारोपण मंदिर समिति के सचिव पर हो रहा है, और आन्दोलन का तीव्र रूप देखकर सरकार को जाच के लिए एक न्यायाधीशको नियुक्त करनापड़ा है। न्यायाधीशकी रिपोर्ट अभी तक प्रकाशित नहीं हुई है।

मंदिरों पर सरकारका अधिकार होनेसे अब जब सरकारी बड़े अधिकारी या मंत्री-गण तीर्थोंकी यात्रा करते हैं तो मंदिर

की ओर से उनके स्वागत का प्रबंध करना आवश्यक होगया है।

यात्रियों से धन ऐंठने के जाल में कोई अंतर नहीं आया है, बल्कि अब तो यह कह कर कि "सारी आय सरकार ले लेती है, हमें कुछ नहीं मिलता" यात्रियों से और भी अधिक लिया जाता है, ऐसा कई व्यक्ति कहते हैं।

उच्च हिमालय के इन तीर्थोंका भी सारा रूप बदल चुका है। यहां भी बिजली, रेडियो, लाउडस्पीकर, फिल्मी गाने, नाना प्रकारकी लालसापूर्ण वेश-भूषा, ऊँची आलीशान इमारतें-सभी जो मैदानी तीर्थों में मिलती हैं, दिग्विजय करती पहुँच गई हैं। जो यात्री यहां एक-दो सप्ताह ठहरता है वह आश्चर्यमे पूछता है कि,"क्या यही नरनारायणका निर्जन,दुर्गम,प्रशांत आश्रम है?"

६२-तीर्थोंकी सुव्यवस्था के लिए आवश्यक सुझाव-

पुजारियों-पण्डों और रावलों के लिए—

आवश्यकता इस बातकी है कि प्रत्येक तीर्थके पण्डे-पुरोहित अपना एक सुव्यवस्थित संघटनबनालें। उनका एक व्यवस्थित कार्यालय हो और कार्यालयके पास वैतनिक कार्यकर्ता तथा स्वयं सेवक हों। तीर्थयात्री को कार्यालय के स्वयं सेवक कार्यालय मे लेजाएं और कार्यालय मे यात्री को बता दिया जाए कि उसका पंडा कौन है। यात्रियों से पृथक-पृथक लोगों द्वारा पूछा जाना तथा यात्री के लिए झगड़ना, लाठी चलाना, बन्द करदें। कार्यालय ही इसकी भी व्यवस्था करदे कि जिन पण्डों के यहां तीर्थ कर्म कराने योग्य पढ़े लिखे व्यक्ति नहीं हैं, उनके यात्रियोंको ऐसे व्यक्ति भी दिएजाएं। कार्यालय यात्रीको पहले ही सूचित करदे कि उसे तीर्थ में मार्ग-दर्शन के लिए कमसे कम इतना व्यय देना चाहिए। अधिक दान-पूजन तो यात्री की श्रद्धा पर निर्भर रहता ही है।

यात्रीकी श्रद्धाका अनुचित लाभ न उठाया जाए और उस की धर्म-भीरुता के कारण उसे उत्पीड़ित न किया जाए। उस पर अनिच्छा-पूर्वक दान देने के लिए दबाव न डाला जाए। साथ ही याली अल्पव्यय भी नहीं दे सकते, वे भी तीर्थ-दर्शन का लाभ उठा सकें-ऐसी भी व्यवस्था रखी जाए।

६३-अनुचित व्यवहार रोका जाए—

जो पुजारी या तीर्थपुरोहित यात्रीकेसाथ रहते समय या मन्दिरमें संयम, सदाचार एवं मर्यादा का ठीक पालन नहीं करते, तीर्थपुरोहितों का सङ्गठन उन्हें सावधान करे। और उस पर ऐसा नैतिक नियंत्रण रखे कि वे अपनी त्रुटियां सुधारें। यह खेद की बात है कि अनेक तीर्थों के प्रतिष्ठित मन्दिरों में भगवान की मूर्ति के सन्मुख मन्दिर के सेवकों, पुजारियों या तीर्थ पुरोहितों द्वारा क अनुचित व्यवहार होते हैं।

भाड़ के समय दर्शनार्थियों को धक्के देना, कहीं-कहीं उन पर बेंत या कोड़े चलाना भी चलता रहता है। भीड़को नियंत्रित करते समय भी मन्दिर सेवकों को यह तो नहीं भूलना चाहिए,कि वे भगवान के सामने हैं। महिलाओं और बच्चों को धक्के देने, लोगों की जेब या आंटी से रुपए उड़ा देने की चेष्टा भी होती है। यह तो बहुत ही खेदजनक बात है। मन्दिर के सञ्चालकों को इन बातों पर बहुत सतर्क दृष्टि रखनी चाहिए। मन्दिरों के प्रबन्धकों, तीर्थपुरोहितों के संघटनों तथा यात्रियों को सुविधा देने वाली अन्य संस्थाओं को भी यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि तीर्थयात्रियों का बड़ा भाग धर्म-भीरू होता है, और अनुचित-व्यवहार की भी शिकायत नहीं करता। पर संस्थाओंको ही साव-धानी से इसका निरीक्षण करना चाहिए।

६४-परिचय-पत्रिकाओं की आवश्यकता—

यदि तीर्थोंके पुरोहित-सम्प्रदाय या तीर्थके मुख्य मन्दिरों

के सञ्चालक पर्चे अथवा छोटी पुस्तिकाएं, जो चार-छै पैसे से अधिक की न हों, छपवालें, और यात्री को तीर्थ में पहुँचते ही उपलब्ध करायें तो यात्री को बहुत सुविधा होगी। ऐसे पर्चों या या पुस्तिकाओं में बहुत संक्षिप्त रूपसे उस तीर्थ के दर्शनीय स्थान, उस तीर्थ में स्नान के तीर्थ, वहांके करणीय कर्म, वहांका सामान्य माहात्म्य, वहां ठहरने तथा भोजन या पानी की क्या सुविधाएं हैं-इनका विवरण और आस-पास के दर्शनीय स्थानों-मन्दिरोंकी सूचना होनी चाहिए, जिनके दर्शनार्थ उस तीर्थ में रहते हुए यात्री किसी सवारी से जाकर एक दिन में लौट आ सकें। ऐसी अनेक पुस्तकें विशाल कार्यालय नारायण कोटि, गढ़वाल से मिलती हैं।

६५—स्वच्छता की समस्या—

जहां भीड़ होगी, वहां गन्दगी बढ़ेगी। तीर्थों में प्रायः भीड़ बनी रहती है। यह भीड़ धर्मशालाओं-चट्टियों, मार्ग में, मन्दिरों में, घाटों पर अनेक प्रकार की गन्दगी बढ़ाती है। यह स्वाभाविक है। कहीं दोने-पत्ते बिखरेंगे, कहीं मलमूत्र या थूक डालेंगे, कहीं कीचड़ बढ़ेगा। यह गन्दगी यथा शीघ्र दूर करदी जाया करे, यह व्यवस्था नितान्त आवश्यक है। धर्मशालाओं-चट्टियों मे व्यवस्था ठीक है, स्वच्छता रहती है किन्तु धर्मशाला-चट्टी के पास की गलियां-रास्ते बहुत गन्दे रहते हैं। धर्मशाला, चट्टी, मन्दिर, तथा घाट के पास की गलियों एवं मुख्य मार्गों की स्वच्छता पर नगर कमेटियों-चौधरी-चट्टियों को अधिक ध्यान देना चाहिए।

६६—जल की स्वच्छता—

तीर्थोंकी सबसे बड़ी समस्या है जलकी स्वच्छता। अधिकांश तीर्थों के सरोवरोंका जल स्वच्छ नहीं होता। यह स्वाभाविक है कि जिस सरोवर में एक बड़ी भीड़ बराबर स्नान करेगी, उसका जल दूषित हो जाएगा। गया मे जिन सरोवरों में पिंड-विसर्जन

होता है, उनके जलमें अन्न सड़ने से बहुत दूर तक जलकी दुर्गन्ध आती रहती है। केदारनाथ-मार्ग में गौरी-कुण्ड के जलको जान बूझ कर इतना गन्दा रखा जाता है कि स्नान करने की इच्छा नहीं होती। त्रियुगीनारायण में पहले कुण्ड में पिंड-विसर्जन होता है और उसी का जल उस कुण्डमें गिरता है जहां यात्री स्नान करते हैं। नाना प्रकार के रोगी, विशेषकर चर्मरोगी भी इन्हीं कुण्डोंमें आकर स्नान करते हैं। और जल बाहर निकलने की व्यवस्था नहीं की गई है। यह दूसरों के स्वास्थ्य के लिये अत्यन्त हानिकारक है।

जिन सरोवरों में ऐसे स्रोत नहीं है, कि नीचे से बराबर जल निकलता रहे और कुण्ड या सरोवर से बराबर बाहर जाता रहे,ऐसे बन्द जलवाले सरोवर यदि छोटे हों तो उनमें प्रवेश करके स्नान करनेके बदले उनका जल बाहर लेकर स्नान करने की परिपाटी डालना उचित है। प्रत्येक बन्द सरोवर का जल यदि संभव हो तो पर्व या मेलोंके पश्चात् अवश्य बदल दिया जाना चाहिए। वर्ष में एक बार सरोवरों की स्वच्छता भली प्रकार जल निकाल कर होजानी चाहिए।

६७—यात्रियों का कर्तव्य—

स्वच्छता का जितना दायित्व तीर्थ के लोगों का है, उससे अधिक दायित्व यात्रियोंका है। यात्रीको पर्याप्त सावधानी रखनी चाहिए। उसे कागज, दोने, पत्ते, फलों के छिलके, शाकके अवशेष जूठन, दातौन आदि निश्चित टबों में या कूड़ा डालने के स्थानों पर ही डालना चाहिए। पवित्र सरोवर तथा देव मन्दिर पूज्य स्थान हैं। वहां या उनके आस-पास किसी प्रकार की कोई गंदगी उसके द्वारा न बढ़े, यह प्रत्येक यात्री को बहुत ध्यान पूर्वक सावधान रखने की बात है। स्नान करते समय, घाट पर पूजन करते समय, मन्दिर में जल इस प्रकार न गिरे, न फैले कि आस-पास

बीच हो अथवा सूखा फर्श गीला होजाए । यह सावधानी रखनी चाहिए ।

हमारे पावन तीर्थ स्वच्छ, सुव्यवस्थित, शान्ति तथा सदाचारके प्रतीक होने चाहिएँ । वहां जाकर यात्रीको जो आधिदैविक रूपसे पापहारक प्रभाव प्राप्त होता है, वह तो सदा होता रहेगा । इनके साथ उसे तीर्थोंमें स्वास्थ्यप्रद, वायुमण्डल शान्ति पूर्ण वातावरण, तथा सदाचार एवं श्रद्धा को प्रेरित करने वाला सद्भ समाज भी प्राप्त होना चाहिए । इसके लिए तीर्थों तथा मन्दिरों में सदाचारी विद्वानों द्वारा कथा तथा सत्सङ्ग का भी नियमित आयोजन होना चाहिए । (कल्याण, तीर्थांक, ६००–६०१)

६८—सुधारकों और सरकार का कर्तव्य—

बदरीनाथ और अन्य कई मन्दिरों में अल्पायु के बालकों को ही महन्त या रावल आदि पदोंकेलिये दीक्षित करने या मूंडने की प्रथा है । अल्पायु का बालक जब युवावस्था में मन्दिर की सम्पति का स्वामी बनता है, तो आयु के अनुसार उसमें विषय भोगकी कामना उत्पन्न होती है, और वह ब्रह्मचर्य, त्याग और तपस्या का जीवन नहीं बिता सकता । पहले मन्दिरों के महन्तों, पुजारियों, रावलों आदि को देवदासियों आदि से अपनी वासना संतुष्ट करनेको छूटथी और समाजमें इसे बुरा न समझाजाता था ।

अब ऐसा बात नहीं है । समाज धर्म स्थानों के महन्तों आदिसे ब्रह्मचर्य, त्याग और तपस्या पूर्ण जीवन की आशा करता है । इसलिए सुधारकों और संस्कारका कर्तव्यहै कि बालकों को महन्त या शिष्यादि बनानेकी प्रथा समाप्तकरके विद्यावृद्ध,वयोवृद्ध और त्यागी तपस्वी महात्माओंसे महन्तादि चुने जाएं और उनका कार्यकाल पांच वर्ष से अधिक न हो । बौद्ध धर्म के पतन का एक मुख्य कारण उसमें युवक–युवतियों को भिक्षु–भिक्षुणी बना देना था । यदि हम रोग को दूर करना चाहते हैं तो उसका कारण ढूंढ़ना आवश्यक है ।

अध्याय १६

बदरी–केदार वर्ग के मन्दिरों की व्यवस्था–

केदारनाथ वर्ग के मन्दिर–

१–केदारनाथ मन्दिर–

१–अधीन मन्दिर–

निम्न मन्दिर केदारनाथ के मन्दिर के रावल महन्त की महन्ताई मे समझे जाते हैं।

१—पाच केदार केदारनाथ, कल्पेश्वर, तुङ्गनाथ, मध्य–मेश्वर और रुद्रनाथ।

२—एकादश अन्य तीर्थ—अगस्त्यमुनि,ऊखीमठ,कालीमठ, गुप्तकाशी, गोपेश्वर, गौरीदेवी, तुङ्गनाथ, त्रियुगीनारायण, मध्य-मेश्वर के अन्य मन्दिर, लक्ष्मीनारायण, और रुद्रनाथ के अन्य मन्दिर।

२–रावल—

केदारनाथ के पण्डों और रावल का ऊपर वर्णन हो चुका है। रावल पहले अन्य पुजारियोंको नियुक्त कर सकता और हटा सकता था। अब बदरीनाथ-मन्दिर समिति की आज्ञा से ही ऐसा किया जा सकता है। रावल और पुजारियोंको अब मासिक वेतन मिलता है। उन्हे न तो कोई वंशपरम्परागत अधिकार प्राप्त हैं और न वे अपने स्थान पर किसीको अपना प्रतिनिधि बना सकते हैं। ये मन्दिर की सम्पति या आय में से अपने लिए कुछ बचा कर अलग नहीं रख सकते।

३–पुरोहित—

केदारनाथ में मन्दिर में रवि गाव के [illegible]

करते हैं। वे मन्दिर के अधिकारियों के आदेश से मन्दिर में यज्ञ करते हैं। इनमें से दो व्यक्ति सदा मन्दिर में उपस्थित रहते हैं, पर उनमेंसे केवल एक को ही मन्दिरसे भोजन मिलताहै। उनका यह कार्य वंशपरम्परागत है और वे आपस में ही इसे एक-दूसरे को सौंप सकते हैं।

४—भेंट-दक्षिणा-चढ़ावा—

भेंट या दक्षिणा इस प्रकार दी जाती हैं।

१—यात्री मंदाकिनी में स्नान करता है, और अपने पंडा को एक पैसा देता है।

२—यदि वह यहां श्राद्ध करता है तो सारी दक्षिणा उसके अपने पण्डों को मिलती है।

३—तब यात्री मन्दिरमें जाताहै। प्रायः उसके साथ उसका पण्डा अन्दर जाता है, और पूजा में उसकी सहायता करता है। वे सङ्कल्प में यात्री से कमलपुष्प, रुद्राभिषेक तथा वृषभ दान के नाम पर अथवा केवल दान के नाम पर कुछ दक्षिणा लेते हैं। यह दक्षिणा-दान भी उसी के पण्डों को मिलती है। यदि यात्री चाहें तो उनका पण्डा उनसे केदारशिलाका आलिंगन भी करवाता है।

मन्दिरमें भी केदारनाथ देवता के नाम पर, अथवा मन्दिर के अन्दर या बाहर आंगन में अन्य छोटे देवताओं के नाम पर यात्री जो भेंट चढ़ाता है वह मन्दिर के कोष में जमा की जाती है। किन्तु पार्वती और लक्ष्मी मूर्तियों के सन्मुख यात्री जो भेंट चढ़ाता है, वह क्रमशः शामलिया-भंडारियों और रवि-गांव में पुरोहितों को मिलती है।

४—तब यात्री यदि मन्दिरके दक्षिणमें उदककुण्डमें जाकर जल पीना चाहता है तो उससे एक पैसा लिया जाता है। यह दक्षिणा मन्दिर कोष में जाती है।

५—उदक कुण्ड निकट दो अति प्राचीन मन्दिर संभवतः केदारनाथ मन्दिर से भी अधिक प्राचीन हैं। ये अन्न पूर्णा और नवदुर्गाके मन्दिर हैं। यहांकी भेंट सारे पण्डावर्गमें बंटजाती है।

६—हंसकुण्ड में पर्वतीय यात्री श्राद्ध करते हैं। जिसकी सारी दक्षिणा यात्री का अपना पण्डा लेता है।

८—रेतकुण्ड में यात्रियों से एक पैसा प्रति यात्री लिया जाता है। इस कुण्ड की आय समस्त पण्डावर्ग में बांटी जाती है। १९१९ ई०(सं० १९७६) में पण्डोंने इस कुण्डको तोताराम नामक एक व्यक्तिको बीस रुपया प्रति वर्ष के ठेके में दिया हुआ था। (पन्नालाल, कस्टमरी लौ, ५६)

केदारकल्प इस कुण्ड की प्रशंसा से भरा पड़ा है। उसमें उन अन्य कुण्डों के जलकी प्रशंसा भी है, जिनकी आय सारे पंडा वर्ग को मिलती है। ऐसा प्रतीत होता है, कि केदारखण्ड-ग्रन्थ देवप्रयागी पण्डों की प्रेरणा से और केदारकल्प केदारनाथके पंडों की प्रेरणा से लिखा गया है।

८—केदारनाथके निकट स्वर्गद्वारी, सङ्कटेश्वर, वासुकी ताल और चोराबाड़ी ताल दर्शनीय स्थान हैं। जो पण्डा यात्रीके साथ वहां जाता है, उसीको वहां की भेंट मिलती है।

६—इस प्रकार यात्रा समाप्त होजाने पर यात्री का अपना पण्डा उसे सुफल (अन्तिम आशीर्वाद) देता है, और अन्तिम दक्षिणा लेता है। कभी-कभी सुफल केदारनाथ मन्दिर के उत्तर-पूर्व में स्थित ईशानेश्वर के चबूतरे पर दिया जाता है। केदारनाथ के पण्डों को मैंने बड़ा सन्तोषी पाया। बदरीनाथ के कुछ पण्डोंके समान उन्हें यात्रीको परेशान करते नहीं देखा।

५-पशुचारकों से भेंट-चढ़ावा—

१०—इसके अतिरिक्त रेतकुण्ड के ऊपर की शिला पर

भैरव का मन्दिर है। यह भैरव केदारनाथका रक्षक है। केदारनाथ के बनिये यहां एक रुपया भेंट चढ़ाते हैं। पशुचारक यहां प्रति अपने पशुओं की, बनैले पशुओं से, रक्षा की कामना से इस प्रकार भेंट चढ़ाते हैं। प्रति भैंस एक रुपया, प्रति घोड़ा आठ आने और आठ ग्वाले (पूरी-जैसा पकवान) भेड़-बकरियों के प्रति गल्ले पर चौथाई सेर घी और तीन आने तीन पैसे नकद। इस प्रकार पशुचारकों से जो भेंट-चढ़ती है, उसे सारे पण्डा वर्ग की आय मानाजाता है। आषाढ़के मास के दिन भैरवका भण्डारा होता है। जिसमें देवता को भोग लगाने के पश्चात उपस्थित पंडा लोग जीमते हैं। कोई पण्डा इस धन में से अपना अलग भाग नहीं मांग सकता। उसे केवल आषाढ़-मासान्त के दिन भण्डारे का भोजन मिल सकता है। यदि वह उस दिन उपस्थित हो। (पन्नालाल, कस्टमरी लौ, ४४-४६)

२-गुप्तकाशी मन्दिर

६-पण्डा—

इस मन्दिर मे भी केदारनाथके पण्डे ही पण्डाचारी करते हैं, उन्हें मन्दिर के अन्दर दान लेने का अधिकार है।

७ पुजारी—

केदारनाथ मन्दिरके अधिकारी यहां नकद वेतन पर पुजारी नियुक्त करते हैं, और उन्हे हटा सकते हैं। इन पुजारियों को वंशपरम्परागत अथवा अपने प्रतिनिधिको सौंपने योग्य अधिकार प्राप्त नहीं है।

यहां के मुख्य तीर्थ एक तो शिव मन्दिर है, और दूसरा एक पवित्र जलस्रोत है जो मन्दिर के सन्मुख है।

८—भेंट—दक्षिणा—चढ़ावा—

१—जलस्रोतमें स्नान करने की भेंट एक पैसा प्रति यात्री है। इसकी आय मन्दिर कोष में जाती है। मन्दिर के अधिकारी इस जलस्रोत को ठेके पर देदेते हैं।

२—गुप्तदान—नकद या आभूषण आदि नारियलके अन्दर बन्द करके दिया जाता है। यात्री प्रायः जलस्रोत पर इसे अपने साथ आने वाले पण्डे को देते हैं।

३—मन्दिर में देवमूर्ति के सन्मुख भेंट—यह मन्दिर कोषमें जाती है। पण्डा लोग मन्दिर के अन्दर भी पण्डाचारी करते हैं।

४—जो दक्षिणा पुजारी को पृथक दी जाती है, उसे वह रख सकता है।

न्यायालयों ने निर्णय किया है कि इस मन्दिर में किसी प्रकारकी भेंट-दक्षिणा लेने का एकाधिकार पंडोंको नहीं है। यात्री को पूरी स्वतन्त्रता है कि वह मन्दिर, पुजारी अथवा पंडों को जो चाहे सो दे। इस मन्दिर का केदारनाथ मंदिर के अधिकारी स्वयं प्रबंध करते हैं। (पन्नालाल, कस्टमरी लौ ५१-५८)

त्रियुगी नारायण-मन्दिर

६—पण्डा—

यह मंदिर विष्णु का मंदिर है। इसके अपने पंडे और पुजारी हैं। केदारनाथ के पंडों का इस मंदिर से कोई बंध नहीं है। ये पंडे त्रियुगीनारायण गांव मे रहते हैं। ये ७ थोक में बंटे हैं। प्रतिवर्ष प्रत्येक थोक से एक व्यक्ति और दो अतिरिक्त कुल ९ व्यक्ति चुने जाते हैं, जो इस मंदिर के चढ़ावे को तथा इसके निकट के तीर्थों के चढ़ावे को आपस में बांट लेते हैं। ये १०

वैसाख से एक वर्ष की आय प्राप्त करते हैं। ये व्यक्ति मंदिर में जलानेकेलिये लकड़ी लाते हैं और मंदिरके पास धोते हैं। उनका अधिकार क्षेत्र मंदाकिनी-त्रिविक्रम नदी के सङ्गम सोनप्रयाग तक नदीके इस (त्रियुगी की) ओर है। अभी कुछ समय पूर्व त्रियुगी के एक पंडे ने केदारनाथ के एक बड़े चतुर पंडे को अपना उत्तराधिकारी बनाया है।

१०-पुजारी—

यहां के पुजारी पड़ोस के रविगांव के जमलोगी ब्राह्मण हैं। इनके भी सात थोक हैं। जिनमें से प्रत्येक का एक प्रतिनिधि यात्राकाल में मन्दिर में रहता है। मन्दिर की सारी आय सातों थोक में बराबर-बराबर बांटी जाती है। शीतकाल में सारे पुजारियोंमें से केवल एक व्यक्ति बारी-बारीसे यहां रहता है। सारी भेंट-चढ़ावा वही लेता है। इन पुजारियों का अधिकार वंशपरम्परागत है, पर उसे वे पुजारियों के अतिरिक्त अन्य व्यक्तिको सौंप नहीं सकते।

११-कर्मचारी—

इस मंदिर में एक लेखवार (क्लर्क) और दो मठपति (भण्डारी) होते हैं। एक मठपति नकद पूंजी और दूसरा अन्न का भण्डार रखता है। ये केदारनाथ मंदिर के प्रबंधक द्वारा स्थानीय पंडों में से नियुक्त किये और हटाये जा सकते हैं। वर्ष में एक बार आय-व्यय की जांच होती है। त्रियुगी गांव गूंठ गांव है। उसका भूमि-कर मंदिर-कोष में जाता है। रविगांव मुआफी गांव है। वहां के निवासी भूमिकर नहीं देते। मंदिरमें परिचर्या के कारण वे भूमिकर से मुक्त हैं।

१२-चढ़ावा—

१—ब्रह्मकुंड में स्नाने के लिये प्रति यात्री एक पैसा। यह

आय पुजारी लेते हैं।

२—रुद्रकुण्ड में एक पैसा प्रति यात्री लेते हैं।

३—विष्णुकुण्ड में स्नान का एक पैसा सारे पुजारी वर्गको मिलता है।

४—सरस्वती कुण्ड—यहाँ यात्री तर्पण करतेहैं और यात्रियों के साथ आया पण्डा इसका चढ़ावा लेता है।

५—धर्मशिला—यात्रियों के साथ आने वाला पण्डा यहाँ के चढ़ावे का अधिकारी होता है।

६—मन्दिरमें देवताकी चढ़ाई भेंट मन्दिर कोषमें जातीहै।

७—हवन-मन्दिर में अखण्ड अग्नि रखी जाती है। प्रायः यात्री धूनी में लकड़ी डालते रहते हैं जिसे वे उन पण्डों से खरीदते हैं, जिनकी बारी मन्दिर में ईंधन पहुँचाने की होती है। इस हवनकुण्ड का चढ़ावा पुजारी लेते हैं।

८—प्रायः यात्री पुजारी को अलगसे दक्षिणा भी देते हैं। (पन्नालाल, कस्टमरी लॉ, ५२-५३)

४—गौरीकुण्ड

१३—मुख्य तीर्थ—

१-शीतल जलका कुण्ड, गौरीकुण्ड में, २-उष्णजल का धारा तप्तकुण्ड, ३-गौरी माई का मन्दिर, ४-मन्दिर के आँगनमें कुछ छोटी मूर्तियां।

१४—गौरीकुण्ड—

यहाँ स्नान के लिये प्रति यात्री को १ पैसा देना होता है। पहले यह कुण्ड तप्तकुण्ड के समान केदारनाथ के सभी पण्डों की साझी सम्पत्ति था। किन्तु एक डिग्री के कारण उनमें से चार बयाये और नौ वौसियों ने इस कुण्ड में अपना अधिकार एक

किरतराम नाम वाले व्यक्ति के पास बेच दिया। इस किरतराम के वंशज अपना अधिकार ठेके पर दूसरों को दे देते हैं। अन्य पण्डों का भी एक प्रतिनिधि यहाँ रहता है। दिन भरकी आयके दो बराबर भाग होते हैं, एक को किरतराम के वंशजों का ठेकेदार लेता है, दूसरे को शेष पण्डों का प्रतिनिधि।

यात्री इस कुण्ड पर अपने पण्डा को दान दे सकते हैं, और वह उस दानको ले सकताहै। (पन्नालाल कस्टमरी लॉ,५३)

१५—तप्तकुंड

यहाँ स्नान करने के लिये एक पैसा देना पड़ता है। पहले इस कुण्ड की आय केदारनाथ के सभी पण्डों को मिलती थी। किन्तु उन्होंने इसे रविगांव के निवासियों को ११ कच्चे रुपये (८ रु० १२ आना) प्रति वर्ष पर ठेके पर दे दिया। वे केदारनाथ मन्दिर में जाकर रक्षा बन्धन के दिन यह रुपया चुकाते हैं। ठेकेदार आठ सयाणोंके सन्मुख एक कम्बल बिछाकर उनके सन्मुख यह रुपया रखते हैं, वे इस पूञ्जी में से एक रुपया दक्षिणा रूपमें रविगांव वालों को वापिस कर देते हैं।

न्यायालयों ने निर्णय दिया है कि यहाँ जो भी चढ़ावा, नकदी, पैसे या भेंट प्राप्त होगा वह सब रविगांव के जमलोगी ब्राह्मणों को मिलेगा किन्तु यदि आभूषण और सोना-चाँदी चढ़ेंगे तो उन पण्डों को मिलेंगे। १२ जून १९०० को तुलाराम पण्डा और मगसियारु जमलोगी के मध्य मुकदमे में यही निर्णय हुआ था। (पन्नालाल, कस्टमरी लॉ, ५३-५४)

५—गौरीमाई का मन्दिर

१६-पंडा-

इस मन्दिर से किसी पण्डे का विशेष सम्बन्ध नहीं है।

१७—पुजारी-

गौरीगाव के गुसाई हैं। इस मन्दिर में पूजा और भोग लगाने के कारण उनसे भूमि कर नहीं लिया जाता। १९१९ तक उनके द्वारा गाव की भूमि बेचने का कोई उदाहरण न मिला था। उनमें पूजा का अधिकार वंश परम्परागत है, जो उनकी जाति के अतिरिक्त अन्य को नहीं दिया जा सकता। ये लोग गृहस्थी हैं और उत्तराधिकार चेले को नहीं, पुत्र को मिलता है। पुत्र न होने पर चेला रखा जाता है और उसे अधिकार मिलता है। १९१९ तक किसी विधवा, घरजंवाई या धर्मपुत्र को उत्तराधिकार मिलने का प्रमाण न मिला था।

पुजारियों के पाँच परिवार हैं और बारी-बारी से एक-एक महीना यात्राकालमें वैशाखसे भादों तक और एक-एक महीना यात्रा रहित काल में मगसीर से चैत तक तथा बारह-बारह दिन असौज तथा कार्तिकमें पूजा करतेहैं। देवी मे जो चढ़ावा चढ़ता है वह पूजा करने वाले पुजारी के सारे परिवार में बँटता है। यात्री कभी-कभी पुजारी को अलगसे दक्षिणा देते हैं। जो केवल उसी को मिलती है। (पन्नालाल कस्टमरी ली, ५४)

६—अन्य छोटे मन्दिर

१८—गौरीकुंड के आँगनमें छोटे मन्दिर-

यहाँ उमा, महेश्वर, महादेव और गणेश के छोटे-छोटे मन्दिर हैं। यहाँ का चढ़ावा पुजारी लेते हैं। इसे गौरी माई के उस हिसाब-किताब में नहीं लिया जाता जो प्रति वर्ष प्रबन्धक को दिखाया जाता है। गौरी॰माई के द्वार पर एक धूनी रखी जाती है। इसका चढ़ावा भी हिसाब में नहीं लिखा जाता, पुजारी ले लेते हैं। (पन्नालाल, कस्टमरी लॉ ५०)

७—ऊखीमठ

१९—ऊखीमठ

यहाँ केदारनाथ मन्दिरका प्रधान कार्यालयहै। केदारनाथ का रावल यहीं रहता है। यहाँ अनेक मन्दिर हैं जिनके कार्य कर्त्ताओं की नियुक्ति केदारनाथ मन्दिर के अधिकारियों के हाथमें है। उनको वंश परम्परागत या प्रतिनिधिको सौंपने योग्य अधिकार नहीं प्राप्त हैं। सारा चढावा केदारनाथ मन्दिर कोष में जाता है। (पन्नालाल कस्टमरी लॉ, ५६)

८—मध्यमेश्वर

इस मन्दिर में यात्री कम जाते हैं। १९१९ में यहाँ एक भी यात्री न पहुँचा था।

२०—पंडा–

यहाँ किसी पण्डे का कोई अधिकार नहीं है।

२१—पुजारी—

यहाँ पुजारी केदारनाथ के रावल (अधिकारियों) द्वारा नियुक्ति किया और हटाया जाता है। वंशपरम्परागत पुजारी नहीं है।

२२—अन्य कर्मचारी–

पूजा को छोड़कर अन्य कार्य गौंडार गांव के पंवार करते हैं। इनके चार परिवार हैं, जो बारी–बारी से मन्दिर में भोग पकाने और चन्दन घोटने में सहायता करते हैं, लकड़ी लाते हैं और हिसाब रखते हैं, जिस पर पुजारी हस्ताक्षर करता है। तथा अन्य कार्य करते हैं। उन्हे तीस रुपया मासिक और प्रतिदिन दो व्यक्तियों का भोजन मिलता है। इसके अतिरिक्त उन्हें निम्न

स्थानों के चढ़ावे को लेने का अधिकार है। उनका यह अधिकार वंशपरम्परागत है और वे प्रतिनिधि अपनेमें से ही बना सकतेहैं।

२३—चढ़ावा—

यहाँ निम्न स्थानों पर चढ़ावा चढ़ता है। १—मध्यमेश्वर देवता में, २—देवी में, ३—उदककुण्ड में स्नान करने से पहले एक पैसा, ४—गौरी शङ्कर देवता में, ५—सरस्वती कुण्ड में स्नान करने से पहले एक पैसा।

प्रथम तीन चढ़ावे मन्दिर कोष में रहते हैं। और उनकी सारी पूंजी केदारनाथ मन्दिर के कोष में जमा की जाती है। अन्तिम दो की आय पंवार (सेवकों) के पास जाती है, जैसा ऊपर कहा गया है। पूजा और भोग की वस्तुऐं केदारनाथ मन्दिर का प्रबन्धक भेजता है। (पन्नालाल वस्टमरी लौ ४६-५०),

६—कालीमठ

२४—पंडा

यहाँ किसी पण्डे का अधिकार नहीं है।

२५—पुजारी

कविल्था गांवके भट्ट, इस मन्दिर के पुजारी हैं। उन्हें ६ रुपये ४ आने भूमि कर वाली भूमि (लगभग ३० नाली) की मुआफी (निःशुल्क) दी गई है। इस भूमिका वे विक्रय नहीं कर सकते। मन्दिर से उन्हें प्रतिदिन एक व्यक्ति का भोजन मिलता है। पुजारी का अधिकार वंशपरम्परागत है। प्रतिनिधि रूप में उस जाति का ही कोई व्यक्ति लगाया जा सकता है, अन्य जाति का नहीं।

२६—भोग पत्ती—

इसकी सामग्री ५ गाँवों—चलीमठ, कविल्था, ब्योंरखो,

बडेशा और ज्योगी गांवोंसे आती है। वे प्रतिदिन २½ सेर चावल ½ सेर तेल, के अतिरिक्त भोजन बनाने और धूनी के लिये लकड़ी पहुँचाते हैं।

२७—कर्मचारी—

सब केदारनाथ रावल (समिति) द्वारा नियुक्त किये जाते हैं।

२८—तीर्थ—

मुख्य पूजा स्थान ये हैं–१–महाकाली, २–महालक्ष्मी, ३–महासरस्वती, ४–गौरी शङ्कर, ५–महादेव, ७–भैरवकी मूर्तियां।

२९–चढ़ावा–

प्रथम बार की सारी आय मन्दिरकोष में जमा होकर केदारनाथ मन्दिर के प्रबन्धक के पास भेजी जाती है। महादेव मूर्ति के चढ़ावे को पुजारी और भैरव के चढ़ावे को घड़िया लेता है। सारा लेखा जोखा चैत और आषाढ़ में केदारनाथ मन्दिर के अधिकारियों के पास भेजा जाता है।

३०–कालशिला–

कालीमठ से तीन मील दूर कालशिला में जो भेंट चढ़ती है, उसे कालीमठ का पुजारी लेता है। यात्रियों को कालशिला पर चढ़ाने के लिये चावल और दूध; च्यौरवी, वेड़िया और ज्योगी गांवों से मिल जाता है जिसके बदले उन्हें गांव वालों को कुछ पैसे देने पड़ते हैं। (पन्नालाल, कस्टमरी लौ, ५७–५८)

३१—देवचेलियां—

कालीमठ में पहले देवचेलियां (देवदासियां) हुआ करती थीं, जिनके लिये अलग घर बने थे। अन्तिम देवदासीको मरे कुछ ही वर्ष हुएहैं। अब यह प्रथा बन्द होगई है। देवचेलियों का घर अब तक है।

१०—तुङ्गनाथ

३२-पंडा और पुजारी-

इस मन्दिर में मक्कू गाँव के पण्डे ही पुजारीका भी काम करते हैं। उनका अधिकार वंशपरम्परागत है और वे प्रतिनिधि नियुक्त कर सकते हैं। वे बारी-बारी से पूजा करते हैं। इसके लिये उन्हे नौ रुपया भूमि कर वाली भूमि निशुल्क मिली है। अन्य कर्मचारियों को दो रुपया भूमि कर वाली भूमि निशुल्क दी गई है। यदि ये लोग इस भूमि को बेचें या किसी को देदें तो भूमि लेने वाले के लिये आवश्यक है कि वह भूमि कर पुजारियों या कर्मचारियों को देवें।

३३-देव दासियाँ

मन्दिर में नृत्य-गान के लिये मक्कू गाँव की नायक और पातरों को नियुक्त किया गया है। मन्दिर में अपने कार्य के लिये उन्हें एक रुपया भूमि-कर वाली भूमि निःशुल्क दी गई है (पन्ना-लाल कस्टमरी लॉ, ५८)

३४-तीर्थ-

१—मन्दिर के पास पवित्र स्रोत-कुण्ड, २—तुङ्गनाथ का मन्दिर जिसमें महादेव के अतिरिक्त अन्य अनेक छोटी-छोटी मूर्तियां हैं। स्रोतों-कुण्डों परके चढ़ाने यात्री के साथ जाने वाला पण्डा लेता है। मन्दिर का चढ़ावा मन्दिर-कोष में जमा होताहै। प्रतिवर्ष हिसाब का लेखा-जोखा केदारनाथ मन्दिर के अधिकारियों के पास भेजा जाता है। (पन्नालाल, कस्टमरी लॉ ५८)

बदरीनाथ वर्ग के मन्दिर

३५—बदरीनाथ मन्दिर के अधीन मन्दिर-

१—बदरीनाथ का मन्दिर और बदरीनाथ के अन्य तीर्थ।

२—जोशीमठ में नरसिंह, वासुदेव, राजराजेश्वरी, दुर्गा तथा ज्योत्येश्वर मन्दिर तथा भक्तवत्सल मन्दिर।

३—पाण्डुकेश्वर में ध्यानबदरी का मन्दिर।

४—उरूगम में ध्यानबदरी और कल्पेश्वर के मन्दिर।

५—सुवाई गांवमे भविष्य बदरी का मन्दिर।

६—अणीमठ में वृद्ध बदरी का मन्दिर।

७—विष्णु प्रयागमें नारायण का मंदिर।

८—चाईस (पट्टी तल्ला+पैनखण्डा) में सीना देवी का मन्दिर।

६—रैंगांव में रवेश्वर का मंदिर।

१०—लक्ष्मीनारायणके मंदिर जो नन्दप्रयाग, डिमर, नारायण बगड़, द्वाराहाट, कुलसारी (पट्टी बधाणा) न्याला और गड़सिर में हैं।

११-नरसिंह के दो मंदिर जो दाड़िमी पारवी में हैं।

१२-लंगासू में चण्डिका देवी का मंदिर।

१३-वैरासकुण्ड मे महादेव का मदिर।

१४-क्यौंकालेश्वर में महादेव का मंदिर।

उपर क्त सची पन्नालाल ने दी है। (कस्टमरी लौ, ६२) बदरीनाथ मदिर अधिनियम। (१६३६) की सूची १ (पृ० ११-१२) में जोशीमठ का भक्तवत्सल मदिर भी गिना गया है पर निम्न मंदिर उस सची में नहीं मिलते।

१—लंगासू में चंडिका देवी का मंदिर।

२—वैराशकुण्ड मे महादेव का मदिर।

३—क्यों कालेश्वर मे महादेव का मंदिर।

४—रैंगाव मे रवेश्वर का मदिर।

पन्नालाल ने भी लिखा है कि उस समय (१६१६ ई०)

तक रविगांव के रवेश्वर मंदिर और वैराश कुण्ड की नियुक्ति बदरीनाथ के अधिकारियों के हाथ में आ चुकी थी। इन मंदिरों के भोग-पूजा, पुजारियों की नियुक्ति और सेवा से मुक्ति सभी के नियम बदरीनाथ मंदिर के अधिकारी बनाने लगे थे। इन मंदिरों में किसी पण्डे को कोई अधिकार नहीं है। रंगांव के रवेश्वर और वैराशकुण्ड के महादेव के मंदिर स्वतंत्र मंदिर हैं, यद्यपि उन्हें बदरीनाथ मंदिरसे सहायता मिलती है। (पन्नालाल, कस्टमरी लौ, ६२)

१—बदरीनाथ का मन्दिर

३६—पंडा—

मैदानी यात्रियों के पण्डा देवप्रयागी और हिमालय वासियों के डिमरी पण्डा हैं, जिनके सम्बन्ध में पहले कहा जा चुका है। इन पण्डों का मन्दिर से कोई सम्बन्ध नहीं है और न मंदिर में पूजा, चढ़ावा, आय-व्यय या मन्दिर के प्रबन्ध में ही उनका कोई हाथ है। उन्हें यात्रियों के साथ मंदिर में जाने और वहाँ किसी प्रकार से यात्रियों को पूजा में सहायता देने का कोई अधिकार नहीं है। ये मंदिर में केवल व्यक्तिगत रूपसे जा सकते हैं, पण्डा रूप से नहीं। डिमरी लोगों को डिमरी-रूपमें मन्दिर में कुछ अधिकार प्राप्त हैं, पण्डा रूपमें नहीं।(पन्नालाल कस्टमरी लौ, ५६)

३७—ब्रह्मकपाली—

पण्डों के अतिरिक्त ब्रह्मकपाली भी हैं जिनके अधिकार नीचे दिये गये हैं—

३८—रावल—

रावल के सम्बन्ध में विस्तार से कहा जा चुका है।

३६—बड़वा—

यह रावल का सहायक होता है जिसे डिमरी लोग अपने में से स्वयं चुनकर देते हैं। वह रावल के निकट रहकर पूजा में रावल की सहायता करता है। पर न तो स्वयं पूजा कर सकता है और न मूर्तियों को छू सकता है। उसे शुद्ध सरोला डिमरियों में से चुना जाता है। केवल रावल और बड़वा ही मन्दिर में उस स्थान तक जा सकते हैं, जहाँ मूर्तियां रहती हैं।

४०—कर्मचारी—

प्रबन्धक (मैनेजर) लेखक (क्लर्क) कोषाध्यक्ष, चपरासी, बदरीनाथ मन्दिर विधेयकके अनुसार अब मंदिरके सचिव भी होते हैं। ये सब वेतन पाने वाले कर्मचारी हैं, और इन्हें किसी प्रकार का वंश परम्परागत या अपना प्रतिनिधि नियुक्ति करने का अधिकार नहीं है। इनके अतिरिक्त निम्न अर्द्ध-पुजारी कर्मचारी होते हैं:—

१—रसोइया—

आवश्यकतानुसार ६ या अधिक रसोइया भोग पकाने के लिये नियुक्त किये जाते हैं।

२—बटवाल—

एक बटवाल घर बद्रीनाथ से महाराजा टेहरी के पास प्रसाद भेजने के लिये होता है।

३—सेवाकार—

एक ब्राह्मण सेवाकार रावल की व्यक्तिगत सेवा के लिये होता है। ये तीनों प्रकार के कर्मचारी शुद्ध सरोला डिमरियों में से नियुक्त किये जाते हैं। ये अपना प्रतिनिधि अपनी जातिमें से ही चुन सकते हैं।

४१—अन्य कर्मचारी—

ये पद तीन प्रकार के हैं। इनमें से प्रत्येक पद पर केवल बामणी और पाण्डुकेश्वर गांवों के दुरियाल ही नियुक्त किये जा सकते हैं। ये पद इस प्रकार हैं-१—भण्डारी—दो व्यक्ति, ये अन्नादिके भण्डार को रखते हैं। जब भोग पकानेके लिये रसोइया के पास अन्न दिया जाता है तो उसका कुछ अंश इन्हें लेने का अधिकार है। इसके अतिरिक्त मन्दिर से उन्हें कुछ नकद धन और वस्तुएं भी मिलती हैं। २—महता—दो व्यक्ति इनका कार्य व्यवस्था बनाये रखने और यह देखने का होता है कि कोई अनियमितता न होने पावे। चढ़ावा भण्डार या भोजनालय से कोई वस्तु न चुराई जाय। बदरीनाथ के चढ़ावे में से वे कुछ नहीं ले सकते, पर यदि उन्हें कोई यात्री अलगसे कुछ देना चाहे तो ले सकता है। ३—घड़िया—दो व्यक्ति, इनका कार्य पूजा में प्रयुक्त होने वाले बर्तन, दीपक आदि को रखना, उन्हें धोना, तथा आरती के लिये उन वस्तुओं की बत्तियां बनाना है, जो वस्तुएं इन्हें अधिकारियों द्वारा दी जाती हैं। ४—१५ व्यक्ति इनका कार्य मन्दिर के रसोईघर में लगने वाला ईंधन लाना और रसोईघर के बर्तन धोना है। इनका मेठ कामदी कहलाता है।

इन तीनों प्रकार के कर्मचारियों को मन्दिर से नकद वेतन और कुछ वस्तुएं मिला करती हैं। उन्हें दुरियाल लोग अपने में से बारी-बारी से काम करने के लिये चुनते हैं। इन पदों पर बामणी और पांडुकेश्वर के दुरियाल ही काम कर सकते हैं, और धर्मपुत्र या घरजँवाई भी, जो इन्हीं गांवों के दुरियाल हों, उत्तराधिकार प्राप्त कर सकते हैं। भंडारी लोग तथा मेहता और घड़िया जातियों के लोग आपस में विवाह कर सकते हैं और धर्मपुत्र या घरजँवाई ले सकते हैं। वे थ्ठारी जाति से विवाह नहीं करते।

कामदी पद पर काम करने वाले केवल चार परिवार हैं। वे बारी-बारी से कामदी बनते हैं।

४२—तीर्थ

बदरीनाथ पुरीमें और उसके आस पास निम्न छोटे तीर्थ हैं जो सबके सब बदरीनाथ समिति के अधीन हैं। १-श्रीशङ्कराचार्य मन्दिर, २-श्री आदिकेदारेश्वर मंदिर, ३-श्री बल्लभाचार्य मन्दिर, ४-तप्तकुण्ड, ५-ब्रह्मकपाल शिला और परिक्रमा, ६-मातामूर्ति, ७-११) पञ्चशिला, (१२-१६) पञ्चधारा १७-बदरीनाथ की परिक्रमा में धर्मशिला, १८-१६-बसुधारा और बसुधारा के नीचे धर्मशिला इन सब पर यात्री से चढ़ावा लिया जाता है।

४--चढ़ावा-१-तप्तकुण्ड—

यहाँ की दक्षिणा केवल देवप्रयागी पण्डे ले सकते हैं। पर इनका इस कुण्ड मोते या इनके प्रबन्ध में कोई हाथ नहीं होता। वे अपने जजमानों को इस कुण्ड पर सुफल देते हैं। यहाँ का सारा चढ़ावा-जिसमें स्नान-शुल्क और सुफल के लियें दान सम्मलित हैं, यात्री के अपने पण्डा को मिलता है। पण्डा लोग मोटे सेठों स किस प्रकार रुपया निचोड़ते हैं कभी-कभी उसका दृश्य यहाँ देखने को मिल जाता है।

२—बदरीनाथ के निम्न स्थानों पर स्नान के संकल्प में जो धन चढ़ता है वह सारे डिमरी पण्डों को मिलता है। पण्डे यहाँ की आय ठेके पर दे देते हैं। ये स्थान इस प्रकार हैं-१-कूर्मधारा, २-प्रह्लाद धारा, ३-गौरीकुण्ड, ४-सूर्यकुण्ड, ५-शिवधारा, ६-नारद कुण्ड। पञ्च शिलाओं पर अर्पित धन भी डिमरी पण्डे लेते हैं।

३—बदरीनाथ मन्दिर के आंगन में लक्ष्मी मन्दिर का चढ़ावा सारे डिमरी पण्डों को मिलता है।

४—बदरीनाथ मन्दिर में अर्पितधन मन्दिर-कोष में जाता है।

किन्तु कपूर आरती के पात्र में, जिसमें कपूर जलता है जो चढ़ावा पड़ता है, उसे बड़वा ले लेते हैं।

५—जो धन रावल को अलग से उसी के लिये दिया जाता है, उसी को मिलता है।

६—अटका भोग के लिये दिया धन मन्दिर-कोषमें जमा होता है। यह नियम नहीं है कि उस धन से सामग्री खरीद कर उसी समय पकाया जाये।

७—गद्दी भेंट-(उस चबूतरे पर अर्पित जिस पर रावल बैठता है) का चढावा मन्दिर-कोष में जाता है।

८—बदरीनाथ के द्वार के सामने स्थित गरुड़ की मूर्ति में जो चढ़ावा चढ़ता है, उसे डिमरी और दुरयाल लेते हैं। मन्दिर के आँगनमें उत्तर पूर्व में स्थित घण्टाकर्ण का चढावा दुरयाल भण्डारी लेते हैं। वास्तवमें ये अधिकार अधिक पुराने नहीं दिखाई देते।

९—बदरीनाथ के दक्षिण पश्चिम में स्थित धर्मशिला का चढ़ावा डिमरी पण्डों को मिलता है। ये यहाँ पर्वतीय यात्रियों को सुफल देते हैं।

१०—यद्यपि गङ्गा और ब्रह्मकपाल का चढ़ावा ब्रह्मकपाली लोग लिया करते हैं। इनमें मैठाणा, दालों, गिरगाव और हाटके कोठियाल, सती, नोटियाल, हटवाल लोग सम्मिलित हैं। ये चार थोकों में विभक्त हैं, जो बारी-बारी से एक-एक वर्ष तक यहाँ की आय लेते और सबकार कराते हैं। ये लोग उपरोक्त

जातियों को छोड़कर अन्य किसी जाति वाले को धर्मपुत्र या घर-जँवाई नहीं रख सकते हैं। (पन्नालाल, कस्टमरी लौ, ४८–६१)

११—केदारनाथ और इनके अधीन तीर्थों मे पहुँचते ही तुरन्त उन तीर्थों, कुण्डों, धारों, मूर्तियों आदिके नाम पर निश्चित दर से पैसे ले लिये जाते हैं, तब यात्री स्नान आदि की सोच सकता है।

१२—बदरीनाथ में डिमरी पण्डे अपने जजमान से एक थाली, एक धोती, एक श्रीफल आदि आरम्भ में ले लिया करते हैं। पर्वतीय प्रान्तों मे जजमान होने के कारण इनकी आय देव-प्रयागी पण्डों के समान नहीं होती। न ये उनके समान अपने गुमाश्तों को भारत के कोने कोने में भेजते हैं।

२—कमलेश्वर (श्रीनगर)

४८—महन्त—

गढ़वाल मे श्रीनगर मे कमलेश्वर शिव मन्दिर का महन्त पुरी होता है। वह ब्रह्मचारी नहीं होता और बच्चे उत्पन्न कर सकता है। पर उसके बच्चोंको महन्त बनने या मन्दिर की सम्पत्ति मे भाग पाने का अधिकार नहीं होता। उन्हें केवल वही सम्पत्ति मिलती है, जो उनका पिता अपने जीवन में अपनी व्यक्तिगत सम्पत्ति में से दे जाता है। कोई चुनाव नहीं होता। यदि महन्त बिना शिष्य मर गया हो तो पञ्चायत किसी व्यक्ति को महन्त चुनकर उसे ही महन्त का भावी शिष्य घोषित करती है और तब उसे उत्तराधिकार मिल जाता है।

४५—गुसाईं—

कमलेश्वर के गुसाइयों के तीन प्रकार के शिष्य होते हैं।

१—वह शिष्य, जो गुरु के साथ रहता और उसकी सेवा करता

है २—वे शिष्य, जो गुरू के पास रहकर उसकी सेवा नहीं करते वरन् इधर-उधर भटकते रहतेहैं और ३—जो वृद्धावस्थामें शिष्य बनता है और मुक्तिके लिये सन्यास लेताहै। उसे चतुर सन्यासी चेला कहते हैं। (पन्नालाल, कस्टमरी लौ, ६२-६३)

गोपेश्वर

४६—तीर्थ—

चमोली के पास गोपेश्वर का अति प्राचीन मन्दिर है। यहाँ प्रधान तीर्थ ये हैं—१—शिवका मन्दिर, २—मन्दिरसे थोड़ी दूर पर स्थित वैतरणी नामक नाला।

४७—चढ़ावा—

मन्दिर का चढ़ावा मन्दिर कोष में जाता है। वैतरणी का चढ़ावा पण्डा लेते हैं। यहाँ स्नान का एक पैसा लिया जाता है जिसे दिउली ब्राह्मण लेते हैं। रावल की गद्दी पर चढ़ावा गद्दी-भेंट भी मन्दिर-कोष में जाती है।

४८—पुजारी—

यहाँ का पुजारी रावल कहलाता है। वह दक्षिणी जङ्गमों में से पञ्चायत द्वारा चुना जाता है। और उसकी अन्तिम स्वीकृति कमिश्नर कुमाऊँ देता है।

४९—पंडा—

यहाँ कोई पण्डा नहीं है। वैतरणी में बारह भट्ट परिवार और एक तिवाड़ी परिवार चढ़ावा को आपस में बराबर-बराबर बांट लेते हैं। यहाँ नैपाल के यात्रियों की पण्डाचारी तिवारी और शेष यात्रियों की पण्डाचारी भट्ट करतेहैं। पंडा यहाँ यात्रियों के साथ मन्दिर के अन्दर नहीं जा सकते और न मन्दिर में

५०—अन्य कर्मचारी—

मन्दिर में जल चढ़ाने और भोग पकाने के लिये जल भट्ट और तिवाड़ी लाते हैं, जिन्हे १२ रुपया मासिक मिलता है। ईंधन, बेलपत्र लाना और मन्दिरके पात्र धोना और अन्य विभिन्न कार्य करना, दिउली ब्राह्मणों को सौंपा गया है। इन सेवाओं और रुद्रनाथ मन्दिर में सेवा के लिये दिउली ब्राह्मणों को बीस रुपया वार्षिक मिलता है। दोनों जातियों के अधिकार वंशपरम्परागत हैं, वे प्रतिनिधि केवल अपनी ही जातियों से चुन सकते हैं। कमअसल या ढांटी पत्नियों के पुत्रों को ये अधिकार नहीं मिलते।

५१—कोषाध्यक्ष और लेखवार

इनकी नियुक्ति रावल के हाथ पर है। उन्हे निश्चित वेतन मिलता है। हिसाब-किताब की जांच सरकार जब चाहे कर सकती है। मन्दिर की बचत रावल ले लेता है। (पन्नालाल कस्टमरी लॉ ६३-६४)

४—रुद्रनाथ का मन्दिर

५२—रुद्रनाथ का मन्दिर गोपेश्वर से पाँच मील दूर है और गोपेश्वर के रावल के अधीन है। यहाँ का पुजारी भी वही रावल है। वह यहाँ पूजा कार्य के लिये किसी लिंगायतको अथवा गोपेश्वर के किसी भट्ट को नियुक्त कर सकता है। यहाँ का चढ़ावा गोपेश्वर-कोष में जाता है। यहाँ भी एक नाला वैतरणी है, जहाँ के चढ़ावे को वही लोग लेते हैं जो गोपेश्वर की वैतरणी का चढ़ावा लेते हैं। (पन्नालाल, कस्टमरी लॉ, ६४)

उपरोक्त वर्णन में निम्न बातें ध्यान देने योग्य हैं। सारे तीर्थों में प्रत्येक स्थान की निश्चित दक्षिणा ली जाती है, इसके

अतिरिक्त यात्री श्रद्धा पर्वक और भी धन चढ़ा सकता है। तीर्थों में यात्रियों से इस प्रकार निश्चित प्रणाली से धर्म कर लेने की प्रथा हिन्दू तीर्थों में ही मिलती है। इसीलिये हिन्दुओंके सुधारक-समाज तथा विधर्मी हिन्दुओं की इस धर्म-कर प्रथा का विरोध करते हैं। कभी-कभी तीर्थों में इस धर्म-कर को निचोड़ने का इतना अधिक आग्रह देखा जाता है और इस कर को लेते समय यात्री के साथ इतना रूखा व्यवहार किया जाता है कि उसका हृदय बहुत खिन्न हो जाता है और उसकी तीर्थों से श्रद्धा हट जाती है। यदि हम चाहते हैं कि सनातन धर्म जीवित रहे, यदि हम चाहते हैं कि तीर्थ यात्रा पूर्ववत् चलती रहे, यदि हम चाहते हैं कि तीर्थों, ब्राह्मणों और देवताओं के प्रति हिन्दू जनता की श्रद्धा बनी रहे तो तीर्थों के कर्य कर्त्ताओं को अपना व्यवहार बदल देना चाहिये। इतिहासके विद्यार्थीके लिये दूसरी ध्यान देने योग्य बात यह है कि ऊपर तीर्थों के विभिन्न धारों, शिलाओं, कुण्डों आदि की जो गिनती की गई है उनमें से अधिकांश का उल्लेख केदारखण्ड में मिलता है, जिससे पता चलता है कि ये तथा केदारखण्ड में इनका वर्णन अन्योन्याश्रित है। केदारखण्ड लिखते समय कुछ तो पुराने तीर्थ लिखे गये और कुछ कल्पना से जोड़ लिये गये। पीछे इन कल्पित तीर्थों को वास्तविक रूप दे दिया गया है।

तीसरी ध्यान देने योग्य बात यह है कि पण्डों, और पुजारियों के जिन अधिकारों का उल्लेख पन्नालाल ने किया है उनमें से अधिकांश की परम्परा केवल सौ-दो सौ वर्ष के अन्दर चली है।

-०:-(०)-:-०-

अध्याय १७
मन्दिरों की भूसम्पत्ति
(गूंठ और सदावर्त) की व्यवस्था

१—बदरीनाथ-केदारनाथ मन्दिरों की भूसम्पत्ति—

गढ़वाल और कुमाऊँ कमिश्नरी के अन्य जिलों में 'गूंठ भूमि' का क्षेत्रफल और महत्व बहुत अधिक है। "गूंठ भूमि" उस भूमि को कहते हैं जो भूमि धार्मिक कार्यों के लिये मन्दिरों को अर्पित की गई हो। गढ़वाल और कुमाऊँ कमिश्नरी के अन्य जिलों में ऐसी गूंठ भूमिका सबसे अधिक भाग बदरीनाथ और केदारनाथ के प्रसिद्ध मन्दिरों के लिये अर्पित किया गया है। (स्टोवेल, मैन्युएल, १२५)

२—भूमिदान की प्रथा—

मन्दिरों के लिये भूमिदान की प्रथा हिन्दुस्थान में बहुत प्राचीन है। एपिग्राफिया इंडिका आदि शिला लेखों के संग्रहों में अधिकाश शिलालेख और ताम्रपत्र मन्दिरों या मन्दिरके पुजारियों अथवा ब्राह्मणों को भूमिदान के सम्बन्ध में ही हैं। गढ़वाल में भी यह प्रथा कम प्राचीन नहीं प्रतीत होती है। कत्यूरियों के जो ६ ताम्रपत्र प्राप्त हुए हैं, प्रत्येक का मुख्य विषय मन्दिरों या पुजारियों को भूमिदान देना ही है। ललितशूर के प्रथम ताम्रपत्र में कहा गया है—"तुमको सूचित किया जाता है कि उपरोक्त कार्तिकेय विषय (जिले) में गोरुन्नासा से सम्बन्धित खसियों द्वारा उपभोग की जाती हुई पल्लिका (गांव) तथा पणिभूतिका से सम्बन्धित गुग्गुलों द्वारा उपभोग की जाती हुई दो-पल्लिकाओं

इन (तीनों) को मैंने माता पिता तथा पुण्य और यश की वृद्धि के लिये संसार को पीपल के पत्ते के समान चलायमान देखकर और संसार समुद्रसे उतरने के लिये पुण्यदिन उत्तरायण (मकर) संक्रान्ति को गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, उपलेपन, नैवेद्य, बलि, चरु, नृत्य, गीत, वाद्य, सत्र आदि, चलानेके लिये टूटे-फूटेकी मरम्मत तथा नई इमारत बनाने के लिये और भृत्यों चरणाश्रितों को पोसने के लिये गोरुन्नासा में महादेवी श्रीसामादेवी द्वारा बनवाये श्री नारायण भगवान के लिये (इस ताम्र.) शासन द्वारा प्रदान किया। (उक्त सम्पत्ति पर) न प्रजा का अधिकार न भचाट भट (सिपाही-सैनिक) के प्रवेश योग्य, न कुछ भी लेने योग्य न छीनने योग्य है। (राहुल, गढ़वाल, ७८) ललितशूर के दूसरे ताम्रशासन में (धौली तट पर स्थित) बदरिकाश्रमीय तपोवन में नारायण भट्टारकको "गन्धपुष्प, धूपोपलेपन, बलि, चरु, नृत्य, गीत, गेय, वाद्य, सत्रादि, पर्वतनाय, खण्डस्फुटित संस्करणाय" भूमिदान किया गया है।

पद्मटदेव के ताम्रशासन में तो स्पष्टतः बदरिकाश्रम को ही भूमिदान किया गया है। उसमें कहा गया है:—बलि, चरु, नैवेद्य, प्रदीप, गन्ध, धूप, पुष्प, गेय, वाद्य, नृत्य पूजा प्रवर्तनाय खण्डस्फुटितपुनः संस्काराय च भगवते बदरिकाश्रमाय प्रतिपादिता पुष्पपट्टनिवेशं कृत्वा ....

सुभिक्षराज के ताम्र शासन में श्रीदुर्गादेवी, श्रीनारायण भट्टारक, श्री महेश्वर भट्टारक को उपरोक्त गन्ध, धूप आदि के लिये भूमिदान का उल्लेख है

इससे सिद्ध हो जाता है कि मन्दिरों और बदरिकाश्रमको गूंठ भूमि देने की प्रथा कत्यूरियों के शासन काल में भी प्रचलित थी, और सम्भवतः बहुत पहले से चली आती थी। इन ताम्र-

शासनों के अन्त में भूमिदान की भूरि २ प्रशंसा की गई है—

भूमेर् दाता याति लोके सुराणां हंसैर युक्तं यानम् आरुह्य दिव्यं ।
लौहे कुम्भे तैलपूर्णे सुतप्ते भूमेर हर्त्ता पच्यते कालदूतैः ॥

षष्टिम्बर्ष सहस्राणि स्वर्गे तिष्ठति भूमिदः ।
आच्छेत्ता चानुमन्ता च तान्येव नरके वसेत् ॥

(ललितशूर का प्रथम शासन, राहुल, गढ़वाल, ७७)

बहुत पीछे के लिखे हुए केदारखण्ड ग्रन्थ में गढ़वाल के अनेक तीर्थों के माहात्म्य के प्रसङ्ग में वहाँ अंगुलमात्र भूमि-दान करने की भी बड़ी उदारता से प्रशंसा की गई है।

३—ब्रह्मकपाल में भूमिदान—

धीरे-धीरे ऐसी परम्परा चली कि बदरीनाथके ब्रह्मकपाल तीर्थ में भूमि-दान करना अत्यन्त श्रेयस्कर समझा जाने लगा। गढ़वाल के गांव-गांव में ऐसी भूमि मिलती है जिसे दाताओं ने ब्रह्मकपाल में दान किया था। प्राचीनकाल में भूमि का स्वामित्व केवल राजाओं को प्राप्त था, अस्तु प्राचीन गूंठ-दान उन्हीं का हो सकता है।

४—गूंठ शब्द का प्रयोग—

गूंठ शब्द संस्कृत मे नहीं मिलता, न पिछले दानपत्रों में इस शब्द का प्रयोग मिलता है। संभवतः यह नैपाली भाषा का शब्द है, जिसका सम्बन्ध संस्कृत के गोष्ठ या गोत्र से हो तो आश्चर्य नहीं, पौने लिखा है:—'गूँठ' शब्द, जिसे मन्दिरोंके लिये दान में दी हुई भूमि के लिये प्रयुक्त किया जाता है, अपेक्षाकृत नवीन शब्द है जिसका प्रयोग गोरखों के समय से आरम्भ हुआ है। प्राचीनकाल में ऐसे दान 'संकल्प' अथवा विष्णुप्रीति शब्द से पुकारे जाते थे। (पौ, गढ़वाल, सेटलमेंट रिपोर्ट पैरा, ४५)

५—गूंठ भूमिका केवल भूकर—

ट्रेल के वर्णनों से पता चलता है कि गूंठ भूमि का केवल भूमिकर (लगान) ही मन्दिरों या उनके पुजारियों को मिलता था। भूमि पर खेती करने का अधिकार पहले के समान ही खेती करने वालों के परिवार का बना रहता था। किन्तु अनेक घटनाएँ ऐसी मिलती हैं जिनमें पहले से खेती करने वाले परिवार ने जब उस भूमि को त्यागकर कहीं अन्यत्र निवास कर लिया तो उन ब्राह्मणों की सन्तान ने, जिन्हें वह भूमि दान में मिली थी, उस पर अधिकार कर लिया। (वी, उपरोक्त, पैरा ४५)

पिछले राजाओं द्वारा गूंठ रूपमें मन्दिरों के लिये दान की हुई भूमि कुमाऊँ कमिश्नरी में बहुत अधिक थी। अकेले गढ़वाल में ही कई सौ पूरे गाँव या गाँवों के भाग इस प्रकार गूंठ रूप में दान किये गये मिले। गोरखों ने लगभग सभी गूंठ भूमिको उसी प्रकार चलने दिया। और उसके पीछे ब्रिटिश सरकार को भी ऐसा ही करना पड़ा। कई गाँवों में ऐसी गूंठ भूमि भी थी जिसके दानपत्र खोचुके थे और केवल उस भूमिके भूमिकर को कालान्तर से लेते रहना ही उनके स्वामित्व का प्रमाण था।

१८५० और १८५४ ई० के बीच सरकार ने गूंठ गाँवों पर मन्दिरों के अधिकार की छानबीन की। और ऐसे बहुत अधिक गाँवोंका भूमिकर सरकारने स्वयं लेना आरम्भ कर दिया 'जिनको गूंठ दिये जाने का कोई प्रमाण न मिला।" किन्तु बहुत से उन गाँवों को गूंठ रहने दिया गया जिन पर पहले से मन्दिरों का अधिकार आता हुआ देखकर ट्रेल अपना प्रमाण पत्र दे चुका था। और इसलिये ऐसी भूमि का भूमिकर मन्दिरों को ही पूर्ववत् मिलता रहा (स्टोवेल, मैनुअल, १२५)

६—गूंठ गाँवों पर मन्दिरों के अधिकार की सीमा—

मन्दिर के पुजारी या प्रबन्ध कर्ताओं को कभी यह अधिकार नहीं रहा कि वे उस गूंठ भूमि की खेती में हस्तक्षेप करें, जिस पर वे स्वयं या उनके चाकर स्वयं खेती नहीं करते। उदाहरण के लिये पट्टी लोभा का चौणा गाँव, जो कि बदरीनाथ की गूंठ में है, लगभग-सन् १७७५ से उजाड़ पड़ा था। १८२७ ई० में जब बद्रीनाथ के रावल ने वहाँ फिर से गाँव बसाना चाहा तो उसे पहले कमिश्नर ट्रैलसे आज्ञा लेनी पड़ी थी। फिर पिछले भूमि प्रबन्ध (बन्दोबस्त) में गूंठ गाँवों में भी जिलाधीश ने उसी प्रकार नयाबाद भूमि की स्वीकृति दी जिस प्रकार उन गाँवों में जो गूंठ नहीं हैं। अन्तर केवल इतना ही है कि गूंठ गाँवों का भूमिकर सरकारी कोष में न जाकर मन्दिरकोष में जाता है। १८९५ की १५ नवम्बर को सरकारने आज्ञापत्र (संख्या, -८८०/१-३४८ बी) निकाल कर गूंठ भूमि पर मन्दिरों के अधिकारों को इस प्रकार सीमित कर दिया।

१—गढ़वाल के बदरीनाथ, केदारनाथ और अन्य मन्दिरों के अध्यक्षों का गूंठ गाँवों की गोचर (वेस्टलैंड) भूमि पर किसी भी प्रकार का अधिकार बिलकुल नहीं माना जा सकता।

२—पिछली भूव्यवस्था (सेटलमेंट) में जो समूचे गाँव गूंठ लिखे गये हैं उनका सारा भूमिकर मन्दिरों को मिलेगा।

३—किन्तु जहाँ गाँव के केवल कुछ अंश को गूंठ माना गया है वहाँ गाँव के शेष भाग का भूमिकर सरकार स्वयं लेगी।

७—मन्दिर भूमिकर के रूपमें अन्न नहीं ले सकते—

मन्दिरोंको, गूंठ भूमि प्रारम्भमें "बलि सत्र नैवेद्य" अर्थात् क्षेत्रपाल योगिनी वटुक यक्षादिको अन्नबलि,साधु महात्माओं आदि

के लिये सत्र (निःशुल्क भोजनालय) और देवताको नैवेद्य आदि के लिये व्यय जुटाने के लिये दी गई थी। इन सबके लिये अन्न की आवश्यकता होती थी, इसलिये मन्दिरों के अध्यक्ष गूंठ भूमि के किसानों से अन्न रूप में ही भूमि कर लिया करते थे। ब्रिटिश राज्य के आरम्भ होते ही इस प्रथा को हटा दिया गया। १५ फरवरी १८२० को रामानन्द और परमानन्दके बीच और ८ जुलाई १८२६ को भगत् और केदारनाथ के रावल बसुलिंग के बीच जो मुकदमे हुए उनमें ट्रेल ने निर्णय दिया कि रावल भूमि पर खेती करने वालों में तनिक भी हस्तक्षेप नहीं कर सकता, और भूमि को अपने अधिकार में नहीं ले सकता, उसे केवल दानपत्रमें लिखे अनुसार भूमिकर मिलेगा। गूंठ गाँवों के कृषिकों को गढ़वाल के अन्य भागों के कृषकों के समान ही भूव्यवस्था प्रपत्रों में हिस्सेदार लिखा गया और उनको उसी प्रकार नकद भूमि कर देने को कहा गया। केदारनाथ के रावल ने ऊखीमठके निकट की मंदिर की भूमि में बसे किसानों से एक रुपया भूमि-कर के बदले एक दूण (३० सेर) अन्न भूमि-कर के रूपमें देने का प्रतिज्ञा पत्र (सरकारी स्टाम्पों पर भरवा लिया। और ऊखीमठ के निकट गूंठ भूमि के किसान पहले के समान भूमिकर के रूपमें अन्न ही देते रहे। जब अन्न मँहगा होने लगा तो झगड़े खड़े हुए और १ जून १८८० को सर हेनरी रामजे ने निर्णय दिया कि गूंठ गाँवके किसानों से अन्न रूप में भूमिकर नहीं लिया जा सकता। तथा बोर्ड ऑव रेवन्यू ने रावल के कार्य को सर्वथा अवैध ठहराया। (स्टोवेल, मैन्युएल, १२६-२७)

इस प्रकार मन्दिरों से, गूंठ भूमिका अन्न लेने का अधिकार छीनकर सरकारने एक तो दानके लक्ष्यको ही नष्ट कर दिया और दूसरे मन्दिरों में साधु-महात्मा, ब्रह्मचारी, विद्यार्थी आदिको

मिलने वाले भोजन देवता का नैवेद्य आदि सभी में भारी बाधा खड़ी करदी। अन्न के बढ़ते हुए मूल्य के साथ भूमिकर उसी मात्रा में न बढ़ने से यह कठिनाई और भी बढ़ गई।

८—मन्दिरों के साथ अन्याय—

गूंठ भूमि के सम्बन्ध में सरकार ने पहला अन्याय यह किया कि बहुत अधिक गूंठ भूमि "पूर्ण प्रमाणों के अभाव में" छीन ली, दूसरा मन्दिरोंको अन्न न देकर उनके अनेक कार्यकलाप रोक दिये और नक्द रुपये रावलों को देकर उनके लिये स्वेच्छाचार का अवसर खड़ा कर दिया। तीसरा अन्याय यह कि गूंठ भूमि पर खेती करने वाले प्रत्येक व्यक्ति को बड़ी उदारता से हिस्सेदार बनाकर उसे गूंठ भूमि बेचने का अधिकार दे दिया। उदाहरणके लिये विछला नागपुरके किमोठा गाँवमें आधे गाँव का स्वामी थोकदार है और आधा गाँव केदारनाथ का गूंठगाव है। थोकदार के खेतों में जो लोग केवल "खायकर" लिखे गये हैं, वही लोग मन्दिर के खेतों में "हिस्सेदार" बना दिये गये। उचित यह था कि उन्हे गाँव के दोनों भागों मे "खायकर" ही लिखा जाता। (स्टोवैल, मेन्युएल, १२७)

९—दो प्रकार की गूंठ भूमि—

सौभाग्य से, छोटे मन्दिरोंके सम्बन्ध में, जिनकी भूमिपर पुजारियों का अधिकार चला आता था, आगे चलकर सरकार ने अधिक दूरदर्शिता से कार्य किया। पर तब, जब उन्हे गढ़वाल पर शासन करते हुए और मन्दिरों की सम्पत्ति का मनमाना अपहरण या व्यवस्था करते हुए आधी शताब्दी होगई। अल्मोड़ाके कुन्दनलाल साह ने जब पुनुआ पुजारी की गूंठ भूमि पर अपने ऋणके कारण डिग्री प्राप्त करनी चाही तो सीनियर असिस्टेंट कमिश्नर

। लिखा था—"पुजारी को गूंठ भूमि मन्दिर में पूजा करने के
लये दी गई है। यदि इस भूमि का नीलाम किया जायेगा तो
भूमि खरीदने वाले के लिये आवश्यक है कि वह मन्दिर में पूजा
रे। किन्तु प्रत्येक जाति या व्यक्ति मन्दिर पूजा नहीं कर
सकता।" इसके ऊपर १३ जून १-७८ को सर हेनरी रैमजे ने
ाज्ञा लिखी थी– "उपरोक्त कथन सत्य है। व्यक्तिगत ऋण के
लये गूंठ भूमि की डिग्री नहीं हो सकती।"

१८८० के निकट जब गढ़वाल में लक्ष्मी नारायण शङ्कर
ठ के महन्त ने मठ की भूमि गिरवी रखदी तो सर हेनरी रैमजे
निर्णय दिया था, "यदि महन्तोंको मठ मन्दिर की भूमि बेचने
ा अधिकार दे दिया जाये तो किसी भी मठ मन्दिर की भूमि
बचेगी।"

१८८८ में गाइल्स ने रैमजे की रुलिंग के आधार पर
खा था–"गूंठ भूमि दो प्रकार की है। पहली वह जो पुजारी
ा मन्दिर में पूजा करने के लिये वेतन स्वरूप मिली है। व्यक्ति-
न ऋण के लिये इस भूमि को नहीं छीना जा सकता। पर
न्दिरों के दूसरे प्रकार की गूंठ भूमि, जिसका मन्दिरों को केवल
मि-कर मिलता है, उससे खेती करने वालों से छीनी जा
कती है। मन्दिर में पूजा करने वालों की जो स्थिति है, वही
र लोगों की भी है जिन्हें मन्दिर में अन्य प्रकार की सेवा करने
लिये वेतन रूप में भूमि मिली है। (स्टोवेल, मैन्युपल,
२८-२६)

दूसरी ओर मन्दिर में पूजा (या सेवा) करने के लिये
न्हें भूमि मिली थी, पिछले न्यायाधीशों ने उन्हें उस भूमि को
चने का अधिकार न दिया था।" यह स्पष्ट है कि यदि कोई
ाह्मण, उस भूमि को, जो उसे मन्दिर में पूजा करने के हेतु

चेतनरूप मे मिली है, किसी डोम के पास बेच देगा तो मन्दिर को हानि पहुँचेगी। और यह भूमि मन्दिर को (या पुजारी को) जिस लक्ष्य से दी गई थी, यह लक्ष्य पूरा न होगा।" (स्टोवेल, मेन्युएल, १३०)

१०—सदावर्त गाँव—

बदरीनाथ केदारनाथ मन्दिरों की गूंठ भूमिके अतिरिक्त 'सदावर्त' गाँव भी है। ऐसे गाँवों के सम्बन्ध में पौका कहना है—"सदावर्त गाँव वे गाँव हैं, जिनके भूमिकर को बदरीनाथ-केदारनाथ जाने वाले यात्रियों को निःशुल्क भोजन देने के लिये प्रयुक्त किया जाता है। इन गाँवों में से अधिकांश को गोरखाराज्य के समय इन मन्दिरों को सदावर्त के लिये अर्पित किया गया था।".

बारहस्यूं परगने में कुछ इधर-उधर बिखरे हुए गाँवों के अतिरिक्त गूंठ गाँवों को छोड़कर परगना दशौली के सभी गाँव तथा परगना नागपुर की परकण्डी, बामसू और मैखंडा पट्टियाँ सदावर्त के अन्तर्गत हैं। इन सदावर्त गाँवों का प्रबन्ध पहले मन्दिरों के अधिकार मे था। किन्तु ट्रेल ने इन गांवों की आयको अपने हाथ में ले लिया और उस धन का प्रयोग इन मन्दिरों को जाने वाले मार्गों को सुधारने तथा मार्ग में पड़ने वाली नदियों के ऊपर झूला लगाने मे करने लगा।

१८४० में इन गाँवों की आय का सुचारु रूप से व्यय करने के लिये एक स्थानीय समिति बनाई गई और उसकी देख-रेख में इस धन से यात्रा मार्ग में औषधालय और धर्मशालाएँ बनाई गई। इस स्थानीय समिति का कार्य सन्तोषजनक सिद्ध न होने पर सदावर्त गाँवों की आय के सदुपयोग का कार्य गढ़वाल के जिलाधीशको सौंप दिया गया। (स्टोवेल, मैन्युएल, १३२)

११–सदावर्त सम्पत्ति की आयसे औषधालय—

१८५१ में यात्रा मार्ग में जो औषधालय खोले गये, इनमें सबसे बड़ा औषधालय श्रीनगर में खोला गया। उसके पश्चात् ओर भी औषधालय खोले गये और अब (१८१६) यात्रा मार्ग पर ६ औषधालय और अन्यत्र ४ औषधालय हैं। प्रतिवर्ष सहस्रों निर्धन रोगियों की इनमें चिकित्सा की जाती है और सहस्रों के कष्ट को दूर किया जाता है। (पातीराम, गढ़वाल एनशिएंट ऐंड मौडर्न, २३३)

१२–सदावर्त औषधालय में यात्रियों की सेवा—

पहले तीर्थ यात्रियों में से अनेक के पैरों में मक्खियों के काटने से सूजन उत्पन्न हो जाती थी, पैर सूज जाने से ये अभागे व्यक्ति इधर-उधर न जा सकते थे और उनके साथी उन्हें छोड़कर चले जाते थे और ये लोग भूखसे तड़प-तड़प कर मर जाते थे। अन्य रोगों के रोगियों को भी उनके साथी तीर्थ यात्री छोड़कर चले जाते थे। इसलिये सदावर्ती औषधालय श्रीनगर और बदरीनाथ के बीच के मार्ग में इस प्रकार बनाये गये कि तीर्थ यात्री दो पड़ाव के अन्दर अवश्य औषधालय में पहुँच जाये। इन औषधालयों में रोगियों की चिकित्सा के अतिरिक्त उनको नि शुल्क भोजन देनेका भी प्रबन्ध किया गया। (बेकेट, गढ़वाल सेटलमेंट रिपोर्ट, (१८६३) पैरा २४)

१३–यात्रा मार्ग में मुख्य रोग महामारी प्लेग—

भारत के कौने-कौनेसे आने वाले तीर्थ यात्री अपने साथ नाना प्रकार के रोग भी लाते हैं। कहते हैं केदारनाथमें १८२३ में महामारी (प्लेग) आई थी। और फिर १८३४ और १८३५ में हुई। लोहबामें १८४६ और १८४७ में महामारी का प्रकोप हुआ।

१८५५ में चौपड़ाकोट और चौथान में महामारी फैली थी। १८५७ में यह महामारी से लौटने वाले यात्रियों द्वारा मैदान में काशीपुर, रामपुर और इलाहाबाद तक पहुँचादी गई। ऐसा प्रतीत होता था जैसे महामारी ने अब गढ़वाल में अपना डेरा ही बना लिया हो।

"१८८३ के बाद जब-तब एक-दो गाँवों पर इसका आक्रमण होता रहा। हर तीसरे-चौथे वर्ष आकर यह गाँव के लोगों को खाम कर देती थी। चूहों के मरते ही गाँव वाले अपने आप घर छोड़कर बाहर चले जाते थे। महामारी में मरे मनुष्यों को जलाया नहीं जाता, बल्कि गाड़ दिया जाता और चार महीने के बाद फिर निकाल कर जलाया जाता। यह रोग के कीटाणुओं को सुरक्षित रखने का बहुत अच्छा तरीका है, इसमें सन्देह नहीं। (राहुल, गढ़वाल, ३२४)

१४—हैजा—

यात्रा मार्ग का दूसरा भयङ्कर रोग हैजा है। यात्रा मार्ग में अपने साथ लाये हुए अथवा यात्रा मार्ग में पकाए हुए बासी, अधपके भोजन के सेवन, पहाड़ी नालों का पानी पीने आदि के कारण यह रोग उत्पन्न होता है। यह रोग कितने भयङ्कर वेग से फैलता है यह निम्न सूची से स्पष्ट है।

सन्	हैजे से मृत्यु	सन्	हैजे से मृत्यु
१९०२	५६४३	१९०९	१७३२
१९०३	४०१६	१९१०	७२८
१९०४	१८८	१९११	७६
१९०६	३४२६	१९१२	—
१९०७	२	१९२१	५५१२
१९०८	२६२१		

(आदम्स, पिलग्रिम रूट रिपोर्ट) ये सरकारी आंकड़े हैं। निश्चय ही वास्तविक मृत्यु संख्या इससे बहुत अधिक रही होगी।

१५–आदमूस कमेटी की रिपोर्ट—

१६१४ में सरकार ने तीर्थयात्रा मार्ग में रोगों की रोक-थाम और स्वच्छता आदि के सम्बन्ध में जाँच करने के लिये जी. एफ. आदमूस की अध्यक्षता में एक कमेटी नियुक्त की थी। इस कमेटी ने अपनी रिपोर्ट में लिखा था—"हैजे और जल का बहुत सम्बन्ध है। यात्रा मार्ग में जल सर्वत्र अति उत्तम है और उसे पूरी तरह सङ्कट रहित रखा जा सकता है। इसकी कितनी आवश्यकता है यह लिखना कठिन है। इस मार्ग में सबसे बड़ा सङ्कट हैजा है। इस महामारीके विस्तार की कोई सीमा नहीं है। रोगी यात्री स्वयं ही मार्गमें नहीं मर जाते, वरन् कुलियों के द्वारा सारे टेहरी, गढ़वाल और अल्मोड़ा में (यहाँ तक कि नैपाल में भी) हैजा फैल सकता है। और वापिस लौटने वाले यात्री सारे भारत में एक ओर से दूसरी ओर तक हैजे के कीटाणु फैला सकते हैं।" (आदमूस पिलग्रिम रूट रिपोर्ट, १४)

"बुरा या अपूर्ण भोजन, और सायंकाल को या रात्रि को सहसा तापमान गिरजाने से उत्पन्न शीत, ये रोग उत्पन्न होने के प्रारम्भिक कारण हैं। विशेषकर हैजा, अपच (डिसेंटरी) तथा दस्त (डाइरिया) इसी कारण उत्पन्न होतेहैं। (आदमूस, उपरोक्त पृष्ठ १, सम्मति)

१६–सदावर्त औषधालयों में रोगी–

१६०३ तक यात्रा मार्ग पर श्रीनगर, ऊखीमठ, जोशीमठ, चमोली, कर्णप्रयाग और गणाई में सदावर्त औषधालय खुल चुके थे। १६०० में कांठी में भी एक और औषधालय खुल गया। इन औषधालयों में मलेरिया, अपच (डिसेंटरी) और दस्त (डाइरिया) के जिन रोगियों (यात्री तथा अन्य) की चिकित्सा की गई उससे यहाँ होने वाले प्रधान रोगों पर प्रकाश पड़ता है।

	सन् १६०३			सन् १६०४		
	मलेरिया	अपच	दस्त	मलेरिया	अपच	दस्त
श्रीनगर	२४५०	१६१	४८८	३३६२	५८२	३६३
ऊखीमठ	४८०	३६	५७	६४८	८१	४६
जोशीमठ	३८५	७७	३६	५२१	१४६	६४
चमोली	८४८	१०२	८८	५२२	१११	६४
कर्णप्रयाग	७२६	६४	१५१	६३७	१२८	५४
गणाई	५५६	६५	३६	५५८	८८	२२
	सन् १६०५			सन् १६०६		
श्रीनगर	३२५०	६४८	४५६	३७८७	६४२	७६७
ऊखीमठ	४८२	६३	५३	४६४	५७	६८
जोशीमठ	३६२	१२६	५३	३३३	६३	५३
चमोली	३२३	४२	३३	४५८	६५	२६
कर्णप्रयाग	६०२	६६	८८	७०७	८१	११२
गणाई	५३५	८२	७६	४३८	८६	५२
	सन् १६०७			सन् १६०८		
श्रीनगर	२८८६	५०७	५६७	३६३८	६५५	८७
ऊखीमठ	५९३	८८	४६	८१२	३२	५५
जोशीमठ	४४०	८०	४६	३४५	८२	५६
चमोली	७५२	१३६	६५	७५१	४६	१८७
कर्णप्रयाग	५५२	३७	११६	५०१	३२	१४
गणाई	४६३	१२६	४४	७६०	४४	६०
फाडी	२३८	३८	५०	४८१	११	६६
	सन् १६०६			सन् १६१०		
श्रीनगर	३१४६	७६३	५०५	३६२३	८४०	८८६
ऊखीमठ	७६०	१०७	५७	८०१	५०	[illegible]

	मलेरिया	अपच	दस्त	मलेरिया	अपच	दस्त
जोशीमठ	५८२	८४	९७	४९७	८०	२४
घमोली	८३४	२६६	२१८	१९५	४४१	१३६
कर्णप्रयाग	७६५	९८	१४४	८१७	२०५	१६६
गणाई	४३७	२९१	५८.	५८८	३३०	९०
कांडी	३३०	८२	३०	३२७	७८	५२
	सन् १९११			सन् १९१२		
श्रीनगर	२५४२	७७९	९९५	१६०८	१८५	४३०
ऊखीमठ	८५६	७०	८६	१०५१	८१	११८
जोशीमठ	५८२	११०	८२	३७५	१५७	७०
चमोली	७६०	५६८	६३	९६७	३८०	६९
कर्णप्रयाग	७१५	८७४	१४८	८०३-	९२	११०
गणई	५४४	११३	६०	७४०	२२९	११८
कांडी	४०८	६४	५३	३३३	९१.	९५

(आदम्स, पिलग्रिम रूट रिपोर्ट, ४१)

१७—रोग क्यों उत्पन्न होते हैं–

रोग उत्पन्न होनेका प्रधान कारण यह है कि श्रद्धालु यात्री बिना पूरी तयारी के और बिना उचित साधनों के इस मार्ग पर चल पड़ते हैं। सौ वर्ष पहले वेबर ने इस सम्बन्ध में जो कुछ लिखा था उसमें आज भी सत्यता है। "अलकनन्दा उपत्यका में सहस्रों यात्री भारत के विभिन्न भागों से आकर पैदल-चलते मिलते हैं। निर्धन, भूखे-प्यासे, थके मारे लोगों के द्वारा जिनके शरीर पर, उनकी हड्डियोंको ढकने के लिये एक चिथड़े से अधिक और कुछ नहीं होता, आगे बढ़ने के लिये संघर्ष करने का दृश्य

विचित्र और हृदय विदारक होता है। अपने प्राचीन धर्म का सुदृढ़तामे पालन करते हुए लूले-लंगड़े, रुग्ण और वृद्ध, यहाँ तक कि अन्धे भी उस मार्ग को टटोलते और आगे बढ़ते हैं जिस पर सैकड़ों व्यक्ति चल रहे हैं, पर जिस पर चढ़ना अत्यन्त कठिन है। यह मार्ग कभी तो गरजती हुई नदीके किनारे-किनारे चलता है और कभी नदी की घाटी से १००० फीट ऊपर सीधे खड़े पर्वत को खोदकर बनाया मिलता है कुछ अधिक धनी व्यक्ति जो इस भयङ्कर मार्ग पर चलने में असमर्थ हैं, तकड़े गढ़वालियों की पीठ पर किल्टा (बड़ी टोकरी) में बैठे यात्रा करते हैं, पर शेष पैदल ही घसिटते हैं।" (वेबर, फोरेस्टस, ऑव अपर इण्डिया, ४५)

१८—मार्ग की दुर्गमता—

यद्यपि बदरीनाथ और केदारनाथका मार्ग अब बहुत कुछ निरापद है, पर गङ्गोत्तरी का मार्ग अब भी सङ्कट पूर्ण है। और मैदान से आये दुर्बल, पर्वतों में चलने में अनभ्यस्त व्यक्तियों के लिये तो सभी मार्गोंमें अब भी कुछ न कुछ सङ्कट हैं ही। "उस साहसी यात्री को जो गङ्गोत्तरी जाता है निरन्तर कठिनाइयों और कष्टों को सहना पड़ता है। जल और निवास की सुविधा कम है। विषैली मक्खियों का प्राबल्य है। कुली प्राप्त करना असम्भव है। सड़क ऊँचे और घोर शीतल घाटों से होकर जाती है। यह सड़क कैसी है? जैसी कि यह बूढ़े बुन्देले ने बतलाई थी। मैं कैसे बतलाऊँ कि सड़क कैसी है जब कि अधिकांश स्थानों में सड़क है ही नहीं?" (आदम्स, पिलग्रिम रूट रिपोर्ट, सन् १६१३, पृ० १ सम्मति,)

१६—मार्ग की थकावट—

ऐसे मार्ग में बिना पूरी तय्यारी और साधनों के यात्री की कितनी दुर्दशा होती है, सान्याल ने अपने अनुभव के आधार पर लिखा है।" आइना होता तो देखता कि शरीर की क्या दुर्दशा होगई है। धूल और धूप से शिर के बाल भी पुयाल की तरह रूखे होगये चमड़ा विवर्ण और रक्तहीन। आंखें भीतर धंस गईं। दृष्टि क्षीण होगई। हाथ और पैर मैलसे गन्दे, लकड़ियों की आँच लगते-लगते हाथों के रोम सफाचट होगये। पहनने के कपड़े और शिरके बालों में एक प्रकारके पीड़ा देने वाले पिस्सू (जुंए ?) पड़ गये। उनके लगातार उत्पीड़न से रात में निद्रा नहीं आती। एक बार भगा देने पर फिर न जाने देह में कैसे घुस आते थे ? "इनके साथ ही मक्खियों का उपद्रव रहता है। लाखों करोड़ों मक्खियां! सब मक्खीमय, मक्खियों का समुद्र था। ऐसा कोई यात्री नहीं होगा, जिसके हाथ पैरों में इनके काटने से घाव न हुए हों। जल के ऊपर भी ये मक्खिया मँडराती थीं। यह दृश्य मैंने पहले ही पहल देखा।" (सान्याल, महा प्रस्थान के पथ पर, २६)

२०—विशेष सुविधाओं का अभाव—

"जो पैदल चलते हैं, उनकी अवस्था चाहे कितनी ही अच्छी हो, विशेष सुविधाएं पाने का उनके पास कोई उपाय नहीं है। यही सबसे बड़ी परीक्षा है। यहाँ छोटे-बड़े का सवाल उठाने का जरा भी अवकाश नहीं। दरिद्र और धनी के लिये विभिन्न रूप में चलने का कोई यत्न नहीं। अहमन्यता, विद्वेष, मनोमालिन्य, स्वार्थ और संकीर्णता, इन सबको प्रकाशित करने की यहाँ कोई सुविधा नहीं। आहार-विहार, विश्राम, शयन और परिश्रम सभी के समान हैं।" (सान्याल, महा प्रस्थानके पथ पर,

पृ० ८२) यही कारण है कि रुग्ण, थका माँदा, वृद्ध, निर्धन भूखा-प्यासा या दुर्बल व्यक्ति, जिसे अधिक सुविधा की आवश्यकत है, किसी प्रकार विशेष सुविधा नहीं प्राप्त कर सकता, और रोगं बन जाता है।

२१—यात्रा मार्ग में स्वार्थ—

पर उसे यह आशा न रखनी चाहिये कि उसकी विशे प्रकार से सेवा की जायेगी। यात्रा मार्ग में अत्यन्त श्रद्धालु औ धार्मिक दिखाई देने वाले ये तीर्थ यात्री भक्त, नास्तिक किन् मनुष्य मात्रकी सेवामें लग्न लोगों की अपेक्षा घोर स्वार्थी होतेहैं। वे दूसरों की तनिक भी चिन्ता नहीं करते।

"यह जो तीर्थ यात्रियों का दल चल रहा है इससे अधिक स्वाधीन (स्व+अधीन) और कौन है? ये तीर्थ यात्री प्रेम करते हैं केवल अपने को। सेवा करते हैं सिर्फ अपनी ही। ये सब अपनी पोटली सम्भालते हैं, खुद ही लक्कड़-पत्तड़ संग्रह कर लाते हैं। अपनी ही विपत्ति और अपनी ही क्षेम कुशल में व्यस्त हैं। अपनी-अपनी स्वतन्त्रता ही इनका मूलमन्त्र है। (सान्याल, महाप्रस्थान के पथ पर, ८४)

२२—मरने वाले को मरने दो—

इस यात्रा मार्ग में मरने वाले की चिन्ता कोई नहीं करता। जब एक के पश्चात दूसरे, युधिष्ठिर के भ्राता और पत्नं इस मार्ग पर मरते गये तो युधिष्ठिर बिना पीछे की ओर देखे यही कहते रहे—"मरने वालों को मरने दो।" सहस्रों वर्षों से इ यात्रा मार्ग पर यात्री इसी प्रकार रुग्ण, और मृतक को छोड़ते चले आ रहे हैं। "मुझे सूचना मिली कि एक नारी पाताल गङ्गा के मार्ग से गिरकर कुछ सहस्र फीट नीचे गङ्गातटके पाषाणों पर पहुँच गई। उसके सम्बन्ध में किसी ने कोई चिन्ता नहीं की।

बचाने की कोई सम्भावना थी ही नहीं। उसके साथी बदरीनाथ के गीत गाते आगे चले गये। (सु॰१, टु बद्रीनाथ, १७) ऐसी अवस्था में रुग्ण, अधमरे या मृतक जो निराधार छोड़ दिये जाते हैं, रोग फैलाते हैं और अपने साथ सैकड़ों-सहस्रों को परलोक ले चलते हैं। इन्हीं शवों को खाकर नरभक्षी व्याघ्र पैलते हैं।

२३—यात्रा मार्ग में कुली न करना—

यात्रा मार्ग में रोग उत्पन्न होने का एक कारण यह भी है कि अनेक यात्री अपने घर से ही अपने शिर पर भारी भोजन सामग्री पहनने-ओढ़ने के वस्त्र और अन्य वस्तुएं लेकर चल पड़ते हैं। अनेक माता-पिता इनके अतिरिक्त छोटे-छोटे बच्चों को भी लाद चलते हैं। मैदानी तीर्थों की यात्रा में तो इससे अधिक असुविधा नहीं होती पर ८०० से १०-११ सहस्र फीटकी ऊँचाई वाले पर्वतीय मार्गों में यह सब अपने शिर के भरोसे ही लेकर चलने में अपार कष्ट होता है।

"पहले-पहल तो यात्रियों के मनमें उत्साह होता है। पर ४-६ दिन पश्चात् उनकी चाल मन्द पड़ जाती है। कोई लंगड़ा कर चलने लगता है, कोई पीछे रह जाता है, कोई बीमार हो जाता है, किसी को चलने से घृणा हो जाती है और कोई वापिस चला जाता है। जिसे पहले स्वस्थ, सबल प्रसन्न चित्त और मित्र-देखा था-कई दिनों के पश्चात् उसके शरीर को दुबला-पतला धूप और धूलसे मलिन देखा। उसकी करुण-कातर दृष्टि है। सम्भवत चलने में उसके पाँवों में पीड़ा रहती है। मुख ओ आँखों पर अस्वाभाविक वितृष्णा है। और अत्यन्त चिड़चिड़ा स्वभाव होगया है। पास खड़े होनेसे डर लगता है।" (सान्याल, महा प्रस्थान के पथ पर, १४)

यात्रियों को अवस्था कुली समझते हैं। इसलिये जो बेकार कुली होते हैं, उनकी पीठ पर खाली डांडी झूलती रहती है। कई दिनों तक धैर्य पूर्वक वे यात्रियों के झुण्डों के पीछे-पीछे चलते हैं। फिर देखा जाता है धीरे-धीरे एक-एक करके उनके ग्राहक मिलते जाते हैं। तब यात्रियों की गरज समझकर कुली बहुत किराया माँगते हैं। और अन्तमें लाचार होकर यात्रियोंको देना ही पड़ता है। जो पहले से अपने पास इसके लिये पैसा लेकर नहीं चलते उन्हें पैदल घसीटना होता है। साथियों के साथ मर पचकर चट्टी तक पहुँचना पड़ता है। इस प्रकार शक्ति से बाहर श्रम करने का अर्थ है रोग का निमन्त्रण, और मृत्यु का आह्वान।

अध्याय १८

उत्तराखण्ड के मन्दिरों में इतिहास और पुरातत्व की सामग्री

१—केदारनाथ मन्दिर के शिला लेख—

गढ़वाल और कुमाऊँ के मन्दिरों में केदारनाथ का मन्दिर सबसे प्राचीन, भव्य और विशाल है। इसके पश्चात् प्राचीनता, भव्यता और विशालता में दो और मन्दिर आते हैं-गोपेश्वर और बिनसर। ट्रेल, एटकिनसन और ओक्ले ने केदारनाथ मंदिर को अधिक प्राचीन नहीं माना है। (ओक्ले, होलि हिमालय, पृष्ठ १४१)

किन्तु मन्दिर के भीतर-बाहर देखने से ट्रेल, एटकिनसन तथा ओक्ले का कथन असत्य प्रतीत नहीं होता है। यह मन्दिर अवश्य एक सहस्र वर्ष से अधिक पुराना है, जैसा कि उसके आकार-प्रकार, शिखर, गर्भगृह, सभामण्डप, सभामण्डपमें लगी मूर्तियों, आदि से सिद्ध हो। है। राहुल ने लिखा है—पर मन्दिर देखकर यह विश्वास करने का मन नहीं करता कि वह १८०० ई० (सं०१८५७ वि०) के आसपास बना होगा। उस समयके आस-पास गढ़वाल में भयङ्कर भूकम्प आया था जिससे अपार हानि हुई थी। हो सकता है कि उस समय भूकम्प से मन्दिर को क्षति हुई हो। और उसकी मरम्मत करनी पड़ी हो। वस्तुतः मन्दिर उस समय बना था, जिस समय के शिलालेख गर्भगृह की भीतरी दीवारों में जड़े हुए हैं, तथा जिस समय की मूर्तियां गर्भगृह के

द्वार के चौखट पर बनी हुई हैं। सभा मण्डप में भी कई पुरुष-प्रमाण मूर्तियां हैं, जो उसी काल की हैं।

"मन्दिर के अधिकारियों और मेरी (राहुल की) भी बड़ी इच्छा थी कि कोई शिलालेख पूरी तौर से पढ़ा जाये। किन्तु मन्दिर में घी के चिराग बाले जाते हैं। भगवान के ऊपर भी घी का लेप होता है और लेप करने के बाद में हाथ में लगे घी को दीवारों पर पोंछ दिया जाता है। शताब्दियों से यह होता आया है जिसके कारण अभिलेखों के अक्षरों मे घी भर गया है। कुछ अक्षरों को पढने मे मैं अवश्य सफल हुआ। जिससे मालूम होगया कि अभिलेख का काल बारहवीं-तेरहवीं सदी ईसवी से पीछे का नहीं हो सकता। अक्षर पत्थर मे काफी गहरे खुदे हैं। इसलिये ठीक से धोकर छापा लेने पर पढ़ना मुश्किल न होगा। मैंने जो अक्षर पढ़े थे, उनमें रजदेव के । इति लिखा था। पहले चार अक्षर वैसे ही थे जैसे कि बारहवीं सदी ईसवी के तालपत्रों में (मुझे तिब्बत में) मिले हैं। अथवा जैसे कत्यूरी राजाओं (दसवीं-बारहवीं सदी) के अभिलेखों में मिलते हैं, इति में ई ऊपर दो बिन्दियों के नीचे उ की मात्रा लगाकर लिखी गयी थी। यह शिला लेख उत्तराखण्ड के इतिहास के लिये महत्व-पूर्ण साबित होंगे।" (राहुल, गढवाल ४३१-३२)

हमारा अनुमान है कि रजदेव के स्थान पर भोजदेव पाठ है, जैसा आगे कहा जायेगा।

२—केदारनाथ का ताम्र शासन—

रामदास गोड की प्रसिद्ध पुस्तक हिन्दुत्वमें केदारनाथमें अति *प्राचीन ताम्रशासन होने का उल्लेख है।* उत्तराखण्ड में श्रीकेदारे-श्वरमें बहुत प्राचीन मठ है। उसकी प्राचीनता का बहुत भारी प्रमाण एक ताम्र शासन है जो उसी मठ मे मौजूद बताया जाता

है। हिम्वंत केदार में महाराजा जनमेजय के राज्यकाल में स्वामी आनन्दलिंग जङ्गम यहाँ के मठके जगद्गुरु थे। उन्हीं के नाम जनमेजय ने मन्दाकिनी, क्षीर गङ्गा, मधुगङ्गा, स्वर्गद्वार गङ्गा और सरस्वती और मन्दाकिनी के सङ्गमके बीच जितना क्षेत्रफल धरती है, सबका दान इसी उद्देश्य से किया था कि उखीमठ के आचार्य गोस्वामी आनन्दलिंग जङ्गमके शिष्य श्री केदारक्षेत्रवासी श्री ज्ञानलिंग जङ्गम इनकी आय से भगवान केदारेश्वर की पूजा-अर्चा किया करें। उन्होंने सूर्य ग्रहण के अवसर पर श्रीकेदारेश्वर को साक्षी करके अपने माता-पिता के शिवलोक प्राप्ति के लिये उन्हें इस क्षेत्र के पूरे अधिकार समेत दान दिया था। यह दान उन्होंने मार्गशीर्ष अमावस्या सोमवार को युधिष्ठिर के राज्यारोहण के नवासी बरस बीतने पर प्लवंगम नाम संवत्सर में किया था। अर्थात् केदारेश्वर का यह मठ पाँच हजार बरसों से अधिक पुराना है। (रामदास गौड़, हिन्दुत्व, ६९६)

२—ताम्र शासन जाली है—

उपरोक्त ताम्रपत्र का कथन उसी प्रकार का है जिस प्रकार के उल्लेख शंकराचार्य के विभिन्न मठों की परम्परा में आद्य श्री शङ्कराचार्य को विक्रम-ईसा से पहले का मानकर गढ़े हुए मिलते हैं। इसमें तो केदार-रावलों की परम्परा दो सहस्र नहीं, पाँच सहस्र वर्ष पुरानी कही गई है। यदि ऐसा कोई ताम्र शासन होता तो उसे निश्चय ही भारतवर्ष की सबसे प्राचीन वस्तु माना जाता। यदि ऐसा होता तो आज तक इसके विवरण छप चुके होते। पर वास्तविक बात यह है कि यदि कोई ऐसी वस्तु है तो वह सर्वथा जाली और कालानिक है। इसलिये रावलों को यह साहस न हुआ कि उसे अंग्रेजों को दिखायें। सबसे विचित्र बात यह है कि ईसा-विक्रम से केवल ३०० वर्ष पहले लिखे गये महाभारत में

कहीं हिमालय में केदारनाथ या केदारेश्वर नाम नहीं है। केदार एक तीर्थका महाभारत में केवल एक बार वनपर्व में उल्लेख हुआ है पर उसे कुरुक्षेत्र का बतलाया गया है। (वनपर्व, ८८-७९)

इधर इस ताम्र शासन में जनमेजय, आज से पाँच सहस्र वर्ष पहले, केदारेश्वर को साक्षी बनाता है। महाभारतमें पांडवों के केदारनाथ पहुँचने और उनसे छिपने के लिये शिवजी का महिष बनजाने की कथा बिल्कुल नहीं है। आचार्य और गोस्वामी शब्द बिल्कुल नये हैं और महाभारत कालमें बिल्कुल प्रचलित न थे। यही बात जंगमों की भी है। पाँच सहस्र वर्ष पूर्वका कोई भी स्थान, जहाँ लोग तब से आज तक उसी प्रकार बसे आरहे हों, सारी धरती पर कहीं भी नहीं है। फिर ऊखीमठ इसका अपवाद नहीं हो सकता। अवश्य ही यह ताम्रपत्र, यदि है तो. इसे रावलों ने अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिये स्वयं ही बनाया है।

केदारनाथ के रावलों की जो सूची बहियों के आधार पर रतूड़ी ने दी है उसके अनुसार पाँडवों के समकालीन केदारनाथ महन्त को भृकुंड कहा गया है। उस सूची में आनन्दलिंग का शिष्य ज्ञानलिंग नहीं मिलता। ३१ वा महन्त आनन्द तांडवलिंग मिलता है। पर उसका शिष्य शुक्र लिंग है ज्ञानलिंग नहीं। (रतूड़ी गढ़वाल का इतिहास, ६६-७६)

यदि इस कल्पित ताम्रशासन के समान ही शिलालेख निकला तो उसका कोई महत्व नहीं। पर अधिक सम्भव है कि शिलालेख मन्दिर के निर्माण के समय लगाया गया होगा और यथार्थ होगा।

४— मन्दिर का प्राचीनतम शिलालेख—

केदारनाथ-मन्दिर के बाहर राहुलने एक और भग्न शिलालेख पाया था जो उन्होंने केदारनाथ मन्दिर में रखवा दिया था।

राहुल यह निश्चय नहीं कर सके कि लेख भोटिया वू-मे (शिरो-रेखा-हीन) लिपि में है या गुप्त ब्राह्मी में। यदि गुप्त-ब्राह्मी में हो तो लेख चौथी-पाँचवीं शताब्दी का हो सकता है। यदि वू-मे लिपि में हो तो लेख सातवीं-आठवीं शताब्दी का हो सकता है, जब कि तिब्बती साम्राज्य तरिम उपत्यका से लेकर सारे हिमालय में था। दोनों दशाओं में यह अब तक प्राप्त केदारखण्ड के लेखोंमें सबसे प्राचीन लेखहै। इससे सिद्ध होता है कि वर्तमान मन्दिरसे पहले यहाँ एक और मन्दिर था, जिसका शिलालेख यह है। खुदाई करने पर या ढूंढने पर इस लेख का दूसरा टुकड़ा भी मिल सकता है। राहुल ने वू मे लिपि मानकर इस लेख में अक्षर पढे थे-ये-यू-र-यू-कं-द। इनका कुछ अर्थ नहीं निकलता। (राहुल, गढवाल, पृ० ४३४-३५)

५—केदारनाथ मन्दिर का निर्माता—

केदारनाथ मन्दिर का निर्माण किसने किया, इस सम्बन्ध में गढ़वाल के सभी इतिहासकार मौन हैं। पातीराम रतूड़ी, महीधर शर्मा, राहुल आदि ने जिन्होंने गढवाल के इतिहास पर लेखनी उठाई है, इस सम्बन्ध में कुछ नहीं लिखा।

एपिग्राफिका इण्डिका, खण्ड १, पृ० २३५-३६ पर एक शिलालेख की प्रतिलिपि छपी है, जो उदयपुर (ग्वालियर राज्य) में मिला है. और जिसमें मालवा के परमार नरेश भोज-त्रिभुवन-नारायण का यशोगान है। उस शिलालेख में निम्न महत्वपूर्ण पंक्तियां आती हैं—

चैदीश्वरेन्द्ररथ (तोग्ग) ल भीममु। ख्या
त्कर्णाटलाटपतिगूर्जुरराट् तुरूष्कान ।
यद् भृत्यमात्रविजितानवलो। क्या। मोला।
दोष्णा य (ब) लानि कलयति न। योदृघृ। लो। कान्।

केदाररामेश्व (श्व) रसोमनाथ
(सु ं) डीरकालानलरुद्रसत्वैः ॥
सुराश्च । यै । व्याप्य च यः समन्तात्
यथार्थसंज्ञां जगतीं चकार् ॥

भोज ने चैदीश्वर (चैदि देशका राजा) इन्द्ररथ, तोग्गल, भीम आदिको एवं कर्णाट, लाट, एवं गुर्जर(गुजरातके राजाओं) तथा तुरुष्कों (मुसलमानों) को जीता था। उसके काम, दांन और ज्ञान की समानता कोई नहीं कर सकता था। वह कविराज (कवियों में राजा के समान) कहलाता था। उसने केदार, रामेश्वर, सोमनाथ, सु ंडीर कालं (महाकाल) अनल (ज्वाला-मुखी) और रुद्रके मन्दिर बनवाये थे।

६ —उपरोक्त शिलालेख की प्रामाणिकता—

इतिहासमें प्रमाण मिलता है कि भोज ने चैदीश्वर गांगेय देवको परास्त किया था। इन्द्ररथ और तोग्गल कहाँ के राजा थे ज्ञात नहीं है। प्रबन्ध चिन्तामणि (पृ० ८०) के अनुसार भीम के सेनापति कुलचन्द्र ने गुजरात के सोलंकी राजा भीमदेव प्रथम पर विजय प्राप्त की थी। भोज ने कर्णाट (दक्षिण) के राजा जयसिंह को पराजित किया था। क्योंकि इस जयसिंह के दादा तैलपने भोजके ताऊ मु ंज का बध किया था। उदयपुर (ग्वालियर राज्य) में प्राप्त भोज के वंशज उदयादित्य के लेखमें भी भोज को कर्णाटक के राजा (सौलंकी–जयसिंह) को जीतने वाला कहा गया है। बासवाड़े में इसी भोज का वि० सम्वत् १०७६ (ई० सं० १०२०) माघ शुदी ५ के दानपत्र में कौकंकण विजय पर्वणि (कोकंण जीतने के उत्सव पर) एक ब्राह्मण को भूमिदान करने का उल्लेख है। पृथ्वीराज विजय (सर्ग ५) के अनुसार भोजने साभर के चौहान–नरेश वीर्यराम का बध किया था। (ओझा, राजपूताने का इतिहास, खण्ड १, २११-१२)

७—कैलाश से मलय तक विजय—

भोज के शिलालेख के पहले श्लोक में उसे कैलाशसे लेकर मलय तक का देश जीतने वाला कहा गया है। (एपिग्राफिया इण्डिका, खण्ड १, पृ० २३५ श्लोक १७)

बम्बई के पास वेस्टर्न रेलवे पर, बोरिवली स्टेशन से उत्तर-पश्चिम एक मील की दूरी पर, एकसर नामक गाँव में ६ वीरगल (वीरशिला) हैं जिनमें मालवा के प्रसिद्ध सम्राट भोज द्वारा कोंकण विजय में समुद्र युद्ध का अङ्कन है। (मोतीचन्द्र, सार्थवाह, २९-३१)

डा० मोतीचन्द्र की इस पहचान से डा० वासुदेवशरण सहमत हैं। (सार्थवाह की भूमिका, १३)

८—भोज का पांडित्य—

यह भोज प्रसिद्ध विद्वान था। उसने अलङ्कार-शास्त्र पर सरस्वती-कण्ठाभरण, योगशास्त्र पर राजमार्तंड, ज्योतिष पर राजमृगाङ्क और विद्वज्जनमण्डन, शिल्प पर समरांगण, और व्याकरण पर शृङ्गारमञ्जरी कथा आदि कई ग्रन्थ संस्कृत में लिखे थे। उसके बनाये हुए कूर्मशतक नामक दो प्राकृत काव्य भी शिलाओं पर खुदे मिले हैं। उसने धारा नगरी में सरस्वती कंठाभरण (सरस्वती सदन) नामक पाठशाला बनवाई थी जिसमें कूर्मशतक, भर्तृहरिकी कारिका आदि कई पुस्तकें शिलाओं पर खुदवाकर रखा गई थीं। भोजके पीछे भी उदयादित्य, अर्जुनवर्मा आदिने कई पुस्तकों को शिलाओं पर खुदवाकर वहाँ रखवाया था। परन्तु मुसलमानों ने अपने शासनकालमें उक्त विद्या-मन्दिर को तोड़कर उसके स्थान पर मसजिद बनवादी, जो अब कमाल-मौला के नामसे प्रसिद्ध है। (ओझा, राजपूताने का इतिहास, खण्ड १, पृ० १२-१३)

९—भोज महाशैव—

भोज महाशैव था। उसने चित्तोड़ के किले में भी, जहाँ वह कभी-कभी रहता था, त्रिभुवन-नारायण का विशाल शिव-मन्दिर बनवाया था। (नागरी प्रचारिणी-पत्रिका भाग ३, पृ० १-१८)

इस मन्दिर का जीर्णोद्धार महाराजा मोकल ने वि० सं० १४८५ (ई० स० १४२८) में करवाया था। इस समय इस मंदिरको अदबजी (अद्भुतजी) का मन्दिर और मोकलजी का मन्दिर भी कहते हैं। (ओझा राजपूतानेका इतिहास, खड १, पृ २१३-१४)

बम्बईमे बोरीविली स्टेशन के पास एक्सर नामक गाँवमें भोज के जो वीरगल (वीरचित्र) मिले हैं, उसमें पहले चित्र के तीसरे खाने में युद्ध मे मरे सैनिकों को स्वर्ग-अप्सराएँ शिवलोक मे ले जा रही हैं। चौथे खाने मे शिवलोक का प्रदर्शन हुआ है। बाईं तरफ एक स्त्री और पुरुष शिवलिंग की पूजा कर रहे हैं। दाहिनी ओर नाच-गान होरहा है। ऊपर अस्थि-कलश के साथ-साथ माला लिये अप्सराएं दिखाई गई हैं। (मोतीचन्द्र, सार्थवाह २२९)

दूसरे वीरगलके चौथे खाने मे कैलाशका दृश्य है। तीसरे वीरगल के तीसरे खाने में बाईं ओर तीन आदमी, शिवलिंग की पूजा कर रहे हैं। दाहिनी ओर गन्धर्वों का एक दल है। चौथे खाने में हिमालयके बीच देवताओं सहित शिव और पार्वती की मूर्ति है। सिर पर अस्थि-कलश है। चौथे वीरगल के छठे खानेमें बाईं ओर आठ आदमी एक शिवलिंग की पूजा कर रहे हैं। दाहिनी ओर अप्सराओं और गन्धर्वों का नाच-गान होरहा है। सातवें खानेमें शायद शिवका चित्रण है,बाईं ओर अप्सराओं के साथ योद्धा हैं, और दाहिनी ओर वादक नरसिंहा, शङ्ख और

झाँझ बजा रहे हैं। आठवें खाने में स्वर्ग में महादेव का मन्दिर है। (मोतीचन्द्र, सार्थवाह, २२६-३०)

१०-ज्योतिर्लिंग के मन्दिरों का निर्माण—

इन उद्धरणों से स्पष्ट हो जाता है कि भोज कितने वीर, विद्वान और शिव-भक्त थे। इसलिये इसमें सन्देह नहीं रह जाता कि अपने शिलालेख में उन्होंने केदार-रामेश्वर, सोमनाथ, काल (महाकाल उज्जैन) अनल, रुद्र और सुंडीर में शिव मन्दिर बनाने का जो उल्लेख किया है, वह सत्य है। उज्जैन में महाकाल का मन्दिर बनाने पर इस महाशैवको अन्य ज्योतिर्लिंगों-केदार, रामेश्वर और सोमनाथ में भी मन्दिर बनाने की सूझी होगी अनल और रुद्र-ज्वालामुखी और रुद्रनाथ या अन्य कोई शिवतीर्थ हो सकते हैं। सुंडीर में, मूल शिलालेख में पहला अक्षर अस्पष्ट है, वह सु-सा दिखाई देता है। मेरी कल्पना है कि यह अक्षर सु नहीं कु है और पूरा शब्द कुंडीर है।

११—राजतरंगिणी का प्रमाण—

मेरी कल्पना का आधार कल्हण की राजतरंगिणी के सप्तम तरङ्ग के १९० से १९३ तक ४२ श्लोक हैं। उनमें कहा गया है कि काश्मीर नरेश अनन्तदेवका एक प्रीति-पात्र पद्मराज नामक पान बेचने वाला था। मालव देशके राजा भोज ने इसी पद्मराज के द्वारा विपुल द्रव्य-व्यय करके कपटेश्वर (कोटेर, कश्मीर) में एक कुण्ड बनवाया था। राजा भोज ने प्रतिज्ञा की थी कि सदा इसी पापसूदन तीर्थ के पवित्र जल से मुख-मार्जन तथा स्नान किया करूँगा। भोजराज की इस दुस्तर प्रतिज्ञा को पूर्ण करने के लिये वह पद्मराज ताम्बूलिक नियम पूर्वक उस तीर्थ के जलको कांचन कलशोंमें भरकर वहासे भेजा करता था। (कल्हण राजतरंगिणी, तरङ्ग ७, श्लोक १९०-९३)

इसलिये सुंडीर के स्थान पर कुंडीर पाठ सम्भव हो सकता है, जिसका आशय होगा, कपटेश्वर (कुण्ड के शिव) सुंडीर भी हो सकता है।

इसी भोज ने भोजपुर (भोपाल) में बड़ी झील भी बनवाई थी, जिसे सुलतान हुशङ्गशाह ने तुड़वाया था।

१२—गढ़वालके पंवार नरेशों का धारा से आगमन—

भोज का यह कथन कि उसने कैलाश (गढ़वाल हिमालय) से मलय पर्वत तक राज्य किया, अतिशयोक्ति नहीं है। ऐसा प्रतीत होता है कि गढ़वाल के पंवार राजाओं की यह धारणा कि उनका पूर्व-पुरुष धारा (मालवा) से आया था, सत्य है। या तो इस व्यक्ति ने गढ़वाल का राज्य प्राप्त कर लेने पर भोजराज से केदार मन्दिर बनवाने की प्रार्थना की अथवा भोजराज प्रतिनिधि जो गढ़वाल में केदारनाथ का मन्दिर बनवा रहा था उसे ही गढ़वाल के खस-नरेश ने घरजँवाई बना दिया।

भोज ने विक्रम सं० १०७६ सं० १०६६ तक राज्य किया। चान्दपुरगढ़ में प्राप्त एक शिला लेख में निम्न श्लोक का होना बताया जाता है:—

शायकाब्धि-नव-सम्मितवर्षे विक्रमस्य विधुवंशराज-पूज्यः।
श्रीनृपः कनकपाल इहाप्तः शौनकर्षिकुलजः प्रमरोयम्॥

इसमें कनकपाल पंवार का संवत ६४५ में (सन् ८८८ ई०) गढ़वाल आना कहा गया है। राहुल इसे पीछे की गढ़न्त मानते हैं (राहुल, गढ़वाल, १२४)

किन्तु भोज के उपरोक्त शिलालेख से मिलाने पर गढ़वाल के नरेशों का धारा से आगमन तथा उनका परमार होना संभवतः निराधार नहीं है।

१३—बदरीनाथ का मन्दिर—

हम देख चुके हैं कि आज से ५१०० वर्ष पूर्व महाभारत कालमें भी बदरिकाश्रम तीर्थ माना जाता था। अस्तु उस स्थान से परिचय तथा वहाँ तीर्थ की कल्पना उससे भी पहले के माने जा सकते हैं। बदरीनाथ का वर्तमान मन्दिर अधिक पुराना नहीं है। यह मन्दिर कटे हुए पत्थरों का बना है और मुगल शैली की नई इमारत है। कहते हैं कि श्रीबदरीनाथजी का वर्तमान मन्दिर रामानुज सम्प्रदायी स्वामी वरदराजजी की प्रेरणा से श्रीमान् गढ़वाल नरेश ने विक्रमीय पन्द्रहवीं शताब्दी में निर्माण किया था। श्रीबदरीनाथजी के मन्दिर पर जो सोने की कलश-छत्रीहै, उसे अहल्या बाईजी का चढ़ाया हुआ बतलाते हैं। (उत्तराखण्ड-रहस्य, १३३ राहुल, गढ़वाल, ३३६–४०)

सम्भवतः वर्तमान मन्दिर इतना पुराना नहीं है। समय-समय पर भूचालों और हिमानी पतनके कारण सम्भवतः प्राचीन मन्दिर नष्ट होते रहे हैं और उनके स्थान पर प्राचीन अवशेषों की रक्षा का कुछ ध्यान न रखकर नवीन मन्दिर बनते रहे हैं। १८०३ में गढ़वाल में जो भयङ्कर भूचाल आया था, उसमें बदरीनाथ मन्दिर को क्या क्षति पहुँची थी इसका मौलारामने उल्लेख नहीं किया। पर १८०८ में गङ्गाजी के स्रोत का पता लगाने के लिये जो अभियान स्विनर के साथ गढ़वाल और टेहरीमें पहुँचा था, उसने बाड़ाहाट और श्रीनगर के सभी मन्दिरों और भवनों का, तथा गढ़वाल के अन्य स्थानों में भी सर्वत्र मन्दिरों और भवनों के विध्वंसका उल्लेख किया है। (एशियाटिक रिसर्चेज़, खण्ड ११)

इस पर पादरी ओकले का कहना है—बदरीनाथके वर्तमान मन्दिरको प्राचीन नहीं माना जा सकताहै। क्योंकि गढ़वाल

के सभी प्राचीन भवन समय-समय पर आने वाले भयङ्कर भूचालों से बार-बार नष्ट होते रहे हैं। (ओकले, होलि हिमालय १५२)

अस्तु यदि बदरीनाथ-मन्दिर श्रीशङ्कराचार्य के समय बना हो, तो उसके कोई अवशेष नहीं मिलते।

१४—बदरीनाथ की मूर्ति—

बदरीनाथ की वर्तमान मूर्ति के सम्बन्ध में अनेक तर्क-वितर्क मिलते हैं। यह मूर्ति ३' ६'' ऊँची काले पाषाण या शालिग्राम शिला की बनी है। राहुल के अनुसार इसके शिर के आगेका पत्थर टूटकर निकल गया है। जिसमे ललाट-आँखें-नाक, मुँह-ठुड्डी गायब हैं। यह ध्यानावस्थित सम्भवतः भूमि-स्पर्श वाली, काले पत्थर की बुद्धमूर्ति है। इसकी एक बाँह में से भी कुछ पत्थर निकल गया है। शिर के पीछे कुंचित केश तो जैन मूर्ति में भी होते हैं किन्तु वक्ष पर एकांश चीवर इसके बुद्धमूर्ति होनेको निश्चित कर देताहै। (राहुल, गढ़वाल, १६५३ पृ०२४०)

बदरीनाथ मन्दिर के भूतपूर्व मैनेजर श्रीशालिग्राम वैष्णव ने लिखा है—इस मूर्ति के विषय में कितनी ही प्रकार की जन-श्रुतियां हैं। कोई इसको नारदजी की पूजी हुई तपस्वी भगवान नारायण की मूर्ति मानते हैं। और कोई-कोई इसको बौद्धों की स्थापित बुद्ध भगवान की मूर्ति बतलाते हैं। कोई-कोई कहते हैं कि यहाँ पर पहले बौद्ध मठ था। जिसको स्वामी शङ्कराचार्य ने बौद्धों को पराजित कर सभी मूर्तियों को भगवान नारायणके नाम से पुजवाने का विधान किया। जैन लोग इस मूर्ति को पारसनाथ अथवा ऋषभदेव भगवानकी मूर्ति मानतेहैं। इन सब जन-श्रुतियों में से सत्य चाहे कोई भी हो, हिन्दुओं के लिये-यह मूर्ति सब प्रकार से ही मान्य है। क्योंकि नारायण, बुद्ध तथा ऋषभदेव, ये

तीन भगवान विष्णु के ही अवतार पुराणों में वर्णन किये गये हैं।
(श्री उत्तराखण्ड रहस्य, १६२६ पृ० १३३)

इस मूर्ति के इतिहास के सम्बन्ध में कहा जाता है कि पहली बार यह मूर्ति देवताओं ने अलकनन्दा में नारदकुण्ड से निकालकर स्थापित की। देवर्षि नारद इसके प्रधान अर्चक हुए। इसके पश्चात् जब बौद्धों को प्राबल्य हुआ, तब इस मन्दिर पर उनका अधिकार होगया। उन्होंने बदरीनाथ की मूर्तिको बुद्धमूर्ति मानकर पूजा करना जारी रक्खा। जब शङ्कराचार्यजी बौद्धों को पराजित करने लगे, तब इधर के बौद्ध तिब्बत भाग गये। भागते समय वे मूर्ति को अलकनन्दा में फेंक गये। शङ्कराचार्यजी ने जब मन्दिर खाली देखा, तब ध्यान करके अपने योगबल से मूर्ति की स्थिति जानी और अलकनन्दा से मूर्ति निकलवाकर मन्दिर में प्रतिष्ठित करवाई। तीसरी बार मन्दिर के पुजारी ने ही मूर्ति को तप्तकुण्ड में फेंक दिया, और वहाँ से चला गया, क्योंकि यात्री आते नहीं थे। उसे सूखे चावल भी भोजन को नहीं मिलते थे। उस समय पाण्डुकेश्वर में किसी को घण्टाकर्ण का आवेश हुआ और उसने बताया कि भगवान का श्रीविग्रह तप्तकुण्ड में पड़ा है। इस बार मूर्ति तप्तकुण्ड से निकाल कर श्रीरामानुजाचार्य (इस सम्प्रदाय के किसी आचार्य) द्वारा प्रतिष्ठित की गई।
(कल्याण, तीर्थांक, ४८-४६)

इस प्रकार बदरीनाथ मूर्तिके सम्बन्धमें निम्न कल्पन एंहैं–

१—इस मूर्ति की स्थापना श्रीशङ्कराचार्य ने नारदकुण्डसे निकाल कर की।

२—यह भग्न-मूर्ति है।

३—इस मूर्ति की स्थापना रामानुज-सम्प्रदाय के किसी आचार्य ने की।

४—यह बुद्धकी मूर्ति है।

१५—शंकराचार्य द्वारा बदरीनाथ-मूर्ति की प्रतिष्ठा—

इस सम्बन्ध में स्कन्दपुराण के वैष्णवखण्ड के अन्तर्गत बदरिकाश्रम-माहात्म्य, अध्याय ५ का यह श्लोक प्रमाण माना जाता है:—

यतो हं यहि रूपेण तीर्थोन्नारदसंज्ञकात् ।
उद्धृत्य स्थापयिष्यामि हरिं लोकहितेच्छया ॥

बलदेव उपाध्याय का विश्वास है कि शङ्कर ने स्वयं इस मूर्ति की प्रतिष्ठा मन्दिर में की तथा वैदिक रीति से इसकी पूजा-अर्चा का प्रबन्ध किया। (बलदेव उपाध्याय-शङ्कराचार्य, ५२)

१६—भग्न-मूर्ति—

शङ्कर सम्बन्धी अनेक ग्रन्थोंसे विदित होता है कि बदरी-नाथ की मूर्ति बहुत पहले भग्न होचुकी थी। उन ग्रन्थों में कहा गया है—आचार्य ने नारदकुण्ड से जो मूर्ति निकाली वह पद्मा-सनमें बैठे हुए चतुर्बाहु विष्णु की मूर्ति थी, परन्तु उसका दाहिना कौना टूटा हुआ था। आचार्य ने यह विचार करके कि बदरीनारायण की मूर्ति कभी खण्डित नहीं हो सकती, उसे गङ्गाजी में फेंक दिया। और कुण्डमें गोता लगाया तो फिर वही मूर्ति मिली। दूसरी बार भी मूर्ति फेंककर तीसरी बार गोता लगाने पर वही मूर्ति हाथ आई और यह आकाशवाणी हुई,कलि में इसी मूर्ति की पूजा होनी चाहिये। (बलदेव उपाध्याय, शङ्कराचार्य, ५२)

शङ्कर सम्बन्धी ग्रन्थों में ये शब्द तब लिखे गये होंगे जब मूर्ति का भग्न होना विदित होगया होगा। और खण्डित मूर्ति बदलने के लिये किसी ने आन्दोलन किया होगा। उस आन्दोलन का मुख बन्द करने के लिये ग्रन्थों में ये बातें लिखी गई होंगी।

१७—वरदाचार्य द्वारा प्रतिष्ठित—

वरदाचार्य या उनके सम्प्रदायके किसी महात्माने संभवतः गढ़वाल नरेश से मन्दिर बनाने की प्रेरणा की। पर मूर्ति उसमें पुरानी ही रक्खी गई। और पूजा व्यवस्था में भी उन्होंने कोई परिवर्तन नहीं किया।

१८—बौद्ध मूर्ति—

भगिनी निवेदिता का कहना है कि ध्यानी बदरीका नाम ही कानको ऐसा सुझाव देता है कि बदरी बुद्ध का बिगड़ा रूपहै। तिब्बत के मार्ग में होने और हिन्दुओं के और बौद्ध का तीर्थ होने तथा तिब्बत से बुद्ध गया जाने वाले मार्ग में स्थित होने और कुछ तिब्बती लामाओं द्वारा बदरीनाथ को भेंट भेजने की प्रथाके आधार पर मैं इसे बौद्ध-मन्दिर माननेको प्रस्तुत हूँ। (निवेदिता, फुटफाल्स आव इण्डियन हिस्टरी, २११-१२)

बौद्ध मूर्ति मानने के दूसरे आधार मूर्ति का द्विभुज होना, ध्यानमुद्रा में आसन जमा बैठना और एकांश-चीवर-जैसी रेखा हो सकते हैं। यह भी कहा जाता है कि मूर्ति पर दो भुजाओं के अतिरिक्त दो और भुजाओं के चिह्न बने हैं। एकांश-चीवर उपनयन है जो गुप्तकाल की मूर्तियों पर मिलता है। और गुप्तकाल की विष्णु मूर्तियां भी ध्यान-मुद्रा में मिलती हैं। गुप्तकाल की एहोड मन्दिर की विष्णु-मूर्ति इसी प्रकार की है। (परशुराम, वैष्णव धर्म, पृ० २१ के पास चित्र)

इस चित्र का बदरीनाथ की मूर्ति के फोटोचित्र निर्वाण दर्शनसे तुलना करने पर दोनोंमें विशेष अन्तर नहीं दिखाई देता।

१९—बौद्ध मूर्ति नहीं मुंशी का मत—

इतिहास और कला के मर्मज्ञ क० म० मुंशी कुछ वर्ष

पूर्व बदरीनाथ गये थे और मूर्ति को ध्यान पूर्वक देखकर इन्होंने लिखा था—बदरीनारायण की मूर्ति विष्णु या श्रीकृष्ण की मूर्ति से मेल नहीं खाती। यह पद्मासन पर बैठी किसी योगी की मूर्ति प्रतीत होती है। इसमें यह विचित्रता है कि इस पर चार हस्तों के चिह्न हैं। कहा जाता है कभी बदरिकाश्रम बौद्धधर्म केन्द्र था। इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है। शाक्य-मुनिका धर्म तिब्बत पहुंचने से पूर्व यहाँ ठहरा हो, ऐसा हो सकता है। किन्तु मुझे तो बौद्ध धर्म के कोई चिह्न नहीं मिले। बुद्ध और महावीर के जन्मसे भी पहले अनेक योगी भारत में अपने-अपने पंथ चला चुके थे।१ और सम्भव है उनमें से कोई पंथ बिना बौद्ध धर्म या जैन धर्म से प्रभावित हुए यहाँ चला आया हो। (मुंशी, टु बदरीनाथ,२८-२९)

२०—विष्णु की द्विभुज मूर्ति—

बहुत से लोगों का अनुमान है कि बदरीनाथ की मूर्ति द्विभुज है, इसलिये यह विष्णु या नारायण की मूर्ति नहीं है। यह विचार भ्रमपूर्ण है। वराहमिहिरने वृहत्संहितामें लिखा है—विष्णु भगवान की प्रतिमा अष्टभुज, चतुर्भुज अथवा द्विभुज बनावे। श्री वत्स नामक चिह्न से और कौस्तुभ मणि से प्रतिमा के वक्षस्थलको शोभायमान करे। द्विभुज मूर्तिका दक्षिण (दाहिना) हाथ शान्ति मुद्रा में और बाम हस्तमें शंख धारण करावे। ऐश्वर्य को चाहने वाले पुरुष इस भांति विष्णु प्रतिमा बनावें।

कायतिष्टभुजो भगवांश्चतुर्भुजो द्विभुज एव वा विष्णु।
श्री वत्सांकितवक्षाः कौस्तुभमणि भूपितोरुरकः॥
द्विभुजस्तु शान्तिकरो दक्षिणहस्तो परश्चशंखधरः।
एवं विष्णोः प्रतिमा कर्तव्या भूतिमिच्छद्भिः॥
(वराहमिहिर, वृहत्संहिता, अध्याय, ५८ पृष्ठ २५९-६०)

उपरोक्त उद्धरण से स्पष्ट है कि विष्णु की द्विभुज मूर्तियां

भी होती थीं और वे एक हाथ से शान्ति-मुद्रा प्रदर्शित करती थी और उनके दूसरे हाथमें शङ्ख होता था। दुर्भाग्यसे बदरीनाथ की मूर्ति का शान्ति मुद्रा वाला हाथ तो दिखाई देता है, पर शङ्ख वाला हाथ टूट चुका है। इस दृष्टि से मुंशी का यह कथन कि यह मूर्ति विष्णु मूर्ति है, बौद्ध मूर्ति नहीं है, सत्य प्रतीत होताहै।

यदि यह विष्णु मूर्ति है, तो अवश्य ही सातवीं शताब्दी से पहले की हो सकती है। हम देख चुके हैं कि बदरीनाथ की महाभारतकाल से निरन्तर यात्रा होती रही है। और यह क्रम कभी टूटा नहीं है। चीनी यात्री फा-शीन ब्रह्मपुर पहुँचा था। यदि उस समय बदरीनाथ-बौद्धतीर्थ हो तो वह इसका अवश्य उल्लेख करता। बौद्ध साहित्य में कहीं भी बदरीनाथ का उल्लेख नहीं है। जब कि हिन्दू साहित्य में महाभारत, पुराणों और अन्य प्राचीन ग्रन्थों और साहित्य में उसका बराबर उल्लेख होता रहा है। इसलिये बदरीनाथ में बौद्ध तीर्थ होने की कल्पना निरी खींच-तान है जो द्विभुज मूर्ति को बुद्ध मानकर की गई है। तोलिङ० मठ से बदरीनाथ को भेंट भेजने का कारण शिष्टाचार मात्र है जो अन्य मन्दिरों के साथ भी किया जाता है।

२१-शंकराचार्य का समय-

जोशीमठ, बदरीनाथ और केदारनाथ-मन्दिरोंके अतिरिक्त देवप्रयाग का रघुनाथजी का मन्दिर भी श्री शङ्कराचार्य द्वारा निर्मित बतलाया जाता है। (रतूड़ी,गढ़वाल, इतिहास, १८२ टि०)

देवप्रयाग के मन्दिर का शङ्कर-सम्बन्धी-ग्रन्थों में कोई उल्लेख नहीं है। और रतूड़ी को भी उपरोक्त कथनमें संशय है। फिर भी बदरीनाथ, केदारनाथ, जोशीमठ, अमरनाथ (काश्मीर) और पशुपतिनाथ (नैपाल) शङ्कर द्वारा प्रतिष्ठित माने जाते हैं। इन मन्दिरों में दाक्षिणात्य पुजारी पिछली दो-तीन शताब्दियों

से चले आरहे हैं, और सम्भव है, बहुत पहले से चले आ रहे हों। अस्तु हिमालय के धार्मिक इतिहास के लिये शङ्कराचार्य का समय जानना तथा यह पता लगाना कि क्या सचमुच इनकी स्थापना, या इनकी वर्तमान पूजा पद्धति की परम्परा शङ्कराचार्य से चली थी, अत्यन्त आवश्यक है।

दुर्भाग्य से शङ्कराचार्य का समय निश्चित नहीं है और उनका इन मन्दिरों से सम्बन्ध था या नहीं इस सम्बन्धमें कोई तत्कालीन प्रमाण नहीं मिलते।

२२–शङ्कराचार्य के सम्बन्ध में मिथ्या प्रचार–

प्राय. कहा जाता है कि शङ्कर ने शास्त्रार्थ मे बौद्धों को पराजित किया और राजा सुधन्वा आदि ने शङ्कर की आज्ञा से, सहस्रों बौद्धो को समुद्र मे डुबाया और तलवार के घाट उतारकर उनका सहार किया था। किन्तु इसके लिये कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं है। यह सब आनन्दगिरि और माधवाचार्यका मिथ्या प्रचार है। शङ्कर दिग्विजय ग्रन्थ असत्य बातों से भरा है। (राहुल, बुद्धचर्या, भूमिका, १०,घोष, अर्लि हिस्टरी आव इडिया, ६३-६४)

शङ्कर के शारीरिक भाष्य पर वाचस्पति मिश्र ने नौवीं शताब्दी में टीका लिखी। अस्तु शङ्कर अवश्य नौवीं शताब्दी से पूर्व के माने जा सकते हैं। शङ्कर कुमारिल के समकालीन थे। और दोनों ने एक–दूसरे का साक्षात्कार किया। कुमारिल और बौद्ध नैयायिक धमकीर्ति समकालीन थे। जो सातवीं शताब्दी में हुए थे। अस्तु शङ्कर और कुमारिल सातवीं शताब्दी ईसवी से पूर्ववर्ती नहीं हो सकते। एज आव शङ्कर आदि पुस्तकों मे शङ्कर को विक्रम का समकालीन बतलाना सर्वथा इतिहास विरुद्ध है।

सातवीं शताब्दी ईसवी के पूर्व शङ्कराचार्य-जैसे किसी ऐसे प्रबल बौद्ध विरोधी शास्त्रार्थी का उल्लेख नहीं मिलता, यदि

होता तो ह्वेनसांग० उसका उल्लेख किये बिना न छोड़ता। महा-वंश में, जो शङ्कर की जन्मभूमि केरल के बहुत निकट सिंहल में लिखा गया, बौद्ध धर्म पर तथा-कथित इतना व्यापक प्रभाव डालने वाले शङ्कर का उल्लेख नहीं है और न किसी बौद्ध ऐति-हासिक ग्रन्थ में ही है। (राहुल, बुद्धचर्या, भूमिका, १०, घोष, अर्लि हिस्टरी आव इण्डिया, ६४)

आचार्य शांतरक्षित ने अपने महान् दार्शनिक ग्रन्थ तत्व-संग्रह में अपने से पूर्व के अनेक दार्शनिक सिद्धान्त उद्धृत करके खण्डित किये हैं, यदि शान्तरक्षित के समय तक शङ्कर अपनी वेदृत्ता से बौद्ध सिद्धान्तों के खण्डन की धाक जमा चुके होते तो शान्तरक्षित उनका उल्लेख अवश्य करते। (राहुल, उपरोक्त, १० घोष, उपरोक्त ६४)

सच्ची बात तो यह है कि वाचस्पति मिश्र द्वारा शारीरिक भाष्य की भामती टीका लिखे जाने पर ही शङ्कर उत्तर भारतमें प्रसिद्ध हुए। यथार्थ में वाचस्पति के कन्धे पर चढ़कर ही शङ्करको यह कीर्ति और बड़प्पन मिला, जो आज देखा जाता है। (राहुल, उपरोक्त, घोष, उपरोक्त ६३)

आचार्य शान्तरक्षित वाचस्पति से एक शताब्दी पूर्व हुए, इसलिये शङ्कर का समय शान्तरक्षित से पीछे और वाचस्पति से पहले होना चाहिये।

२३—शङ्कर का समय, बलदेव उपाध्याय का मत—

१—शङ्कर ब्रह्मसूत्र २-२-२८ के भाष्य से स्पष्ट होता है कि शङ्कर दिङ० नाग के सिद्धान्त से परिचित थे। दिङ० नाग कालिदास के समकालीन थे, अस्तु शङ्कर, कालिदास दिङ० नाग से पीछे हुए।

२—शङ्कर धर्मकीर्ति के मत और ग्रन्थ से परिचित थे।

धर्मकीर्ति का समय ६३५-६५० ई० माना जाता है। अतः शंकर इस समय से पहले नहीं हो सकते।

३—शंकर ने ब्रह्मसूत्र २-२-२२ तथा २-२-२४ में दो बौद्धाचार्यों के वचनों को उद्धृत किया है। इनमें पहला वचन गुणमति रचित अभिधर्म कोष की व्याख्या में उपलब्ध होता है। इन गुणमति का समय ईसाके सप्तम शतक का मध्य भाग (६३०-६५० ई०) माना जाता है। अस्तु शंकर इसके पश्चात् हुए।

२४—डा० पाठक का मत—

आधुनिक विद्वानों की यह धारणा बन गई है कि शंकराचार्य का सयम ८४५ विक्रमी से ८६७ विक्रमी तक (७८८ ई० से ८२० ई० तक) है। इस मत की उद्भावना तथा पुष्टि करने का श्रेय स्वर्गवासी डा० के० बी० पाठक को है। जिन्होंने विभिन्न प्रमाणों के द्वारा इस मत को सिद्ध तथा प्रचलित करने का प्रयत्न किया है और इस सम्बन्ध मे अनेक लेख प्रकाशित किये हैं।

कृष्ण ब्रह्मानन्द रचित शंकर-विजय ग्रन्थ के अनुसार शंकर का जन्म ७८८ ई०, सं० ८४५ तथा तिरोधान ८२० ई० स, ८७७ में हुआ यह मत डा० पाठक के मत से मिलता है। डा० पाठक को एक और छोटी पुस्तक मिली थी, उसमें भी यही बात कही गई थी—

> दुष्टाचार विनाशाय प्रादुर्भूतो महीतले।
> स एव शंकराचार्यः साक्षात् कैवल्यनायकः॥
> अष्टवर्षे चतुर्वेदान् द्वादशे सर्वशास्त्रकृत।
> षोडशे कृतवान् भाष्यं द्वात्रिंशे मुनिरभ्यगात॥
> निधिनागेभवह्न्यब्दे विभवेशंकरोदयः।

इसके अनुसार भी शकर का जन्म ३८८९ कलिमें, अर्थात् ७१० शक, ७८८ ई०, सं० ८४५ और तिरोधान ३२ वर्ष की आयु

में ८२० ई०, सं० ८७७ में हुआ। (बलदेव, उपाध्याय-शंकराचार्य, ३४-३५)

५-शंकराचार्य बदरीनाथ में—

मुंशी ने लिखा है कि शंकराचार्य आठवीं या नौवीं शताब्दी में बदरीनाथ पहुँचे और उन्होंने इस मूर्ति को प्रतिष्ठित किया। सम्भव है कि यह घटना सं० ६४४ के निकट घटी है अब धारा का पंवार राजा कनकपाल अथवा गुजरात का भोगदत्त परमार बदरीनाथ-यात्रा के लिये आया और उसने चान्दपुर नरेश भानुप्रताप की पुत्री से विवाह किया। राजा ने बदरीनाथ का आशीर्वाद लेकर उसे राज्य दे दिया। (मुंशी, टु बदरीनाथ, पृ० २६)

मुंशी का उपरोक्त कथन सुनी-सुनाई परम्पराके आधार पर है। यदि शंकराचार्य का जन्म ७८८ ई० में और निधन ८२० ई० में हुआ तो वे ८२० ई० सं० ८७७ से पूर्व ही बदरीनाथ पहुँचे होंगे। उस समय गढ़वाल में परमार नरेश न होकर कत्यूरी-नरेश होना चाहिये। कत्यूरी नरेशों के अब तक उपलब्ध ताम्रपत्रों में शंकराचार्य का उल्लेख नहीं आता। पद्मट के पांडुकेश्वर में प्राप्त ताम्रशासन में बदरिकाश्रम के भट्टारक को भूमिदान करने का उल्लेख है। पद्मट का समय राहुल ने १०३० ई० से १०४५ ई० तक माना है। (गढ़वाल, ७२)

एटकिनसन के आधार पर राहुल ने डोटी और असकोट की जो कत्यूरी वंशावलियां दी हैं उनके अनुसार डोटी वंशावली में २१वीं संख्या पर और असकोट वंशावली में ३२ वीं संख्या पर बसन्तिदेव का नाम आता है जिसका समय राहुलने अभिलेख के आधार पर ८५०-७० ई० ठहरायाहै। (राहुल, कुमाऊँ ५८-५६)

यदि एक राजा का काल केवल १० वर्ष भी लें तो भी

डोटी परम्परा का आरम्भ २१० वर्ष और असकोट परम्परा का ३२० वर्ष पूर्व मानना पड़ेगा। इनसे पहले गढ़वाल का कत्यूरी नरेश पद्मट हो चुका था। अन्तु शकर के समय गढ़वालमें कत्यूरी शासकों का होना अधिक सम्भव प्रतीत होता है।

५६—गोपेश्वर—

चमोली से ३ मील दूर पर केदारनाथ के मार्ग में गोपेश्वर का प्राचीन ऐतिहासिक स्थान है। यहाँ का प्राचीन शिवमन्दिर केदारनाथ को छोड़कर गढ़वाल और कुमाऊँ का सबसे प्राचीन और विशाल मन्दिर है। इस शिव मन्दिर के सामने उसी प्रकार का १६ फीट ऊँचा विशाल लौह त्रिशूल है. जिस प्रकार का बाड़ाहाट (उत्तरकाशी) में विश्वनाथ मन्दिर के आँगन में है। गोपेश्वर के इस त्रिशूल पर जिस नरेश का अभिलेख है, उसका नाम फूरर ने अनेकमल्ल, एटकिनसन ने अशोकमल्ल और राहुलने अशोकचल्ल पढ़ा है। फूरर का कहना है कि एक अन्य शिलालेख से पता चलता है कि अनेकमल्लने शाके १११२ (सन् ११६१ सं० १२४-) में एक राज प्रासाद बनवाया था। कुमाऊँ के योगेश्वर मन्दिर मे किसी राजा की एक विशाल मूर्ति पीतल की बनी है। स्थानीय परम्परा के अनुसार यह मूर्ति अनेकमल्ल की है। (फूरर, मौन्मेंटल ऐंटिक्विटीज, भाग २, पृष्ठ ४५)

अशोकचल्ल (अनेकमल्ल) अपने गोपेश्वर अभिलेख में कहता है—ओं स्वस्ति, जिसकी प्रतापाग्नि ने उसके शत्रुओं के खड्गों को भस्म कर दिया, जिसके (पदों) की नखमणियां शत्रु राजाओं की वधुओं के ललाट सिन्दूर से रञ्जित हैं, जो अपनी कीर्ति के गांभीर्य और विस्तार में सागर-सा है, जिसके पादुका-पीठ के रत्नों की प्रभा शत्रु-मित्र-राजगण की भास्वर शिरोमणियों के किरणजाल से चारों ओर उद्भासित है, जो नृपगजों का

मिह वैताल के (राजा) विक्रमादित्य की भांति दानव भूतलका राजा है, जो नारायण की भांति सर्पराज, गरुड़-वाहन तथा शयनिमग्न है, उसी गौड़वंशोद्भव वैराथ-कुल-तिलक, अभिनवबोधिसत्वावतार अवनिपतितिलक परम भट्टारक महाराजाधिराज अशोकमल्लने अपनी सर्वगामिनी वाहिनी से केदारभूमि को जीता, जीते भूभाग को अपना प्रदेश बना, युद्ध से निवृत्त हो उस पृथ्वी पतिने यहाँ पद्मपाद राजायतन बना स्वभोग्य सर्ववस्तु से अलंकृत कर दान और भोज दिये। शक सम्वत् ११११ (११-९१ ई०) सौर-मानतः ००० गत दिनांक गणपति १२, शुक्रवासर नवमी चन्द्र ००० चन्द्र लिखित मल्लश्रीराजमल्ल, श्री ईश्वरीदेव, पण्डित श्रीरञ्जनदेव, और श्री चन्द्रोदय सेनापति सेनानायक के साथ। (राहुल, गढ़वाल, १११-१२)

गोपेश्वर के विशाल लोह त्रिशूल पर द्वाराहाट वाले छंदों में अशोकचल्ल का निम्न लेख भी है—

यशस्वी महाराजा अनेकमल्लने अपने दिग्विजय का विस्तार कर महादेव के इस पुण्यस्थान पर स्तम्भ-लाछन के नीचे स्वविक्रमजित जगत् के प्रभुओं का सम्मेलन किया······और इस प्रकार इस विजयस्तम्भ को पुनः स्थापित कर कीर्ति प्राप्त की। (राहुल द्वारा गढ़वाल, पृ० ११० में एटकिनसन, हिमालयन डिस्ट्रिकटस, खण्ड २, पृ० ५१५ में दिये डा० मिलके अनुवाद से उद्धृत)

२७—पाण्डुकेश्वर के ताम्र-पत्र—

विष्णु प्रयाग से बदरीनाथ जाने वाले मार्ग में पांडुकेश्वर के दो प्राचीन मन्दिर हैं जो एक सहस्र वर्ष से अधिक पुराने प्रतीत होते हैं। यहाँ कत्यूरी-नरेश ललितशूर के दो, पद्मटका एक और सुभिक्षराज का एक, कुल ४ ताम्रपत्र थे। इन ताम्रपत्रों

को मन्दिरके पुजारी, पण्डे यात्रियों को पाण्डवों की पाटी कहकर दिखलाते थे। कोई इनकी लिपि से परिचित न थे। अंग्रेजी शासनकाल में इनमें से तीनको संभालकर जोशीमठमें बदरीनाथ के कार्यालय में सुरक्षित रखा गया है। किन्तु एक ताम्रपत्र दुर्भाग्य से लुप्त होगया है। गढ़वाल के इतिहास के लिये ये ताम्रपत्र अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। यदि ये ताम्रपत्र न मिलते तो गढ़वाल में कत्यूरियों के शासन, बदरीनाथ की उनके राज्यकाल में पूजा, तपोवन में ब्रह्मचारी आसन, आदि अनेक महत्वपूर्ण वार्ता तथा अनेक स्थानों और जातियों के प्राचीन नामों का कुछ भी पता न चलता। इन ताम्रपत्रों से यह भी पता चलता है कि सहस्र वर्ष पूर्व भी गढ़वाल में विद्वान ब्राह्मण रहते थे।

२८— ललितशूर का ताम्रलेख—

१—स्वस्ति (१) श्रीमत्कार्तिकेयपुरात् सकलामरदिति-तनुजमनुज-विभुभक्तिभावभरभारानमितोत्तमाङ्ग सङ्गि विकट-मुकुट-किरीट विटङ्क-कोटि-कोटिशोऽनेक ना (२) ना नायक-प्रदीपद्दीपदाधितिपानमद-रक्तचरणकमलामल-विपुल-बहल-निरण केसरसारसरिताशेष-विशेषमोपि घनतमस्तेजसस् स्वधुनीधौत-जटाजू (३) टस्य भगवतो धूर्ज्जटेः प्रसादान् निजभुजोपार्जि-तोर्जितत्रय-निर्जित रिपु तिमिर-लब्धोदयप्रकाश-दया-दाक्षिण्यसत्य-सत्त्व-शीलशौचशौर्यौदार्य-गाम्भीर्य मर्यादार्य वृत्ता चर्य (४) कार्यवर्यादि-गुण-गणालङ्कृत शरीरः महासुकृतिसन्तानबीजावतार: कृतयुगागम-भूपाल ललितकीर्तिः नन्दाभगवतीचरण-कमलकमला-सनाथमूर्तिः श्रीनिम्बरस् तस्य तनय (५) स् तत्पादानुध्यातो राज्ञीमहादेवी श्री नाथू देवी तस्यान् उपन्नः परममाहेश्वरः परमब्रह्मण्यः शितकृपाणधारोत्कृत्तमत्तेभकुम्भा-कृष्टोत्कटमुक्तावली-यशःपताका (६) च्छायचन्द्रिकापदवितारागणः परमभट्टारक-

महाराजाधिराजपरमेश्वरश्रीमद् इष्टगणदेवस् तस्य पुत्रस्तत्पादानु-ध्यातो राज्ञी महादेवी श्रीवेगदेवी तस्याम् उत्पन्नः परममा (७) हेश्वरः परमब्रह्मण्यः कलिकलंक-पंकातंक-मग्नधरण्युद्धार-धारित-धौरेय-वरवराहचरितः सहजमतिविभवविभूति-स्थगितारातिचक्र-प्रतापदहनः (,) अति वैभवसंभारारम्भ-सं (८) भृतभीमभ्रृ-कुटि-त्रुटिलवे सरिसटाभीतारातीभकलभभरः अरणारुण-कृपाण-धाण-गुण-प्राणगण-हठाकृष्टोत्कृष्टसलील-जयलक्ष्मी-प्रथम-समालि-गनापलो (९) कनयलक्ष्य-सस्वेद-सुरसुन्दरीविधूलव रन्सलद्दलय-कुसुम-प्रकरप्रकीर्णावतंस-सम्बर्द्धितकीर्तिबीज पृथुरिव दो दण्ड-साधित-धनुर्मण्डलवलावष्टम्भयश (१०)-वशीकृत-गोपालनानि-स्थलीकृताधराधरेन्द्रः परमभट्टारक-महाराजाधिराजपरमेश्वर-श्री-मल्-ललितशूरदेव (:, कुशली......(।)......अस्मिन्नेव श्रीमत्कार्तिकेयपुर-विषये समु (११) पागतान् सर्व्वानेव नियोग-स्थान्राज-राजानक-राजपुत्रा-सृष्ट(राजा)मात्य-सामन्त-महासामन्त-ठक्कुर-महामनुष्य-महाकर्त्ताकृतिक-महाप्रतीहार-महादण्डनायक-महाराजा-प्रमातार-श (१२) रभङ्ग-कुमारामात्यो-परिक-दुस्साध्य-साधनिक-दशापराधिक-चौरोद्धरणिक-शौल्किक-गौल्मिक-तदायु-क्तक-विनियुक्तक-पट्टाकोपचारिका-शोधभङ्गाधिकृत-हस्त्य-श्वो-ष्ट्र (१३) बल व्यापृतक-दूतप्रेषणिक-दण्डिक-दण्डपाशिक-गमागमि-शार्ङ्गिक-अभित्वरमाणक-राजस्थानीय-विषयपति-भोगपति-नरपत्य-श्वपति-खण्डरक्ष्य-प्रतिशूरि (१४) कस्थानाधिकृत-वर्त्मपाल-कोट्ट-पाल-घट्टपाल-क्षेत्रपाल-प्रान्तपाल-किशोर-वडवा-गो-महिष्यधिकृत-भट्ट-महत्तम-भीर-वणिक्-श्रेष्ठिपुरोगान् अष्टादशप्रकृ (१५) त्यधि-ष्ठानीयान् खश-किरात-द्रविड़-कलिंग-गौड़-हूणो-ड्र-मेदा-न्ध्र-चांडा-लपर्यन्तान् सर्वसम्वासान् समस्तजनपदान् भट-चट-सेवकादीन् अन्यांश्च कीर्तितान् अकीर्तितान् अस्म (१६) त्पादपद्मोपजी-

विनः प्रतिवासिनश्च ब्राह्मणोत्तरान् यथार्हं मानयति बोधयति समाज्ञापयति ('—) अस्तु वस् संविदितम् उपरिनिर्दिष्ट-विषये गोरुन्नासायां प्रतिबद्ध-खपियाक-परिभुज्यमानपल्लिका तथा पणि-भूतिकायां प्रतिबद्ध गुग्गुल-परिभुज्यमान-पल्लिकाद्वयं एते मया मातापित्रोरात्मनश्च पुण्ययशोभिवृद्धये पवनविघट्टित (१८) श्वत्थपत्रचञ्चलत्-तरङ्ग-जीवलोकमवलोक्य जलबुद्बुदाकारमसारं चायुर् दृष्ट्वा गजकलभकर्णाग्रचपलतांश्चालक्ष्य इहपरलोकनिः श्रेयसार्थंसंसारार्णवोत्तरणार्थञ्च (१९) पुण्येहनि उत्तरायणसङ्क्रान्तौ गंधपुष्पधूपदीपोपलेपननैवेद्यबलिचरुनृत्यगेयवाद्यसत्त्रादि-प्रवर्तनाय खण्ड-स्फुटित-संस्करणाय अभिनवकर्म्मकरणा (२०) य च भृत्य-पदमूलभरणाय च गोरुन्नासायां महादेवी श्रीसामदेव्या स्वयं कारापितभगवते श्रीनारायणभट्टारकाय शासनदानेन प्रतिपादिताः प्रकृतिपरिहारयुक्ता. (२१) प्रचाटभटाप्रवेश्या अकिञ्चित्प्रग्राह्या. अनाच्छेद्या आचन्द्रार्क्कक्षितिस्थितिसमकालिक विषयाद् उद्धृत-पिण्डास्थसीमागोचरपर्यन्तस् सवृक्षारामो द्रदप्रस्रवनोपे (२२) त देवब्राह्मणभुक्तभुज्यमानवर्जित यतस् सुखं पारंपर्येण परि-भुञ्जतश् चास्योपरिनिर्दिष्टैर् अन्यतरैर् वा धरणविधारण-परि-पन्थनादिकोपद्रवो मनागपि न कर्त्त (२३) व्यो नान्यथा द्रुहतो महान् द्रोहस् स्याद् (।) इति प्रवर्द्धमान-विजयराज्य-सम्वत्सर एकविंशतिमे २१ माघवदि (।) दूतकोत्र महादानाक्षपटलाधिकृत श्रीपीजक। लि (२४) खितमिदं महासन्धिविग्रहाक्षपटलाधिकृत श्रीमद् आर्यटवतुना (।) टंकोत्कीर्णा श्रीगङ्गभद्रेण।

बहुभिर् वसुधा भुक्ता राजभि. सगरादिभिः (।)
यस्य यस्य यदा भुमिस् त (२५) स्य तस्य तदा फलं।

सर्व्वान् एतान् भाविनः पार्थिवेन्द्रान् भूयो भूयो याचते रामभद्र (।)
सामन्योऽयं धर्म्मसेतुर् नृपाणां काले पालनीयो भवद्भिः (।।)

स्वदत्ताम् परदत्ताम् वा यो ह (२६) रेत वसुन्धरां।
षष्टिम्वर्षसहस्राणि श्वविष्ट्या जायते कृमि (॥)
भूमेर् दाना याति लोके सुराणां हंसैर् युक्तं यानम् आरुह्य दिव्यं(।)
लोहे कुम्भे तैलपूर्णे सुतप्ते भूमेर् (२७) हर्त्ता पच्यते कालदूतैः (॥)
षष्टिम्वर्षसहस्राणि स्वर्गे तिष्ठति भूमिदः (।)
आच्छेत्ता चानुमन्ता च तान्येव नरक वसेत्।
ग्राम एकाम् च सुवर्णञ्च भूमेर् अप्येकमंगुलम (।)
हरंा नर(२८)कम् आयाति यावद् आहूतिसंप्लवं।
यानीह दत्तानि पुरा नरेन्द्रैर् दानानि धर्म्मार्थ-यशस्कराणि (।)
निर्माल्यवान्तप्रतिमानि तानिको नाम साधुः पुनराददीत।
अस्मत्कुल(२६)क्रमभिदं समुदाहरद्भिर् अन्यैश्च दानमइदम् अभ्यनु-मोदनीयम् (।) लक्ष्म्यास् तडित्-सलिल बुद्बुदचञ्चल या दानं फलं परयशः परिपालनञ्च। इति कमल-दलोद (१०) बिन्दु-लोल-मिदम अनुचिन्त्य मनुष्यजीवितञ्च। सकलम् इदम् उदाहृतञ्च बुद्ध्या नहि पुरुषैः परकीर्तयो विलोप्याः।

(राजमुद्रामें नन्दी के साथ लेख है—)
श्रीनिम्बरन् तत्पादानुध्यातः
श्रीमदइष्टगणदेव. तत्पादानुध्या (त.)
श्रीमल्ललितशूरदेव. क्षितोशः।

अभिलेख का अर्थ है—

(स्वस्ति) श्रीमत् कार्तिकेयपुरसे...भगवान् धूर्जटिकी कृपासे निजभुजा द्वारा उपार्जित ..नन्दा भगवती के चरणकमल के कमल की शोभा से सनाथ मूर्ति श्रीनिंबर (थे), उनके तनय ······रानी वेगदेवी से उत्पन्न परममाहेश्वर (परमशैव) परम-ब्रह्मण्य (परमब्राह्मणभक्त) परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर (महाप्रभु) श्रीमान् इष्टगणदेव (थे)। जिनके पुत्र रानी कहादेवी

वेगदेवी से उत्पन्न परममाहेश्वर (परमशैव) परमब्रह्मण्य······ पृथुसमान ·····परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर श्रीमान् ललितशूरदेव कुशलपूर्वक (हैं और वह) इसी श्रीमत् कार्तिकेयपुरके बीच आये सभी आज्ञानुवर्त्तियों—राजा, राजानक, राजपुत्र, आमात्य, राजामात्यसामन्त, महासामन्त, ठक्कुर, महामनुष्य, महाकर्त्ता, कृतिक, महाप्रतीहार, महादण्डनायक, महाराजप्रमातार, शरभंग, कुमारामात्य, उपरिक, दुस्साध्यसाधनिक, दशापराधिकचौरोद्धरणिक, शौल्किक, गौल्मिक, तदायुक्तक, विनियुक्तक, पट्टकापचारिक, अशेषभंगाधिकृत, हस्ति-अश्व-उष्ट्र-सेना-व्यापृतक, दूतप्रेषणिक, दण्डिक-दण्डपाशिक, गमागमी, शङ्खिक, अभित्वरमाणक, राजस्थानीय, विषयपति, भोगपति, नरपति, अश्वपति, खंड (वन)-रक्ष, प्रतिशूरिक-स्थानाधिकृत, वर्त्मपाल, कोट्टपाल, घट्टपाल, क्षेत्रपाल, प्रान्तपाल, किशोर-वडवा-अधिकारी, गाय-भैंस-अधिकारी, भट्ट, महत्तम, आभीर, वणिक्, श्रेष्ठी आदि प्रजाओंके अठारह अधिष्ठाताओंको, खश, किरात, द्रविड, ओड्र (ओडिया), मेद, आंध्र चंडाल तक सभी संवासोंको, समस्त जनपदोंको, भट, चट, सेवक आदि उक्त-अनुक्त हमारे चरणकमलको दूसरे आश्रितों को, प्रतिवासी ब्राह्मणों आदिको यथायोग्य मानते संबोधित करते आज्ञा देते हैं- "तुमको ज्ञात हो, कि उपरोक्त (कार्तिकेयपुर) विषय (जिले) में गोरुन्नासासे संबंधित, खसियों द्वारा उपभोग की जाती पल्लिका (गाँव) तथा पणिभूतिकासे संबंधित गुग्गुलों द्वारा उपभोग की जाती दो—पल्लिकाओं—इन (तीनों) को मैंने माता-पिता तथा अपने पुण्य और यशकी वृद्धिके लिए संसारको पीपलके पत्तेके समान चलायमान देखकर, और संसार-समुद्रसे उतरनेके लिए पुण्यदिन उत्तरायण (मकर) संक्रान्तिको गंध, पुष्प, धूप, दीप, उपलेपन नैवेद्य, बलि, च[illegible]

नृत्य, गीत, वाद्य, सत्र आदिके चलाने के लिए टूटे-फूटेकीमरम्मत तथा नई इमारतके बनानेके लिए और भृत्योंको चरणाश्रितों पोसने के लिए गोऌन्नासामें महादेव श्रीसामदेवी द्वारा बनवाये श्रीनारायण के लिये भगवान-(इस ताम्र-) शासन द्वारा प्रदान किया। उक्त संपत्तिपर) न प्रजाका अधिकार न प्रचाट-भट (सिपाही-सैनिक)के प्रवेश योग्य, न कुछ भी लेने योग्य, न छीनने योग्य है (।) . . . प्रवर्धमान विजयराज्य संवत्सर २१ माघवदि ३ (।) यहां (इस ताम्र-पत्रके लिए राजा द्वारा प्रेषित) दूतक महादान (दानविभाग)के अक्षपटल-अधिकारी श्रीपीजक (हैं।) इस (ताम्रशासन) को लिखा संधिविग्रह (विदेशमंत्री) के अक्षपटल (अभिलेखविभाग)के अधिकारी श्रीमान आर्यटपतुने (और) खोदा श्रीगंगभद्रने . . "

(इस ताम्रशासनकी गोल तथा नंदी-लांछित मुद्राकी तीन तीन पंक्तियोंमें लिखा है—

"श्रीनिवर, उनके पदानुचर
श्रीमान् इष्टगणदेव, उनके पदानुचर
श्रीमान् ललितशूर देव चतीश।"

२ ललितशूरका ताम्रलेख (२)

स्वस्ति श्रीमत्कार्त्तिकेयपुरात् सकलामर-दिति-मनुज-तनुज विभुभक्ति-भावभरोन्नमितोत्तमाङ्ग-रागि-विघट-मुकुट-किरीटविटंक कोटिकोटिशोऽनेकनानानायक-प्रदीपद्वीप दीधिति-पानमदरक्त-चरण-कमलामल-विपुलबहलकिरण-केशरासारसरित्ताशेष-विशेष-मोपि-घनतमस्तेजसस्स्वधुनीधौत-जटाजूटस्य भगवतो धूर्जटेःप्रसादात् निजभुजोपार्जितोजित्यनिर्जित-रिपु-तिमिर-लब्धोदय-प्रकाश-दयादाक्षिण्यादिशीलशौच-शौर्या-दार्य-गाम्भीर्य-मर्यादार्यवृत्ताचर्यः कार्यचर्यादिगुण-गणलङ्कृतशरीरः महासुकृति-सन्तान-बीजावतारः

कृतयुगागम-भूपाललसित-कीर्तिःनंदा-भगवतीचरण-कमलकमला-
सनाथमूर्तिः श्रीनिम्बरस्, तस्य तनयस् तत्पादानुध्यातो राज्ञी
श्रीमहादेवी श्रीनाशूदेवी तस्याम उत्पन्नः परममाहेश्वरः परमब्रह्मण्यः
शितकृपाणधारोत्क्-त्तोत्खात-मत्तेभ-कुम्भाकृष्टोत्कृष्ट मुक्तावली-
यशःपताकाच्छाय-चन्द्रिका-पहसित तारागणः परम-भट्टारक-
महाराजाधिराजपरमेश्वर-श्रीमद्इष्टगणदेव,स् तस्य पुत्रस् तत्पा-
दानुध्यातो राज्ञी श्रीमहादेवी श्रीवेगदेवी तस्याम् उत्पन्नः परम-
माहेश्वरः परमब्रह्मण्यः कलिकलंक-पंकातंक-धरण्युद्धारधारित-धौरे-
य-वर-बराहचरित महजमति-विभवविभुविभूति-स्थगितारातिचक्र-
प्रताप-दहनः अतिवैभव-सम्भारारम्भ-सभृत-भीम-भृकुटि- कुटिल-
केसर-सटा-भीत-भीताराति कलभभरः अरुणा-रुणकृपाण-बाणगुण-
गण – गण – हठाद् – आकृष्टोत्कृष्ट – सलील – जलक्ष्मीप्रथम –
समालिंगनावलोकन-वलक्ष-सखेद-सुरसुन्दरी-विधूत-करस्खलद् -
प्रलय-कुसुम-प्रकर-प्रकीर्णावतंस-संवर्द्धित कीर्त्तिबीजः पृथुरिव
दोर्दण्ड-माथित-धनु-र्मण्डलावष्टम्भवश-वशीकृत-गोपालना-निश्च -
लो-कृतधराधरेन्द्र: परम-भट्टारक-महाराजाधिराज-परमेश्वर-श्रीमल्
ललितशूर-देवः कुशलीश्रीमत्कोर्त्तिपुर-विषये समुपागतान् सर्वान्
[illegible]नियोगस्थान्राज-राजन्यकराजपुत्र-राजामात्यसामन्त-महासामन्त-
ठक्कुर-महामनुष्य-महाकर्त्ता-कृतिक-महाप्रतीहार-महादण्डनायक -
महाराजप्रमातार-शरभंग-कुमारामात्य- [illegible]परिक-दुःसाध्यसाधनिकः
दशापराधिक-चौरोद्धरणिक-शौल्किक-गौल्मिक-तदायुक्तक-विनि-
युक्तक-पट्टकापचारिक-सेधभंगाधिकृत-हस्त्यश्वो-ष्ट्र-बलाधिकृत-
[illegible]प्रेषणिक-दाण्डिक-दण्डपाशिक,गमागमिक-शाङ्गिका-भित्वर-
[illegible]गक-राजस्थानीय-विषयपति-भोगपति-नरपत्य-श्वपति-खण्डरक्ष-
[illegible]तिशूरिकस्थानाधिकृत-वर्त्मपाल-कोट्टपाल-घट्टपालःक्षेत्रपाल-प्रान्त-
[illegible] किशोर-व-डवा-गो-महिष्यधिकृत-भट्ट-महत्तम-भीर-वणिक्-

श्रेष्ठि पुरोगान माष्टादश-प्रकृत्यधिष्ठानीयान् उम-विरात-द्रवि र्लगोड-गौड-उग्रो-ड्-द्रमिडा-मेदा न्ध्र-चाण्डाल-पर्यन्तान स संगा न समस्तजनपदान् भट-चाट-सेवकादीन् अन्यॉं कीर्त्तितान् अकीर्तितान् अस्मत्पादकपद्मोपजीविनः प्रतिवासिन ज्ञानगोत्तरा यथाह मानयति बोधयति समाज्ञापयति(—)अ व संविदितं नपरि-निर्दिष्ट-विषये पलसारि-प्रतिबद्ध देन्द्रस परिभु यमानस्थानं मया मातापित्रोरात्मनश्च पुण्ययशोभिवृद्ध पवन-विनर्तिताश्वत्थपत्र-चंचलतरंग-जीव-लोकम् असारं च दृष्ट् गजकलभकर्णाग्रचपलतां च लक्ष्या ज्ञात्वा परलोकि-श्रेयसो संसारार्णवतारणार्थ पुण्येऽहनि विषुवत्संक्रान्तौ गन्धपुष्प-धूपो बलि-चरु-नृत्य-गीत-गेय-वाद्य-सत्रादि-प्रवर्तनाय खण्डस्फुटित संस्करणाय च गरुडाश्रमे भट्टश्रीपुरुषेण प्रतिष्ठापितः भगवत श्रीनारायणभट्टार-कस्य शासनदानेन प्रतिपादितं प्रकृतिपरिहा युक्तम् अचाट-भट -प्रवेशम् अकिञ्चित्प्रग्राह्यम् अनाच्छेद्य आचन्द्रार्क क्षिति-स्थितिसमकालिकविषयाद् उद्धृत-पिण्डं स्वसीम गोचरपर्यन्तं सवृक्षारामोद्भेद-प्रस्रवणोपेतं देव-ब्राह्मण-भुक्त-भु मान-वर्जितं यतः सुख पारंपर्येण परिभुंजतश्चास्योपरिनिर्दिष्टै अन्यतरैर्वा धरण-विधारण-परिपन्थनादिरुपद्रवो मनागपि कर्त्तव्यो न्यथा-ब्रह्महानौ महान् द्रोह स्याद् इति निवेश (?) तस्य देवस्य बदरिकाश्रमीय-तपोवन-प्रतिबद्ध ब्रह्मचारिणा यत्किञ्चित्प्रा तत् कर्त्तव्यं तत्सर्वं ब्रह्मचारिभिः करणीयम् । प्रवर्द्धमान-विजय राज्य-संवत्सरे द्वाविंशतितमे सम्वत् २२,कार्त्तिक सुदी १५। दूतकोत्र महादानाक्ष-पटलाधिकृत श्रीबीजक-महासन्धिविग्रहाक्षपटलाधिकृत श्रीमदार्य्यट-वचनात टंकोत्कीर्णा श्रीगंगभद्रेण।

बहुभिर्वसुधा भुक्ता राजभिः सगरादिभिः।

यस्य यस्य यदा भूमि तस्य तदा फलम् ॥
स्वदत्तां परदत्तां वा यो हरेच्च वसुन्धरान् ।
षष्टिवर्षसहस्राणि श्वविष्टा जायते कृमिः ॥
षष्ठिवर्षसहस्राणि स्वर्गं तिष्ठति भूमिदः ॥
आच्छेता चानुमन्ता च तानेव नरके वसेत्
गामेकां च सुवर्णञ्च भूमेरप्येकमंगुलम् ।
हर्त्ता नरकमाप्नोति- यावदाहूति-संप्लवं ।
इति कमल-दलांबु विन्दुलोलां श्रियमनुचिन्त्य मनुष्यजीवितं च ।
सकलमिदमुदाहृतञ्च बुद्ध्वा नहि पुरुषैः परकीर्त्तयो विलोप्याः ॥

(३) भूदेवका शिलालेख (बागेश्वर)

ललितशूरके पुत्र भूदेवने अपने सिंहासनारोहणके चौथे वर्षके दानका बागेश्वरके मंदिरमें एक शिलालेख लगवाया था, जो कितने ही साल हुए, गुम हो गया। अट्किन्सनने उसका जो अंग्रेजी अनुवाद अपने ग्रंथमें में छापा है, उसका भाषांतर निम्न प्रकार है—

"नमः स्वस्ति। इस सुंदर मंदिरके दक्षिण-भागमें विद्वद्-रचित राजवंशावली उत्कीर्ण है

"जन्तुजालध्वंसक रम्य ग्राममें पशुपतिदलके निनूनतुति नामक द्वारपर अवस्थित पराग्व को नमस्कार।

"परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर मसंतन देव नामक राजा हुए। उनकी पतिपरायणा पत्नी रानी स यनरा देवी से उत्पन्न पुत्र परमसम्मानित श्रद्धाभाजन अति-विभव-संपन्न परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर श्रीमान्.... हुए। परमेश्वर (शिव) के पूजार्थ अनवरत वृत्ति-प्रदाता, जयकूलभुक्ति-की ओर जानेवाले कई सा-जनिक मार्गोंके निर्माता, श्रंघलि-पालिग्रामे व्याघ्रेश्वर देवके पूजार्थ गंध-पुष्प-धूप-दीप-अनुलेपन-द्रव्योंके दाता और युद्धोंमें वावा थ। उन्होंने अपने पित्र

(वसंतनदेव) द्वारा वैष्णवोंको प्रदत्त शरखेश्वर ग्राम और पुष्पां द्रव्य उन्हीं देव (व्याघ्रेश्वर) को प्रदान किया, (तथा) सार्वजनि मार्गोंके किनारे गृह (पांथशालाएँ) बनवाये। उनकी कीर्ति याव चंद्र-दिवाकर अचल रहेगी।

"उनके पुत्र परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्व खर्परदेव हुए। उनके पुत्र उनकी पतिपरायणा पत्नी... से उत्प वित्त-विद्या-मान-समन्वित तत्पादानुध्यात परमभट्टारकमहाराज धिराज परमेश्वर श्रीमान् अधिवज्ञ हुए। उनके पुत्र उनकी पतिप्रिय रानी लद्धादेवीसे उत्पन्न धर्म-धन-मान-बुद्धि-सम्पन्न त्रिभुवनरा देव हुए। उन्होंने उन देव (व्याघ्रेश्वर) को जयकुल-भुक्तिक गाँव में दो द्रोण या नय नामक उर्वरक्षेत्र प्रदान किया, तथ उन्हीं देव (व्याघ्रेश्वर)-की पूजाके लिये उसमें गंधादि द्रव्यों उत्पादन करनेकी आज्ञा दी। यह भी विदित हो, कि उ (त्रिभुवनराज) के परममित्र किरात-पुत्रने उक्त देव तथा गंधिय पिंड देवताके लिये ढाई द्रोण भूमि दान दी। अधिधजके दूस पुत्रने भरके देवताको एक द्रोण भूमि दी तथा दो .... (द्रोण भूमिके दानका संवत् ११में शिलालेख करवाया। उसने व्याघ्रेश्व देवको एक द्रोण और चंडालमुंडा देवको १२.... (खंड भूमि प्रदान की और व्याघ्रेश्वर देवके सम्मानमें एक प्या स्थापित किया। यह सब भूमिखंड व्याघ्रेश्वर देवकी पूजाके लि दान किये गये।

दूसरे भी दाक्षिण्य-सत्य-सत्त्व-शील-शौच-शौर्य औदार्य-गाम्भीर्य-मर्यादा-आर्य-वृत्त-आदि-गुणगणालंकृत, सुदर्शननन्दन अमरावति-नाथ-चरणकमल-पूजार्थधृत-शरीर ि-वर्त नामक राज हुए, जो अपने अनेक स्वच्छ सुन्दर बृहद् रत्नों कृष्णसर्प क्रीडित-उज्ज्वल-केसरपुष्पोंद्वारा अन्य-भास्वर-द्रव्य-निष्प्रभकारकगंगा-परिद्

जलसे उज्ज्वल जटा-युक्त-शिर वाले कोटिवरद धूर्जटिके प्रसादसे स्ववरद्धृत-धनुषके बल द्वारा सदा (रणमें) विजेता गौराङ्ग, सुवर्णवर्ण सकल-स्वशत्रु-गण-पराजेता, सर्व-सुरासुरनर-बुधजन-पूजामें सदा बद्धादर और विनम्र थे। यज्ञानुष्ठानोंसे उद्भूत उनका यश सर्वत्र गाया जाता था।

"तिन (निवर्त) के पुत्र उनकी पतिपरायणा अग्र-महिषी नाशूदेवी से उत्पन्न तत्पादानुध्यात परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर श्रीमान् ...... इष्टगण देव हुए। तिनके पुत्र पतिव्रता स्वपत्नी धरा (वेग) देवी में उत्पन्न तत्पादानुध्यात परम-भट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर श्रीमान् ललितशूरदेव हुए। तिनके पुत्र पतिभक्ता स्वपत्नी लयादेवीसे उत्पन्न परमभट्टारक परमेश्वर श्रीमान् भूदेवदेव हैं। वह परम ब्राह्मण भक्त, (श्रमण)—शत्रु, सत्यप्रिय, सुन्दर, विद्वान, सदा धर्मानुष्ठानतत्पर हैं। उनके पास कलि नहीं फटक सकता। वह सुवर्ण- वर्ण तथा उनके नेत्र नील-सरोज सम सुन्दर तथा चपल हैं। उनके सुवर्णवर्ण- चरणों में प्रणत राजसमूह के मुकुटोंकी मणियों के शब्दों से बहुदा उनके श्रवण पीड़ित रहते हैं। उनके महान् शासने अंधकार को ध्वस्त कर दिया। उन्होंने अपने कृपापात्र अनुचरों को वृत्ति प्रदान की।...

(४) पद्मटदेव ताम्रलेख (पांडुकेश्वर)

स्वस्तिश्रीमत्कार्तिकेयपुरात् समस्तसुरासुर-मुकुट-कोटि-सन्निविष्टविकट-माणिक्य-किरण-विच्छुरित-नखमयूखोत्खाततिमिर-पटलप्रभाव-दर्शिताशयशमशक्तिमहीयसो भगवतश्चन्द्रशेखरस्य चरणकमल-रजःपवित्रीकृत-निज-निजतनुभुजार्जि – तोर्जिता – नेकरिपुचक्र-प्रतिष्ठित-प्रताप-भास्वर-भासित-भुवनाभोग-विभव-पावक-शिखावली-विलीन-सकल-कलिकलंक-समुद्भूतोदार-यशोदात्त-

देहः शक्तित्रय-प्रभाव-संवृंहितहितहेतिर् दानदमसत्यशौर्यशौटीर्य धैर्यक्षमाद्यपरिमित-गुणगुणाकलित-सगर-दिलीप-मान्धातृ-धुन्धुमार-भगीरथ प्रभृति कृतयुग-भूपाल-चरितमार्गस् त्रैलोक्यानन्द-जननो नन्दादेवी-चरणकमलक्ष्मीतः समधिगताभिमतवरप्रसाद-द्योतित-निखिल-भुवनादित्यः श्रीसलोणादित्यः तस्य पुत्रस् तत्पादानुध्यातोराज्ञीमहादेवी सिंघवली देवी तस्यामुत्पन्नः परमब्रह्मण्यो परमभट्टारक-महाराजाधिराज-परमेश्वर-श्रीमदिच्छटदेव तस्यपुत्रस् तत्पादानुध्यातोराज्ञी महादेवी श्रीसिन्धुदेवी तस्यामुत्पन्न परम-माहेश्वर.परमब्रह्मण्यो दीनानाथकृपणातुर-शरणागतवत्सलः प्राच्योदीच्य-प्रतीच्यदाक्षिणात्य-द्विजवर-मुख्यानाम् अनवरत-हेमदान-(स्रुता)-हितकरः समस्तारातिचक्रप्रमर्दनः कलिकलुषमातंगसूदनः कृतयुगधर्मावतारः परमभट्टारक-महाराजाधिराज परमेश्वर-श्रीदेशटदेवः तस्य पुत्रस् तत्पादानुध्यातो राज्ञी महादेवी श्रीपद्मल्लदेवी तस्यामुत्पन्नः परममाहेश्वरः परमब्रह्मण्यः परमभट्टारक-महाराजाधिराज-परमेश्वर-श्रीमत्पद्मटदेवः कुशली (।) टंवणपुर विषये समुपागतान् 'सर्वानेव नियोगस्थान् राज -- राजन्यक -- राजपुत्र-राजामात्य-सामन्त -- महासामन्त-महाकर्ता -- कृतिक-महादण्डनायक-महा प्रतिहार-महासामन्ताधिपति-महाराजप्रमातार-शरभंग-कुमारामात्य-उपरिक-दु साध्यसाधनिक-दोषापराधिक-चौरोद्धरणिक -- शौल्किक-गौल्मिक-तदायुक्तक-विनियुक्तक-पट्टकापचारिक-सौधर्भ-गाधि-कृत-हस्त्य-श्व-उष्ट्र-बलव्यापृतक-दूतप्रेषणिक - दाण्डिक-दण्डपाशिक-विषयव्यापृतक-गमागमिक-खाड्गिक-त्वरमाणक-राजस्थानीय-विषयपति-भोगपति - खण्ड - पति- नरपत्य -- श्वपति -- खण्डरक्षास्थानाधिकृत -- वर्त्मपाल -- कोट्टपाल-घट्टपाल-क्षेत्रपाल-प्रान्तपाल ठक्कुर -- महामनुष्य -- किशोर-वडवा-गो-महिष्य-धिकृत-भट्ट-महत्तम-आभीर-वणिक्-श्रेष्ठि

पुरोगान् अष्टादशप्रत्यधिकृतानीयान् खश-किरात-द्रविड़-कलिंग-गौड़—हूणान्यभेदान् आचाण्डाल-पर्यन्तान् सर्वसमावासान् समस्त-जनपदान् भटचाटसेवकादीन् अन्यांश्च कीर्तितान् अकीर्तितान् अस्मत्पादोपजीविनः पल्लिवासिनश्च ब्राह्मणोत्तरान् यथार्हम्मानयति बोधयति समाज्ञापयति(–)अस्तु: वः संविदितम् उपरिसंसूचित-विषयप्रतिबद्ध दीर्घादित्य-बुद्धाचलयिदादित्यगुणादित्यानां परि-भुज्यमाना पल्लिका च नन्न (?) तथा तस्मिन्नेव द्रुमत्यां पंगरस्य पंचदशभागश् तथा योशि प्रतिबद्धं ओगलावृत्तिर् अपरर्भूमिकर्मान्त-स्थलिवास्मिन्नेव योशि-प्रतिबद्धा गंगापश्चिम-कूलसंक्रमसंनिकृष्टा खण्डुपरिउलिका परिछिन्नापरं च तस्मिन्नेव द्रुमत्या काकस्थली ग्रामे पारेवतवृक्षतलिमभागे भूमिः तदीय-देशाचारमानेन द्रोणिकवाधा एतद्द्रोणद्वयवापा भूर्नन्दकेन मूल्येन गृहीत्वा बदरिकाश्रम-भट्टारकाय प्रतिपादिता (।) मया च सर्वा एता पल्लि पल्लिकावृत्तिकर्मान्तादिभूमि-सहिता उत्तरायण-संक्रान्तौ मातापित्रोरात्मनश्च पुण्ययशोभिवृद्धये पवनविघटिता-श्वत्थ-पत्र चंचलतरंगजीवलोकम् अवलोक्य जलबुद्बुदाकारम् असारं चायुर् दृष्ट्वा गजक-लभकर्णाग्रचंचलताञ्च लक्ष्म्या ज्ञात्वा परलोक-निःश्रेयसोर्थं संसारार्णवतारणार्थं च 'बलि-सत्र-नैवेद्य-प्रदीप-गन्ध-धूप-पुष्प-गेय-वाद्य—नृत्यपूजाप्रवर्तनाय खण्ड—स्फुटितपुनःसंस्काराय च भगवते व दरिका-श्रमाय प्रतिपादिता पुण्यपट्टनिवेशं कृत्वा प्रकृति-परिहारयुक्तं अचाटभटप्रवेश्यं अकिंचित्प्रग्राह्यं अनाछेद्यं आचन्द्रार्कक्षितिस्थिति-समकालिका विषयाद्, नद्धृतपिण्डाश्च आसीमागोचरपर्यन्तां सवृक्षारामो-द्भिद्-प्रस्रवणोपेतं राजभोग्य-सकल-प्रत्यय-समेतं देवब्राह्मण-भुक्तभुज्यमान-वर्जितं(।)यतः सुखंपरिभुंजतोपरिनिर्दिष्टैरस्मदैः

करणीयः अतोन्यथास्य व्यतिक्रमे महान् द्रोहः स्याद् (।) इति प्रवर्द्धमान-विजय राज्य-संवत्सरे पंचविंशतितमे संवत् २५ माघ वदि १३ दूतकोत्र महादानाक्षपटलाधिकृत श्रीभट्ट धनः लिखितमिदं महासंधिविग्रहाक्षपटला-धिकृतश्रीनारायणदत्तेनोत्कीर्णमिदं श्रीनन्दभट्टेण (।)

> भो राजानः प्रार्थयत्येष रामो भूयोभूयः प्रार्थनीयानरेन्द्राः(।)
> सामान्योयं धर्मसेतुर् नृपाणां कालेर पालनीयो भवद्भिः ॥

५—सुभिक्षराज ताम्रलेख (पांडुकेश्वर)

स्वस्तिश्रीमत्सुभिक्षपुरात् समस्तसुरासुर-पति-मुकुट-कोटि-सन्निविष्ट-विकट-माणिक्यकिरण-विच्छुरित-चरणनखमयूखोत्खात-तिमिरपटलप्रभावातिशय-शम-शक्ति-महीयसो-भगवतश्चन्द्र-शेखरस्य चरणकमलरजः पवित्रीकृतनिजतनुर् निज-भुजार्जितो-र्जितानेकरिपु-चक्रप्रतिष्ठित-प्रताप-भास्कर-भासित-भुवनाभोग-पावक-शिखावलीन-सकलकलिकलंक-समुद्भूतोदारतपोवदातदेहः शक्तित्रयप्रभाव-संवर्द्धित-हितहेविदान-दम-सत्य-शौर्य-शौटीर्य-धैर्य-क्षमाद्यपरिमित-गुणगणालंकृत-सगर-दिलीप-मान्धातृ-धुन्धुमार-भरत-भगीरथ-दशरथ-प्रभृतिकृतयुग-भूपालचरित्र — सागरस् — त्रैलोक्यानन्द जननीनन्ददेवी-चरणकमल-लक्ष्मीतः, समधिगता भिमतवर प्रसादेर्यं-तितनिखिलभुवनादित्यः श्रीसलोणादित्यःतस्य पुत्रः तत्पादानुध्यातो राज्ञी महादेवी श्रीसिंहवली देवी तस्यामुत्पन्न. परममाहेश्वर-परमब्रह्मण्यः परमभट्टारक-महाराजाधिराज-परमेश्वर श्रीमद् इच्छटदेवस् तस्य पुत्रस् तत्पादानुध्यातः (,) राज्ञी महादेव श्रीसिन्धुदेवी तस्याम् उत्पन्न परममाहेश्वरः परमब्रह्मण्यो दीनानाथकृपणातुर-शरणागतवत्सलः प्राच्योदीच्य-दाक्षिणात्य-द्विजवरमुख्यानाम् अनवरत-हेम-दानामृता र्द्रित) करः समस्तारावि-चक्र-प्रमर्दनः कलिकलुष-मातंगसूदनः,

कृतयुग-धर्मावतारः परमभट्टारक-महाराजाधिराज-परमेश्वर श्रीमद् देशट देवस् तस्य पुत्रस् तत्पादानुध्यातो राज्ञी महादेवी श्रीपद्मल्लदेवी तस्याम् उत्पन्नः परममाहेश्वरः परमब्रह्मण्यः स्वयमुत्खात-भास्वद्दीप्ति-प्रभा-वितान-सबलीकृत-बाहुबलविवर्ज्जिता-शेष-दिग्देशागत-प्रगामोपनीत-करितुरंग-विभूषणानवरत-प्रदान-तिरस्कृताशेष-बलि-वैकर्तन-दधीचि-चन्द्रगुप्त-चरितश् चतुरुदधि-परिखा-पर्यन्तमेखलादाम्नः क्षितेर् भर्ता परमभट्टारक-महाराजाधिराज-परमेश्वर श्रीपद्मट देवस् तस्य पुत्रस् तत्पादानुध्यातो राज्ञी महादेवी श्रीमद्-दिशाल देवी तस्याम् उत्पन्नः परम-वैष्णवः परमब्रह्मण्यः संविदित-शास्त्रप्रतिपालकः दूरापसारित-कलि-तिमिर-निकर-हेला-कलित-मुकल-कलापालंकृत-शरीरः भुवन-विख्यात-दुर्मदाराति-सीमन्तिनी-वैधव्यदीक्षा-दानदक्षैक-गुरुः प्रतिपक्षलक्ष्मी-हठ-हरणागणित-प्रचण्डदोर्दण्ड-दर्पप्रसरःपरम-भट्टारक-महाराजाधिराज-परमेश्वर श्रीमत् सुभिक्षराज(देवः)कुशली टंकणपुर-विषये अन्तरांगविषये च समुपागतान् सर्वानेव नियोगस्थान् राज-राजन्यक-राजपुत्र-राजामात्य-महासामन्त-महाकर्त्ता-कृतिक-महा-दण्डनायक-महाप्रतिहार - महासामन्ताधिपति-महाराजप्रमातार - शरभंग-कुमारामात्य- पेरिक-दुःसाध्यसाधनिक-दोषापराधिक-चौरोद्धरणिक-शौल्किक-गौल्मिक-तदायुक्तक-विनियुक्तक-पट्टका-पचारिक-सौधभंगाधिकृत-हस्त्यश्वो-ष्ट्रबलव्यापृतक-दूतप्रेषणिक-दाण्डिक-दण्डपाशिक-गमागमिक-खाड्गिका-भित्वरमाणक-राजस्था-नीय-विषयपति-भोगपति-काण्डपति-नर-पत्यश्वपति-खण्डरक्षास्था-नधिकृत-वर्त्मपाल-कोट्टपाल-घट्टपाल-क्षेत्रपाल-प्रान्तपाल-ठक्कुर-महामनुष्य-किशोर-वडवा-गो-महिष्याधिकृत- भट्ट-महत्तमा-भीर-वणिक्-श्रेष्ठि पुरोगान्साष्टादशप्रकृत्यधिष्ठानीयान् खस-किरात-द्रविड-कलिङ्ग-गौड-हूणोड्र-द्रमिड-नध्र-मेदानाचाण्डाल-पर्यन्तान् सर्वसंवा-

सान् समस्तजनपदान् भटचाट-सेवकादीन् अन्यांश्च कीर्तितान-कीर्तितान् अस्मत्पादपद्मोपजीविनः प्रतिवासिनश्च ब्राह्मणोत्तरान् यथार्हं मानयति बोधयति समाज्ञापयति (—) अस्तु वः संविदितम् उपरिसंसूचितवैषयिक-नम्बरम् -ग्राम-प्रतिबद्ध वच्छरक-सत्कविद्धिमलाक नामा भू: परणां नालिकानां वापा तथा भेटसायां भूखंडम् अष्टनालिका-वापः तथा वाडियालिके भूखण्डं चतुर्णां द्रोणानां वापः तथा भागरुस्सकवनोलयाभिधाना भूखण्डं त्रयनालिकावापं तथा सुभद्रकसत्का शरणखोन रामद्धितं कण्डया ।-परिच्छिन्नं तथा पत्तराम्भुतिरोड सत्कः ठिवनामा भूमि द्वय-द्रोण-वापं तथा गोवितंगक सत्कयच्छसुद्धाभिधान-भूमि त्रयद्रोण-वापः तथा वेनवाक-सत्क क्षीरानावा-भिधान भूखंड त्रय-द्रोणवापं तथा शौयिजीवाक-सत्क गंगरकनामा भूमि अष्टद्रोणवापा तथा च जीवाकसीमादित्य-इच्छवलान्ता-सत्क पेङ्कनामा भूमि त्रयद्रोण-वापा तथा ?ट नामा भूमि द्वय-द्रोणवापा नाम्भरंगीय समस्त जनपदानां सत्क न्यायपट्टक नामा भूमि दश-द्रोण-वापा तथा पंक इस्तमेकं तथा इन्द्रावल-विद्लक-महेजयाक-प्रथ ।दित्यानां सत्क वडियलाभिधाना भूमि षड्द्रोणवापा शिलादित्य-सत्क खोर खोट्टक नामा भूमि षण्णां वापः तथा श्रीहर्षपुर कर्मान्त-प्रतिबद्ध पूर्व पत्रमारक- गर-परिभुज्यमान पल्लिका (।) एतदुभयः पल्लिका च श्रीहर्षपुरीय श्रीदुर्गाभट्ट-विषया तथा वरोविका-ग्राम संबंधना उष्णोदक-विउन्नट-दुज्जणातंग-विषयतङ्ग-चाचटक-पराह-सिट्टक-मदका नगाभिधान भूखण्ड नवद्रोणवापं तथा सत्तक पुराण. नपीणां सत्का नव भूखण्ड-चतुष्टयं खारिवापं तथा जाति-पाटकनामा भूङ्ज्जार समद्धितं तथा समिर्जीयं भूखण्डद्वयं नव-द्रोण वापं तथा मवच्युराणां सत्क पैरी-ग्राम प्रतिबद्ध गोदोधका-भिधाना भूमिर् विशद्द्रोणवापा तथा यो (?) यिक ग्रामनिवा-

सिनां सत्क ग्रसेरुका नाम भूमिद्रयद्रोणवापा तथा सिहारा नाम भूमि द्रोण-वापं तथा वलीवर्दगिला नाम भू त्रयद्रोणवापं तथा इहृंनामा भू पंचद्रोणवापं तिरंगानामाभूः त्रय-द्रोण-वापं तथा कट्टणशिल्ल नामा भू त्रयद्रोण वापं तथा गान्दोडारिक नामा भ त्रयद्रोणवापं तथा युग नामा भूः द्रोणवापं ककठयारा नामा भूः त्रयद्रोणवापं तथा पंकरहस्ते द्वय तथा धारणाक-सत्क दाली-मूलक नामा भू द्वय-द्रोणवापं तथा शिखन-सत्क ग्रामिद रिके भू-खण्ड द्वयद्रोणवापं तथा इन्छवर्दन शिलादित्ययोस् सत्क सृष्ट-धीमा नाम भू पंचद्रोणवापं तथा विषयिणानां सत्क कर्कण्ठक भू चतुर्णां द्रोणानां वापं तथा कटुस्थिवानां सत्क चिधाभारिका नाम भू त्रयद्रोणवापं तथा रडवक ग्रामिणानां सत्क अन्तकोरापिका नामा भू द्वादशद्रोणवापं तथा तुंगादित्य-सत्क लोहरममेग भू षण्णालि-कानां वापं तथा योपिक-कर्मान्त सम्बद्ध ग्रामपरक नामा भू पंच-दशद्रोणवापः मठिक-समन्विता एतद् भूमयो विष्णु-गंगा-सम्मे-लित-भगवते श्रीनारायण-भट्टारकाय तथा सदायिका-प्रतिबद्ध रखप-हिल्लकाभिधानस्य घाटानि लिख्यंते (—)श्रीसंकटमीमायां पश्चिमतः अण्डागिनि-गानिक पूर्वतः गंगागाम् उत्तरतः समेह्क ग्राम दक्षिणतस् तथा सेवायिकाया बचछक-सत्क ग्रहणकगाको सप्तनालिकावापा. भगवते ब्रह्मेश्वर-भट्टारकाय एता भूमय पल्लिके द्वे च मया माता-पित्रोरात्मनश्चपुण्ययशोभिवृद्धये पवन-विघट्टिता-श्वत्थपत्र चंचल-तरंग-जीवलोकम् अवलोक्य जल-बुद्बुदाकारम असारं चायुर दृष्ट्वा गजकलभकर्णाभचपलतां च लक्ष्म्या ज्ञात्वा परलोकनिःश्रयमोर्थं संसारार्णवतारणाय पुण्ये दनि भगवद्भ्यः श्रीदुर्गादेवी-श्रीनारायणभट्टारक-श्रीब्रह्मेश्वर- भट्टारकेभ्यः गन्ध-धूप-दीप-पुष्पोपलेपन-संमार्जन-गीत-वाद्य-नृत्य-बलिचरुस् तत्र प्रवर्तनार्थं खण्डस्फुटित-पुनःसंस्करणाय च प्रतिपादिताः प्रकृतिपरि-हार-युक्ता-चाट-भट्टप्रवेश्या अकिंचित्प्रग्राह्या अनाच्छेद्या आच-

न्द्रार्कक्षितिस्थिति-समकालिक-विषया उद्धृतपिण्ड-स्वसीमा-गोचर पर्यन्तं अवृक्षारामोद्भेद-अस्रवणोपेतं देवब्राह्मण-भुक्तभुज्यमान-वर्जितं यतः सुख पारम्पर्येण परिभुज्यमानानां स्वल्पमपि धरगा-विधारण-परिपन्थनादिकोपद्रवो न कैश्चित् करणीयो न्यथा व्यतिक्रमे महान् द्रोहःस्याद्(।)इति प्रवर्द्धमान-विजयराज्य-सम्वत्सरे चतुर्थसम्वत् ४ ज्येष्ठ वदि ५ (।) दूत क्षेम महादानाक्षपटलाधिकृत श्रीकमला .. लिखितमिदम् महासन्धिविग्रहाधिकृत श्री ईश्वरीदत्तेन(,) उत्कीर्णमिदञ्च श्रीनन्दभद्रेण।

बहुभिर्वसुधा भुक्ता राजभिः सगरादिभिः।
यस्य यस्य यदा भूमिस् तस्य तस्य तदा फलम्॥
षष्टि-वर्ष सहस्राणि स्वर्गे तिष्ठति भूमिदः।
आच्छेत्ता चानुमन्ता च तानेव नरकं वसेत्।
अनूदकेष्वरण्येषु शुष्ककोटरवासिन.।
कृष्णसर्पा विजायन्ते ब्रह्मदायं हरन्ति य।
भो राजान प्रार्थयत्येष रामो भूयो भूयोःप्रार्थनीया नरेन्द्राः
सामान्यो यं धर्मसेतुर नराणां काले-काले पालनीयो भवद्भि
इति कमलदलाम्बु-बिन्दुलोलां श्रियमनुचिन्त्य मनुष्य-जीवितञ्च। सकलमिदमुदाहृतञ्च बुद्ध्वा न हि पुरुषैः परकीर्तयो विलोप्याः।

पालों-कत्यूरियोंके अभिलेखों की तुलना

पालवंशी (१) देवपाल (८१५-५४) के मुंगेरवाले तथा (२) नारायणपाल ८५७-९११ ई०) के ताम्रलेखों की भाषा लिपि और पदाधिकारियों को ललितशूर (५) पद्मट और (६) सुभिक्ष राज के ताम्रलेखोंमे मिलाने पर जो समानता दीख पड़ती है, वह आकस्मिक नहीं हो सकती, विशेषकर जबकि वही समानता गुर्जर प्रतिहारोंके अभिलेखों में नहीं मिलती। (राहुल गढ़वाल पृष्ठ स० ८८) किन्तु इस समानताका कारण उत्तर भारत में प्रचलित सार्वभौम शैली का अपनाना होसकता है।

२३—नाला चट्टी—

नाला-चट्टी के आस पास दूर-दूर तक खेतों में फैले हुए मन्दिरों के खंडहर सिद्ध करतेहैं कि किसी समय यह ऐतिहासिक महत्व का स्थान रहा होगा। यहां कत्यूरी कालका का एक पुराना मन्दिर है और बहुत सी खंडहर-मूर्तियां हैं। कौने वाले छोटे मन्दिर के द्वार के ऊपर चार पंक्तियों का एक कत्यूरी कालीन शिला लेख है जो शाके ११६८ (१२४६ ई०) में लिखा गया था, और श्लोक बद्ध है। यही गढ़वाल कुमांऊ का एक मात्र बौद्ध स्तूप बतलाया जाता है, जो समाधि सा लगता है। मुझे यह स्तूप नहीं, बल्कि समाधि प्रतीत होता है।

२४—नारायणकोटि (भेत चट्टी)—

नाला चट्टी से आगे नारायणकोटि तक और उससे आगे कालीमठ तक सारी भूमि प्राचीन मन्दिरों, ध्वंसों और टूटी-फूटी मूर्त्तियों से भरी पड़ी है। अवश्य ही यह स्थान पहले बड़े ऐतिहासिक महत्व का था। इस संबंध में पहले कहा जा चुका है।

२५—कालीमठ—

लक्ष्मी मन्दिर के साथ एक लम्बा सा मंडप है, जिसकी बाहरी दीवार के सामने एक बड़ा शिलालेख है। लेख २० इंच लम्बा और १० इंच चौड़ा है। इसमें कुल १८ पंक्तियां हैं। लिपि कत्यूरी ताम्रलेखों की है, जो १० वीं व १२ वीं शताब्दियों के आस पास की हो सकती है। लेख से मालूम होता है कि गिरिपति मन्दिर के सोमा संरक्षक) कोई रुद्र नाम के सामन्त के पुत्र (रुद्रसेन) सर्व संग्रामाजित बालपन में ही हो गए थे। उन्होंने इस मन्दिर को बनवाया था। (राहुल, गढवाल, पृ०

९४०–४१) समयाभाव के कारण राहुल इस लेख को भली प्रकार न पढ़ सके। यहां अति सुन्दर हरगौरीकी मूर्ति है। उसका वर्णन आगे मूर्तियों के साथ दिया गया है।

३६—बाड़ाहाट (उत्तरकाशी)—

टेहरी से पैंतालीस मील दूर गंगोत्तरी के मार्ग पर बाड़ाहाट (३००० फीट) अत्यन्त प्राचीन स्थान है, जो केदार खण्ड ग्रन्थ में उत्तरकाशी कहा गया है। यहां के विश्वनाथ मन्दिर के आंगन में नीचे पीतल और ऊपर लोहे का विशाल त्रिशूल है जो २६ फीट ऊंचा है। नीचे ८ फुट ६ इंच मोटा और ऊपर १ फुट, १.५ इंच मोटा है जो संभवतः सारे गढ़वाल कुमाऊं में सबसे प्राचीन अभिलेख है।

यह लेख३ पंक्तियों में है। पहली पंक्ति में शार्दूल विक्रीडित छन्द का प्रयोग हुआ है और अक्षर कुछ छोटे हैं। दूसरी पंक्ति में भी छन्द वही है, पर अक्षर कुछ बड़े हैं। तीसरी पंक्ति में स्त्रग्धरा छंद है और अक्षर बहुत बड़े होगए हैं। पूरा लेख शुद्ध संस्कृत में है और अति सुन्दर है।

ओं। आसीद्य क्षितिपो गणेश्वर इति प्रख्यातकीर्त्तिर्नृ‌ृपः।
चक्रे येन भवस्य वेश्म हिमवच्छृंगोच्छ्रितं दीप्तिमत्
कृत्वा गुह्यनजाधिपस्वकृपणे. सामात्यमात्यश्रियं
स्मृत्वा शक्र सुहृत्त्वमुत्सुकमना.यात सुमेर्वालयं ॥१
पुत्रस्तस्य महाभुजोविपुलहृक् पीनोन्नतोरस्थल
रूपत्यागनयैरनंगधनद यासानतीत्योद्‌गत
नाम्ना श्रीगुह इत्युदारचरित सद्धर्मधुयस्सतां
शक्तिं शत्रुमनोरथप्रमथनीं शम्भो.र्घयरामत. ॥२
प्रातः प्रातर्म्मयूखैरुरुभिरविरलं शार्वरं ध्वान्तमन्ध
न्नातुंचरचारुताराविकरपरिकरोदारशारोदरत्व',

स्वं बिम्बं चित्रबिम्बाम्बरतलतिलकं यावदर्कोविधत्ते,
तावत्कीर्ति:सुकीतश्चिरमरिमथनस्यास्तु-रात:थिरेयं।ठा।।३

अनुवाद—प्रज्ञानुरागी गणेश्वर नामक राजा हिमालयके शिखरके समान उच्च और दीप्तिमान शिखर वाला श्री विश्वनाथका मन्दिर बनवाकर, मंत्रियों सहित अपनी राज्यलक्ष्मी को अगु समझकर और उसे प्रियजनोंको सौंपकर इन्द्रकी मित्रताकी स्मृतिमें उत्सुक हो, सुमेरु मन्दिर (स्वर्ग या कैलास) को चलागया । १ ।

उसके पश्चात उसके पुत्र श्री गुहने, जो अत्यन्त बलशाली विशाल नेत्र और दृढ़ वक्षस्थल वाला था, जो सौन्दर्य में मन्मथ से दान में कुबेर से, नीति या शास्त्रों में वेदव्यास से श्रेष्ठ था, जो धार्मिकों का अगुवा और बड़ा उदार था, जिसे देखते ही शत्रु भागजाते थे, जो प्रतापी और गुणी था, उसने भगवान के सामने इस शक्ति-स्तंभ की स्थापना की । । २ ।

जब तक भगवान सूर्य प्रातःकाल अपनी तरुण किरणों से रात्रि के अन्धकार को दूर करके, नक्षत्रों की चित्रावली को मिटाकर गगन पटल में अपना बिम्ब रुपी तिलक लगाते रहें तब तक प्रतापी राजा गुहकी यह कीर्ति सुरक्षित रहे । । ३ ।

राहुलका अनुमान है कि इस त्रिशूल की लिपि ईसाकी छटी सातवीं शताब्दीकी है, इसी लिपिमें गोपेश्वर के त्रिशूल के डंडेका लेख भी है । (राहुल, गढ़वाल, पृ० ३४७–४८)

त्रिशूलके बनाने वालेका नाम श्री गुह,इसके पिता का नाम गणेश्वर शुद्ध माहेश्वर नाम है । इसलिये त्रिशूल निर्माण करने का गौरव किसी भोटनरेश को नहीं दिया जा सकता और न उस समय यहां किसी भोट राजा की राजधानी मानी जा सकती है । इस त्रिशूल का उपरोक्त लेख उस लिपि में है, जो मौखरि

हरिवर्मा के हड्डावाले लेख में प्रयुक्त है जो छटी शताब्दी ईसवी का माना जाता है।त्रिशूलमें दो स्थानों पर शंखलिपि मेंभी कुछ लिखा है जो अभी तक नहीं पढ़ा गया है। इस त्रिशूल पर अशोक चल्ल(अनेक मल्ल)का लेखभी है जो पूरा नहीं पढ़ा गया।

११ वीं शताब्दी में बाड़ा हाटका संबंध भोट से रहा हो, ऐसा मानने का प्रमाण भी वहीं बाड़ा-हाटमें मिल जाता है।

३७:—नागराजमुनिकी बुद्ध-मूर्तिका लेख

परशुराम मन्दिर के दक्षिण की ओर दत्तात्रेय के मन्दिर में जिस मूर्तिको दत्तात्रेयकी मूर्ति कहते हैं, वह वास्तव में भोट के नागराजा द्वारा अर्पित बुद्ध मूर्ति है, जैसा कि उसके पादपीठमें सामने की ओर तिब्बती अक्षरों में लिखे इस लेखसे स्पष्ट है—ल्ह-च्वन्-न-ग-र-ज-इ-थुव-पा (देव भट्टारक-नागराजके मुनि)

यह मूर्ति ३० इंच(४५ अंगुल)ऊंची ठोस पीतल की है। आंखों की पुतलियों के स्थान पर सदा चमकने वाली रौप्य और होठों-पर ताम्र धातु लगी है। आसनपीठ १३ अंगुल ऊंचा है, अर्थात् आसन सहित सारी मूर्ति ५८ अंगुल या ३ फीट २ इंच ऊंची है। मूर्तिको घिस घिस कर साफ किया जाता है, इसलिए मुखको क्षति पहुँची है। चीवर उभयांश दोनों कन्धों को ढकने वाला है। मूर्तिके प्रभा मंडल के भागको सोना समझ कोई काट ले गया। उसे कटे हुए स्थान को देखकर लोगों ने कल्पना की कि पहले इसमें-दत्तात्रेय के तीन मुंड थे, जिनमें से दो को बौद्धों ने काट दिया। वाम पार्श्व का प्रभामंडल कन्धे से थोड़ा ऊपर तक बचा है, किन्तु नीचे बिलकुल समाप्त है।

राहुल का अनुमान है कि यह मूर्ति ९०० वर्ष से अधिक प्राचीन है। पश्चिमी तिब्बत-गूगे (शङ्-शुङ्) में १०३० ई०

(सं० १०=७ के आसपास) खोर-दे नामक राजा राज्य करते थे। उन्होंने ही थोलिङ्०-मठ-विहार को बनवाया था। तिब्बत में बौद्ध धर्म की उन्नति के लिए राजा खोर-दे ने लगभग २० तरुणों को संस्कृत पढ़ने के लिए काश्मीर भेजा था। उनमें से केवल दो जीवित लौटे। राज्य अपने भाई को देकर वह स्वयं अपने पुत्रों नागराज और देवराज के साथ भिक्षु हो गए। भिक्षु होने पर खोर-दे का नाम येशे-ओद-(ज्ञान-प्रभ ' पड़ा। ज्ञानप्रभ के पुत्र यही नागराज थे, जिन्होंने इस सुन्दर मूर्ति को बनवाया था। मूर्ति में नागराज को देव भट्टारक कहा गया है। जिससे पता चलता है कि नागराज का पश्चिमी तिब्बत पर राज था और अपने राज्यके इस स्थान पर उन्होंने १०२५ ई० सं० १०८२ के आसपास एक अच्छा बौद्ध-विहार बनवाया था। (राहुल, मेरी जीवन यात्रा,खंड २, पृ० ६५६-५७) उत्तरा खंड के मन्दिरों मे पुरातत्व और इतिहासकी सामग्री-३१

यदि राहुलका उपरोक्त अनुमान सत्य है तो संभव है कि टेहरी और गढ़वाल में प्रचलित नागराजाकी पूजा, कत्यूरी राजाओं की पूजा के सामन वीर-पूजा हो।

३८:—गंगोत्तरी—

यहां मन्दिर में एक ताम्र फलक पर भ्रष्ट संस्कृत में एक लेख है जो गोरखों के समय का बतलायाजाता है। किन्तु यहां प्राचीन ऐतिहासिक वस्तु केवल अमरसिंह थापाका एक लेख है जो पुराने पहाड़ी कागज पर लिखा गया है। इस लेख के अनुसार गोरखा-सेनाध्यक्ष, अमरसिंह थापाने मुकवा के पंडों को मुकवा से गंगोत्तरी तक का चीड़-देवदार-रांसलका अति सुन्दर वन मन्दिर के भोग-बत्ती पूजोपचार के लिए गूठ दिया था। पीछे यह वन पुजारियों से छीन लिया था। अमरसिंह

थापाने ही गंगोत्तरी का पिछला मन्दिर बनवाया था जो हिमानी टूटने से नष्ट हो गया। अमरसिंह थापाने मानमा गांव के *गंगाराम* के पुत्र कोदू केदारदत्त को *गंगोत्तरी* में पूजा का काम सौंपा था। उससे पहले धराली में गंगाजी की पूजा बुड़ेरे किरातों के हाथमें थी। केदारदत्त की अब ६ पीढ़ी हुई हैं। केदारदत्त-गौरीदत्त-देवदत्त-मोतीराम-हरिनन्द-तुलसीराम। गंगोत्तरी का नया मन्दिर जयपुर महाराजने बनवाया है।

३६:-देवलगढ़ मन्दिर-

गढ़वाल में श्रीनगरके पास देवलगढ़ मन्दिर में कुछ शिला लेख लगे हैं जिनके अनुसार सम्वत् १३११ (१२५६ई०) में अजयपाल के जन्म पर इस मन्दिरको भूमि दीगई थी। इसलिए घनिघंमके आधार पर एटकिनसनका यह कथन कि अजयपालका राज्यकाल + १३५८ ई० (सं० १४०५) था, असंभव है। (ओकले तथा गैरोला, हिमालयन फोक्लोर ६)

इसी मन्दिर के एक और शिलालेखके अनुसार मानशाहने सम्वत् १६६० (स। १६०८ ई०) में इस मन्दिर को भूमि प्रदान की थी। देव प्रयाग मन्दिर के शिलालेख में इसी राजा ने उस मन्दिर को संवत् १६६७ (सन् १६१० ई०) में भूमि दी थी। पौड़ी के निकट एक और मन्दिर के एक अन्य शिलालेखके अनुसार इसी मानशाह के प्रथम जन्म दिवस पर सम्वत् १६४६ के १७ गते माघ (सन् १५८२ ई०) को इस मन्दिर को (पिछले राजाने) भूमि प्रदान की थी। इसलिए एटकिंसनका यह कथन कि राजा मानशाह १५४७ ई० (सम्वत् १६०४) में हुआथा, असत्य है। (ओकले, तथा गैरोला, हिमालयन फोक्लोर, १०-११)

४०—देवप्रयाग

देवप्रयाग के एक मन्दिर में राजा मानशाह का सम्वत् १६६७ (सन् १६१०) का एक लेख मन्दिर को भूमिदान करनेके संबंधमें लगाहै। (ओकले, तथा गैरोला,हिमालयन फोकलोर १०)

रघुनाथ मन्दिर देवप्रयागके द्वार पर माधोसिंह भंडारी की पुत्र बधू मथुरा वैराणी के द्वारा अंकित कराया गया एक लेख है जो पृथ्वीशाह के राज्यकाल का है। (महीधर शर्मा गढ़वाल में कौन कहां ? १६)

पंवार वंशका ४२ वा राजा सहजपाल हुआ है जिसका नाम देवप्रयाग मे श्री रघुनाथजी के मन्दिर पर लगे एक घंटे पर खुदा हुआ है। कहा जाता है कि संवत् १६१८ (सन् १५६१) में राजा सहजपाल ने वह घंटा रघुनाथजी के मन्दिर को अर्पित किया था। (महीधर शर्मा, गढ़वाल में कौन कहाँ ? १५ राहुल गढ़वाल १३१)

आदि बदरी में गरुड़ की मूर्ति के नीचे, लाता की नन्दा के मन्दिर में, एक मूर्तिके नीचे तथा परसारी (जोशीमठके पास) के मन्दिर को द्वारशिला पर छोटे छोटे लेख है। गोरखों के शासन काल के अनेक ताम्र पत्र बहुत से मन्दिरों मे मिलते हैं। श्रीनगर मे कमलेश्वर मन्दिर के ताम्र पत्र उसी समय के हैं। गूंठ–भूमि प्रात करने के लिये जाली ताम्रपत्र भी यत्र-तत्र मिलते हैं।

उत्तराखंड के मन्दिरोंकी स्थापत्य-कला—

४१—कटे पाषाणों का प्रयोग—

उत्तराखड के जौनसार-बावर से लेकर नन्दादेवी तक ही नहीं सारे हिमालय प्रान्त में काश्मीर से लेकर नैपाल तक सर्वत्र प्राचीन मन्दिरों का निर्माण कटी और गढ़ी हुई पाषाण-शिलाओं से किया हुआ मिलता है। इनमें से अधिकांश मन्दिरों में नाना प्रकार के भूरे या मटमैले रंगकी बालुज शिलाओंका प्रयोग किया

गया है। कांगड़ा के वैजनाथ, वज्रेश्वरी, ज्वालामुखी आदि मन्दिरों और गढ़वाल के आदि बदरी के मन्दिर पुंजों में एक ही प्रकार की कटी शिलाओं का प्रयोग मिलता है। इनके अतिरिक्त कहीं-कहीं हरी झांई वाली शिलाओं को काट और गादकर भी मन्दिर बनाये मिलते हैं। मन्दाकिनी-उपत्यका में जो सैकड़ों मन्दिरों के अवशेष पग पग पर मिलते हैं, सब कटी शिलाओं से बने हैं। केदारनाथ का मन्दिर इस दृष्टि से अत्यन्त विस्मयजनक कौशल का द्योतक है। इस मन्दिर की शिलाऐं पांच मील से भी अधिक दूरीसे लाकर वहां पहुँचाई गई हैं। और इतनी भारी २ शिलाऐं इस मन्दिर की दीवारों पर बहुत ऊँचाई पर भी लगी मिलती हैं, कि इस बात का विश्वास होजाता है कि मन्दिरों के निर्माता विलक्षण शारीरिक शक्तिके अतिरिक्त केन-जैसे भार उठानेके किसी यंत्रसे भी सम्पन्न थे। यही बात श्रीनगरके केशव-राय के मन्दिर में भी देखी जाती है, जहा धरती से लगभग ३० फीट की ऊंचाई पर ६ फीट लम्बी, ३ फीट चौड़ी और २ फीट मोटी शिलाऐं लगी हैं। ये शिलाऐं भी ५-६ मील दूरसे यहां पहुँचाई गईथीं। चान्दपुर गढ़ीको एकही पाषाणसे बनी १५ फीट लम्बी ३ फीट चौड़ी, २ फीट मोटी सीढ़ियों को पांच-छै मील दूरसे लाकर ऊपर टीले पर स्थित दुर्गमें पहुँचाना साधारण केन से भी संभव नहीं होसकता। इसी दुर्ग में हरी झाई वाले पाषाण की विशाल कटी गढ़ी हुई शिलाऐं लगी हैं, जिनमें मनोहर चित्र-कारी की गई है।

४२:—मन्दिरोंमें चूने और लोहे का प्रयोग—

सभी प्राचीन मन्दिरों मे शिलाओं में छेद करके उन्हें लोहा की कीका-कीलोंके द्वारा इसप्रकार जोड़ा गया है कि बाहर से कुछ पता नहीं चलता कि शिलाऐं आपस में किस प्रकार जुड़ी

हैं। कोका-कीलोंके अतिरिक्त थोड़े से चूने का भी प्रयोग मिलता है जो अब लाल रंगका दिखाई देताहै। इस चूने को ऐसी सावधानी से लगाया गया है कि दीवार पर, बाहर दोनों ओर कहीं इसका कुछ पता नहीं चलता। यह चूना इतना उत्तम बनता था कि इसके द्वारा जोड़ी गई शिलाओं को एक दूसरे से छुड़ाने के लिये सब्बल का प्रयोग करना पड़ता है। और तब भी बड़ी कठिनाई से शिलाएँ एक दूसरे से पृथक की जा सकती हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि कटी शिलाएँ चिनाई से पहले रगड़कर समतल करली जाती थीं और दीवार बनजाने के पश्चात् उनकी दूसरी बार घुटाई होती थी जिससे शिलाखण्ड आपस में ऐसे जुड़ जाते थे कि आज भी अभिन्न लगते हैं।

४३—लकड़ी का प्रयोग नहीं—

इन प्राचीन मन्दिरों की एक बड़ी विशेषता यह है कि इनमें छत संभालने के लिये लकड़ी या लोहे की शहतीरों का प्रयोग नहीं मिलता है। बाहर के चौखट भी सब पाषाण के हैं। जिनमें या तो लकड़ी के किवाड़ हैं ही नहीं, और यदि हैं तो वे पीछे के लगे मिलते हैं। शिखर के नीचे किसी प्रकारकी लकड़ी या लोहे की शहतीरें नहीं लगी हैं, वरन् शिलाओं को ही इस प्रकार एक दूसरे के ऊपर रखा गया है कि उनके मध्य का वृत लघुतर होता हुआ अन्त में शिखरके नीचे चलकर इतना संकीर्ण होजाता है कि आमलक या वेष्ठिनीसे ढकजाता है।

४४—हिन्दू मन्दिरों के शिखरकी उत्पत्ति—

'गढ़वाल के मन्दिरोंमें से कुछ के शिखर इस प्रकार के हैं कि वैसे शिखर केदारखंड और कुमाऊ के अतिरिक्त अन्यत्र नहीं मिलते। अस्तु उनपर विचार करनेसे पूर्व हिन्दू मन्दिरोंके शिखर की उत्पत्ति और उनके प्रकार पर विचार कर लेना आवश्यक है।

आरम्भिक गुप्तकाल के हिन्दू मन्दिर जो सांची, भूमरा,

तिगोवा, दरा आदि स्थानों में मिले हैं, वे बिना शिखर के हैं। और उनकी छत का पटाव सपाट पत्थर रखकर कियाजाता था। ठीक इसी प्रकार का चपटी छतका मन्दिर जोशीमठसे सात मील दूर तपोवन में है। जो निस्सन्देह आरम्भिक गुप्तकाल का है।

मन्दिर के जिस भाग में प्रधान मूर्ति रहती है, उसे गर्भ गृह कहते हैं। आरम्भ में मन्दिरों का गर्भगृह एक भूमि (इक-मंजिला) होता था। आगे चलकर गर्भगृह की छतके ऊपर एक दो या तीन मंजिलों की कल्पना होने लगी, जैसा कि देवगढ़ के मन्दिर में दिखाई देताहै। ऐसा प्रतीत होता है कि इस प्रकार की कल्पना आरम्भ में शैव मन्दिरों से चली, जो अपने मन्दिरों में त्रिपुर दिखलाना चाहते थे। धीरे-धीरे कलाकारों ने इन भूमियों (मंजिलों को) परिष्कृत करके उन्हें शिखर का स्वरूप दे दिया। वराहमिहिरने मन्दिरों और प्रासादों के शिखर पर शृंग या अंड का उल्लेख किया है।

> त्रिशद्धस्तायामो दशभौमाः मन्दिरः शिखरयुक्तः।
> कैलासोपि शिखरवान् अष्टविंशोष्ट भौमश्च।
> शृङगेणैकेन भवेदकैव च भूमिका तस्य।
> (वाराही संहिता)

वराहमिहिर का समय गुप्तकाल है। बाणसे पहले ही गुप्त कालकी श्रीवृद्धिमें हिन्दू मन्दिर शिखरों से संयुक्त होने लगे थे। बाण ने भास संबंधी श्लोकमें श्लेष से देवकुल या मन्दिरों का उल्लेख कियाहै और उन्हें बहुभूमिक कई मंजिल वाला बतलाया है। गर्भगृहके ऊपर ये भूमिक ठोस दीवार न होकर खाली कमरों की भाँति होते थे। इन तक चढ़ा जा सकता था। गढ़वाल में दूधातोली वन में स्थित बिनसर मन्दिरोंमें न गर्भगृहसे शिखरकी पहली मंजिल में चढ़ने का मार्ग बना है। पहले यहां मन्दिरों के बाजे और अन्य सामग्री रखी जातीथीं, जैसा भरसारमें थलीसैण

जाते समय कपरौली के शिखर पर ८००० फीट पर स्थित घंडियाल देवता के सम्बन्ध में अब तक माना जाता है।

४५:-हिन्दू मन्दिरोंके तीन प्रकार के शिखर—

हिन्दू मन्दिरों के शिखरों के संबंधमें स्थापत्यकी पुस्तकोंमें तीन प्रकार के शिखरों का उल्लेख मिलता है।

१-नागर शिखर, जिनका प्रचार उत्तरी भारतसे हुआ।

२-वेसर-शिखर,जिनका प्रचार मध्य-भारतसे आरंभ हुआ।

३-द्राविड़ शिखर। जिनका प्रचार दक्षिण-भारतमें हुआ।

४६:-द्राविड़-शिखर-द्राविड़ शिखर वाले मन्दिर उत्तरभारत में बहुत ही कम मिलतेहैं। कल्याण तीर्थांकमें,जो संभवत: हिन्दू मन्दिरोंके चित्रोंका सबसे बड़ा संग्रह है, ४४१ मन्दिरों में से १४८ द्राविड़ शिखर शैली के हैं जो सबके सब दक्षिणमें हैं। द्राविड़-शैलीमें गर्भगृहको पिरामिडकी भांति धीरे-धीरे संकीर्ण करतेहुए ऊपर गठाकर शिर पर चारों ओर सुन्दर शृंगार रचा जाता है। द्राविड़ोंका सम्पर्क सुमेरियन, फौनेशियन, और मिश्री सभ्यता से निरन्तर होतारहाहै। अस्तु यदि द्राविड़ शिखरके विकासका आधार यह सम्पर्क होतो आश्चर्यकी बात नहीं। गढ़वालमें एक भी मन्दिर द्राविड़ शैलीका नहीं है और न किसी मन्दिर पर द्राविड़ शैली का कुछ महत्वपूर्ण प्रभाव मिलता है। यद्यपि आज बदरीनाथ-केदारनाथ दोनों के रावल दक्षिणीहैं, और अपनी लम्बी परम्परा बतलातेहैं और वे इन मन्दिरोंकी लाखों रुपयेकी आयको स्वेच्छा पूर्वक व्यय करनेके लिये सदा स्वच्छन्द रहेहैं। तथा कई बार इन मन्दिरोंका पुनर्निर्माण या मरम्मत होती रही है, फिर भी इन मन्दिरों पर किसी प्रकारको द्राविड़ शैलीका प्रभाव न मिलना सूचित करता है कि इन मन्दिरोंके रावलों को दक्षिण से आने की परम्परा इतनी प्राचीन नहीं है जितनी मानी जाती है। गोपाल रावलसे एक आध शताब्दी पूर्वमें ऐसी परम्परा चली आती हो,तो

असंभव नहीं। रावलोंका शंकरके समयसे चला आना और शंकर द्वारा इन मन्दिरों की स्थापना किया जाना नहीं माना जा सकता अवश्य ही ये तीर्थ शंकराचार्य के पहलेसे प्रचलित थे। केदारनाथ का वर्तमान मन्दिर भोजके द्वारा और बदरीनाथका वर्तमान मंदिर वल्लभाचार्य के सम्प्रदायके किसी साधुकी प्रेरणा से गढ़वाल नरेश द्वारा बनाया जाना सत्यके अधिक निकट प्रतीत होता है।

४७–नगर शिखर—

नगर या आर्य शिखर का निर्माण गर्भगृह की चपटी छत से आरम्भ होता है। चारों कोनोंसे दीवारें संकीर्ण होती हुई ऊपर जाकर एक बिंदुपर मिलजाती हैं। दीवारें गोलाकार होती हुई आगे बढ़तीहैं और आस्तिकोंके शिर परशिखाके समान एकग्रन्थि में समाप्त होती है। शिखर का अंतिम भाग कलस और निचला भाग आमलक कहलाता है। यह शैली सारे उत्तर भारतमें सर्वत्र प्रचलित हुई। इसका सबसे सुन्दर उदाहरण भुवनेश्वरमें लिंगराज मन्दिर पुंजहै, जिसके मन्दिर कैलासपर्वत या शिवलिंगका अनुकरण करते दिखाई देते हैं। ये इतने सुन्दर मन्दिर हैं कि संसार भरके पर्यटक इन्हें देखने आते हैं, और छककर देखने पर भी तृप्त नहीं होते।

उत्तर भारतके समस्त प्राचीन प्रधान मन्दिरोंमें नागरशैली के शिखर मिलते हैं। पुरीका जगन्नाथ मन्दिर, खजुराहोका पार्श्वनाथ मन्दिर, आदिनाथ मन्दिर, उदयपुर (ग्वालियर) का नील कंठेश्वर मन्दिर, चित्तौड़में मीराबाई का मन्दिर, वाराह मन्दिर सिद्धपुरमें रुद्रहिमालयका मन्दिर, जो सभवत भोजने बनायाथा बैजनाथ (कांगड़ा) का बैद्यनाथ मन्दिर, तथा गुजरातके अनेक मन्दिर इसी शैली के हैं। यंग हजबैंडकी प्रसिद्ध पुस्तक काश्मीर में काश्मीरके मार्तंड-मन्दिरोंके वंश का चित्र देखकर पता चलता है कि यह मन्दिर भी नागर शैली का था। काश्मीर से लेकर कुमांऊ, और नेपाल तक हिमालय की घाटियां, श्रेणी, नदियों के

संगमो, और भाबर प्रदेशोंमें इस शैलीके सहस्रों मन्दिरोंके ध्वंस और सैकड़ों प्रचलित मन्दिर आज भी मिलते हैं। लछमन झूला से लेकर काठगोदाम तक तो अनेक नागरशैलीके मन्दिर घोर वन प्रदेशों में भी मिलते हैं, जहा पहले लोग बसेथे, किन्तु जो स्थान ७-८ सौ वर्ष से उजाड़ होगये हैं।

४८—वेसर शिखर— वेसर शिखर पर द्राविड़ शिखर का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। वासुदेव उपाध्यायने वेसर शिखरकी उत्पत्ति आर्य (नागर) तथा द्राविड़ शिखरोंके मिश्रणसे मानीहै। (गुप्त साम्राज्य का इतिहास, भाग २, पृष्ठ २६८) गढ़वालमें वेसर शैली के शिखर नहीं मिलते।

४६—गढ़वालके मन्दिरोंके शिखर। गढ़वाल के मन्दिरोंमें निम्न प्रकारके शिखर पाये जातेहैं।

१—चपटी छतवाले प्राचीन मंदिर। ऐसा एकही मन्दिर मैंने देखाहै जो तपोवन में है। होसकता है उत्तराखण्डमें कहीं अन्यत्र भी ऐसा कोई मन्दिर हो। यह निश्चय ही उत्तराखण्डका प्राचीन तम मन्दिर है।

२—नागर शिखर वाले मन्दिर।

३—काशी-विश्वनाथ शिखर वाले मन्दिर, जिनके शिखर काशी में विश्वनाथजीके वर्तमान मन्दिरके शिखर जैसे हैं। कुछ लोग ऐसे मन्दिरों की शैलीको मुगलशैली कहते हैं। मुझे इसके लिए काशी विश्वनाथशिखर शैली नामक अधिक समीचीन लगता है। इनमें कुछपर तो आमलके ऊपर धातुके कलश भी मिलते हैं। कुछ पर नहीं मिलते।

४—कत्यूरी शिखर वाले मन्दिर, जिनपर काष्ठ वेष्टिनी या पाषाण (पटाल) वेष्टिनी मिलती है।

५—स्वेच्छा, शिखर वाले मन्दिर।

५०—केदारखंडमें नागर-शिखर शैलीके मन्दिर— निश्चय ही ये केदारखंडके अति प्राचीन मन्दिरहैं। ये सबके सब कटीहुई

शिलाओंके बने हैं और उत्तर गुप्तकालसे लेकर विक्रमकी बारहवीं शताब्दी तकके मिलते हैं। इनमें अधिकांश मन्दिर शिखर-सहित १०-१२ फीटसे अधिक ऊँचे नहीं हैं। कहीं कहीं इस शैलीके कई मन्दिर एक साथ मिलते हैं, जैसे आदि बदरी, बैजनाथ, और बागेश्वरमें। नागरशैलीके मन्दिर प्रायः उस निश्चित प्रणाली पर बने मिलते हैं, जिसका उल्लेख बराहमिहिरने किया है।

५१—मन्दिर निर्माण की शास्त्रीय विधि। देवमन्दिर में सदा चौसठ पदका वास्तु करना चाहिये। उस देवमन्दिरोंमें यदि मध्यम द्वार सम दिशामें स्थित होतो श्रेष्ठहै। देव मन्दिरका जितना विस्तार हो उससे दूनी उसकी ऊँचाई होतीहै। ऊँचाईके तिहाईके बराबर देवमन्दिरकी कटि होतीहै। सीढ़ी के ऊपर जहां देवगृह आरम्भ होताहै, उसको कटि कहते हैं। विस्तारसे आधा गर्भ होता है। शेष आधे विस्तार में चारों ओरकी भीत होती हैं। गर्भ की चौथाईके समान द्वारका विस्तार और द्वारके विस्तारसे दुगनी द्वार की ऊँचाई की चौथाईके बराबर शाखा (चौखटका बाजू और उदुम्बर (चौखटके ऊपरका काठ या शिला) की चौड़ाई होतीहै। शाखाकी चौड़ाई के चौथाईके तुल्य शाखाओंकी मुटाई होती है। शाखाकी चौड़ाईके बीचमें तीन, पाच, सात अथवा नौ, शाखा हों तो द्वार श्रेष्ठ होता है दोनों शाखाओंके नीचे चतुर्थांशमें देवताओंके दो प्रतिहारों की मूर्ति खोदनी चाहिये। शाखाओंके शेप तीन चौथाई के अंशोंको हमादि मगल दायक पक्षी, विल्व, स्वस्तिक, कलश मिथुन (स्त्री पुरुषका जोड़ा) पत्र और लतागणोंसे शोभित करना चाहिये। द्वारकी ऊँचाईके प्रमाणमें उसका अष्टमाश घटाकर जो बचे वह पिंडिका (देवता स्थापनका पीठ) सहित देव प्रतिमाको ऊँचाईका प्रमाण होताहै। उस पीठ सहित प्रतिमा की ऊँचाई को तीन भाग करके दो भागके बराबर ऊँची प्रतिमा और एक भागके समान ऊँची पीठिका (पीठ) बनानी चाहिये (बराहमिहिर बाराही संहिता, अध्याय, श्लोक १०–१६)

५२:—आदि बदरी के प्राचीन मन्दिर—

चौखुटिया, कर्णप्रयाग मार्ग पर कर्णप्रयाग से १४ मील पर आदि बदरी में १४ मन्दिरों का पुंज है, जो ८५ से ४२ फीट के क्षेत्र में बने हैं। सड़क के नीचे एक नया मन्दिर अब बनाया गया है। यहाँ पिंडार की एक सहायक नदी उत्तर-वाहिनी है। बदरीनाथ जाने के प्राचीन मार्ग में सब से पहले मिलने वाले बदरीनाथ का मन्दिर होने के कारण इसे आदि बदरी नाम दिया गया होगा। यहाँ के प्राचीन मन्दिरों में स्पष्टतः दो युग के मन्दिर हैं। जिनमें ७ अधिक प्राचीन हैं और शेष ७ उनसे कुछ कम प्राचीन हैं। नीचे मन्दिरों का संक्षिप्त वर्णन दिया जाता है। इनकी संख्या दाहिने हाथ के अन्तिम मन्दिर से आरम्भ की गई है।

१ :—दूसरा मन्दिर :—

नागर शैली का शिखर और पाषाण-निर्मित वर्तुलाकार आमलक, कटी-शिलाओं की दीवारें आकार १२×४॥×४॥ सीढ़ियों के ऊपर कटि, ऊपरले द्वार पट्ट पर मध्य में गणेश, दोनों पार्श्व में नीचे की ओर एक हाथ में कुंभ और दूसरे हाथ में कमल या अन्य वस्तु लिए गङ्गा और यमुना, दोनों की जूड़ा विभिन्न प्रकार की, निचली द्वार पट्टिका पर सिंह का मुख खोल-कर दान्त देखने वाला भरत।

२ :—चौथा मन्दिर :—

नागर शिखर और अमलक, कटी शिलाओं से निर्माण, खुला सभा-मण्डप बरामदा ६×६ खुले सभा मण्डप सहित मन्दिर १५×६×६ चढ़ने के लिए पाँच सीढ़ियाँ, शीर्ष द्वार पट्ट पर आरम्भ, मध्य और अन्त में आसन पर स्थित जप-मुद्रा में ३ पुरुष, पहले और दूसरे पुरुष के बीच में [illegible]

चित्रित बैठे हुए तीन पुरुष, दूसरे और तीसरे के बीच में उसी प्रकार बैठे हुए आसनस्थ दो पुरुष, तथा एक नारी का केवल शिर, तथा दोनों पार्श्व-पट्टों पर नृत्य करते, ढोल बजाते, दो गन्धर्व, उनके बीच दोनों ओर एक-एक द्वार रक्षक, निचले-द्वार पट्ट पर दोनों ओर ध्यानस्थित व्यक्ति के मध्य में दोनों ओर सर्वमय कीर्तिमुख (सिंहमुख) मन्दिर के अन्दर देवासन के निचले पट्ट पर ध्यानस्थित व्यक्ति का चित्र।

३:—पाँचवा मन्दिर :—

जो भूमिसात होने की तैयारी कर रहा है। नागर शिखर और आमलक, कटी शिलाओं से निर्मित, आकार १५×६×६। शीर्ष द्वार पर उपरोक्त चौथे मन्दिर के समान आसन हाथ में मुग्दर लिए तीन पुरुष, पहले और दूसरे के बीच पूर्ववत् आसनबद्ध पुरुष, दूसरे और तीसरे के बीच पूर्ववत २ पुरुष और एक नारी शिर दाँया पार्श्व-पट्ट लुप्त, नीचे द्वार पट्ट पर क्रमशः आसनबद्ध-पुरुष। मन्दिर में देवासन के निचले पट्ट पर ध्यानस्थित पुरुष। मन्दिर से बाहर जल निकालने के लिए कमण्डल-मुखी पतनोले।

४ :—छटा मन्दिर :—

नागर शिखर और आमलक, कटी शिलाओं द्वारा निर्मित, चढ़ने के लिए ५ सीढ़ी, खुला सभामण्डप ,बरामदा केवल २ फीट चौड़ा, आकार और द्वारपट्टिकाओं के चित्र उपरोक्त चौथे मन्दिर के समान, निचले द्वार पट्ट पर द्वारपाल और किन्नरी के स्थान पर एक ओर परिव्राजिका नारी। दूसरी ओर परिव्राजक पुरुष जिसके हाथ में कमण्डलु है। देवासन के नीचे हाथ जोड़े हुए गन्धर्व। देवासन पर अत्यन्त मनोहर हरगौरी मूर्ति, जिसमें ध्यान मग्न शिव गौरी के वर्तुलाकार स्तन को स्पर्श किए हैं,

गौरी का पतला नुकीला हनुकाला मुख और अर्द्ध निमीलित नेत्र। इस मूर्ति को निरन्तर देखते रहने पर भी तृप्ति नहीं होती, व्याघ्रमुख पतनाला, इसके नीचे ध्यानस्थ पुरुष।

५ :—सातवां मन्दिर :—

नागर-शिखर और आमलक, कटी शिलाओं से निर्मित, उपरोक्त चौथे मन्दिर के समान। शीर्ष द्वार पट्ट पर प्रथम और द्वितीय व्यक्तियों के तथा द्वितीय और तृतीय व्यक्तियों के मध्य नृत्य करती हुई चार-चार किन्नरियाँ। दायाँ-बायाँ पार्श्वपट्ट, उपरोक्त चौथे मन्दिर के समान। देवासन के नीचे ध्यानस्थ पुरुष।

६ :—बदरीनाथ-मन्दिर। प्रथम मन्दिर।

इसका सभामण्डप पीछे जोड़ा गया प्रतीत होता है। कटी शिलाओं से निर्मित, कला में उपरोक्त छोटे मन्दिरों से घटकर शीर्ष द्वार पट्ट पर वक्रतुंड गणेश, गर्भ मन्दिर के शीर्ष-द्वारपट्ट पर गणेश, पार्श्वपट्टोंपर पार्षद, परिव्राजिका नारी और परिव्राजक पुरुष। निचले द्वारपट्ट पर कीर्तिमुखादि। गर्भमन्दिर के-नूपुर को ऊपर उठाए हुए दो चतुर्मुख गन्धर्व। यह मन्दिर उपरोक्त अन्य छोटे मन्दिरों से कुछ अर्वाचीन है।

७ :—चौदहवां मन्दिर।

जिसका आमलक कभी का गिर चुका है। नागर शिखर, आमलक-रहित, कटे पाषाण-निर्मित, १२×६×१२ शीर्ष द्वारपट्ट पर गणेश, निचले द्वारपट्ट, पर दो नर्तकियाँ कीर्तिमुख, पुनः दो नर्तकिया और कीर्तिमुख, पुनः दो नर्तकियाँ।

५२ :—पूर्व गुप्तकाल का-भूमरा का शिव मन्दिर :—

पूर्वगुप्तकाल (३१६ ई०-५५० ई०) के भूमरा मन्दिर का वर्णन नीचे दिया जाता है जो उपरोक्त सात मन्दिरों, विशेषकर,

बदरीनाथ-मन्दिर छोड़कर शेष से अत्यधिक समानता रखता है। भूमरा का शिव मन्दिर नागौद राज्य में जब्बलपुर इटारसी लाइन पर स्थित है। १९२० ई० १९७७ वि० में पुरातत्ववेत्ता राखालदास वन्द्योपाध्याय ने इसका पता लगाया था। इसका केवल गर्भगृह वर्तमान है। द्वारस्तम्भ के दाहिने मकरवाहिनी गङ्गा और बाईं ओर कूर्मवाहिनी यमुना की मूर्ति है। दोनों प्रतिमाओं के समीप एक नारी और पुरुष परिचारकेरूप में बनाए गए हैं। गङ्गा और यमुना की मूर्ति के शिर पर गन्धर्व दिखाई देता है। दोनों चौखट समान रूप से अलंकृत हैं। इनके दाहिनी ओर आधे भाग में कमल-कलियाँ बनाई गई हैं। बाईं ओर (द्वार की तरफ) चार पुरुषों की आकृतियाँ दिखाई पड़ती हैं जो एक दूसरे के ऊपर खड़े हैं। सबसे, बाहिरी तरफ रेखागणित की विभिन्न आकृतियाँ बनाई गई हैं। ऊपरी चौखट भी उसी प्रकार अलंकृत है। प्रतिमा के लिए ताख बने हैं जिसके बीच में शिव की अर्द्ध-प्रतिमा वर्तमान है। इस मूर्ति के दोनों ओर मालाधारी गन्धर्वों की मूर्तियाँ खुदी हैं। मन्दिरों के प्रस्तरों पर तरह-तरह के बाये (भेरी झाल) लिए गण, कमल और कीर्तिमुख खुदे हैं। वासुदेव उपाध्याय, गुप्त साम्राज्य का इतिहास, भाग २ पृ० २६६)।

आदि बदरी के उपरोक्त सात मन्दिरों के द्वारपट्टों (चौखट) की रचना भूमरा के मन्दिर के पट्टों से बहुत अधिक मिलती जुलती है। किन्तु इन पर शिखर हैं और भूमरा का शिव मन्दिर शिखरहीन चपटी छत वाला है। शिखर-शैली का आरम्भ देवगढ़ के मन्दिर से हुआ जो परवर्ती गुप्तयुग (५५१ ई० से ६०५ ई० ६०८ वि० से ६६२ वि०) का माना जाता है। आदिबदरी के प्राचीन मन्दिर अधिक विकसित नहीं हैं और भूमरा से समानता रखते हैं, अस्तु वे ५५१ ई० (६०८ वि०) के आस पास के हो सकते हैं।

५४ :—आदिबदरी के शेष सात मन्दिर।

इनकी और पूर्वोक्त ७ मन्दिरों की रचना में यह अन्तर है कि इन पर द्वारपट्ट चित्रित नहीं हैं। आगे के बरामदे अधिक चौड़े हैं शेष बातें समान हैं। अस्तु ये अधिक से अधिक पीछे ६०५ ई० (६६२ वि०) के आसपास के हो सकते हैं। परवर्ती गुप्तकाल के मन्दिरों के जो चिह्न नीचे गिनाए गए हैं, उनमें से अधिकांश इनमें मिलते हैं।

५५ :—गुप्तयुग के मन्दिरों की शैली।

१—गुप्तयुग में पहली बार हिन्दू मन्दिरों के लिए पत्थर का प्रयोग किया गया। गुप्तकाल के मन्दिर पत्थर के मन्दिरों के सब से प्राचीनतम उदाहरण हैं। (मजूमदार, आल्टेकर, वाकाटक-गुप्त एज, पृ० ४१६)

२—गुप्त मन्दिरों की स्थापना एक ऊंचे चबूतरे पर होती थी। उन पर चढ़ने के लिए चारों ओर सीढ़ियाँ बनी होती थीं। (वासुदेव उपाध्याय, गुप्त साम्राज्य का इतिहास भाग २, पृ० २६५, मजुमदार उपरोक्त, पृ० ४१६)।

३—प्रारम्भिक मन्दिरों की छतें चपटी होती थीं किन्तु पीछे के मन्दिरों के शिखर बनने लगे। (कनिंघम, आर्केलोजिक सर्वे रिपोर्टस्—खंड १०, पृ० ६०)

४—मन्दिर की बाहिरी दीवारें सादी होती थीं। (वासुदेव उपाध्याय उपरोक्त) और भीतरी दीवारें भी सादी होती थीं। (मजूमदार आल्टेकर उपरोक्त)।

५—गर्भगृह का एक ही द्वार होता था, जिसके द्वारस्तम्भ अलंकृत होते थे। द्वारपाल के स्थान पर गङ्गा यमुना की मूर्तियाँ बनाई जाती थीं। मूर्ति गर्भगृह में रखी जाती थीं। (उपाध्याय उपरोक्त पृ० २६५-६६) मजमदार, आल्टेकर, उपरोक्त,

निंघम-उपरोक्त, भगवत शरण उपाध्याय, कालिदास का भारत भाग २, पृ० ३६)

६—गर्भगृह के चारों ओर प्रदक्षिणा मार्ग बनाया जाता । जो छत से ढका रहता था। किन्तु छोटे मन्दिरों के आगे एक छोटासा गोपुर (बरामदा) बना रहता था। सांची, सरण तथा बोधगया में इसी प्रकार के मन्दिर हैं जिनमें वर्गाकार गर्भगृह और एक छोटा-सा गोपुर है। बोधगया मन्दिर में आमलक-युक्त शिखर है, जो पाँचवी शताब्दी-ई० का माना जाता है। (वासुदेव उपाध्याय, उपरोक्त, पृ० २६६-६७) जिस समय का यह बोधगया मन्दिर है, अवश्य ही उसके आस पास के आदिबदरी के प्राचीन ७ मन्दिर हैं।

७—मन्दिर के स्तंभों पर तरह-तरह के बेल बूटे खुदे हुए मिलते हैं। उनके शिर पर एक वर्गाकार प्रस्तर रहता था जिस पर आधे बैठे पीठ से पीठ लगाए चार सिंहों की मूर्तियाँ बनाई जाती थी। इन्हीं स्तम्भों पर छत स्थित रहती थी। (वासुदेव उपाध्याय उपरोक्त, पृ० २६६, कनिंघम उपरोक्त, पृ० ६९)।

संख्या ६ और ७ उपरोक्त गुप्तकाल के प्रथम भाग के मन्दिरों में नहीं मिलते वे तो छोटे छोटे १०×१० के होते थे, जिनमें मूर्ति के लिए तो स्थान था, किन्तु अधिक दर्शनार्थी एक साथ नहीं जा सकते थे। (मजूमदार, आल्टेकर, उपरोक्त, पृ० ४१६)।

इनमें ७ को छोड़कर शेष सब लक्षण आदिबदरी के प्राचीन मन्दिर पर घटित होते हैं। इसलिए उनका समय निश्चय ही परवर्ती गुप्तयुग का प्रारम्भिक काल है।

५६ :—आदिबदरी के विकट कीर्तिमुख।

आदि बदरी के प्राचीन मन्दिरों में द्वारपट्टों पर ऊपर जिन विकट कीर्तिमुखों का उल्लेख किया गया है, उनकी बड़ी-

बड़ी मूछें हैं और वे मुंह से मालाएँ उगलते हुए दिखाए गये हैं। ऐसे कीर्तिमुख गुप्तकाल के तक्षण कलाकारों को सबसे अधिक प्रिय थे। तक्षण कलाक्षेत्र में जितना प्रयोग अलंकरण के रूप में कीर्तिमुख का हुआ है, उतना संभवतः और किसी अलंकरण का नहीं। (रूपम्, जनवरी, १६२४)।

मथुरा में एक कीर्तिमुख की आकृति मिली है जिसमें व्याल भी दिखलाये गए है। सारनाथ के केन्द्र से मिले स्तंभों पर जो कीर्तिमुख हैं, उनकी लम्बी-लम्बी मूछे हैं, और वे मुख से माला निगलती हुई दिखलाई गई हैं। जो नीचे की ओर लटकती हैं। मथुरा के कीर्तिमुख के मुख से जो माला निकल रही है उसे व्याल भी अपने मुख से पकड़े हैं। दोनों व्यालों का मुख विपरीत दिशा में है। दोनों की पीठों के बीच वाले स्थान पर कीर्तिमुख की आकृति बनी है। (वासुदेव उपाध्याय, उपरोक्त, २६४-६५)।

इसका जो चित्र उपरोक्त पुस्तक में फलक १६ चित्र २ में दिया गया है, यह आदि बदरी के मूछों वाले विकट कीर्तिमुखों से बिलकुल मिलता है।

सिमली के मन्दिर और कीर्तिमुख।

आदिबदरी से कर्णप्रयाग की ओर जाने पर कर्णप्रयाग से चार मील पहले सिमली के पिंडार नदी के तट पर प्रचीन मन्दिर पुंज हैं जो आदि बदरी के दूसरे सात मन्दिरों के समान परवर्ती गुप्तकाल के हैं। ये भी नागर शिखर वाले और बड़ी शिलाओं से बने हैं। किन्तु मुख्य मन्दिर को छोड़कर अन्य मन्दिरों के चबूतरों की सीढ़ियाँ अब नहीं दिखलाई देतीं। सम्भवतः मिट्टी से दब गई है। हमारा अनुमान है कि यह मन्दिर एक सहस्र वर्ष से अधिक पुराने हैं। इतने वर्षों में ऊपर खेती से बहकर आई मिट्टी ने इन्हें ढक दिया तो आश्चर्य नहीं। यहाँ महिषमार्दनी की

मूर्तियां भी मिट्टी में दबी निकली हैं। यहाँ के प्रधान मन्दिर की एक विशेषता यह है कि शिखर के ऊपर आमलक. से कुछ हटकर हाथी पर झपटते हुए सिंह की मूर्ति लगी है। इसी के पास कुछ दूरी पर इसी प्रकार की एक और मूर्ति लगी है। ये मूर्तियां गढ़वाल में निराली और अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं।

५८ :—कीर्तिमुख, गुप्तकालीन मन्दिरों को अलंकरण—

ऊपर कहा जा चुका है कि द्वारपट्टों पर बने हुए सिंह-मुख कीर्तिमुख कहलाते हैं। गुप्तकालीन अलंकरण-प्रकार में कीर्तिमुख का भी एक महत्वपूर्ण स्थान था। इसका प्रयोग गुप्त-वत्तणकाल में विशेष रूप से पाया जाता है। स्तंभों और मन्दिरों के ऊपरी चौखट विभिन्न प्रकार से विभूषित किए जाते थे। इनमें स्थान-स्थान पर कीर्तिमुख दिखाई पड़ते हैं। भूमरा तथा देवगढ़ के स्तम्भों पर कीर्तिमुख बनाए गए हैं जो इनकी शोभा को विशेष रूप से बढ़ाते हैं। यह सम्भव है कि बंगाल और उड़ीसा के गुप्तकालीन मन्दिरों में जो सिंह की मूर्तियां पाई जाती हैं, वह प्राचीन कीर्तिमुख की ही प्रतिनिधि-स्वरूप हों। इन मन्दिरों में एक सिंह हाथी पर आक्रमण करते हुए दिखलाया गया है जिसका अर्थ विद्वानों ने अन्धकार अथवा अज्ञान के ऊपर ज्ञान की विजय माना है। (वासुदेव उपाध्याय, गुप्त साम्राज्य का इतिहास, भाग २, पृ० २१४) ऐसे सिंह पर झपटते हुए हाथी सिमली के मन्दिरों में दो हैं, इनकी परम्परा गढ़वाल में सोलहवीं शताब्दी तक के मन्दिरों में मिलती है जैसे राणी हाट और देवलगढ़ के मन्दिरों में।

५९ :—केदारखंडमें नागर-शिखर-शैली के अन्य मन्दिर।

इस शैली के मन्दिरों से मध्य हिमालय भरा पड़ा है।

इनमें से कुछ के नाम नीचे दिए जाते हैं। ये मन्दिर दसवीं शताब्दी से लेकर सोलहवीं सत्रहवी शताब्दी तक के हैं :—

१—विनसर में प्रधान मन्दिर के बाहर परिक्रमा में अनेक छोटे मन्दिर।

२—फुलसारी पिंडरवार में नारायण के मन्दिर।

३—देवालका नारायण मन्दिर, जहाँ से होकर नन्दा की जात जाती है।

४—घुनारघाट-गैरसूण के पास शिव मन्दिर।

५—नाला चट्टी में छोटे मन्दिर।

६—(भेत) नारायणकोटि में दो नारायण मन्दिर, और अनेक भग्न मन्दिर।

७—माणा गाव में बदरीनाथ से लेजाकर फिरसे खड़ा किया हुआ छोटा मन्दिर।

८—तपोवन के निचले तीन मन्दिरों मे से दो मन्दिर, आगे चलकर बड़ा मन्दिर।

९—केदारनाथ के छोटे मन्दिर, इनमें से कुछ अधिक प्राचीन हैं।

१०-मन्दाकिनी की उपत्यका की अनेक भग्न मन्दिर।

११-भावर में अनेक भग्न मन्दिर।

६० :--काशी-विश्वनाथ-शिखर-शैली के मन्दिर।

केदारखण्ड के अधिकाश नए मन्दिर इसी शैली के हैं। इनके ऊपर शिखर पर प्रायः धातु के कलश लगे मिलते हैं। ऐसे मन्दिर केदारखण्ड के गाव-गांव में मिलते हैं।

६१ :--कत्यूरी-शिखर-शैली के मन्दिर।

जोनसार में लाखामंडल से लेकर पूर्व की ओर विनसर तक और आगे अलमोडा के बडे मन्दिरों में आयत छत्राकार

मूर्तियां भी मिट्टी में दबी निकली हैं। यहाँ के प्रधान मन्दिर की एक विशेषता यह है कि शिखर के ऊपर आमलक, से कुछ हटकर हाथी पर झपटते हुए सिंह की मूर्ति लगी है। उसी के पास कुछ दूरी पर इसी प्रकार की एक और मूर्ति लगी है। ये मूर्तियां गढ़वाल में निराली और अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं।

५८ :—कीर्तिमुख, गुप्तकालीन मन्दिरों को अलंकरण—

ऊपर कहा जा चुका है कि द्वारपट्टों पर बने हुए सिंह-मुख कीर्तिमुख कहलाते हैं। गुप्तकालीन अलंकरण-प्रकार में कीर्तिमुख का भी एक महत्वपूर्ण स्थान था। इसका प्रयोग गुप्त-तक्षणकाल में विशेष रूप से पाया जाता है। स्तंभों और मन्दिरों के ऊपरी चौखट विभिन्न प्रकार से विभूषित किए जाते थे। इनमें स्थान स्थान पर कीर्तिमुख दिखाई पड़ते हैं। भूमरा तथा देवगढ़ के स्तम्भों पर कीर्तिमुख बनाए गए हैं जो इनकी शोभा को विशेष रूप से बढ़ाते हैं। यह सम्भव है कि बंगाल और उड़ीसा के गुप्तकालीन मन्दिरों में जो सिंह की मूर्तियां पाई जाती हैं, वह प्राचीन कीर्तिमुख की ही प्रतिनिधि स्वरूप हों। इन मन्दिरों में एक सिंह हाथी पर आक्रमण करते हुए दिखलाया गया है जिसका अर्थ विद्वानों ने अन्धकार अथवा अज्ञान के ऊपर ज्ञान की विजय माना है। (वासुदेव उपाध्याय, गुप्त साम्राज्य का इतिहास, भाग २, पृ० २१४) ऐसे सिंह पर झपटते हुए हाथी सिमली के मन्दिरों में दो हैं, इनकी परम्परा गढवाल में सोलहवीं शताब्दी तक के मन्दिरों में मिलती है जैसे राणी हाट और देवलगढ के मन्दिरों में।

५९ :—केदारखंडमें नागर-शिखर-शैली के अन्य मन्दिर।

इस शैली के मन्दिरों से मध्य हिमालय भरा पड़ा है।

मन्दिर जल-मग्न हो चुका है, उसका शिखर और काष्टवेष्ठिनी अभी तक मिट्टी से नहीं दबी हैं और अब धरती से केवल ५-६ फीट ऊंचा होने के कारण भली प्रकार देखी जा सकती हैं। काष्ठ-वेष्ठिनी से नीचे लकड़ी या पाषाण की छोटी-छोटी तीलियाँ आमलक तक लगी मिलती हैं । जो सजावट का कार्य करती हैं। और साथ ही शिखर-वेष्ठिना को थामे रखती हैं।

कत्यूरी शिखर निशंक उन्नतोदर बन सकता है, नागर शिखर का नतोदर बने बिना काम् नहीं चलता । नागर शिखर गढ़वाली सैनिकों की छोटी काली टोपी के समान है, कत्यूरी शिखर विश्वविद्यालयों की उपाधि प्राप्त करने के लिए जाने वालों के चपटे टोप के समान।

६२ :--कत्यूरी-शिखर का इतिहास ।

गढ़वाल क्या, सारे केदारखण्ड में, सब से प्राचीन मन्दिर आदि बदरी और तपोवन में हैं । तपोवन का चपटी छतवाला मन्दिर उस सन्धियुग का प्रतीत होता है जब चपटी छत टूट रही थी और नागर शिखर वाली छत बनने लगी थी । क्योंकि चपटी छत वाले मन्दिर के पास ही नागर शिखर के दो मन्दिर लग-भग उसी युग के मिलते हैं । इसी युगके आदि बदरी के प्राचीन सात मन्दिर हैं। अन्य सात मन्दिर कुछ पीछे के हैं। इस प्रकार तपोवन और आदि बदरी के प्राचीन मन्दिर ५५० ई० से ६५० ई० (६०७ वि० से ७०७ वि०) तक के माने जा सकते हैं ।

कत्यूरी शिखर शैली का सब से प्राचीन मन्दिर केदारनाथ का मन्दिर है जिसका समय भोज के शिला लेख के अनुसार सम्वत १०७६ या सन् १०१९ से. दो-चार वर्ष आगे-पीछे हो सकता है । यह गोपेश्वर के मन्दिर से कितना प्राचीन है, कहना

शिखर वाले मन्दिर मिलते हैं जिन्हें कत्यूरी-शिखर शैली का मन्दिर कहा जाता है। इन मन्दिरों का निर्माण भी नागर शैली के मन्दिरों के समान कटी शिलाओं से मिलता है। उन्हीं के समान ये ऊँचे चबूतरे पर बने हैं, जिन पर चढने के लिए सीढ़ियाँ बनी होती हैं। गर्भ मन्दिर के बाहर इनमें अनिवार्य रूप से सभामंडप मिलता है। जो गर्भगृह की अपेक्षा अधिक लम्बा होता है। चौड़ाई मे गर्भगृह के समान होता है। कुछ मन्दिरों के गर्भगृह खुले या दोनों या तीन ओर द्वार वाले मिलते हैं। कुछ में केवल एक ही द्वार आगे की ओर होता है। सभामण्डप से गर्भगृह में जाने के लिए बीच में एक द्वार होता है। प्रतिमा की स्थापना गर्भगृह की अन्तिम दीवार के पास, सभामण्डप से गर्भगृह में आने वाले द्वार के ठीक सन्मुख होती है। कई मन्दिरों के गर्भगृह अन्धेरे होते हैं गर्भगृह में प्रकाश के लिए कई मन्दिरों में वातायन (खिड़कियाँ) नहीं मिलता। केवल सभामण्डप के सिंह द्वार से ही प्रकाश आता है।

आकार-प्रकार में कत्यूरी-शिखर वाले मन्दिर नागरशैली के मन्दिरों से मिलते हैं। नागर शैली के मन्दिर की दीवारें गर्भगृह के द्वारपट्ट से थोड़ा ऊपर सीधा उठने के पश्चात धीरे-धीरे सकरी होकर एक बिन्दु पर मिलने लगती है। कत्यूरी शिखर वाले मन्दिर के लिए ऐसी बाधा नहीं है। उसकी दीवारें सीधी ऊपर चढकर जब शिखर की ओर ढलती हैं तो इतना संकीर्ण नहीं होतीं। उनके ऊपर छोटी चपटी पाषाण छत लगती है। उसके ऊपर गोल विशाल पाषाण आमलक और उसके ऊपर चपटी आयताकार पटाल शिलाओं या लकड़ी की छौल्टनी बनी होती है। त्रियुगी-नारायण मन्दिर के शिखर को सामने के ऊँचे मार्ग से भला प्रकार देखा जा सकता है। धराली म गगाजी का

मन्दिर जल-मग्न हो चुका है, उसका शिखर और काष्टवेष्ठिनी अभी तक मिट्टी से नहीं दबी हैं और अब धरती से केवल ५-६ फीट ऊंचो होने के कारण भली प्रकार देखी जा सकती हैं। काष्ठ-वेष्ठिनी से नीचे लकड़ी या पाषाण की छोटी-छोटी सीलियाँ आमलक तक लगी मिलती हैं। जो सजावट का कार्य करती हैं। और साथ ही शिखर-वेष्ठिना को थामे रखती है।

कत्यूरी शिखर निशंक उन्नतोदर बन सकता है, नागर शिखर का नतोदर बने बिना काम नहीं चलता। नागर शिखर गढ़वाली सैनिकों की छोटी काली टोपी के समान है, कत्यूरी शिखर विश्वविद्यालयों की उपाधि प्राप्त करने के लिए जाने वालों के चपटे टोप के समान।

६२ :--कत्यूरी-शिखर का इतिहास।

गढ़वाल क्या, सारे केदारखंड में, सब से प्राचीन मन्दिर आदि बदरी और तपोवन में हैं। तपोवन का चपटी छतवाला मन्दिर उस सन्धियुग का प्रतीत होता है जब चपटी छत टूट रही थी और नागर शिखर वाली छत बनने लगी थी। क्योंकि चपटी छत वाले मन्दिर के पास ही नागर शिखर के दो मन्दिर लग-भग उसी युग के मिलते हैं। इसी युगके आदि बदरी के प्राचीन सात मन्दिर हैं। अन्य सात मन्दिर कुछ पीछे के हैं। इस प्रकार तपोवन और आदि बदरी के प्राचीन मन्दिर ५५० ई० से ६५० ई० (६०७ वि० से ७०७ वि०) तक के माने जा सकते हैं।

कत्यूरी शिखर शैली का सब से प्राचीन मन्दिर केदारनाथ का मन्दिर है जिसका समय भोज के शिला लेख के अनुसार सम्वत १०७६ या सन् १०१६ से दो-चार वर्ष आगे-पीछे हो सकता है। यह गोपेश्वर के मन्दिर से कितना प्राचीन है, कहना

कठिन है। गोपेश्वर के त्रिशूल पर तेरहवीं शताब्दी ईसवी का और डंडे पर सातवीं- आठवीं शताब्दी ईसवी का लेख है। पर वर्तमान मन्दिर त्रिशूल से अर्वाचीन है। इसमें सन्देह नहीं। यही बात बाड़ाहाट उत्तरकाशी के विश्वनाथ मन्दिर की भी है।

कत्यूरी शिखर के मन्दिरों का शिखर के पहले का आकार-प्रकार प्रायः नागर-शिखर-वाले मन्दिरों से बहुत कुछ मिलता जुलता है, इसलिए कत्यूरी शिखर नागर शिखर का परिवर्तित और विकसित रूप है। अनेक स्थानों पर मुख्य मन्दिर तो कत्यूरी शिखर वाला मिलता है और उसके आस-पास नागर शिखर के छोटे-छोटे मन्दिर खड़े मिलते हैं। नेपाल-तिब्बत से लेकर चीन और मंगोलिया तक के बौद्ध मन्दिरों में लकड़ी की छतों का शिखर कुछ-कुछ कत्यूरी शिखर की वेष्ठिनी से मिलता है, किन्तु कत्यूरी शिखर हमें गोरखों ने नहीं दिया। नागर शैली के मन्दिर पर पाषाण आमलक हटाकर कत्यूरी शिखर और वेष्ठिनी नहीं चढ़ाए जा सकते। दोनों की दीवारों की रचना भिन्न है। इसलिए गोरखा के आने पर यह परिवर्तन हुआ हो, ऐसी बात नहीं मानी जा सकती। बालेश्वर के मन्दिर पर कत्यूरी शिखर है जिसका उल्लेख देशट के ताम्र शासन में है। तब से मन्दिर में परिवर्तन आया हो, ऐसा दिखाई नहीं पड़ता। अलमोड़ा में भी कत्यूरियों के मन्दिरों पर वेष्ठिनी मिलती है। अस्तु कत्यूरी राज्यकाल में कत्यूरी शिखर विकसित हो चुका था, और उसीका प्रयोग भोज ने केदारनाथ मन्दिर में किया।

६३—कत्यूरी-शिखर-शैली के प्रधान मन्दिर।

केदारनाथ, बिनसर, त्रियुगीनारायण, गङ्गोत्तरी मन्दिर, द्वैलगाँव, बालेश्वर (नीवीघाटी)। गुप्तकाशी, नाला चट्टी, अगस्तमुनी, कालीमठ, देवप्रयाग, लाखा मण्डल, गोपेश्वर,

पोंडुकेश्वर, भटवाड़ी, धराली, बाड़ाहाट (उत्तर काशी) का विश्वनाथ मन्दिर श्रीनगर में केशवराय मन्दिर आदि हैं। इनमें विनसर का मन्दिर तीस फीट से अधिक ऊंचा है। केदारनाथ तथा त्रियुगीनारायण के मन्दिर ३० फीट ऊंचे हैं। इसके पश्चात् गोपेश्वर और केशवराय के मन्दिर आते हैं।

६४ —कत्यूरी-शिखर-शैली के मन्दिरों का समय।

ये मन्दिर आठवीं शताब्दी से लेकर अठारहवीं-उन्नीसवीं शताब्दी तक के मिलते हैं। इनमें सब से प्राचीन बालेश्वर, केदारनाथ और योगेश्वर मन्दिर प्रतीत होते हैं। ये इतने सुदृढ़ बने हैं कि पिछले ११-१२ सौ वर्षों से सुरक्षित चले जा रहे हैं। कत्यूरियों के सम्बन्ध में हम विशेष रूप से गढ़वाल के इतिहास में विचार करेंगे। ऐटकिनसन और राहुल ने कत्यूरीकाल के निर्धारण के लिए पाल-लेखों से कत्यूरी लेखों की समानता को आधार माना है। दोनों लेखों मे समानता है। इसमें सन्देह नहीं, पर वह समानता केवल कर्मचारियों के पदों के नामों तक सीमित है। इन नामों का प्रयोग गुप्तकाल से ही चल पड़ा था। कुछ नाम तो कौटिल्य के समय से चले आते थे। जो साम्य दिखाई देता है उसका श्रेय भद्रों की भद्रता को देना चाहिए, जिन्होंने इन लेखों को खोदा था। और जो सम्भवतः गढ़वाल में बाहरसे आए थे। ऐसा प्रतीत होता है कि उस युग में भूमिदान सम्बन्धी अभिलेखों की एक परम्परागत प्रणाली थी।

लेख	खोदने वाला	लेखाधिकारी
ललितशूर का प्रथम लेख	श्री गंग भद्र	आर्यट
,, द्वितीय लेख	,,	आर्यट
पद्मट का लेख	नन्दभद्र	नारायणदत्त
सुभिक्षराज का लेख	नन्दभद्र	ईश्वरीदत्त

मुंगेर का लेख विद्या भद्र
भागलपुर का लेख भट्टगौरव

६५—गुप्तकाल में कर्तृपुर।

राहुल ने कत्यूरियों का समय-निर्धारण करते समय इस बात की ओर कुछ भी ध्यान नहीं दिया कि कर्तृपुर का उल्लेख समुद्रगुप्त के प्रयाग-स्तंभ-प्रशस्ति लेख में इस प्रकार मिलता है— समतट—देवक-कामरूप-नैपाल-कर्तृपुर आदि प्रत्यन्त नृपति भिमालवार्जुनायनयौधेय भद्रकाभीर प्रार्जुनसमानानीक काक खरपरिक आनिभिश्च सवर्वकर दानाज्ञकरण प्रणामागमन परितोषित .... । दयाल मुकर्जी पोवेल प्राइस, डिक्रिप्टिव लिस्ट आव फ्रोइन्स ऐंड इन्सक्रिप्शन्स, पृ० ५१-५२)।

घोष के अर्लि हिस्टरी आव इंडिया के पृ० २५२, पर रमाशंकर त्रिपाठी के प्राचीन भारत का इतिहास पृ० १८५, तथा एशियाटिक सोसायटी के जार्नल १८६८ पर उपरोक्त कर्तृपुर को गढ़वाल और रुहेलखंड का कत्यूरी राज्य माना गया है। कामरूप (आसाम) और नेपाल के पश्चात आने वाला कर्तृपुर कुमाऊं-गढ़वाल और रुहेलखंड का ही हो सकता है। इसे पंजाब का करतारपुर नहीं मान सकते क्योंकि यहाँ प्राचीन स्थान होने के प्रमाण नहीं मिलते। कामरूप-नेपाल के पश्चात करतारपुर नहीं आता। सहस्राब्दियों से कामरूप और नेपाल की सीमाओं में विशेष अन्तर नहीं आया है। कर्तृपुर और कत्यूरी राजवंश के नाम आपस में जुड़े हैं। ये कार्तिकेयपुर के कत्यूरी खस थे, उनके पूर्वज ढूंढ़ने के लिए शाह कटोरों तक पहुँचने की आवश्यकता नहीं है।

६६ —काव्य मीमांसा का प्रमाण।

काव्य-मीमांसा में लिखा है :—

दत्वा रुद्धगतिः खसाधिपतये देवीं ध्रुवस्वामिनीम्।

यस्मात्खण्डितसाहसो निवृत्ते श्रीशर्मगुप्तो नृप ॥
तस्मिन्नेव हिमालये गुरुगुहा कोणक्वणत्किन्नरे।
गीयन्ते तव कार्तिकेयनगरस्त्रीणा गणैः कीर्तय. ॥

डाक्टर भडारकर ने इस कार्तिकेय नगर का जो पता दिया है वह नाम की दृष्टि से बडे महत्व का है और एक विष्णुपद के पड़ोस में भी है। उन्होंने विष्णुपद को पहले हरिद्वार के पास माना था और यहीं कार्तिकेय पुर का पता भी बताया था। (मालवीय कम्मेमोरेशन वाल्यूम, चन्द्रबली पांडेय, कालीदास ५६३, टि०)।

पीछे उन्होंने विचार बदल दिया और कर्तृपुर को कश्मीर में ढूढने लगे। राजबली पाण्डेय कर्तृपुर को कांगड़ा का नगरकोट मानते हैं। ऐसा मानने के लिए कोई प्रमाण नहीं है। इसके विपरीत कत्यूरियों के ताम्रशासनों में जो जोशी मठ से प्रकाशित किए गए थे जोशीमठ को बार-बार कार्तिकेयपुर कहा गया है। इसके निकट का विष्णुपद तीर्थ बदरीनाथ के ऊपर पर्वत शिखर का तीर्थ है जहाँ शिव-पादुका बनी है जिसका उल्लेख कालीदास ने मेघदूत में इस प्रकार किया है :—

तत्र व्यक्त दृषदि चरणन्यास मर्धेन्दुमौले ।
शाश्वत् सिद्धे रूपचितबलि भक्तिनम्रः परीयाः ॥
यस्मिन्दृष्टे करणविगमादूर्ध्वं उद्धूत पापा ।
संकल्पन्ते स्थिरगणपद प्राप्तये श्रद्धधानाः ॥

वहाँ चट्टान पर शिवजी के पैरों की छाप बनी है। सिद्ध लोग सदा उस पर पूजा की सामग्री चढ़ाते हैं। तुम भी भक्ति से झुककर उसकी प्रदक्षिणा करना। उसके दर्शन से पाप के कट जाने पर श्रद्धावान लोग शरीर त्यागने के बाद सदा के लिए गणों का पद प्राप्त करने में समर्थ होते हैं। (मेघदूत, पूर्वमेघ, ५५)

कल्याण के तीर्थांक में इस चरणपादुका तीर्थ का पता इ
कार दिया गया है—बदरीनाथ के पीछे सीधे ऊपर पर्वत
ढने पर चरणपादुका स्थान आता है। यहाँ शिवजी के चर
चिह्न हैं। (जिनका उल्लेख कालीदास ने मेघदूत में किया है)
हाँ से नल लगाकर बदरीनाथ मन्दिर में जल लाया गया है
कल्याण, तीर्थांक,)।

आश्चर्य होता है कि राहुल ने अपनी पुस्तक गढवाल औ
माऊ दोनों में इन प्रदेशों का इतिहास लिखते समय शक, हू
ौर हर्षवर्द्धन का तो उल्लेख किया है, पर गुप्त सम्राटों के
सर्वथा छोड़ दिया है राहुल समुद्रगुप्त की प्रयाग प्रशस्ति से अ
परिचित हों, ऐसा नहीं माना जा सकता और उन्होंने जान-बूझकर
कत्यूरियों को इतिहास विरुद्ध युगका बतलाने का प्रयत्न किया हो,
इसका न तो कोई कारण हो सकता है, और न कोई विद्वान ऐसा
कभी कर सकता है, ऐसा प्रतीत होता है कि उन्हें गढवालको दुबारा
पढकर शुद्ध करने का अवसर न मिल सका। गढवाल के पृष्ठ
७३ पर कत्यूरी राजाओं की परम्परा उन्होंने इस प्रकार दी है—

कत्यूरी (जोशीमठ)

१—वसन्तन	८५० ई०	२—खर्पर	८७० ई०
३—अधिराज (क)	८६७ ई०	४—त्रिभुवनराज (क)	८६५ ई०
५—निंबर्त	८१५ ई०	६—इष्टगण	६३० ई०
७—ललितशूर (क)	४५६ ई०		

क—इनके राजकाल के सन् राहुल की धारणा के विपरीत और अशुद्ध छपे हैं। अब तक के अध्ययन के आधार पर हमारी धारणा है कि भोज द्वारा केदार मन्दिर निर्माण के समय गढ़वाल में पवार आए और इसी समय के आसपास कत्यूरी नरेश अलमोड़ा के कत्यूर क्षेत्र में चले गए।

६७-कत्यूरी नरेशों का समय, डा० सरकार की धारणा:-

६-प्राचीन कत्यूरी अभिलेखों का प्रकाशन और विवरण १८८४ में एटकिनसनने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ हिमालयन डिस्ट्रिक्टस भाग २, पृ० ४६६-४८४ मे दिया है। इनका उल्लेख भारतीय विद्या, खंड १८, पृ० १४६-५० में भी हुआ है। दुर्भाग्य से एटकिनसन के समय इन अभिलेखों का पूण शुद्ध पाठ उपलब्ध नहीं था। जिससे एटकिनसन के विवरण में, तथा उसको आधार मान कर लिखे ग्रन्थों में कुछ अशुद्धिया आगई हैं। इन लेखों में से केवल एक अभिलेख का शुद्ध पाठ इण्डियन ऐंटीक्वायरी खंड २५ मे १७७ पृ०पर और आगे छपा है। एकदूसरे व्याघ्रेश्वर अभिलेख का पाठ, जो इतना शुद्ध नहींहै, जरनल आव एशियाटिक सोसायटी बंगाल खड ७, (१८८३) मे पृष्ठ १० ६ से १०५६ तक छपा है। किन्तु शेष चार अभिलेखों के प्रामाणिक पाठ अभी तक नहीं छपे हैं और न उनका विश्वसनीय अध्ययन हुआ है।

इन अभिलेखोंके अध्ययनके आधारपर डाक्टर डी० सी० सरकार सुपरिन्टेंडेंट एपिग्राफी विभाग न कत्यूरी नरेशों के राज्यकाल के संबंध में जो निष्कर्ष निकाले हैं वे अधिक विश्वसनीय हैं। उनका कहना है ललित शूरदेव के अभिलेखों मे दी हुई तिथि आदि ज्योतिष सामिग्री के आधार पर उसके राज्यकाल के २१वें और २४वें वर्ष, जिनमें उसने उपरोक्त अभिलेख प्रकाशित किएथे, क्रमश सन् ८४३ ई० और ८५४ ई० निकलते हैं। इसलिये उसके पिता इष्टगणदेव और दादा निम्बर का राज्यकाल सन् ७६० से ८३४ ई० तक माना जासकता है। बागेश्वर शिलालेख के अनुसार ललितशूर के पश्चात् उसके पुत्र भूदेवदेव को कत्यूरी सिंहासन मिला। उसका राज्यकाल नौवीं शताब्दी के तीसरे और चौथे

चतुर्थांश (सन ८४४ से आगे किन्तु ६०० ई० से पहले तक) के बीच माना जा सकता है। (मजूमदार ऍड पुसलकर दि एज आव इम्पीरियल कन्नौज, पृष्ठ १२३)

इन लेखों के आधार पर डा० सरकार ने कत्यूरी नरेशों की वंशावली इस प्रकार दी है:—

कत्यूरी, प्रथम वंश

(१) निम्बर—नाशूदेवी (७६० से—)

(२) प० म० परमेश्वर इष्टगणदेव-वेगादेवी (८३२तक)

(३) प० म० परमेश्वर ललितशूरदेव (८३२ से ८४४ के निकट तक)

(४) प० म० परमेश्वर भूदेवदेव (८४८ के पश्चात)

कत्यूरी, द्वितीय वंश

(१) सलोणादित्य

(२) इच्छटदेव

(३)देशटदेव (इच्छटदेव के पुत्र)

(४) पद्मटदेव ,,

(५) सुभिक्षराजदेव (पद्मटदेव के पुत्र)

(मजूमदार ऍड पुसलकर, दि एज आव इम्पीरियल कन्नौज, पृ० ५३१)

उपरोक्त विवरण से पता लगता है कि राहुलने प्रथम कत्यूरी वंश के राज्यकाल की अटकिलनन के आधार पर जो कल्पना की है, वह डाक्टर सरकार की कल्पना से लगभग एक शताब्दी पीछे है। कत्यूरी वंश का आरंभ उत्तर गुप्तकाल के अंत में माना जा सकता है। और संभवतः कत्यूरियों के कारण उनकी राजधानी का नाम कीर्तिपुर या कीर्तिकेयपुर नहीं पड़ा वरन कार्ति

केयपुर पहले से चला आता था और उसके अधिपति होने से यह राजवंश कत्यूरी कहलाया। कीर्तिपुर या कीर्तिकेयपुर समुद्रगुप्तके समय भी प्रसिद्ध नगर था, जैसा ऊपर कहा गया है।

स्वेच्छा-शैली के शिखर—

इस प्रकार के मन्दिर सबसे अधिक अर्वाचीन हैं। जिनमें स्वेच्छानुसार शिलाओं और शिखरों का प्रयोग किया जाता है। सीमेंट का प्रयोग अब इनमें बढ़चला है। कलाकी दृष्टिसे प्राचीन मन्दिरों के समकक्ष नहीं पहुँचते हैं।

भारतके धार्मिक इतिहास के अध्ययनके लिए गढ़वाल की मूर्तियों का महत्व—

६६१—मूर्तियों की सुरक्षा आवश्यक—

७१२ ई० (वि०सं० ७६६) से भारत में मन्दिर और मूर्तियों का विध्वंस की जो लीला आरम्भ हुई वह कभी अति तीव्र और उग्र वेग से और कभी शान्त और मन्दगतिसे निरन्तर चलती रही और उसका एक प्रबल झोंका १६४७ ई० (वि० सं० २०००) में आया। अब भी किसी न किसी रूप में यह मूर्ति विध्वंस चल ही रहा है। उत्तर भारतके मैदानके मन्दिरों में अब तक प्रायः सभी प्राचीन मूर्तियां नष्ट होचुकीहैं। उनमें जो मूर्तियां आज दिखाई देती हैं वे प्रायः नवीन ३-४ सौ वर्ष या इससे भी कम वर्ष की हैं। प्राचीन मूर्तियों को देखने के लिये अब हमें मथुरा इलाहाबाद आदि के संग्रहालयों में जाना होता है। इन संग्रहालयों में इधर-उधर से लाकर मूर्तियों और अन्य वस्तुओं को अपनी कल्पना और रुचि के अनुसार सजाया गया है और इस लिये उनके संबंध में उतने अधिक और

और उतने सही तथ्य संग्रहालय में उन्हे देखकर नहीं जाने जा सकते, जितने तब जाने जा सकतेथे जब वे मूर्तिया और वस्तुएँ मन्दिरों में अपने निश्चित स्थान पर होतीं। उन मूर्तियों को किस देवता के मन्दिर में कौनसा स्थान प्राप्त था, मुख्य देवता की पूजा में उस मूर्ति की पूजा का क्या क्रम था, उसकी पूजाके क्या क्या उपकरण होते थे, कैसे उसकी पूजा होती थी, इन सबका पता संग्रहालय में कैसे लगेगा। लाखामण्डल मन्दिर के द्वार पर जय-विजय की जो पुरुष प्रमाण मूर्तिया हैं अथवा केदारनाथ मन्दिर के सभा-मण्डपमें जो कई पुरुष प्रमाण मूर्तिया हैं, यदि उन्हें संग्रहालयमें रखदिया जाए तो कैसे ज्ञात होगा कि मुख्य मन्दिर मे इनकी स्थापना का क्या उद्देश्य था। आदि बदरी के नारायण मन्दिरके सिंहद्वार के ठीक सन्मुख छोटे मन्दिरमें हाथ जोडे गरुड़ की जो अद्भुत मूर्ति है, उसे वहा से हटा देने पर मूर्ति तो गरुड़ की ही रहेगी किन्तु कैसे वह हाथ जोडी मूर्ति नारायण मन्दिर के कपाट खुलते ही भगवान के दर्शन करती थी यह भाव न आ सकेगा। और न यह विदित होसकेगा कि किस प्रकार मूर्ति अर्पित करने वाले ने अपनेको गरुड़ मानकर उस मूर्तिकी पाद-पट्टिका पर अपना नाम अंकित करवाया था और यह कल्पना की थी कि कि जब तक मूर्ति रहेगी तब तक मैं ही गरुड़ रूपमें हाथ जोड़े भगवान के द्वार पर खड़ा रहूँगा।

७०:—आज भी मूर्तियों का महत्व—

मूर्ति-पूजा पर विश्वास करें या न करें, किन्तु यह मानना पड़ेगा कि हिन्दुस्थानके जीवन में और इस लिये इतिहासमें, देव मूर्तियों का अ यन्त महत्वपूर्ण स्थान रहा है। आज भी बदरीना र्थ की भग्न मूर्ति, जिसे बहुतसे लोग हिन्दू-मूर्ति नहीं मानते, भारत

के कोने-कोनेसे प्रति वर्ष एक लाख से अधिक व्यक्तियोंको,जिनमें बालक, वृद्ध नरनारी, धनिक-निर्धन, साधु-गृहस्थी, बलिष्ठ पंगु तथा लूले-लंगड़े सभी होते हैं, खींच लाती है। प्रति वर्ष सरकार को विभिन्न तीर्थों के लिये पर्व मेलों पर जो विशेष रेलगाड़ियां चलानी पड़ती हैं, मोटर आदि यातायातके जिन दूसरे साधनों का प्रबन्ध करना पड़ता है, हैजा आदि महामारियों की रोकथाम के लिये जो व्यवस्था करनी पड़ती है, लाखों यात्रियों के भोजन की समस्या को जिस प्रकार हल करना पड़ता है, सुव्यवस्था के लिये स्वयंसेवक दल, पुलिस, और सेना को जिस प्रकार रखना पड़ता है, उसे देखकर पता लगता है कि देवमूर्तियोंने इस नास्तिकता के युग में भी भारत के हृदय को उसी प्रकार जकड़ा हुआ है जिस प्रकार शताब्दियों, सहस्राब्दियों पहले था। सच पूछो तो आज मेलों-पर्वों पर तीर्थोंमें जितने व्यक्ति सरलतासे पहुँच जाते हैं पहले शतांश भी न पहुचते होंगे।

७१-गढ़वाल के मन्दिरों से मूर्तियों का लोप—

गढ़वाल के मन्दिरों की भी अधिकांश मूर्तियों को हृदय-हीन मुसलमानों ने तोड़ डाला है। अनेक मूर्तियोंको मूर्तिव्यापारी उठा लेगये हैं, अनेक मूर्तियाँ निर्जन स्थानों में या परित्यक्त मन्दिरों में पड़ीहुई हैं। अनुमान किया जाता है कि जौनसार, टेहरी और गढ़वालमें अब भी लगभग चार-पांच सहस्र देव-मूर्तियां हैं, जिनमें से अधिकांश खंडित हैं। केदारनाथ, सिमली, ऊखीमठ, आदि बदरी और बिनसार-जैसे तीर्थोंके मन्दिरोंमें तो अभी कुछ समय पहले तक सौ से अधिक मूर्तियाँ मिलती थीं, अब तो भी इनमें बहुत अधिक मूर्तियां हैं। मोटर यातायात के कारण सैकड़ों पट्टियां नष्ट होगई हैं। इनमें से अनेक पट्टियों

में मन्दिर बने थे और उनमें देव-मूर्तियाँ थीं। जो आज असुरक्षित हैं। अकेले मन्दाकिनी घाटीमें सैकड़ों मन्दिरों के ध्वंस बिखरे हैं। सारी मन्दाकिनी घाटी, विशेषकर नाला, नारायण कोटि (भेत) और कालीमठ तक एक सहस्र वर्ष पहले मन्दिरों की महानगरी फैली थी, जिसके ध्वंस सर्वत्र बिखरे हैं यह आवश्यक है कि जो मूर्तियां बची हैं, उनकी सुरक्षा कीजाये और जो दबी पड़ी हैं तथा सहृदयों की दया की प्रतीक्षा कर रही हैं उन्हें खोद निकाला जाए।

७२—लकुलीश शैव मूर्तियां—

संभवत. गढ़वाल में सबसे प्राचीन मूर्तियां लकुलीश शिव लिंग हैं। ईसा विक्रम की दसवीं शताब्दी के पूर्व की जो शिव-मूर्तियां (लिंग) गढ़वाल में मिलती हैं, उनमें रेखाओं द्वारा लिंग को पूरा शिश्न-रूप देने का प्रयत्न किया गया है। निश्चय ही ये शिवलिंग गढ़वाल की मूर्तियों में सबसे प्राचीन हैं। ऐसा अनेक विद्वान मानते हैं।

नकुलीश या लकुलीशका जन्म स्थान भड़ौंचके पास कारवन नामक स्थान में बतलाया जाता है। राजपूताना, गुजरात आदि प्रान्तों में लकुलीश की मूर्तियां प्रचुरता से मिलती हैं। उनका मस्तक केशोंसे ढक रहताहै। दाएं हाथ में बीजपूरका फल और बाएं हाथमें लगुड या दंड रहता है। लगुड धारण करने से ही ये लगुश या लकुलीश कहलाये। ये शंकर के १८ अवतारों में से एक माने जाते हैं। ८१ गुप्त संवत (३८० ई०) के मथुरा के एक शिलालेख में उदिताचार्य नामक एक पाशुपत आचार्य अपने को कुशिक से दशम बतलाता है। लकुलीश कुशिकके गुरु थे। इस प्रकार एक पीढ़ी के लिये २५ वर्ष मानकर लकुलीश का

समय १०५ ई० सं० १६२ के आस पास सिद्ध होता है। और यही समय है जबकि कुषाण नरेश हुविष्ककी मुद्राओं पर लगुड-धारी शिव की मूर्तियां मिलती हैं। (बलदेव उपाध्याय, शंकराचार्य, पृ० २६)

गढ़वालकी लकुलीश-शिव-मूर्तियाँ ईसाकी दूसरी शताब्दी से मिलने लगती हैं तथा दशवीं शताब्दी के त्रिमुख-चतुर्मुख, लिंग सूचित करते हैं, कि यहां पहले पाशुपत (लकुलीशों) का गढ़ था।

७२—बूटधारी सूर्य की मूर्तियां—

बूटधारी सूर्यकी मूर्तियों को भारत में लाने वाले शक हैं। इसमें सन्देह नहीं कि शकों के आगमन से पूर्व भी भारत में सूर्य की उपासना होती थी। पर बूटधारी, द्विभुज सूर्य की मूर्तियोंकी कल्पना करने वाले यही शीतदेशों के शक थे। काश्मीरके मार्तंड मन्दिर से लेकर अलमोड़ा के कटारमल तक ईसा-विक्रमकी पहली सहस्राब्दी के अन्दर सैकड़ों सूर्य मन्दिर बने थे, जिनमें बूटधारी द्विभुज सूर्यकी प्रतिमाएं थीं। गढ़वाल में अब तो केवल एक सूर्य मन्दिर जोशीमठ में मिलता है, जो सूर्यनारायण के मन्दिरके नाम से प्रसिद्ध है, पर पहले ऐसे अनेक मन्दिर रहे होंगे। सिमली के नारायण मन्दिर के पास चमकता शिखर का मन्दिर अवश्य पहले सूर्य मन्दिर रहा होगा, जिसकी बूटधारी सूर्यकी मूर्ति प्रधान मन्दिर की परिक्रमा के भग्न मन्दिर में रखी है।

अलमोड़ा जिलेके बेलार और पंवाई (पट्टी गंगोली) रकम (काली कुमाऊं) नैनी (चौगरखा) तथा जागेश्वर और कटारपुर में सूर्य-मन्दिर हैं, जो इस प्रदेश में, ईसा-विक्रमी की आरंभिक शताब्दियों में शकों का संबंध सूचित करती हैं।

७३—गढ़वाल में बूटधारी सूर्य मूर्तियां—

श्रीनगर के कमलेश्वर मन्दिर में एक खंडित मूर्ति है। मिमली मन्दिर में सूर्य मूर्ति अखंड है। ऊखी मठमें सूर्यकी तो मूर्तियां हैं, पर उनके बूट नहीं हैं। गोपेश्वर में बूटधारी सूर्य की दो खंडित मूर्तियां हैं। श्रीनगर के बदरीनाथ मठ में सूर्यकी अति सुन्दर मूर्ति है।

७४—हरगौरी और महिषमर्दिनी की मूर्तियां—

गढ़वाल के प्रायः सभी प्राचीन मन्दिरों में चाहे वे शैव-वैष्णव या सूर्य मन्दिर ही क्यों न हों सबत्र हरगौरी या महिष-मर्दिनी अथवा दोनों की अत्यन्त अद्भुत सौन्दर्यवाली मूर्तियां मिलती हैं। इनमें से अधिकांश का समय उत्तर गुप्तकाल माना जा सकता है। हरगौरी मूर्तियोंमें कलाकारोंने जो कौशल दिखाया है उसका वर्णन करना असम्भव है। मिमली, आदिबदरी पांखन, बालेश्वर, कालीमठ आदि में एक ही शैली की हरगौरी मूर्तियां मिलती हैं। ऐसा लगता है कि जैसे एक ही कलाकार ने या एक कलाकार की देख-रेखमें उसके शिष्यों ने उसका निर्माण किया हो।

७५—मैरंडा की हरगौरी—

अनेक भग्न मूर्तियों के साथ राहुल ने इस मूर्ति को देखा था। उनका कहना है मूर्तिभंजकों ने बड़ी बुरी तौर से इनको तोड़ा, किन्तु कलाकार की कोमल अंगुलियों और मधुर कल्पना की उनके अंग-अंग पर छाप है। शिवजी के गले का सांप सिर की ओर न जाकर कन्धे के सामने लहराता दिखाई पड़ता है। मूर्ति छोटी नहीं है। उसकी तरफ देखते वक्त मुझे तो ख्याल आता था कि जैसे अजन्ता का कोई चित्र मूर्तिमान होकर बाहर

निकल आया है। यह अद्भुत मूर्ति गुप्तकालसे थोड़े ही पीछे की होगी। उस समय में कालीमठ की अखंड हरगौरी की सुन्दर प्रतिमा को नहीं देख पाया था, संभव है दोनों एक ही कालकी हैं, जो सातवीं-आठवीं सदी (ईसवी) हो सकताहै। (राहुल,गढ़वाल ४२१-२२)

७६—कालीमठ की हरगौरी–

मैं इसे अतिशयोक्ति नहीं समझता, यदि कहूँ कि आज सारे भारत में इतनी सुन्दर अखंड हरगौरीकी मूर्ति कहीं भी नहीं है। युगलमूर्ति ४० इंच लम्बी तथा २४ इंच चौड़ी एक शिला से बनाई गई है। मैं मैखंडा की खंडित हरगौरी मूर्तिसे ही बहुत प्रभावित था, किन्तु यहां मैंने शोभा और सौन्दर्य में अद्वितीय इस हरगौरी-मूर्ति को देखा। इसकी कोमल बंकिम रेखाओंमें वही सौन्दर्य भरा था, जो कि अजन्ता के चित्रों मे दिखाई पड़ता है, बल्कि पत्थर में ऐसा तरंग उत्कीर्ण करना संभव हो सकता है, इस पर आखें विश्वास नहीं करती थीं। ललितासनस्थ हरके वामांक में अनुपम सौन्दर्य राशिकी मूर्ति बनकर भूधरसुता विराजमानहैं। शिव चतुर्भुजहैं, किन्तु गौरी साधारण मानवीकी तरह द्विभुज। नीचे गणेश और मयूरारूढ़ कार्तिकेय की मूर्तिया हैं। यहीं उस कला प्रेमी भक्तकी भी मूर्ति है, जिसने इस सुन्दर मूर्ति के निर्माण करने का व्यय वहन किया था। मेरा मन तो कहने लगा कि वह शायद रुद्रसकुड़ी हो। तब यह मूर्ति यहांकी प्रधान मूर्ति रही होगी। आश्चर्य और अत्यन्त प्रसन्नता भी मुझे यह देखकर होरही थी कि यह कलाराशि रुहेलोंके प्रहार से कैसे बच गई। (राहुल, गढ़वाल, ४५१-४२)

तपोवन में महाकाली, महालक्ष्मी, और महासरस्वती के तीन मन्दिर थे। इनमे हरगौरी की मूर्ति आगे एक बड़े मन्दिरमें

है। महालक्ष्मी की मूर्ति एक मील दूर बालेश्वर मन्दिरमें है और महासरस्वती की मूर्ति तिमरसैन, पहुँचा दी गई है।

७७—केदारशिला—

केदारनाथ में न विग्रह मूर्ति है, न शिव लिंग। वहां केदार शिला नामक एक भारी ग्रेनाइट पाषाणकी अनगढ़ शिलाकी पूजा होती है, जो त्रिभुजाकार पर्वत शिखरके समान दिखाई देतीहै। जहां-जहां केदारनाथ के मन्दिर हैं सर्वत्र इसी प्रकार की शिलाएं पूजी जाती हैं। केदारनाथ, बूढ़ाकेदार, विल्वकेदार, बैजनाथ (कांगड़ा) ताराकेवी मन्दिर के पास केदारशिला, तथा बनारस के केदारनाथमठ में इसी प्रकार की पूजा होती है।

निवेदिता का कहना है कि शिलारूप में शिव पूजाके प्रचारक शंकराचार्य थे जो शिवका संबंध किसी प्रकार के लिंग से या गौरी आदि नारी से नहीं जोड़ना चाहते थे। वे समझते थे कि शिवके किसी रूप का सम्बंध लिंग योनि से जोड़ना, मलिन विचारों का सूचक है। इसलिए उन्होंने टीलेके आकारकी प्राचीन पवित्रता और प्रकृति की पवित्रता और सादगी में शिवको देखा। (निवेदिता, फुट फाल्स आव इंडियन हिस्टरी पृ० २१०)

७८—मूर्तियों में लगे पाषाण—

गढ़वाल के मन्दिरों में मिलने वाली मूर्तियों में मुख्यत पाच प्रकार के पाषाण लगे मिलते हैं।

हल्के काले, मटमैले, या भूरे रंग के बालुका-पाषाण-सभी प्राचीन मूर्तियां जो आदि बदरी, सिमली, बालेश्वर, तपोवन, श्रीनगर, केदारनाथ, अगस्त्यमुनि, गुप्तकाशी आदि मन्दिरों में मिलती हैं, उनमें इन्हीं पाषाणों का प्रयोग हुआ है। अधिकांश हरगौरी और महिषमर्दिनी, गणेश, और कार्तिकेयकी मूर्तियां

इसी पाषाण की हैं। इस पाषाण की अनेक मूर्तियों पर वज्रलेप नामक काली पालिस लगी मिलती है जिससे कई व्यक्ति इन्हें काले पाषाण की समझ बैठते हैं।

७६—हरी झांई वाले पाषाण—

यह पाषाण बालुज पाषाण से अधिक दुर्बल किन्तु चिपमससे अधिक सुदृढ़ मिलता है। इसमें खुदाई और मूर्तिनिर्माण सरलता से किया जा सकता है। पर टूटती भी ये अधिक सरलता से हैं। आदि बदरी के मन्दिरों में इस पाषाण की अनेक भग्न मूर्तियां हैं। इस पाषाण से बनी मूर्तियों पर कोई विशेष पालिश नहीं दिखाई देती। इस पाषाण की बनी मूर्तियां उपरोक्त बालुज पाषाण की अपेक्षा कम मिलती हैं। ये संभवतः उपरोक्त बालुज पाषाण की मूर्तियों की अपेक्षा कुछ पीछे की हैं। पर कला की दृष्टि से उनमें किसी प्रकार निकृष्ट नहीं हैं।

८०—काले पाषाण—

मुख्यत गोपीकृष्ण, नारायण या मुरलीधर, रामचन्द्र आदि की मूर्तियां इस काले पाषाण की बनी मिलती हैं। ये मूर्तियां बाहर से-संभवत जयपुर आदि से-लाई गई हैं। इनमें वह उत्कृष्ट कला नहीं है जो पिछले दो वर्ग के पाषाण वाली मूर्तियों में मिलती है। इनमें राधा कृष्णादि की मुखाकृति गोल-मटोल, लाल ओंठ और गोल दीर्घ नयनों वाली हैं। टेहरी के बदरीनाथ मन्दिर की मूर्ति इसी प्रकार की है जो सौ-सवा सौ वर्ष पूर्व जयपुर से मंगाकर वहां स्थापित की गई है। इस प्रकार की मूर्तियां स्पष्ट नवीन हैं। इनमें सबसे प्राचीन दो-ढाई सौ वर्ष से अधिक पुरानी नहीं है। हमारा अनुमान है कि आदिबदरी के मुख्य मन्दिर की नारायण मूर्ति, सिमली की नारायण मूर्ति

सिमली की नारायण मूर्ति, देवप्रयाग की रामचन्द्र मूर्ति इसी प्रकार की हैं। यह असम्भव नहीं कि बदरीनाथ की मूर्ति भी इसी वर्ग की हो, जिसकी स्थापना शंकराचार्य के सम्प्रदाय के किसी महात्मा द्वारा की गई बतलाई जाती है। केवल द्विभुज विष्णु मूर्ति होने से उसे सातवीं शताब्दी या पहले की मान सकते हैं। मुखाकृति भग्न होने के कारण उस सम्बन्ध में निश्चय पूर्वक कहना कठिन है।

८१- श्वेत संगमरमर-

इस पाषाण की मूर्तियां सबसे नवीन और सबसे कम हैं। अनेक चट्टियाके मन्दिरोंमें, आदिबदरीके नये मन्दिर में सत्य-नारायण की मूर्ति, नीती घाटी में रीणी के पुलके पास नन्दा की मूर्ति, गंगोत्तरी मन्दिर की मूर्तियां आदि इसी वर्ग की हैं। इनमें वह कला नहीं है जो पहले दो वर्ग की मूर्तियों में है। जो भाव भंगिमा, वर्तुलाकार स्तन, लचीली देहयष्टि और लम्बी, पतली मुखाकृति प्रथम प्रकार की गौरी की मूर्तियों में मिलती है वह तीसरे-चौथे वर्गकी लक्ष्मी या सीता या राधामें नहीं मिलती। तीसरे-चौथे वर्ग की देवियों की गोल मुखाकृति और गलमुच्छ बड़े भद्दे लगते हैं। पहले दूसरे वर्गकी शिव मूर्तियों में जो ध्यान मग्न शिवकी उमा-स्तन स्पर्श करते हुए अंगुलियों की छटा और पद्मासन पर सीधी उठी देहयष्टि दिखलाई देतीहै वह कला तीसरे चौथे वर्ग की मूर्तियों में दुर्लभ है। इनके सत्यनारायण, राम, विष्णु, या कृष्ण सब गाल फुलाये और भावनाहीन लगते हैं। इतना अवश्य है कि ये अधिक स्थूल और सुदृढ़ पाषाण की होने के कारण अधिक टिकाऊ हो सकती हैं।

८२—विभिन्न स्थानीय पाषाण-

इसमें जिपसम, सोपस्टोन, खड़ी, हरा झाईं वाला पत्थर

पौड़ी के निकट का लाल-भूरी भाई का सैल. पैडुलके निकट का चक्की का पत्थर आदिका प्रयोग हुआहै । इस प्रकार के पाषाणों में भी कभी-कभी श्रीनगर के ओड मूर्तिकारों की सुन्दर कला दिखाई देता है । ऐसी मूर्तियां श्रीनगर के निकट के गावों में दूर दूर तक घरों में लगा तथा मन्दिरों में मिलती हैं । पैडूल में कलुआ वीर की मूर्ति तथा पौड़ी और श्रीनगर के अनेक मकानों पर भी ऐसी मूर्तियां लगी हैं । कुछ तो अत्यन्त साधारण और भद्दी हैं पर कुछ तीसरे-चौथे वर्ग का मूर्तियों की अपेक्षा अधिक कलापूर्ण हैं ।

८३—शिवलिंग–

मूर्तियों के समान ही नाना प्रकारके शिव-लिंग मिलते हैं । काले, लाल, नदी तट के गोल मटोल पाषाण, श्वेत संगमरमर, नीली झाई वाले पाषाण जिपसम, ग्रेनाइट, बालुज पाषाण आदि सम्भवत: प्रत्येक प्रकार के पाषाण का शिवलिंगों के लिये प्रयोग हुआ है । लकुलीश, मुखलिंग, चतुर्मुख लिंग, पंचमुखलिंग, नर्मदेश्वर, नाना प्रकार के बाणलिंग और अनगढ़ ग्रेनाइट का केदार शिला सभी शिववत् पूजी जाती हैं ।

८४— ग्राम देवता–

सर्वत्र अनगढ पाषाण से जो शिवलिंग जैसे होते हैं, व्यक्त किये जाते हैं । उनके लिए प्राय: मन्दिर नहीं होते । पेड़ के नीचे उनका स्थान होता है, जिसके पास एक त्रिशूल, एक लोह दीप, एक-दो नाग जैसे फणवाले लौह नाग गडे होते हैं ।

८५—काष्ठ मूर्तियाँ–

अब गढ़वाल में बहुत कम हैं । नीती घाटी में मलारी से नीचे जाते [illegible] देवी मन्दिर में लकड़ी की नन्दा है । देवी

लकड़ी की बनी नाग देवता की मूर्ति टेहरी में गंगोत्तरी मार्ग पर सुखी गांवमें है।

८६—धातु मूर्तियां—

प्रायः सभी बड़े मन्दिरों में एक-दो छोटी धातु मूर्तियां मिलती हैं। कमलेश्वर (श्रीनगर) में चान्दी की-शिव मूर्ति, व जोशी मठ में पीतल की गरुड़-मूर्ति, बदरीनाथ में उत्सव मूर्ति, जिसे उद्धव-मूर्ति कहते हैं, बाड़ाहाट (उत्तरकाशी) में नागराज द्वारा अर्पित पीतल की बुद्ध-मूर्ति नीती घाटी में लाता के नन्दा मन्दिरों में देवी की पीतल की मूर्ति आदि मिलती हैं। जोशी-मठ की गरुड़ मूर्ति अद्भुत सौन्दर्य वाली है। इस पर यूनानी कला का प्रभाव माना जाता है। (फूरर, मोन्यूमेंटल एंटीक्विटीज खंड २, पृ० ४५)

गंगोत्तरी में गंगाजी की एक छोटी सुवर्ण की मूर्ति बतलाई जाती है। श्रीनगर और बिनसर में पीतल के वृषभ-प्रमाण नन्दी हैं।

८७—वज्रलेप कल्पक—

पहले वर्ग की मूर्तियों के सम्बन्ध में हमने वज्रलेप कल्पक या पालिश का उल्लेख किया है, । इस प्रकार की चमकदार वाली पालिश हरगौरी, महिष मर्दिनी, गणेश, कार्तिकेय नवदुर्गा, अष्टमात्रिका, महाकाली, महा लक्ष्मी और महा सरस्वती, गरुड़ आदि की प्राचीन मूर्तियों और नन्दी पर लगी मिलती है। वराहमिहिर ने जिन वज्रलेपकों का उल्लेख किया है, उनसे इन मूर्तिकारों को परिचय प्राप्त था।

८८—एक सहस्र वर्ष रहने वाला लेपक

तेंदू के कच्चे फल, कैथ के कच्चे फल, सेमल के फूल,

महनुकी वृक्ष के बीज, वन्धन वृक्षकी छाल और वच, इन सबको एक द्रोणी जलमें क्वाथ करें, जब आठवां भाग बच जावे तब उतारें। पीछे इसमें सरल वृक्ष का गोंद, वाल,गूगल, मिलावे, श्रीवेष्टक, देवदारु वृक्ष का निर्यास) राल अलसी और बेल की गिरी इन सबको घोटकर डाले। यह वज्रलेप नामक कल्क है। इस कल्क को देवप्रासाद, हवेली, वलभी, शिवलिंग, देवप्रतिमा, भित्ति और कूपों में गरम करके लगाने से यह लेप एक सहस्र वर्ष तक ठहरता है।

८६—वज्र-कल्पक—

लवंग, कुटज, गुगुल, घरके धुंए का जाला, कैथके फल बेलकी गिरि, नागबला (गंगेरण) के फल, महुए के फल, मंजीठ राल, बाँल, आंवल, इन सब वस्तुओं के कल्क को पहली भांति सिद्ध किये द्रोण भर जलमें मिलाने से दूसरा वज्रलेप सिद्ध होता है, इसमें भी वही गुण हैं जो पहले वज्रलेप में है।

९०—वज्र-तर कल्पक—

गौ, भैंस और बकरा इन तीनों के सींग, गर्दभ, महिष और गौ, इन तीनोंके चर्म, नीमके फल, और भील, इन सबसे पहली भांतिसे तीसरा कल्क सिद्ध होताहै, इसका नाम वज्रतरहै।

९१—वज्रसंघात—

आठ भाग शीशा, दो भाग कांसा, एक भाग पीतल, इन सबको इकट्ठा करें गलावे। यह मय दानव द्वारा कहा गया वज्र-संघात लेप है। (वाराहमिहिर, बृहत्संहिता, अ० ५७। १-८ पृ० २५४-५५)

गढ़वाल में देवमूर्तियां कैसे भग्न हुईं—

गढ़वालमें ऋषिकेश-देवप्रयाग से लेकर बद्रीनाथ-केदार-

नाथ और पूर्व की ओर विनसर तथा सारे अल्मोड़ा में सर्वत्र मन्दिरों में, मन्दिरों से बाहर, तथा इधर-उधर चबूतरों पर और पेड़ों के नीचे भग्न मूर्तियां मिलती हैं। गढ़वाल की लगभग चार सहस्र मूर्तियों में तीन साढ़े तीन सहस्र तक अब तक टूट चुकी हैं। केवल थोड़ी सी मूर्तियां ही ऐसी हैं जो अब भी सम्पूर्ण एवं अखंड हैं। गढ़वाल की देवमूर्तियों के भग्न होने के कई कारण हो सकते हैं।

९३—भूचाल—

१८०३ ई० सम्वत् १८६० में गढ़वाल में भीषण भूचाल आया था, जिससे गढ़वाल के अधिकांश मन्दिर या तो धराशायी होगये या उन्हें बहुत अधिक हानि पहुँची थी। जिसका वर्णन मौलाराम ने किया है तथा एशियाटिक रिसर्चेज खंड ११ में मिलता है। दोनों वर्णनों से पता लगता है कि अधिकांश मन्दिर महल इस भूचाल में नष्ट होगये थे। अवश्य ही उस समय अनेक मूर्तियां नष्ट हुई होंगी। अधिकांश मूर्तियां मन्दिरों में दीवार के सहारे या देवासन पर खड़ी की हुई रहती हैं, इनके यों ही गिर कर टूटने का भय रहता है, फिर भूचाल में, मन्दिर ही नष्ट हो गये, मूर्तियां अवश्य टूटी होंगी। वे मूर्तियां जिनकी मुखाकृति नहीं बिगाड़ी गई हैं, बीचसे टूटी मिलती हैं, उनमेंसे कई भूचाल से टूटी होंगी।

९४—पुजारी की असावधानी—

आरती करते समय भी असावधानी से आरतीकी चोट से मूर्तियों के अंग-भंग हो जाते हैं। जहां बहुत सी मूर्तियां पास-पास हों पूजा करते समय पुजारी की असावधानी से मूर्तियां टूट जाती हैं। बदरीनाथ की मूर्ति भारी है। उसे स्नान कराने और

पोंछते समय एकही व्यक्तिको कठिनाई होतीहै। रावल के अति-रिक्त दूसरा व्य क्त मूर्ति को छू नहीं सकता। इसलिये किसी समय रावल की असावधानीसे मूर्ति टूटी होगी। भूतपूर्व रावल का कहना है कि टूटा हुआ टुकड़ा भी वहीं वहीं मन्दिर में पड़ा है। मूर्ति टूटे अवश्य एक दो शताब्दियां होचुकी हैं जिससे उसका समाधान भी शंकर संबधी साहित्यमे घुस गया है।

६५—रुहेला आक्रमण–

पर इन दोनों कारणों से उन सहस्रों मूर्तियों के अंग-भंग का समाधान नहीं होता, जो गढ़वाल मे प्रायः प्रत्येक मन्दिर में मिलती हैं। ईसा की अठारहवीं शताब्दी के आरंभ तक रुहेलों ने सहारनपुर से लेकर सारे तराई प्रदेशोंमें मुरादाबाद और आगे तक अधिकार करलिया था और सारे उत्तर-प्रदेश मे लूट-मार मचाते और मन्दिरों को नष्ट करते फिरते थे। हाफिज रहमतखां के नेतृत्व मे १७४२-४३ में रुहेलों ने जो ध्वंसलीला कुमाऊं में मचाई उसके अवशेष अभीतक केदारनाथ और बदरीनाथ तक गढ़वाल में, एवं बाराहाट, कटार मल,बैजनाथ, बागेश्वरके खंडित देवता तथा ध्वस्त या परित्यक्त मन्दिर मौजूद हैं। प्रदीपशाह खानदानी बैर को भूलकर (कुमाऊँ-नरेश कल्याणचन्द की) मदद करने आया। दूनागिरि और द्वाराहाटमें दोनों सेनाएं मिल कर लड़ने के लिये तैयार हुईं। शीशाराम सकलानी ने बड़ी वीरता पूर्वक गढ़वाली सेना का संचालन किया इसका पंवाड़ा आज भी गढ़वाल में प्रसिद्ध है। किन्तु अन्त में हार हुई। कल्या-णचन्द ने सारे कुमांऊ को लुटवाकर तीन लाख रुपया दे पिंड छुड़ाया और प्रदीपशाह ने ६० हजार कर देना स्वीकार किया। किंतु कुमांऊ की भांति गढ़वाल रुहेलों की ध्वंस लीला से बच नहीं पाया। वह अगस्तमुनि, गुप्तकाशी, ऊखीमठ को लूटते ध्वंस करते, मूर्तियों को तोड़ते, मन्दिरों को भ्रष्ट करते, मालके साथ

ढोरों तथा हजारों दास-दासियों को लेते, केदारनाथ माणा (बद्रीनाथ) और नीती तक जाकरही लौटे। (राहुल, गढ़वाल ५५२)

६६—रुहेलों का दूसरा आक्रमण—

१७५२ ईसवी के लगभग रुहेलों का एक दूसरा आक्रमण हुआ। डाक्टर पातीराम ने लिखा है कि गढ़वाल के कुछ भड़ेला गीतों से पता चलता है कि रुहेलों की कुछ टोलियों ने दक्षिणी गढ़वालमें प्रविष्ट होकर प्रजा से क्रूरतापूर्ण व्यवहार किया था। ये लूट मार करने वाली टोलियां उन रुहेलों की रही होंगी जिन्होंने १७०२ ईसवी में वर्तमान उत्तर प्रदेश के एक भाग पर अधिकार कर लिया था और जिनका दमन नवाब वजीरने अंगरेजों की सहायता से किया था। एक ताम्र-पत्र से पता चलता है कि स्वयं गढ़वालियों ने भी इन टोलियों में से कुछ को नष्ट करदिया था, जिसके उसके पश्चात् उन्होंने गढ़वाली प्रजा का उत्पीड़न बन्द कर दिया। (पातीराम, गढ़वाल एनशिएंट एंड माडर्न १६२)

६७—गूजरों द्वारा मूर्ति भंजन—

सीधे यात्रा मार्गों पर जो मूर्तियां टूटी मिलती हैं, उनके लिये अवश्य रुहेलों का कारण माना जासकताहै, पर ऊँचे दुर्गम पर्वत शिखरों और घोर वनों में-विनसर-तुंगनाथ आदि में मूर्ति तोड़ने वाले मुसलमान गूजर थे, जो इन प्रदेशों में पशु चरानेके लिये ग्रीष्मकाल में आते थे। जब इन्होंने विनसर की मूर्तियोंको तोड़ा और दूधातोली के बंगले को हानि पहुँचाई तो इनका दूधा तोली वनमें प्रवेश बन्द कर दिया गया। पवाली कंठेमें एक गूजर ने भी जो अपने को टेहरी की ओर से आने वाला गूजरों का मुखिया बतलाता था, यही बात बतलाई। पाकिस्तान बनने के बहुत पहलेसे इनलोगोंको मूर्ति-भंग करनेके लिये उकसायाजाताथा।

६८—जुलाहों का हाथ—

पहले गढ़वालमें घर-घर मुसलमान जुलाहे गाढ़ा बेचते

आते थे। यदि उनमेंसे कुछने धार्मिक आवेशमें आकर निर्जनमें पड़ी मूर्तियों पर अपना पराक्रम दिखाया हो तो असंभव नहीं।

६६—शून्य-मन्दिरों की मूर्तियां

गढ़वालमें अब भी सैकड़ों शून्य, ध्वस्त या परित्यक्त मंदिर मिलते हैं। बहुत-सी मूर्तियां लोग आकर अन्यत्र लेगये हैं। पर अधिकांश मूर्तियाँ मूर्ति-व्यापारी, जो तीर्थ यात्रियों का वेश बना कर आते हैं, उठा लेगये हैं।

१००—मन्दाकिनी उपत्यका के खंडहर—

आज गढ़वालमें सर्वत्र मन्दिरोंके खंडहर फैले हैं। पर रुद्र-प्रयागसे आगे मन्दाकिनीकी उपत्यका में प्राचीन मन्दिरोंके खंडहरों की जो भरमार है वह अन्यत्र नहीं है। ये सारे खंडहर इतने प्रचुर प्रमाणमें पग-पग पर मिलतेहैं, कि उन्हें देखकर इस धारणा की पुष्टि होती जातीहै कि इस प्रदेशके निवासियोंके इतिहास का अध्ययन करना आवश्यक है।

केवल वही व्यक्ति मन्दिर निर्माणके लिए उचित स्थानकी छांट कर सकते हैं, जो प्राकृतिक सौन्दर्य पर मुग्ध होना जानते हों। और वही व्यक्ति इतनी भारी संख्यामें कटी हुई शिलाओंसे सुदृढ़ मन्दिरोंका निर्माण करसकतेहैं जिन्हें धार्मिकताके अतिरिक्त ललित-कलाओंका पूरा बोध हो। वर्तमान कालमें नागपुर में जो लोग बसे हैं, क्या उन्हींके पूर्वजोंने इतने उत्तम और इतने सरल तथा इतने कलापूर्ण और सुदृढ़ मन्दिर बनाये हैं! जिन लोगोंने मन्दाकिनी उपत्यकामें प्राचीन मन्दिर बनाये हैं वे अवश्य धार्मिक व्यक्ति थे। क्योंकि यहां जो खंडहर मिलतेहैं, वे मन्दिरों, बावड़ियों और पूजास्थानों के हैं। राजमहलों, दूकानों, भोजनागारों नहीं। उन मन्दिर निर्माताओंकी दृष्टि अवश्य स्थायी और कला-पूर्ण मन्दिर बनानेकी ओर रही होगी। वे अवश्य उत्तम रुचि वाले लोग रहे होंगे, जिन्हें दिखावेकी अपेक्षा स्थायी और कला-

पूर्ण निर्माण करना अधिक पसन्द था। उनका कैसा इतिहास रहा होगा? क्या वे यहांके मूल निवासी, खस, किरात या नाग थे? क्या ये बाहरसे यहां विजेताके रूपमें आकर इस प्रदेशमें बनेथे? क्या वे यहांके मूल निवासी थे जिनपर बाहर की सभ्यताका प्रभाव पड़ा था? और और इतने सुसंस्कृत थे कि बाह्य प्रभाव से लाभ उठासकतेथे? क्या पांडवोंके समय से इधर आ बसने की जो परम्परा चलीथी, उसीके परिणाम यह मन्दिर तो नहीं हैं? इनका अध्ययन आवश्यक है।

काश्मीरके मन्दिरोंके खंडहर देखकर यंग हजबैंडनेभी उसी प्रकार के विचार व्यक्त किएथे। (यंगहजबैंड, कश्मीर, १२६-३७)

१०१–मूर्तियां और धार्मिक इतिहास निवेदिता का मत–

निवेदिताका अनुमानहै कि गढ़वालके मन्दिरोंकी मूर्तियों से इस प्रदेशके धार्मिक इतिहास पर महत्वपूर्ण प्रकाश पड़ता है। उनने विभिन्न तीर्थोंकी मूर्तियोंके आधार पर गढ़वालके धार्मिक इतिहास के कई युग बतलाये हैं।

१–बौद्ध धर्म और प्राक् ऐतिहासिक हिन्दू धर्मका युग जिस में महनक्षत्रोंकी पूजा, तथा दक्ष, गणेश, गरुड़ नरसिंह, आदि की पूजा मुख्य थी।

२–हिन्दू शिवकी पूजाकायुग जिसकी पूजा ब्रह्माके पश्चात् चली; जैसा गोपेश्वरके चतुर्मुख शिव, जोशीमठ और अगस्त्यमुनि के चतुर्मुख धर्मचक्र में प्रकट होता है।

३–देवी-पूजाका युग, जिसमें आगे चलकर शिवको देवी का पति और गणेशको देवीका पुत्र मान लिया गया, जैसा केदारनाथ और जोशीमठकी नवदुर्गाओंकी मूर्तियां और अनेक स्थानों को शिव पार्वती (हरगौरी) मूर्तियों से पता लगता है। आगे चलकर शिव अर्द्धनारीश्वर बनगया। शिवकी तीन प्रकारकी लिंग मूर्तियां मिलतीहैं। १–जैसी गुप्तकाशी और गोपेश्वर में, २–जैसा पाठगोदाम में ऊपर देवी धुरामें और ३–जैसे श्रीनगर के कमले-

श्वर मन्दिर में मिलती है।

४–सभवत: रामायणका युग-देवप्रयाग तथाअन्य स्थान जिनका नामकरण, रामसे जोड़कर कियागया है।

५-महाभारतकायुग जिसमें सत्यनारायणकी पूजा का प्रचार हुआ। इसके अनेक प्रमाण व्यास गंगा से केदारनाथ तक फैले हैं।

६–दक्षिणके प्रभावका युग—श्रीनगर के पास पांच पांडवों का मन्दिर, विल्वकेदार, केदारनाथ, मेयू चट्टी (नारायणकोटि) में शकराचार्य द्वारा प्रचारित शिव की पूजा।

७–मध्यकालीन वैष्णवधर्म, जिसके प्रमाण श्रीनगर गुप्तकाशी, मेथूचट्टी (नारायणकोटि) केदारनाथ और बदरीनारायण की घाटी में अनेक हैं।

८–नारायणको हटाकर शिवकी स्थापना, जैसा गुनकाशी में देखा जाता है। ऐसा अवश्य विशेष परिस्थितियों के कारण ही किया होगा।

यह सभव होसकता है कि विभिन्न हिन्दू देवताओंकी पूजा के उपरोक्त उल्लेख विभिन्न युगों में न होकर एक साथ विभिन्न स्थानों पर होते रहे हों। प्रत्येक स्थान पर पहले विभिन्न युगों के जो चिह्न रहे होंगे, उनमे से केवल बहुत थोड़े अब बचे हैं।
(निवेदिता, फुट फाल्स आव इंडियन हिस्टरी, २०७–८)

तीर्थ स्थानों के नामोंके सबधमे निवेदिताने एक विचित्र कल्पना कीहै उसका कहनाहै कि महाराष्ट्र और गुजरात में जिस लक्ष्मीनारायणकी उपासना प्रचलित है, उसी की पूजा बदरीनारायणमें होतीहै, और इस पवित्र तीर्थ प्रदेशकी घाटियोंमें होती है। हरिद्वार से लेकर केदारनाथ तकके तीर्थयात्रा मार्गके स्थानों के नामोंके लिए प्राचीन सत्यनारायण और शिवमें संघर्षके लिये प्राचीन सत्यनारायण और शिवमें संघर्ष चलाया। पर स्वदे वैष्णव धर्मका गुप्तकालमें जो नवजीवन हुआ उसीको श्रीनगरसे लेकर बदरीनाथ तकके स्थानों पर अधिकार करने में सफलता मिली।

(निवेदिता, उपरोक्त, १६६-६७) निवेदिता की धारणा से हम सहमत नहीं हैं।

१०४—हिमालय में माहेश्वर धर्म—

गढ़वालमें, और हिमालयके सभी भागोंमें प्राक् ऐतिहासिक युगसे ही शिवकी पूजा, अर्चाका प्रचार रहा है, और आज तक चला आता है। ईसा-विक्रमकी पहली शताब्दी में काश्मीर और उत्तर भारतके सम्राट कुषाण शैव थे। शिवकी पूजाके साथ ही नंदा आदि नामोंसे उमा की पूजा भी हिमालय में उतनी ही पुरानी है। गढ़वाल हिमालय में तो केदार कैलास तथा नन्दा-शिखर ही शिव और उमाके स्थान हैं। आज भी गढ़वाल माहेश्वर है। घर-घर शिव दुर्गा की पूजा होती है।

१८८२ में एटकिनसनने कुमांऊ और गढ़वालके प्रधान मन्दिरोंका वर्गीकरण इस प्रकार किया था।

	गढ़वाल	कुमांऊ
शिव-मन्दिर	३५०	२५०
वैष्णव-मन्दिर	६१	३५
नागराजा-मन्दिर	६५	—
शक्ति-मन्दिर	१३०	६४
काली-मन्दिर	४२	१८
	६४८	३६७

एटकिनसन ने ही लिखा था कि गढ़वालमें अनेक वैष्णव मन्दिरों को नागराजा मन्दिर या नागराजा-मन्दिरों को वैष्णव मन्दिर बतलाया गया है। क्योंकि गढ़वालमें नागराजा तथा विष्णु को प्रायः एक मानते हैं। शक्ति मन्दिर प्रायः शिव मन्दिरके साथ पाएगए और शिव मन्दिरोंमें भी देवी की मूर्तियां या हरगौरी मूर्तियां एक साथ मिलीं। अकेले देवियों के मन्दिर कम मिले। (एटकिनसन, हिमालयन डिस्ट्रिक्ट्स, खंड २ पृ० ७०२)

१०३—गढ़वाल में बौद्ध धर्म–

गढ़वालमें बौद्ध धर्मके अवशेष नहीं मिलते। बहुत ढूंढनेपर भी राहुल नाला चट्टीके पास एक छोटा सा स्तूप और बाड़ाहाट (उत्तरकाशी)में नागराजद्वारा अर्पित बुद्ध-मूर्तिही पासकोवेबदरी-नाथकी मूर्तिकोभी बुद्ध-मूर्ति मानते हैं।(राहुल,गढ़वाल१०६आदि)

ऐसा प्रतीत होता है कि गढ़वाल में कभी व्यापक रूपसे बौद्ध-धर्म का प्रचार न हुआ। हिमालयके कृषि और आखेट-प्रिय खस-किरातोंके लिए बौद्धधर्म-जैसा त्यागपूर्ण और उच्च मानसिक विकासकी अपेक्षा रखने वाला धर्म अत्यधिक जटिल था। इससे विश्वास होताहै कि यहांके निवासी आजके समान पहले भी ग्राम-देवताओंके उपासक, बलिदान-प्रिय, झाड़ा-ताड़ामें विश्वास रखने वाले और देवता नचानेवाले रहे होंगे। पर्वत-पर्वत, धार-धार नदी-नाले आज भी इन ग्राम-देवताओं के अड्डे हैं।

१०४–भागवत् वैष्णव धर्म—

भागवत् धर्मका मूल तीर्थ नरनारायणाश्रम ('बदरीनाथ) था। गुप्तकालमें भागवत धर्ममें नया उत्साह आया, उसमें इन तीर्थोंमें अनेक मन्दिरोंकी स्थापना हुई और अनेक सुन्दर मूर्तियां बनीं। जिनमें से कुछ आज तक चली आती हैं। आदि बदरी, और तपोवन के प्राचीन मन्दिर अवश्यही इस युगके हैं। गुप्तकाल की अनेक मूर्तियां खंडित या अखंड रूपमें गढ़वाल में मिलती हैं। रामानुज, रामानन्द और बल्लभ, तथा चैतन्यके समय जब वैष्णव धर्ममें नवीन उत्साह आयातो ऋषिकेश देवप्रयाग से लेकर बदरी-नाथ तकके नए वैष्णव मन्दिर बने और पुराने मन्दिरोंका जीर्णोद्धार हुआ। इस समय भी अनेक नई मूर्तियां गढ़वालमें आइं।

१०५–उदार स्मार्त-धर्म—

गढ़वालके मन्दिरोंकी मूर्तियोंसे स्पष्ट होजाता है कि यहां कभी किसी मत के कट्टर पोषक और अन्य मतोंके विरोधी लोग नहीं रहे। सिमली, आदिबदरी, जैसे वैष्णव-मन्दिरोंमें गणेश,

दुर्गा, हरगौरी, शिव, सूर्य सात्वत विष्णु, सत्यनारायण सब की मूर्तियां सब एक साथ मिलती हैं और सब की पूजा एक साथ होती है। बदरीनाथमें आदि केदार हैं। बदरीनाथके दर्शन से पूर्व केदारनाथ के दर्शन आवश्यक माने जाते हैं। ग्रामदेवताओंका भी तिरस्कार नहीं किया गया। घंटाकर्ण, क्षेत्रपाल, भैरव, हरू, लाटू, भूमिया, सिद्ध कालिका, चामुंडा, नृसिंह, गरुड़, हनुमान नन्दी, उद्धव, नारद आदि न जाने कितने देवी-देवता-गण, ऋषि मुनि और भक्तोंको यहांके मन्दिरोंमें एक साथ पधराया गया है। प्रत्येकको पृथक और विशिष्ट स्थान प्राप्त है। प्रत्येकका कुछ न कुछ संबंध मुख्य मन्दिरके देवता से जोड़ा हुआ मिलता है। प्रत्येकको भेंट-पूजा मिलती है।

हिन्दू धर्मके किसी भी पहलूके अध्ययनके लिए केदारखंड के मन्दिरोंका अध्ययन अत्यन्त आवश्यक है। यहां के मन्दिरों में नाना प्रकार की निर्माण शैलियां मिलती हैं, नाना प्रकार की मूर्तियां और द्वार पट्ट मिलते हैं और नाना प्रकारके ग्रामदेवताओं को प्रधान देवता के मन्दिरमें स्थान दिया गया है। आरम्भिक ईसाई धर्मके समान सनातन धर्ममें भी आदिवासियोंके देवी-देवताओंको प्रेमपूर्वक अपनाकर एक परिवारका बना लिया गया है। इस प्रदेश में हिन्दूधर्मके विभिन्न धार्मिक सम्प्रदायोंकी लहरें एकके पश्चात दूसरी शान्तिपूर्वक प्रविष्ट होती रहीं। कत्यूरियोंके उत्कर्षके संबधमें बौद्ध-धर्म विरोधी-आन्दोलन और बौद्ध मन्दिरोंके विध्वंस-लीला का जो कल्पना राहुलने . गढ़वाल पृ० १९५- ९६ की है, उसे माननेके लिए कोई प्रमाण नहीं है। यह प्रदेश सदासे उदार स्मार्त या उदार माहेश्वर बनारहा जिसमें ग्राम देवताओं तथा नन्दा (गौरी), और शिवके साथ बदरीनाथकी उपासना सदा चलती रही। निवेदिताने विभिन्न धार्मिक युगोंकी कल्पनाके लिए तीर्थ-स्थानों के जिन नामोंको और जिन मूर्तियोंको आधार माना है, वे इतने प्रा

अध्यायः—१६ उत्तराखंड की तीर्थयात्रा का आर्थिक और सामाजिक महत्व

यात्रियों की संख्या में उत्तरोत्तर वृद्धि

१–ट्रेल का अनुमान—

१८२०ई० (सं०१८७७) जब गढ़वाल को अंग्रेजी राज्य में मिले केवल ४ वर्ष हुए थे और यात्रा मार्गों की दशा अंग्रेजी राज्य से पहले जैसी थी, उसी प्रकार बनी हुई थी ट्रेलने लिखा था बदरीनाथ पहुँचने वाले यात्रियों की संख्या साधारण वर्षो में ७ से लेकर १० सहस्र तक होती है। इनमें अधिकांश जोगी और बैरागी होते हैं। जिस वर्ष हरिद्वार में कुंभका मेला लगता है उस वर्ष यात्रियों की संख्या कई गुना बढ़ जाती है। १८२० में इसीलिए २७ सहस्र यात्री बदरीनाथ पहुचे थे। इनके अतिरिक्त सहस्रों यात्री हैजा फैलनेके कारण मार्गसे लौट गए थे।

२–पौ का अनुमान—

ट्रेलसे पौन शताब्दी पश्चात् १८६४ई० (सं१६५१)मेंपौ ने लिखाथा साधारण वर्षोंमें बदरीनाथ जानेवाले यात्रियों की संख्या ४० से ५० सहस्र तक पहुंचती है, पर जिस वर्ष हरिद्वारमें कुंभ का मेला लगता है, यात्रियों की संख्या एक लाख तक पहुँच जाती है।

(पौ गढ़वाल सेटलमेंट रिपोर्ट, ७३)

३–आदम्स की गणना—

पौ से १४ वर्ष पश्चात् सन् १६१०,११ और १२ सम्वत्-१६६७-६ और ६६ में भारतके विभिन्न प्रान्तोंसे बदरीनाथ जाने वाले यात्रियों की संख्या और भी अधिक बढ़ती गई जैसा कि

म्न तालिकासे विदित होता है।

वर्ष	प्रांत	पुरुष	नारी	बच्चे	योग
१९१०	उत्तरप्रदेश	१५८५८	५६४३	४५०	
	बंगाल	१३०२	६०६	६१	
	मध्यप्रान्त	६८२	२६१	५९	
	पंजाब	११७३	७६७	६९	
	बंबई	११९७	३८२	५७	
	मद्रास	१९१	५३	१०	
	मैसूर	२१	२	—	
	हैदराबाद	२२२	१११	२७	
	मध्य भारत के देशी राज्य	१६८	८७	४	
	राजपूताना	४१३२	१२०६	१३६	
	विविध	२३५७	११७	२३	
	योग–	२७३९३	९३२४	८९३	३७६१०
१९११	उ०प्रदेश	९५३८	३५९३		३८५
	बंगाल	१३४७	५७२		०७
	मध्यभारत	९३२	९४२		२८
	पंजाब	११६	१३१८		६१
	बंबई	९६४	३९३		१८
	मद्रास	३१९	२०६		१५
	मैसूर	१५	—		—
	हैदराबाद	५०५	२५६		२१
	मध्यभारत के राज्य	५५१	०९४		२५
	राजपूताना	३१४९	१३३१		१२९

विविध	१६२८	१६१	२३	
योग–	२०२६६	८५६१	७३२	२६५६२
सन् १६१२ उ० प्रदेश	१२५०४	५५००	१६१	
बंगाल	१३०८	७४४	५	
मध्यभारत	१२१३	२६३	७	
पंजाब	१०४६	८५२	३५	
बंबई	४७१	१५७	८	
मद्रास	१२३	३६	२	
मैसूर	३	३	६	
हैदराबाद	६५२	२१६	२३	
मध्य भारत के राज्य	५४०	२८५	४०	
राजपूताना	४३८०	१०१६	३०	
विविध	१३५२	१२८	७	
योग–	२२८०२	[illegible]३५२	[illegible]१२	३३४३६

(आदम्स, पिलग्रिम रूट रिपोर्ट, ३२-३३)

आदम्सके उपरोक्त आंकड़े बदरीनाथ मन्दिरके रजिस्टरोंसे लिए हैं, पर उसने जांच करके कहा है कि जितने व्यक्ति बदरीनाथ पहुँचते हैं, उतने लिखे नहीं जाते, इस प्रकार उपरोक्त आंकड़ों को यदि १० प्रति संकड़ा बढ़ादिया जाए तो इस प्रकार यात्रियोंकी संख्या का अधिक अनुमान लग सकेगा। अर्थात १६११,१२ और १३ में बदरीनाथ पहुँचनेवाले यात्रियोंकी संख्या क्रमशः ४१३००,३२५०२ और ३८७०० मानी जाए तो सत्यके अधिक निकट होगा।

४–टर्नर का अनुमान—

१९३१ की जन गणनामें टर्नरने अनुमान लगाकर कहा–प्रति वर्ष मई से अक्टूबर तक हिन्दुस्थान के विभिन्न भागों से लगभग ५० सहस्र यात्री बदरीनाथ-केदारनाथकी यात्रा करते हैं। सड़कों की उन्नति से यात्रियोंकी संख्या में बहुत वृद्धि होगई है। (टर्नर यू पी सेंसस रिपोर्ट १९३१ भाग ६३९)

५- वर्तमान समय में यात्रियों की संख्या—

उत्तर प्रदेश सरकार के प्रकाशन-द्वितीय पंचवर्षीय जिला योजना गढ़वाल में पृष्ठ १४ पर लिखा है "प्रतिवर्ष लाखों यात्री पर्यटक देश-विदेशसे इन तीर्थों को आते हैं" पर सच्ची बात यह है कि लगभग एक लाख व्यक्ति प्रति वर्ष बदरीनाथ केदारनाथ पहुँचते हैं। (आशातो यह थी कि आयोजन विभाग अधिक सही आकडे प्रकाशित करता, किन्तु उपरोक्त रिपोर्टमें इस ओर ध्यान नहीं दिया गया)

६–यात्रियों द्वारा गढ़वालकी आय—

विभिन्न लेखकोंने यात्रा मार्गसे होने वाली आय का अनुमान विभिन्न प्रकारसे कियाहै। १८९४में पौ ने यात्रियोंकी संख्या का अनुमान ५० सहस्र और उनसे होनेवाली आयका अनुमान ५ लाख रुपया लगायाथा। उसने लिखा था यात्रा मार्ग पर अन्न रुपये का दो से तीन सेर तक बिकता है, इसलिए २० रुपए से कममें हरिद्वार से बदरीनाथ जाना और लौटना संभव नहीं है। यात्रियोंमें बहुतसे साधू-सन्यासी और भिखारी होते हैं, किन्तु, बहुतसे अपने लिए और अपनी सामिग्रीके लिए मजूर लगाते हैं। इस प्रकार गढ़वालको यात्रा मार्गसे होने वाली आय ५ लाख रुपएसे कम नहीं होसकती। किन्तु इस आय का बहुत बड़ा भाग

मैदानसे लाए गए अन्न का भाड़ा चुकाने में व्यय होजाता है,
(पी, गढ़वाल सेटलमेंट रिपोर्ट, ७२)

यात्रा मार्गपर गढ़वालमें यात्रियों के हाथ आवश्यक खाद्य वस्तुएं और लकड़ी बेचना, यद्यपि सही अर्थमें व्यापार तो नहीं कहा जासकता फिरभी उसका कुछ महत्व अवश्य है, क्योंकि यह यहां के निवासियोंकी आयका एक मुख्य साधन है। यात्रा मार्ग गढ़वालमें लछमन झूलेसे आरंभ होता है और गंगाजीकी घाटीमें होता हुआ देव प्रयाग, श्रीनगर, रुद्र प्रयाग, केदारनाथ, बदरीनाथ तक पहुँचता है। लौटते समय इसी घाटीमें मार्ग कर्ण प्रयाग तक आता है, यहां से दो मार्ग होजाते हैं-पूर्वके यात्री आदि-बदरी और लोभापट्टी होकर पुनआखाल घाटे के पास जिले से बाहर चले जाते हैं और द्वाराहाट, भीमताल होकर काठगोदाम पहुँचते हैं। पंजाब जानेवाले यात्री घाटीमें श्रीनगर तक आकर या तो कोटद्वार पहुँचते हैं अथवा सीधे हरिद्वार पहुँच जाते हैं।
(पी, उपरोक्त, २७)

७–चट्टियां—

इन सारे मार्गों पर प्रत्येक पड़ाव या चट्टी पर गांववालों या व्यवसायी बनियोंने अपनी दूकानें बनाई हैं जहां वे यात्रा-कालमें यात्रियोंके पास भोजनसामिग्री वेचते हैं। तल्लाढांगू और नागपुरमें यात्रा मार्गके निकटके गांवों के निवासियोंने ही दूकानें (चट्टियां) बनाई हैं और वे ही वहां व्यापार करते हैं। किन्तु शेष यात्रा मार्ग में अधिकांश अन्न की दुकानें अल्मोड़ा और श्रीनगरके बनियों की हैं। कटूलस्यू के सुमाड़ी गांवके ब्राह्मणोंने भी कुछ दुकानें खोली हैं। कई स्थानों में चट्टी (दूकान) के स्वामी तो गांव वाले होते हैं; पर वे स्वयं वहां दूकान न खोलकर उसे बनियों के पास किराए पर सौंप देते हैं। इससे उन्हें यात्रा-

कालमें कुल २० रुपए से लेकर ५० रुपए तक किराया मिल जाता है। १८८३ में घाट चट्टीमें एक दूकान यात्राकाल के लिए ८०रु० किराए में चढ़ी थी। बदरीनाथमें तो दूकानोंके स्वामी बनिया ही हैं, (पौ, उपरोक्त २७)

८—लकड़ी दूध और फल—

पौ ने लिखाहै सारे यात्रा मार्ग पर गांव वाले लकड़ी,साग-सब्जी और फल यात्रियों को बेचते हैं। कभी-कभी वे दूध भी बेचते हैं। पर इस वस्तुका व्यापार प्रायः सुमाड़ी-निवासियों के हाथमें है। इनके पास भैंसोंके बड़े-बड़े गल्ले होते हैं। ज्योंही यात्रा मार्ग आरंभ होता है, ये अपनी भैंसोंको लेकर यात्रा मार्ग में उचित स्थानों पर पहुँच जाते हैं। (पौ, उपरोक्त, २७)

९—भार-वाहन—

यात्रा मार्ग पर यात्रियोंको ढोनेसे अथवा उनकी सामिग्री ढोने से भी पर्याप्त आय होजाती है। (पौ, उपरोक्त, २७)

यात्रा मार्गसे होनेवाली आय का जो अनुमान पौने लगाया है वह अधूरा है, उसमें दो प्रकार की आय, जो बहुत महत्वपूर्ण हैं, छोड़ दी गई हैं, (१) पंडोंको मिलने वाला धन और (२) मन्दिरों में चढ़ने वाला धन। यात्रा मार्गों पर यात्राकाल में सड़क, पुल, स्वास्थ्य विभाग आदि के कार्यों में मजूरी से होने वाली आय इसके अतिरिक्त है।

१०—यात्रियों द्वारा व्यय—

यात्रा मार्गसे कितनी आय होती है, इसका अनुमान लगाने का सरल साधन यह है कि यह अनुमान लगाया जाए कि इस मार्ग पर यात्री को कितना रुपया व्यय करना पड़ता है। यात्री के मुख्य व्यय. ऋषिकेश पहुँचने के व्यय और तैय्यारीको

छोड़कर मुख्यत: इसप्रकार होतेहैं (१) मोटरलारी का किराया (२) मार्ग में भोजन, (३) तीर्थों और मन्दिरों में भेंट, (४) पंडों को भेंट, (५) पैदल मार्ग में कुलियों की मजूरी, इनके अतिरिक्त (६) जो लोग पैदल मार्ग पर घोड़े या मनुष्यों पर चढ़कर चलते हैं, उनका वाहन व्यय। अपने अनुमान का आधार हम ऋषिकेश से केदारनाथ-बदरीनाथकी यात्रा रखेंगे।

केदार-बदरीयात्रा पर यात्रीको निम्न दूरी के लिये मोटरें मिलती हैं।

(१) ऋषिकेश से रुद्रप्रयाग	६० मील,
(२) रुद्रप्रयाग से गुप्तकाशी	२५ मील,
(३) गुप्तकाशी से (वापिस) रुद्रप्रयाग	२५ मील
(४) रुद्रप्रयाग से जोशीमठ	७० मील,
(५) जोशीमठ से ऋषिकेश (वापिस)	१६० मील,
योग—	३७०

— इस मार्गपर भीड़ होने के कारण और उतावली करने तथा समय की बचत के लिये व्याकुल रहने के कारण यात्रियोंमें से अनेक लारी में अपने लिये स्थान सुरक्षित कराने के लिये चार आना प्रति व्यक्ति और दे देते हैं। जो परोक्षद्वार से टिकट लेते हैं या किसी व्यक्ति द्वारा ऐसा करवाते हैं उन्हें "पुरस्कार या भेंट पूजा" के रूप में कुछ और भी चढ़ाना पड़ता है।

मोटर से चलने पर यात्री यात्रा के कष्ट से बच जाताहै, समय की बचत होती है, जो रुपया तीर्थों में चढ़ाना होना था वह लारी की भेंट चढ़ता है, कुली पर और चट्टियों में होने वाला व्यय बच जाता है। पर साथही प्राकृतिक दृश्यों को देखने और पैदल यात्रा के आनन्द से भी यात्री वंचित होजाता है। सारे यात्रा मार्गमें ऋषिकेश से केदारनाथ होकर बदरीनाथ जाने और

ापिस ऋषिकेश या कोटद्वारा पहुँचनेमें कम ३ सप्ताह से अधिक मय नहीलगता और इसीसमयमें उसे केदार और बदरीनाथपुरी ं कुल दो या तीन दिन ठहरने का भी अवकाश मिल जाता है। न्हीं तीन सप्ताह का भोजन व्यय और पैदल मार्ग में मजूरों की ज़ूरी उसे देनी पड़ती है।

तीर्थों में दर्शन करने और भेंट चढ़ाने का अवसर केवल वप्रयाग, श्रीनगर, रुद्रप्रयाग, गुप्तकाशी तथा आगे के पैदलमार्ग के तीर्थों में तथा जोशीमठ, और बदरीनाथ में मिलता है। पंडा सुफल भेंट बदरीनाथ में लेताहै। इस प्रकार यात्रामार्ग में मोटर मार्ग पर मोटर से यात्रा करने और पैदल मार्ग पर एक मजूर लेकर पैदल यात्रा करने वाले साधारण वित्तके यात्री का व्यय इस प्रकार होता है:—

१—सारे मार्ग पर जाने और लौटने का मोटर व्यय और भेंट	६०रु०
२—भोजन व्यय २१ दिन	४२रु०
३—प्रति दिन ४ बार चाय	१२रु०
४—पैदल मार्ग में मजूर	५०रु०
५—तीर्थों मन्दिरों में भेंट	५०रु०
६—गुमास्ता और भिक्षुकादि	३५रु०
७—अपने पंडाको सुफल भेंट	५१रु०
योग:—	३०० रु०

यद्यपि अनेक धनी व्यक्ति इससे कई गुना अधिक व्यय करते हैं, पर कुछ लोग इससे कम में भी अपना निर्वाह कर लेते हैं। यदि हम इस ३०, रुपये को औसत व्यय मानें तो १ लाख यात्री गढ़वाल में लगभग तीन करोड़ रुपया व्यय करते हैं।

११—यात्रियों से होने वाली आय का वितरण—

लगभग ३ करोड़ रुपया जो यात्री इस जिलेमें प्रतिवर्ष

व्यय करते हैं, उसका वितरण इस प्रकार होता है।

	प्रतिशत	रु०
१–ऋषिकेश और कोटद्वारकी मोटर कम्पनियां	२०	६०लाख
२–तीर्थों और मंदिरों की भेंट (पंडे-पुजारी और मन्दिर कमेटी)	१६.६	५०लाख
३–केदार-बदरी के पंडों की भेंट लगभग	१६.६	५१लाख
४–गुमास्ता आदिकी गाइडकी भेंट	८.३	२५ ,,
५–भिक्षुकादि सार्वजनिक संस्थाएं	३.३	१० ,,
६–मजूर	१६.६	५० ,,
७–चट्टी वाले जो भोजनसामिग्री देचते हैं-	१६.६	५४ ,,
योगः—		३करोड़

मोटर कम्पनियों के ६० लाख रुपये में अधिकांश रुपया जिले के बाहर या जिलेके भीतर के धनी मोटर मालिकों के पास चला जाता है। इसमें से लगभग १० लाख रुपया जिलेमें रहने वाले मोटर कर्मचारियों को मिलता है। मजूरी के ५० लाखमें से २५ लाख नैपाल से आने वाले डोटियाल कुली ले लेते हैं और लगभग १५ लाख टेहरी-गढ़वाल के मजूर तथा लगभग १० लाख गढवाल के मजूर पाते हैं। चट्टियोंको मिलने वाले ५४ लाख रुपये में से आधे से अधिक लगभग ३० लाख रुपये बड़े व्यापारियोंके हाथ चला जाता है, पंडे-पुजारी, मन्दिर कमेटी, और गुमास्तोंके पास ३ करोड में एक करोड २६ लाख रुपया चला जाता है। पैदल मार्ग पर गांव-गांव में लोगोंको पहले जिस प्रकार यात्रा मार्ग से अपने निर्वाह के लिए नमक, गुण, कपड़ा, भूमिकर और अन्य आवश्यक व्ययों के लिए " वर्ष भर का गुजारा " कमाने की सुविधा थी, वह अब नहीं रही है। अब यात्रामार्ग

की आय का ७५फीसदीसे अधिक थोड़े से व्यक्ति, धनी मोटर-स्वामी या पंडोंके पास चला जाता है, जो पंडे नहीं हैं जिनकी मोटरें नहीं हैं और जो पीठ पर दूसरों का भार उठा लेजाने में असमर्थ हैं, उनके लिए यात्रा मार्ग से लाभ उठाने के साधन लुप्त होगए हैं। यात्रा मार्गकी आयका वितरण अब व्यापक नहीं रहाहै और साधारण व्यक्तियों को उससे लाभ उठाने की सुविधा नहीं है।

१२–मोटर यातायातका व्यापक प्रभाव—

मोटर यातायात चालू होजाने पर तीव्र वेगसे इस जिले में जो व्यापक परिवर्तन आरहे हैं, या आचुके हैं, यद्यपि उनका अध्ययन अत्यन्त मनोरंजक और लाभप्रद होगा. पर यहां उन सब परिवर्तनोंके अध्ययन के लिए स्थान नहीं है। अस्तु यहां मोटर यातायातके द्वारा यात्रा मार्गके निकट प्रदेश पर पड़नेवाले प्रभावोंका ही संक्षिप्त उल्लेख किया जाएगा। ये प्रभाव आर्थिक सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक सभी प्रकारके हैं।

१३–चट्टियों का विनाश—

मोटर यातायात आरंभ होते ही चट्टियोंका विनाश आरंभ होजाता है, यात्रा सड़कों पर लारियां चट्टियों पर धूल फेंकती और चट्टी-स्वामियों के भाग्य पर मिट्टी डालती हुई शोर मचाती हुई दौड़ती हैं। अनेक चट्टियों के मकानोंको नई मोटर सड़क बनानेके लिए तोड़ दिया गया है। और सैकड़ोंको चट्टी स्वामियों ने स्वयं ही या तो उखाड़ फेंका है अथवा उन्हें छोड़ दिया है। आज ऋषिकेशसे बदरीनाथ तक सारे पैदल यात्रामार्ग में सैकड़ों घर इसी प्रकार वीरान पड़े नष्ट होरहे हैं। इससे कितनी सम्पत्ति का विनाश हुआ है इसका कुछ अनुमान लगाना आवश्यक है।

मार्ग	चट्टियोंकी संख्या
१-लक्ष्मणझूला से देवप्रयाग-	१६
२-देवप्रयाग से श्रीनगर-	८
३-श्रीनगर से रुद्रप्रयाग-	७
४-रुद्रप्रयाग से गुप्तकाशी-	११
५-रुद्रप्रयाग से जोशीमठ-	३०
६-कर्णप्रयाग से पुनआखाल-	२१
	९३

इनके अतिरिक्त रुद्रप्रयाग से गुप्तकाशी मोटर पहुँचने से नालासे ऊखीमठ होकर चमोली जानेवाले मार्गकी चट्टियां विनाश निकट पहुंच गई हैं। इन ९३ चट्टियों के उजाड़ होजानेसे इनके साथ प्रत्येक चट्टी की कई दूकानें, धर्मशालाएं और मंदिर भी नष्ट होगए हैं। कई मील सड़कें और पुल बेकार पड़गए हैं, एक दिन जिन चट्टियों में इतनी बड़ी भीड़ यात्रियोंकी लगी रहती थी आज वहां उल्लू बोलते हैं। अकेले आदि बदरी चट्टीमें नीचे लिखे मकान बेकार पड़े हैं—

१४—आदि बदरीचट्टी में नष्ट होने वाली सम्पत्ति—

स्वामी	मकानों की संख्या	कमरों की संख्या
१-रघुनाथसिंह कुंवर साहबकी धर्मशाला	२	१०
२-कलीराम	३	१७
३-रामलाल चौधरी	तिमंजला १	९ बड़े-बड़े
४-इन्द्रलाल नन्दलाल शाह	४	१६
५-मनोहरलाल शाह	१	५
६-महानन्द	१	५

७-गंगासिंह नेगी	१	४
८-केशरसिंह आदि	१	६
९-गोविन्दसिंह आदि	२	७
१०-धर्मानन्द थापली	१	४
११-मुरलीधर आदि	१	४
१२-धर्मशाला मन्दिर बदरीनाथ	१	५ बरामदा
१३-भोगशाला मन्दिर	१	१
१४-प्राचीन मन्दिर	१४	
१५-सत्यनारायण मन्दिर नया	१	
१६-पी डवल्यू डी बंगला	१	४

ये सारे मकान पठाल-स्लेटसे छाए हुए हैं। आज की मंहगाई के दिनों में इस सारी सम्पत्ति का मूल्य मन्दिरों और बंगले को छोड़कर एक लाख रुपए से कम न होगा।

१५—चट्टियों के विनाश से आर्थिक क्षति—

यदि हम औसत हिसाब से प्रत्येक चट्टी पर केवल १० दूकानें रखें तो चट्टी की दूकानों का मूल्य आजके भाव से कम से कम ५० सहस्र रुपए होगा। और यदि उपरोक्त ८३ चट्टियों में से केवल ८० को ही सर्वथा उजाड़ मानें, तो भी ८०×५०००० अर्थात कमसे कम ४० लाख रुपए की अकेली दूकानें ही चट्टियों पर खंडहर बनचुकी हैं और यदि उनके साथ धर्मशालाएं, मन्दिर और औषधालयभी जोड़ दिए जाएं तो कमसे कम २ करोड़ रुपए की सम्पत्ति मोटरमार्ग बनने से नष्ट होगई है। यदि इनके साथ टेहरी में ढंडेलगांव और उत्तरकाशी तक मोटर मार्ग बनजाने से हुई क्षति भी जोड़ दी जाए तो हानि इससे दुगनी अर्थात चार करोड़ से भी अधिक निकलेगी, अर्थात दोनों जिलों में औसत

हिसाब प्रत्येक व्यक्ति को चालीस रुपए की हानि अकेले यात्रा मार्गकी चट्टियों के विनाश से होगई है।

इन ८० चट्टियोंके नष्ट होजाने से कम १००० दुकानदारों की आजीविका नष्ट होगई है। सारे यात्रा मार्ग के दोनों ओर स्थित ५ मील से लेकर १० मील तक के गांवों के निवासियों को जो लाभ साग, सबजी, फल, दूध लकड़ी, घास और अन्य खाद्य सामिग्री बेचनेसे होता था, वह सब मारा गया है। यात्रा मार्ग के निकटके गांवों के निर्धन व्यक्ति, अनाथ और विधवाएं प्रतिवर्ष यात्रा मार्ग पर इन वस्तुओं के विक्रय से अपने आवश्यक व्यय के लिए १०० से लेकर २०० रुपए तक कमालेते थे। यदि उपरोक्त ६३ चट्टियों पर ऐसा लाभ उठाने वाले केवल २ गांव प्रति चट्टी अर्थात् केवल २०० गांव मानें और प्रत्येक गांवमें केवल १० परिवार ही ऐसा लाभ उठाने वाले हों और वे केवल प्रति दिन १ रु के हिसाब से यात्राकाल के १०० दिनों में प्रति परिवार १००रु० को लकड़ी,घास, दूध, साग-सबजी फल आदि बेचकर प्राप्त करते रहे हों तो अकेले गढ़वाल में कमसे कम दो लाख रुपया प्रतिवर्ष की हानि हुई है, जो अब पूरी नहीं होसकती। ज्यों-ज्यों मोटर मार्ग बढ़ते जारहे हैं, त्यों-त्यों यह हानि अधिकाधिक बढ़ती जा रही है, और जिनका आधार यात्रा मार्ग पर था, उन्हें अपनी आजीविका के नए साधन ढूंढने पड़ रहे हैं। और अब केवल कृषि पर निर्भर रहने वालों की संख्या बढ़ती जारही है।

१६-बढ़ती हुई बेकारी—

१९५१ में राजेश्वरी प्रसाद ने लिखा था—१९५१ में इस जिले में कृषि पर निर्भर व्यक्तियों की संख्या पूरी जनसंख्याका ९०-४ प्रति सैकड़ा होगई, पचास वर्ष पहले १९०१ में ऐसे व्य-

क्तियों की संख्या पूरी जन संख्याका ८६'३ प्रति सैकड़ा थी। १६२१ में केवल ४५०४४८ व्यक्ति ही कृषि पर निर्भर थे। ३०वर्ष पश्चात् यह संख्या बढ़कर ५७८३०८ होगई अर्थात् २८'४ प्रति सैकड़ा बढ़गई, जब कि कृषि भूमि में कोई महत्वपूर्ण वृद्धि न हुई। स्वयं कृषि करने वाले व्यक्तियोंकी संख्या सारी जनसंख्या के प्रति सैकड़ा के रूप में घटगईहै और स्वयं कुछ न कुछ कमाने वाले और कृषि पर निर्भर रहनेवालों की संख्या सारी जनसंख्या के प्रति सैकड़ाके रूप में बढ़गई है। १६२१ में केवल ३१'६ प्रति सैकड़ा व्यक्ति स्वयं न कमाने वाले कृषि पर निर्भर (नौन,अर्निंग डिपेंडेंट) थे। १६५१ में इनकी संख्या बढ़कर ४३'२ प्रति सैकड़ा होगई, यह बढ़ती हुई बेकारी का तथा अल्पकालिक रोजगार मिलने का सूचक है, (राजेश्वरी प्रसाद, सैंसस हैंड बुक गढ़वाल, १६५१ पृ० ६)

इसी प्रकार टेहरी गढ़वालके संबंध में उसी विद्वान ने लिखा था,-इस जिलेमें १६५१ में कृषि पर निर्भर व्यक्तियों की संख्या सारी जनसंख्याक६१'२ प्रति सैकड़ा थी। दुर्भाग्यपूर्ण बात यह है कि इस जिलेमें १६०१ से लेकर कृषि पर निर्भर जनताकी संख्या सारी जनसंख्या के प्रति सैकड़ाके रूपमें निरंतर बढ़ती गई है। १६०१ में सारी जनसंख्या का केवल ८७.४ प्रति सैकड़ा जनता कृषि पर निर्भर थी। पचास वर्ष में ऐसी जनता बढ़कर ६१'२ प्रति सैकड़ा होगई। इससे खेतोंके विभाजन में अधिकाधिक वृद्धि हुई है और धरती पर भार बढ़ता चला गया है, १६२१ में जहां ३०१४३० व्यक्ति कृषि पर निर्भर थे वहां १६५१ में ३७५७८१ व्यक्ति कृषि पर निर्भर रहने लगे अर्थात् २५'७ प्रति सैकड़ा वृद्धि होगई है। इसलिए स्वयं न कमाने पर भी कृषि पर निर्भर रहने वालों कीसंख्या और प्रति सैकड़ा बढ़गए हैं। ऐसे व्यक्तियों की

संख्या १६२१ में सारी जनसंख्या का केवल १२.७ प्रति सैकड़ा थी, जो बढ़कर १६५१ में ३६.१ प्रति सैकड़ा होगई। यह सब बढ़ती हुई वेकारी और अल्पकालिक रोजगार का सूचक है। इसलिए जनता को गृहउद्योगों और अन्य व्यवसायोंपर लगाने से और कृषिकों को सहायक व्यवसाय देने परही जिलेमें फैली हुई वर्तमान आर्थिक विषमता दूरकी जासकती है। (राजेश्वरी प्रसाद सेंसस हैंडबुक टेहरी, १६५१, पृ०४)

मोटर—यातायात के साधनों की सुविधा से अन्य जिलों को भले ही आर्थिक लाभ पहुँचा हो, टेहरी और गढ़वाल में इसके विपरीत हुआ है। क्योंकि यहां की कमसे कम २५ प्रति सैकड़ा जनता का जीवन यात्रामार्ग से बंधा था। मोटर यातायात होनेसे उसमें भीषण परिवर्तन होगया है। १६५१ से अबतक और भी अधिक परिवर्तन आयाहै जिसके साक्षी वे त्यक्त चट्टियों के मकान और मन्दिर हैं जो पैदल यात्रामार्ग पर एक-एक दो-दो मील पर मिलते हैं।

१७–भिक्षा मांगने की प्रथा—

यात्रा मार्गका एक दूसरा प्रभाव यह दिखाई देता है कि तीर्थों में और तीर्थ मार्गों पर बच्चे, वृद्ध कभी-कभी युवा पुरुष और नारियां भी भिक्षा मागते दिखाई देते हैं। बदरीनाथ मार्ग में तो माणा तक सर्वत्र बच्चे यात्रियों को घेरकर मांगने लगते हैं। लछमन झूलासे लेकर आगे सारे यात्रा मार्ग पर जब पैदल मार्ग चलता था, स्थान-स्थान पर भिक्षा मांगने वाले हाथ फैलाए मिलते थे। "यात्रामार्ग में यदि कोई ग्राम मिलता है तो युवा स्त्रियां और बालक-बालिकाएं यात्रियोंके पास आकर हाथ पसारते ओर कहते हैं,–" ऐ सेठजी ! ऐ राना ! सुई धागा दो, पाई पैसा

दो ! ए राना ! दे राना !"

सुई-धागा और पैसा छोड़कर वे कुछ नहीं मांगती, यदि पूरा एक पैसा मिलजाए तो उन्हें बहुत प्रसन्नता होती है, मानो कोई अप्रत्याशित ऐश्वर्य हाथ लगगया हो। सुई-धागेकी भी इन्हें अद्भुत चाह है। ये वस्तुएं गढ़वाल जिलेमें नहीं मिलतीं (सान्याल महा प्रस्थानके पथ पर, १६)

भिक्षा मांगने की यह प्रवृत्ति सारे तीर्थोंमें देखी जाती है। यह तीर्थयात्रा का अभिशाप है जो मनुष्य को अकारण दूसरे के आगे हाथ फैलाना सिखाता है। अमरनाथ के मार्ग पर पहलगांव में छोटे-छोटे खिलौने जैसे बच्चे यात्रियोंको देखतेही दौड़ आतेहैं और हाथ फैलाकर कहतेहैं—"सेठ साब ! पैसा दो।" उनकी प्यारी सूरत और स्वस्थ शरीर को देखकर जहां हर्ष होता है वहां उनकी मांगनेकी वृत्ति पर क्षोभ भी होता है। इसमें दोष वास्तव में बच्चोंका नहीं है, उन व्यक्तियों का है जिन्होंने उन्हें पैसे दे-देकर भिखारी बनादिया है।" (यशपालजैन, जय अमरनाथ, ३८)

"हम लोगोंके टट्टुओं को देखकर दो नन्हीं-नन्हीं बालिकाएं दौड़ी आईं और आदतके अनुसार उन्होंने हाथ फैलादिए। उनके चेहरे फूल-से खिलेथे, सेव जैसे सुर्ख, लेकिन कपड़े निहायत गन्दे। वे पैसे के लिए रट लगाए हुई थीं। हम लोग देर तक उनकी ओर देखते रहे। फिर मैंने कहा,—'मांगो मत' मनको बड़ा बुरा लगा। इतनी ऊँचाई पर प्रकृतिके अलौकिक सौन्दर्य के बीच मानव का याचक रूप हृदय पर बड़ी चोट करताथा। पैसे देनेकी जगह यदि इन बच्चों के लिए ऐसी वस्तुएं लेजाएं जिनसे ज्ञानकी वृद्धि हो तो उनका स्तर ऊँचा उठाने में सहायता मिले। लेकिन इतनी

दूरदर्शिता किनोंमें है ? (यशपाल जैन, जय अमरनाथ ३८-३८)

१८-गङ्गाजल विक्रय—

गङ्गाजल की पवित्रता के संबंध में सारे भारतके हिन्दुओं में इतनी श्रद्धा है कि जो तीर्थ यात्रा नहीं कर सकते वे गङ्गोत्तरी के गङ्गाजलको खरीद कर प्राप्त करना चाहते हैं। उत्तरकाशी के निकट के पहाड़ोंके पुरुषों का एक व्यवसाय है। वह गङ्गाजल लेकर संयुक्त प्रांत, बिहार और दूर दूर तक चले जाते हैं। इस इलाके के सारे राजपूत ब्राह्मण बनकर गङ्गाजल बेचते फिरते हैं। गङ्गाजल भी बहुत कम होता है, अधिकतर तो कूपजल, नदी-जलही होता है। जहां जल खतम हुआ फिर गङ्गाजली भरली जाती है। गङ्गोत्तरी के आसपासके लोगों को इससे खासी आम-दनी होजाती है। ये लोग जाड़ों के आरंभमें मैदान में चलेजाते हैं और जून में लौटते हैं, मालूम हुआ गङ्गाजलका व्यापार कुछ व्यवस्थित रूप धारण कर चुका है। हरिद्वार के लाला करनसिंह इन्हें दो रुपए सैकड़े (मासिक) सूद पर रुपया कर्ज देते हैं। लौटते समय ये लोग सूद-मूल लौटा देते हैं। (राहुल, मेरी जीवनयात्रा, भाग २, ६७४-७५)

१६-तीर्थोंकी पवित्रता नष्ट—

यात्रा मार्गोंमें कठिनाइयां ज्यों-ज्यों दूर होरही हैं त्यों-त्यों ये उत्तराखंडके शान्त, निर्जन और तपस्याके योग्य पवित्र तीर्थ साधारण पहाड़ी सैर के प्रदेश बनते जारहे हैं। ये अपनी प्राचीन शान्ति और सरलता को खो चुके हैं। एक शताब्दी पूर्व इनमें जो आनन्द आता था वह बहुत घट चुका है। नगरों की सारी विलासिता, ऊँचे भव्यप्रासाद, बिजली, रेडियो, फिल्मीगाने नारियों की रंग बिरंगी विलास पूर्ण भड़कीली वेशभूषा सब यहां पहुँचने

लगी है।

चौंतीस साल पहले सन् १६०६ (सं०१६६६)में ऋषिकेश तपोवन था, अब वह अयोध्या की तरह एक शहर के रूप में परिणित होगया है। और साधुओं में वही जीवन दिखाई देता है जो अयोध्यामें। उत्तरकाशी में भी साधुओं की जमात बढ़ती जा रही है। कई अच्छे- अच्छे मकान बनगए हैं। उत्तरकाशी भी ऋषिकेश के कदमों पर चल रही है। अब दुकानें गङ्गोत्तरी में भी बढ़ रही हैं। और वह भी उस दिन का सपना देख रही है जबकि यहा भी कम से कम गर्मियों के लिए ऋषिकेश बस जाएगा। (राहुल. मेरी जीवनयात्रा, भाग २, ६६८)

"४१ वर्ष पहले केदारनाथ के मकानों की अपेक्षा आजके मकान ज्यादा बड़े और अच्छे हैं, उनकी संख्या भी अधिक है। कालीकमली वाली धर्मशाला के उस दोमहले भवनको भी देखा जिसमें मैं शिष्य बनने की इच्छासे स्वामी धर्मदासके साथ ठहरा था। लेकिन अब यह धर्मशाला का छोटा सा भाग है। वस्तुत: पिछले ४० सालोंमें हमारे धर्मभीरु सेठों ने दो-दो विश्व युद्धोंकी लक्ष्मीकी बाढ़ोंसे जो लाभ उठाया, उसका काफी प्रभाव इन तीर्थ पुरियों में दिखाई पड़ता है, (राहुल-गढ़वाल, ४०७)

यात्राओं की सरलता किस प्रकार पवित्रता और श्रद्धा को नष्ट करदेती है इस संबध में ट्रेल की आलोचना करने वाले नोईहम्के विरुद्ध आगरा अखबार में एक अंगरेज ने छपवाया था १५ मूर्तिपूजाक विनाशके लिए सबसे उत्तम उपाय यहहै कि तीर्थों की यात्रा इतनी सुगम करदो जाए कि उनका महत्व मिट्टी में मिलजाए, मुंशी ने लिखा है:-जब मैं बदरीनाथ यात्रासे लौटकर पिपलकोटो पहुँचा तो हमारी विदाई के उपलक्ष्य में जो उत्सव

किया गया उसमें लाउडस्पीकरमें सिनेमा का एक तुच्छ रुचिवाला गीत चिल्ला रहाथा। मेरे कान इससे फूट गए, मैं चाहता हूँ लोग ऐसे पवित्र स्थानों का वातावरण इतनी तुच्छ रुचि दिखाकर नष्ट न करें।" (मुंशी, बदरीनाथ, ४८-४६)

पर इच्छा रहते हुए भी हम अपने तीर्थोंकी पवित्रता अक्षुण्ण बनाए रखने में असमर्थ हैं। जितने तीव्र वेग से हमारी मोटर लारियां दौड़रही हैं उतने ही तीव्र वेग से तीर्थों से पवित्रता और शान्ति भाग रही हैं। "कालचक्र घूमता रहता है, अब यात्रा का पहले जैसा रूप नहीं है। थोड़े दिनों में स्यात् सर्वत्र मोटरकी सड़क बन जाएगी, हवाई जहाज भी उतरने लगेंगे, नगर बस जाएंगे। बिजली का प्रकाश होगा। चट्टियों में यात्रियों की जगह होटलों में पर्यटक ठहरेंगे, वनकी स्तब्धताको चीरकर सिनेमा के गानों की ध्वनि चतुर्दिक व्याप्त होगी, नये लोगों, नेताओं, संस्थाओं, व्यापारियों की स्मृति को चिरस्थाई बनाने के लिए स्थानों के नाम रखे जाएंगे और संभवतः नामोंका लोप होजाएगा, यह सब अच्छा होगा या बुरा ? अपने-अपने दृष्टिकोण से इस प्रश्न का उत्तर दिया जासकता है, मेरे जैसे व्यक्तियोंकी यही भगवान से प्रार्थना है कि इस स्थल की मर्यादा अक्षुण्ण बनी रहे। और यह उस अतीत और उस अनागत की याद दिलाता रहे जिसके बीचमें वर्तमान सांस लेता है, जो उसको सार्थकता प्रदान करते हैं। (सम्पूर्णानन्द, त्रिपथगा, हिमालय, अंक, ३४)

२०—अनाचार की वृद्धि—

यात्रामार्ग पर प्रायः श्रद्धालु तीर्थयात्री चलतेहैं जो अनाचार से डरते हैं। पर ज्यों ज्यों यात्रामार्ग सरल बनते जारहे हैं

त्यों-त्यों व्यापारी पर्यटक, तीर्थघात (तीर्थ डाकू) तथा मूर्तियों के चोर व्यापारी आदि नाना व्यवसाय वाले लोगों की भीड़ इन मार्गों पर बढ़रही है। इनके हृदयमें तीर्थ स्थानों पर दुराचार करने के महापाप के प्रति कोई भय नहीं रहता। ये सीधी-साधी नारियाको कुपथपर लजाने का प्रयत्न करते हैं। आदि बदरी का मार्ग सरल और अति प्राचीन होने के कारण यहां नाना विचार-धाराओं के लोगोंका प्रवेश होता रहा है। फलतः इस मार्ग में नारिया अपरिचित पथिकों से बीड़ी, सिगरेट मागती और उनके साथ निर्लज्जता से हंसती मिलता हैं।

"देवताओं के अचल में रहते हुए भी मैंने देखा कि कहीं किसी तरफ घूमने को स्थान नहीं रह गया है। यह देवताओं का अंचल क्यों आज अपना विस्तार भूलकर अपने एक कोनेमें पड़ी मौतकी घाटी का नाम अपना रहा है ? मैंने गांव-गांव घूम लोगों को देखना, उनके बारेमें जानकारी प्राप्त करना आरंभ किया और मैंने देखा कि 'देवताओं का अंचल' सचमुच आज मौतकी घाटी' हुआ जारहा है, मौत यहां के कोने-कोने में हो जारही है।

मैंने यह भी देखा कि इसका उत्तरदायित्व देवताओं पर नहीं मानवों पर है और उन मानवों पर जो अपनी सभ्यता के दमें चूर रहते हैं। हम समतल भूमिके रहने वाले ही अपने कची सद्यध वहां पहाड़ों में लेगए हैं। अपनी भद्दी छाप से ही पहाड़ो का सौन्दर्य विकृत कर दिया है, यहां तक कि भारतके पहाड़ी इलाकों में शायद ही कोई ऐसा स्थान बचा है दूषित नहीं होगया है, जिसे दर्पोद्धत, बेवकूफ, सभ्य मानव है कहकर कि "तुम सुन्दर हो ? तो लो मैं अपने कलक में

तुम्हें भी काला कर सकता हूँ" भ्रष्ट नहीं कर दिया है। यदि पहाड़ों में कोई स्थल ऐसे बचे हैं जिसमें सभ्य मानवकी यह काली करतूत डायन-सी मुँह बाए सामने नहीं आती, वे वही स्थल हैं जहां पुराने सौन्दर्य का कोई चिन्हही नहीं बचा, जिसे हमने अपने जैसा ही बनालिया है–सभ्य और सड़ा हुआ।

"पहाड़ों पर हम सभ्य लोगों की कृपा से जो कुछ होरहा है उसकी मांग है कि हम परिस्थितिकी जांच करें। सैरके लिए पर्वतों में गया हुआ सभ्य सामाजिक मानव अपना अधःपतन और गन्दगी वहां भी बिखेर आया है। एक विशेष प्रकार के कीड़े की तरह जो पेड़ के पत्ते पर उसकी हरियावल खाता हुआ बढ़ता चलता है, और इस प्रकार अपने पीछे पत्ते पर एक सूनी लकीर छोड़ जाता है हम लोगों ने भी पहाड़ों की पुन्यभूमि पर पतन और रोग और मृत्युकी एक गहरी रेखा खींच दी है। समतल भूमिके लोग श्रेष्ठताके घमंडमें भरकर कहते हैं कि पहाड़ों में क्षयी और मैथुनज रोगों के होने का कारण पहाड़ी लोगोंका गन्दा जीवन और नातिभ्रष्ट आचार है। यह अपने पापको छिपाने का प्रपंच है। वास्तवमें य रोग समतल भूमिसे वहां गए हैं।" (सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन, अरे यायावर रहेगा याद ?, १ ८-६६)

वात्स्यायन के उपरोक्त वाक्य कुल्लू-मनाली के संबंध में हैं। सौभाग्य से अभी तक उत्तराखड (टेहरी और गढ़वाल) की तीर्थ भावना कुछ न कुछ इस प्रदेश की पवित्रता को बनाए हुए है। पर जिस तीव्र वेगसे यात्रा मार्गों में सरलता आरही है, उसे देखते हुए अभी से सावधान, सचेष्ट होने की आवश्यकता है। यद्यपि यह कहना कठिन है कि हमारी सावधानी, सचेष्टता भी

हमें किस सीमा तक बचा सकेगी।

अभी कुछ वर्ष पहले तक हरिद्वार में मद्य, मांस, मछली सेवन इतने उग्ररूपमें प्रचलित नहीं था। हरिद्वार की जन संख्या का पर्याप्त भाग इस तीर्थमें रहते हुए इन् वस्तुओंका सेवन करना अनुचित समझता था। अब हरिद्वार निवासियोंके हृदय से हरिद्वार के प्रति तीर्थ भावना मिट गई है। ऐसे समाचार मिलते रहते हैं कि सायंकाल को हरिकी पैड़ी पर स्नान करते समय "भक्त लोग" मोटी मछलियां पकड़लेतेहैं और धोती या कम्बल के नीचे उसे छिपाकर घर लेजाते हैं। इसी प्रकार ऋषिकेश देव-प्रयाग, श्रीनगर, उत्तरकाशी आदिमें तीर्थ भावना वेगसे नष्ट हो रही है। श्रीनगर में मदिरा की भट्टी भी खुल चुकी है। इसमें सन्देह नहीं कि ज्यों-ज्यों तीर्थों तक पहुँचना सरल और निरापद होरहा है त्यों-त्यों वे अपनी पवित्रता खोरहे हैं। क्या हम इसे रोक सकते हैं ?

२१—उपसंहार—

इस पुस्तक में हमने यह देखने का प्रयत्न किया है कि उत्तराखण्ड की यात्रा कब से चली आरही है, और हिन्दू धर्म में इस प्रदेश का क्या स्थान है। हमने देखा कि पिछले कम से कम पच्चीस सौ वर्षों से यह भू भाग हिन्दुस्थान के जीवन के जीवन, धर्म, सभ्यता और संस्कृति पर अपनी छाप लगाता रहा है। युग-युग से भारतके कोने कोने से श्रद्धालु आकर इसकी इसकी चरणरज शिरसे लगाते रहे हैं। सारे भारत को, उत्तर-दक्षिण और पूरब-पश्चिमको इस प्रदेशने एक सूत्र में बांध दिया है। इसके जलकणों को शिर पर चढ़ाने, और उससे देवता को स्नान कराने में प्रत्येक हिन्दू अपना अहोभाग्य समझता है।

जीवन में उसका दर्शन-मज्जन और पान और मरण पर उसमे अस्थिनिक्षेपके लिए सब तरसते हैं। हिन्दूधर्म सचमुच हिमालय (या उत्तराखण्ड) धर्म है, हिन्दू संस्कृति वास्तव में गङ्गा संस्कृति है।

'कश्मीर अपने प्राकृतिक सौन्दर्यके लिए जगतमें विख्यात है. पर कश्मीरमें प्रकृति शृंगार की ओर झुकाती है, इस उत्तराखण्ड क्षेत्र में शान्तरसकी ओर। शृंगारको ब्रह्मानन्द-सहोदर कहा है, परन्तु शान्त साक्षात् ब्रह्मानन्द मय है। परन्तु यहा केवल सुन्दर प्राकृतिक दृक्-विषयों का आकर्षण नहीं है। इस भूमि मे पदे-पदे हमारी पुरानी कथाओं और अनुश्रुतियों के झनकार उठते हैं। नदियों और पुलिनो से, पहाड़ों की चोटियों से हमारा प्राचीन इतिहास बोलता है।

सप्तसिंधव-निवासी ऋषियों ने जिस संस्कृति को अंकुरित किया था वह यहां पल्लवित हुई, सिन्धु हमसे छूट गई सरस्वती अन्तर्हित होगई, परन्तु गङ्गा-यमुना अब भी हैं।"

"यह पावन भूखंड अब भी हमको अपना अमर सन्देश देता रहता है। आज भी विरक्त भारतीय की यही इच्छा होती है कि वह हिमालय के प्रांगण में तप और भगवदाराधन मे अपना काल यापन कर सके और वहीं शरीर त्याग करे। आज भी लाखों श्रद्धालु इस प्रदेश के मन्दिरों में दर्शन करके अपने जीवन को पवित्र बनाने की लालसा रखते हैं, न जाने कितने मुमुक्षु साधु-महात्माओं की खोज में इधर आते हैं। (सम्पूर्णानन्द, त्रिपथगा, हिमालय-अंक, ६४)

❀ इति ❀

❀ बद्रीनाथ-यात्रा की पुस्तकें ❀

उत्तरा खण्ड दर्शन सचित्र वृहद् प्रमाणिक ग्रन्थ ...७

भारतवर्ष की यात्रा ४ ५ पेज ४० चित्र और कई नक्शे ...४

केदारखण्ड एक मान्य ग्रन्थ तमाम वर्णनवाला ग्रन्थ ...३

केदारखण्ड या (कनकवश काव्य) ऐतिहासिक काव्य दोनों भाग४

चारा धाम यात्रा महात्म्य भाषा टीका सहित ग्रन्थ ...१।

चारों धाम मनपुरा महात्म्य मय भजन कीर्तन के ...१

चारों धाम महात्म्य केवल भाषा २), १, ॥

बदरी केदार यात्रा बड़ी तमाम जानकारी वाली ...४

बदरी केदार की झाँकी हिन्दी, उर्दू, अंग्रेजी ... ॥

द्वादश ज्योतिर्लिंग महात्म्य मय वर्णन के ... ॥)

उत्तराखण्ड यात्रा हिन्दी, मराठी बंगला, गुजराती ... ॥)

नक्शा चारों धाम उत्तराखण्ड यात्रा कई मेल ॥) से ≈)

फोटो हर प्रकार का हर मेल का -), =), ।), ।।), १), और २)

चित्र कई रंगी अनेक तीर्थों के हर प्रकार के ६) से ।) दर्जन तक

अंगूठी तान्त्रिक, मनमोहनी, दर्शनी अष्टधातु ॥ से १० दर्जन

तबीज तावीज अष्टधातु बच्चों के लिए ॥) से २) „

तावीज बाँह पर के लिए बीसा यन्त्र पंद्रहायन्त्र ४) से ६) „

बैज कोट साफा टोपीपरका चारोंधाम आदि के १), १॥), २) „

मिडिल (तगमे) नेताओं तथा देवताओं के चाँदी के १२) „

❀ शुद्धमत-शिलाजीत ❀

हर एक बीमारी को अलग-अलग अनुपान द्वारा सेवन करने से तत्काल फायदा देने वाली उत्तम चीज है सेवन पुस्तिका साथ न० १ का १) तो० नं० २ का ॥।) और ॥) तो० चौथाई मूल्य भेजकर वी० पी० से मँगाइये ।

मंगाने का पता—

विशाल कार्यालय नारायणकोटि,

जि० चमोली (उत्तराखण्ड)

२०—संशोधन-परिवर्द्धन

उत्तराखण्ड-यात्रा-दर्शन के प्रूफ देखने का मुझे अवसर न मिल सका। पुस्तक में छापे की कुछ अशुद्धियां रह गई हैं, इसका मुझे बहुत खेद है। साधारण अशुद्धियों को पाठक स्वयं शुद्ध करने की कृपा करें। मेरी इच्छा थी कि कारकों के चिह्न सं। सर्वनामों के साथ जुड़े रहें और सारी क्रिया एक साथ छपे, किन्तु इसका भी पालन न हो सका। कैलास सर्वत्र कैलाश छप गया है। अध्याय १३ में, घंटियाल के स्थान पर घड़ियाल छप गया है। इसी प्रकार कहीं कालिदास के स्थान पर कालीदास, बदरीनाथ के स्थान पर बद्रीनाथ छप गया है। इन्हें पाठक महोदय स्वयं शुद्ध करने की कृपा करें।

पृष्ठ तथा पंक्ति	मुद्रित पाठ	संशोधित पाठ
भूमिका १ (२३)	पुरनथन	पुग्मथन
" २ (१८)	आज	अस्तु
" ३ (१०)	खस जाति में	खस जाति ने
" ३ (२०)	चले गये, जहां वे	चले गए।
" ३ (२)	तंगण	तंगण
" ६ (५)	कास्पियन	कास्पियन
" ६ (८)	कुशाइन	कुशाइन
" ६ (१०)	विक्रम सं०	विक्रम से
" ६ (१८)	माणी महेश	मणि महेश
" ७ (१)	पूसो जर्मन जातिकी	प्रुसो जर्मन जाति। जाति की
" ७ (५) तुराणों में		पुराणों में
" ७ (१४) भी मांसा		मीमांसा

मुद्रित पाठ	संशोधित पाठ
" ७ (२२) नातों से	नामों से
" ८ (२०) मसजिदें थी	मसजिदें हिन्दू मंदिर थीं।
" ८ (२२) द्रविणों	द्रविड़ों
पृ० 1 (१२) उत्तर	उत्तरी
१२ (२४) रोमा के समान	रोमा के सामने
६८ (७) शाल्य	शल्य
२६ (७) नारयण	नारायण
६४ (६) हरिकृष्ण	हरिशरण
१०२ (६) पपरायुमेरवन	परमुरेन
१०४ (१६) हजारीप्रसादने	हजारीप्रसादको
१०४ (२०) मल्लिकने	मल्लिक के
१०४ (२५) पहुँचते थे	पहुँचे थे
११५ (६) वद्र्यारय	बद्र्यारण्य
११७ (२४) कुनेरशीला	कुनेर शिला
११७ (२७) नारसोह शिला	नारसिंह शिला
१६५ (१६) पिंडारकवन	पिंडारकवन
१६५ (२०) भट्टाचार्य	भट्टाचार्य
१६६ (१६, १८, १६, २०) देवचोलिया	देवचेलियां
१६६ (२२) एटकियसन	एटकिनसन
१६७ (२) थल	थल
१६८ (२३) रॉड रौक्स	आन रौक्स
१६६ (६) नीलयत पुराग	नीलमत पुराण
१८५ (२६) वलवेव	वलदेव
१८६ (२३) व्यसकृत	व्यासकृत
१८६ (अंतिम) यामुनार्य	यामुनाचार्य

मुद्रित पाठ	संशोधित पाठ
१९२ (४) प्रेन	प्रेम
१९५ (१२) लक्त्नण झूला	लक्ष्मण झूला
१९७ (५) एम्पाइर	एम्पायर
१९७ (१८) मुसलमानों को···	मुसलमानोंको मुसलम होना
१९८ (१६) कूद	कूद सकीं
१९९ (३) भौंपड़ियां	झोंपड़ियां
२०२ (२) सनासिनी	सन्यासिनी
२०६ (१२) हरवल्भ	हरवल्लभ
२०८ (१३) २५६०	२६०
२०९ (११) मार्ग की	कार्य की
२११ (८) महाकुओं में	महाकुंभों में
१७ (८) यही	मढ़ी
१९ (६) लघुर्थव	लघुर्भव
२२ (१४) पत्र	पथ
२५ (१९) बिजुनी	बिजुगी
३० (३) सडोटी	डोटी
३० (४) हृदेहलख	देलख
३९ (५) ध्यौम	धौम्य
० (१) आश्रम	आश्रय
१ (२०) ३० मील	२६ मील
२ (१४) ३०	२६
५ त (३) नदी	नदियां
४ त (४) चट्टियों	घाटियों
५ त (९) गङ्गा नदी	गंगनाणी

पृष्ठ तथा पंक्ति मुद्रित पाठ	संशोधित पाठ
२४५ थ (१) वक्षस्थल	तपस्थल
२४५ प (६) कोत यहाँ भी	कोई वस्तु य.ाँ
२४५ फ (१७) नदा तथा	नदी के तथा
२४५ भ (१६) सुराकतिया	मुखाकृतियां
२७४ (३) ५० वर्ष में	पूर्व जन्म में
२७६ (३) माला	माणा
२८० (१९) कालगुफा	व्यास गुफा
२८० (२०) भारती	माणा
२६८ (७) बृक्ष	वृत्त
३०२ (६) २००० फीट	१२००० फीट
३०३ (११) कापूरी	कस्तूरी
३०७ (११) वंगेश्वर	वंशेश्वर
३०७ (२२) कल्वा०वाश्रम	कण्वाश्रम
३१४ (१७) १६०० फीट	१६००० फीट .
३१५ (२) उत्सुक	उन्मुख
३१५ (१६) चानपुर	चांदपुर
३१८ (१३) बाल	बाण
३१८ (२१) चोटी	नौटी
३१६ (११) वंगेश्वर	वंशेश्वर
३२० (२५) खास लोग	खस लोग
३२१ (२४) धिवाजी को	धियाणी को
३२२ (१७) व्यक्ति	चाहे अन्य व्यक्ति
३२३ (१६) प्रसाद	प्रनाद
३२५ (१०) जागरों की जात	जागरों की गाथा
३२६ (२) चिड़िया	चिणिया

पृष्ठ तथा पंक्ति	मुद्रित पाठ	संशोधित पाठ
३२६ (६)	घचनामा	घचनामा में
३२६ (१२)	मदकन	मैदान
३३० (१८)	घंडियाल	घड्याला
३३० (२३)	८००० फीट	७००० फीट
३३१ (१५)	३-४ मील	१३-१४ मील
३३३ (१६)	गौरवरूप में	गौण रूपमें
३३६ (१२)	रकमेली हाट	रमोली हाट
३४३ (१७)	१५ दिन	४५ दिन
३५८ (अंतिम)	सवारी	सारी
३५८ (१५)	एक्सताल	राक्षसताल
३५६ (२५)	सहस्र पूर्व	सहस्र वर्ष पूर्व
३६६ (१३)	सीत वात्यों	गीत वाद्यो
३७२ (१४)	जहां	अहा !
३६० (१५)	सङ्गम में	संसर्ग में आकर
३६१ (अंतिम)	मारनेस	वारनेस
३६५ (२४)	भिन्न	मिश्र
३६५ (२४)	मित्र	मिश्र
४०० (१०)	मित्र	मिश्र
४०२ (२१)	सुपंथ	स बध
४१५ (५)	पाख्डों	पाडवों
४२६ (२, ३, ४,)	युवतो···है	युवती × × × है
४३१ (८)	लालसा	विलास
४३५ (२२)	संस्कार	सरकार
४४६ (१८)	३० नाली	
४५१ (१६)	घर	

पृष्ठ तथा पंक्ति मुद्रित पाठ	संशोधित पाठ
४५६ (३) चतुर	आतुर
४६८ (१) आयुसे	आयसे
४७० (११) प्रतीत नहीं होता	प्रतीत होता
४८३ (२३) कौकंकण	कोकंण
४८६ (१७) ४२	४
४८७ (१२) प्रति	के प्रति
४९१ (६) यहि	यति
४९३ (२१) कायमिष्ट	कार्यलष्ट
४९२ (१३) फुटफाय्स	फुटफाल्स
४९४ (६) फाशीन	युवान च्वाङ्
५०० (४ नववौधि	नववोधि
५०१ (८) आसन	आश्रम
५११ (१२) शत्रु	× ×
५१८ (१६)	[राहुल, गढ़वाल, पृ० ७५ से ८७]
५१९ (२३) सोप्ता	गोप्ता
५२९ (१४) गठाकर	उठाकर
५४५ (६) योगेश्वर	गोपेश्वर
५४५ (१०) ११–१२	८–९
५४६ (६) प्रयान	प्रयाग
५५७ (१४) तत्वंग	तन्वंग
५५७ (२१) रुद्रसुक	रुद्रसूनु
५७६ (६) भाग	पृष्ठ
५९३ (१८) मायावर	यायावर

❀ परिवर्द्धन ❀

(१)अ०१०, पृष्ठ २४५ क्र० यमुनोत्तरी—

फ्रेजर के समय के कुण्ड और तप्तकुण्ड अब यमुनाजी की बाढ़से बह गए हैं। बाढ़से एक प्राचीन गुफा जिसमें ५०-६० व्यक्ति आ सकते थे, २ कुण्ड, एक गोमुखी, एक धर्मशाला तथा गङ्गाधारा सब बह गए हैं। महाराजा टेहरी ने नया मन्दिर बनवाया है। उसी के पास एक उष्ण जलका सोता है जिसकी पूजा की जाती है। इसमें भात और आलू पकाकर यात्री खाते हैं। इसके जलमें शीतल जल मिलाकर स्नानकुण्ड बनाया गया है। पास के पर्वत की गुफा में एक महात्मा कई वर्षों से रहते हैं और शीतकाल में भी वहीं टिके रहते हैं। उनकी गुफा का तापक्रम ७० फार्नहाइट के लगभग रहता है।

(२)अ० १२ पृष्ठ ३०७ दुगड्डाके पास प्राचीन तीर्थ-

केदारखण्ड में लिखा है—दोनों नगालकों (नयारों) के सङ्गम के दक्षिण की ओर शिल्ह (सीला) नामक महा पर्वत है जिस पर शिल्ह नामक किरात नरेश (महाभिल्ल) ने महादेवकी उपासना की थी। उसी के नामसे यह पर्वत प्रसिद्ध हुआ। उसके बाएं ओर रेणुका नदी है, जिसके जलके स्पर्श से रुद्रलोक प्राप्त होता है। उसके पश्चिम की ओर श्वेत तरंगिणी नदी है। इन दोनों, रेणुका (भैरों गङ्गा) तथा श्वेत तरंगिणी (सिलगङ्गा) के सङ्गम (दुगड्डा) में स्नान करने से मनुष्य रुद्र के समान बन जाता है। इसके नैऋत्यकोण में फरीद्रं पर्वत और कीरणी नदी है। उसके सङ्गम में भैरव तीर्थ है। वहाँ पर्वत शिखर पर प्रति-

दक्षिण में भद्रतरा और उत्तर की ओर बहने वाली भृगुपत्नी नदिया हैं। उनके सङ्गम में दरिद्रता नष्ट करने वाला तीर्थ है। जहाँ लक्ष्मी नित्य बसती है। वहीं रोगनाशक अगदा धारा है। उसके दक्षिण में कालिका पूर्व में वीरिणी और भरणी नदी है। उनके पुण्यदायक सङ्गम में भृगुकुण्ड है जिसमें स्नान करने से मनुष्य हरिके समान बन जाता है। (केदारखण्ड, अ० १७२, श्लोक ११ से २३)

(३) अ० १२, पृ० ३०७, कठवाश्रम—

पिछले दो-तीन वर्षों से कण्वाश्रम की वास्तविक स्थिति के सम्बन्ध में मतभेद उत्पन्न हुए हैं। महाभारत आदि पर्व ७०/ २१-२९ तथा अभिज्ञान शाकुन्तलम् के चतुर्थ अङ्क के अनुसार *कण्वाश्रम मालिनी नदी के तट पर उस स्थान पर था जहाँ नदी* पर्वत से उतर कर मैदान में आरही थी। वहाँ पर्वतों से गिरे पाषाणों के ढेर थे और ऊँची-नीची भूमि थी। इसलिये कण्वाश्रम मालिनी के तट पर चौकीघाटा के आस-पास हो सकता है, बिजनौर में नहीं। केदारखण्ड ग्रन्थ यद्यपि अधिक प्राचीन नहीं है फिर भी अंगरेजी राज्यारम्भ से पहले का है। उसे लिखते समय कण्वाश्रमके सम्बन्ध में कोई खींचतान नहीं थी। इस ग्रन्थ में लिखा है:—

बदरीनाथ की यात्रा के लिये पहले गङ्गाद्वार (हरिद्वार) पहुँचकर नील भैरव की पूजा करके उससे (बदरीनाथ की यात्रा करने की) अनुमति लेनी चाहिये। और तब कण्वाश्रम की यात्रा करनी चाहिये। (अ० ६२। ३८-४०)। कण्व नामक महा तेजस्वी लोक विश्रुत महर्षि हुए हैं उनके आश्रम में जाकर भगवान रमापतिको नमस्कार करने से दुरात्मा भी दुःखविवर्जित पद प्राप्त करते हैं (अ० ५७।११-१२)

केदारखण्ड के अनुसार भी कण्वाश्रम बिजनौर में नह हो सकता। क्योंकि कण्वाश्रम हरिद्वार से आगे बदरीनाथ मा पर होना चाहिये। केदारखण्ड ग्रन्थ के अनुसार कण्वाश्रम उस पहाड़ी के पदतल में होना चाहिये जो लछमन झूला से पूर्व की ओर फैली है। इस प्रदेश में लछमन झूला से पूर्व की ओर मांढल, लालढांग, मवाकोट, कोटद्वार, मोरघाटी होकर काशीपुर तक वनप्रदेश में अनेक खण्डहर फैले हुए हैं। हरिद्वार से ६ मील पूर्व की ओर मांढल में एक अति सुन्दर और प्राचीन विष्णु मन्दिर आज तक चला आता है। (फूरर-मौन्यूमेंटल ऐंटिक्विटीज आव ना. वे. प्रा० भाग २, पृष्ठ ४५-४६ मेरा लेख, गढ़वाल भावर में ऐतिहासिक अवशेष, सत्यपथ, जुलाई ५८)। केदारखण्ड ग्रन्थ का कण्वाश्रम चौकीघाटामें नहीं हो सकता। चौकीघाटा के पास इतने प्राचीन खण्डहर नहीं हैं और हरिद्वार से चौकीघाटा का मार्ग पहले प्रचलित मार्ग न था। अनुमान लगता है कि केदार-खण्ड के रचना काल में मांढल लालढांग और उसके निकट का क्षेत्र जो शिवालिक के पदचल में है, और जहाँ अनेक प्राचीन खण्डहर हैं, कण्वाश्रम माना जाता था। तथा हरिद्वार से बदरी-नाथ जाने वाले यात्री हरिद्वार से कण्वाश्रम पहुँचते थे। यह क्षेत्र मालिनी की वर्तमान घाटी से कुछ पश्चिम को ओर है। पर्वतों से उतरते ही मालिनी अपना मार्ग निरन्तर बदलती रही है। और अब भी बदलती रहती है। सम्भव है पहले पश्चिम की ओर बहती रही हो।

(४) अ० १२, पृष्ठ ३३१ सीम-मुखीमको मोटर मार्ग-

अब टेहरी से आगे मोटर मार्ग पर भल्डियाना से नया मोटर मार्ग लम्बा गांव तक बन गया है। यहाँ से सेरा ३-४ मील और सेरा से मुखीम १ मील है। इस मार्ग के बनने से

सीम-मुखीम पहुँचना अत्यन्त सरल होगया है। भिल्डियाना से लम्बागाँव लगभग १२ मील है।

(५) अ०१२ पृष्ठ ३३७ सीम-मुखीमके पंडा फिक्वाल-

यद्यपि फिक्वाल भिक्षा माँगते समय अपने को सीम-मुखीम का पण्डा बतलाते हैं किन्तु इनमें और अन्य तीर्थों के पण्डों में अन्तर है। ये केवल नागराजा के नाम पर भिक्षा माँगते हैं, तीर्थ में आने वाले यात्रियों से इनका कोई सम्बन्ध नहीं है। ये तीर्थ में न तो यात्रियों से कोई तीर्थ कृत्य कराते हैं न उन्हें सुफल देते हैं। यह कार्य रावल करते हैं।

(६) फिक्वाल और गङ्गा-पुत्र—

फिक्वालों में से कुछ जो गङ्गाजल बेचने जाते हैं अपने को गङ्गा पुत्र बतलाते हैं। कहते हैं, कई वर्ष पूर्व टेहरी नरेश ने उन्हें गङ्गापुत्र होने का प्रमाण पत्र दिया था। ये तथा कथित गङ्गापुत्र गङ्गाजल विक्रय से सहस्रों रुपये कमाते हैं। शीतकाल आरम्भ होते ही ये कंवार लेकर घर से चल पड़ते हैं और विहार, बङ्गाल, मध्यप्रदेश, राजस्थान, गुजरात और बम्बई तक पहुंचते हैं। शीतकाल में ये इतने अधिक मनिआर्डर अपने घरों को भेजतेहैं कि पत्रालयोंको उनका भुगतान करना कठिन होजाताहै।

(७) सीम-मुखीम के रावल—

सीम-मुखीम के नगराजा-मन्दिर के पुजारी और रावल, सेमवाल जाति के गृहस्थी ब्राह्मण हैं जो पौड़ी-गढ़वाल के लोभा चांदपुर से मुखीम में आ बसे हैं। इनके तीन परिवार हैं जो विषुवत संक्रांति से एक वर्ष तक बारी-बारी से पूजा करते हैं। इनके पूर्व पुरुष श्री भगीरथ सेमवाल के दो पुत्र श्री मोतीराम और बद्रिराम थे, जिनकी वंशावली इस प्रकार है। मोतीराम-

दामोदर-प्रद्युम्न सुरेन्द्रदत्त (वर्तमान रावल), वलिराम-कलिराम-धासबानन्द-रामप्रसाद-पुरुषोत्तम (वर्तमान द्वितीय रावल), श्री रामप्रसाद के दूसरे पुत्र हरिप्रसाद-घनानन्द (वर्तमान तृतीय रावल), सीम-मुखीम के रावल सन्तोषी और धर्मभीरु हैं और साथ ही विद्वान भी। इनका गङ्गोत्तरी के सेमवाल पण्डों से को: सम्बन्ध नहीं है।

(८) मन्दिर की प्राचीनता—

मुखीम गाव का मन्दिर दुमजिला घर-जैसा मकान है जिसके दोनों किनारों पर पटालों से छाई हुई छतरियाहैं। मदिर का आधा भाग पीछे से जोड़ा गया है आर अधिक पुराना नहीं है। इसमें कटी शिलाएं लगी हैं जो सूचित करती हैं कि वर्तमान मदिर से पहले यहा कटी शिलाओं से बना एक छोटा मदिर था। सीम में कोई मंदिर नहीं है, एक शिला है जिस पर यशोदा, श्रीकृष्ण आदि के रेखाचित्र प्रतीत होते हैं। यहाँ एक जल धारा है जिसमें यात्री स्नान करते हैं। मन्दिर की स्थापना गंगू रमोले ने की थी।

(९) मूर्तियां—

मन्दिर में राधा-कृष्ण, भैरव आदिकी नवीन और छोटी-छोटी मूर्तिया हैं जो महाराज कीर्तिशाह के समय मँगाई गई थीं। पुरानी भग्न मूर्तिया सीम में हैं। एक छोटा-सा पीतल का नाग भी मन्दिर में रक्खा है। एक अश्वारोही चाँदी की मूर्ति है जो उत्सव के अवसर पर त्रिशूल पर लटका कर ले जाई जाती है। प्रति तीसरे वर्ष ११ मार्गशीर्ष को सीम मे मेला लगता है।

(१०)अ० १५ पृष्ठ ३८६ यमुनोत्तरी के पण्डों की वंशावली—

यमुनोत्तरी के पण्डे अपना मूलस्थान पौड़ी-गढ़वाल में

श्रीनगर के पास ऊणी गांव और अपनी जाति उनियाल बताते हैं। श्रीनगर के पास देवलगढ़ में राजराजेश्वरी के मन्दिर के पुजारी ऊणी गाव के उनियाल हैं और उच्चकोटि के ब्राह्मणों में गिने जाते हैं। यमुनोत्तरी के पण्डों का कहना है कि उनका पूर्व पुरुष ऊणी गांव का माणकचन्द था जिसके दो पुत्र मोलूराम और पोलूराम खरसाली आए थे। पोलूराम की वंशावली इस प्रकार है। पोलूराम-सदानन्द-देयानन्द-च्यूंच्या-उदयराम केवलराम-जिवानन्द (वर्तमान, आयु ४५ वर्ष)। पोलूरामके सदानन्द, दयाराम, दयालु, देवानन्द, उत्तुगानन्द, ये पांच पुत्र थे। पोलूराम और मोलूराम के वंशों में अब ३५ परिवार होगये हैं जो ग्रीष्म काल में वैशाख की अक्षय तृतीया से कार्तिक तक बारी-बारी से दो-दो दिन यमुनोत्तरी मन्दिर में पूजा करते हैं। इन्हें खरसाली और निकट के क्षेत्र में ३५ रुपये भूमिकर वाली भूमि गूंठभूमि प्राप्त है। भारे परिवार पण्डाचारा भी करते हैं। पर इनमें पण्डाचारी अभी भली प्रकार व्यवस्थित नहीं है। जिस पण्डा को जो यात्री मिल जाता है, उसी को वह अपना जजमान बना लेता है। अब इस तीर्थ की यात्रा बहुत बढ़ गई है।

(११) यमुनोत्तरी के प्राचीन अर्चक—

यमुनोत्तरी के पण्डों की वंशावली से सिद्ध होता है कि मोलूराम और पोलूराम लगभग डेढ़ सौ वर्ष पहले खरसाली पहुँचे होंगे। सौ वर्ष पहले यमुनोत्तरी पहुँचने का मार्ग बड़ा भयङ्कर था। वहाँ विरले साधु-सन्यासी ही पहुँचते थे। मूर्ति गुफा में रहती थी। महाराजा सुदर्शनशाह ने यमुनोत्तरी में एक छोटा सा मकान-जैसा मन्दिर बनाया और सड़कें बनवाईं। इससे इस तीर्थ की ओर भी थोड़े से साहसी यात्री आने लगे। और खरसाली के उपरोक्त उनियालों ने इस तीर्थ की पूजा-अर्चा

और पण्डाचारी आरम्भ करदी। उनियालों से पहले यमुनोत्तरी का पूजन-अर्चन कौन करते थे? इस पर गढ़वाल के इतिहासकार मौन हैं।

गंगोत्तरी तीर्थ की पूजा-अर्चा मुखवा के सेमवालों के के पास १५० वर्ष पहले संवत् १८६७ (सन १८१०) के आस-पास आई। उनसे पहले धराली के बुढ़ेरे किरात गङ्गोत्तरी के अर्चक थे। हमारा अनुमान है कि यमुनोत्तरी की पूजा-अर्चा भी लगभग उसी समय खरसाली के उनियालों के पास आई। उससे पहले खरसाली के मूल निवासी खस-किरात यमुना की कुंवारी कन्या के नाम से पूजा-अर्चा करते थे और आज भी निम्न प्रदेश के निवासी यमुनाजी की पूजा इसी प्रकार करते हैं।

(१२) खरसाली—

यमुनोत्तरी के पण्डों का गांव खरसाली यमुनोत्तरी की चढ़ाई आरम्भ होने से पहले आता है। यह यमुना घाटी मे अन्तिम गांव है और बन्दरपूंछ की हिमानियों द्वारा लाई हुई अति उपजाऊ ग्लेशियल मिट्टी से बना है। गांव विस्तृत चौरस भूमि पर बसा है! यहाँ सोमेश्वर का प्राचीन ढङ्ग का मन्दिर है जो विजयस्तम्भ के ढङ्ग का बना है। इसमें चार मञ्जिल हैं। अन्तिम मञ्जिल तक पहुँचने के लिये भीतर चार लकड़ी की सीढ़ियां हैं। प्रकाश के लिये १६ वातायन हैं। देवता अन्तिम मञ्जिल में रहता है। वर्तमान रूप में मन्दिर अधिक पुराना नहीं है। पर कला की दृष्टिसे उत्तराखण्डके समस्त मन्दिरों से विचित्र है। इस पर शिखर या कलश नहीं है। खरसाली और खस्याली कस्याली शब्द खस महाजाति के स्मारक हैं, जैसा भूमिका में कहा गः

(१३) अ० १५ पृ० ४३० अधिनियम का प्रभाव—

बदरीनाथ मन्दिर के सचिव पर मन्दिर के धन के अपव्यय का जो अभियोग लगाया गया था, उसकी जांच की रिपोर्ट प्रकाशित नहीं हुई है। किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि उनका कोई विशेष अपराध नहीं पाया गया क्योंकि अभी तक वही सचिव कार्य कर रहे हैं और उन्हें बड़े-बड़े अधिकारियों का विश्वास प्राप्त है।

(१४) अ० १८ पृ० ४८६ बदरीनाथ और भविष्य बदरी—

राहुल ने अनुमान भिड़ाया है कि सम्भवतः भविष्य बदरी ही वास्तविक और प्राचीन बदरीनाथ है। वह कल्पना अमान्य है क्योंकि प्राचीन बदरीनाथ नर-नारायण पर्वतों के पदतल में नर-नारायण आश्रम में अलकनन्दा के तट पर था। (महाभारत वन, १४५ अ०)। नारदपुराण और स्कन्दपुराण में बदरिकाश्रम में वह्नितीर्थ (तप्तकुण्ड) और पञ्चशिलाओं का उल्लेख है जो बदरीनाथ में आज भी पूजी जाती हैं। केदारखंड ग्रन्थ के अध्याय ५७, से ६२ तक बदरी माहात्म्य से भी सिद्ध होता है कि प्राचीन बदरीनाथ वहीं हैं, जहाँ आज माना जाता है।

(१५) अ० १८ पृ० ५२४ गङ्गोत्तरी—

राहुल की कल्पना है कि वास्तविक भागीरथी गङ्गा जाड गङ्गा है, और इसलिये गङ्गोत्तरी और गोमुख कल्पित स्थान हैं। उन्हें जाडगङ्गा पर होना चाहिये। गङ्गाजी की अनेक धाराएं प्राचीन ग्रन्थों में बताई गई हैं। महाभारत में अलकनन्दा को भी भागीरथी कहा गया है। (वन/१४५/३६-५४), इसलिए गंगोत्तरी और गोमुख गंगाजी की किसी भी धारा पर हो सकते हैं। केदारखण्ड में गंगोत्तर और अलकनन्दोत्तर तीर्थों का उल्लेख

है। गंगोचर तीर्थ सम्भवतः वर्तमान गंगोत्तरी ही है। (केदार-खण्ड अ० १२, अ० ३६, अ० ३८)

(१६) अ० १८, पृष्ठ ४२५ सीम मुखीम के दानपत्र–

मुखीम के रावल के पास सम्वत् १८६७ (सन् १८१०) का एक ताम्रपत्र बतलाया जाता है जिसमें लिखा है—श्रीगीरवाण युद्ध विक्रमशाह बहादुर समशेर ने सम्वत् १८६७ साल आसाढ़ सुदि ६ रोज १ का दिन जिला गढ़वाल श्रीनगरको अम्बल रमोली गर्वा मध्य सौ रुप्या पैदा हुन्या जगा संकल्प गरि××× भगिरथ सिमवाल लाई बकस्यो।××× सल्यूडगांव, पोखरी, भट्टवारी, मौजा खाल, भरतगांव शेष ली भोग्य वारि यो गुंठी संकल्प हुंदा।×× काजी बखतावरसिंह थापा दिनांक सम्वत् १८६६ साल मिती कार्तिक शुदि दिन ११ रोज १ शुभम्।

दूसरा दानपत्र टेहरी नरेश प्रद्युम्नशाह का तथा तीसरा दानपत्र टेहरी नरेश प्रदीपशाह का है जिनकी तिथियां १८४७ शाके १७१२ वैशाख २३ आदित्य वार, मूल नक्षत्र, चतुर्थी तथा शाके १६४८ सम्वत् १७८३ पौष २८, बुद्धवार, पुष्य नक्षत्र हैं।

गोरखा ताम्रपत्र में तीर्थ का नाम "शेष" है, किन्तु टेहरी नरेशों के दोनों दानपत्रों में सेमका नागराजा देवता कहा गया है।

इन दानपत्रों से पता चलता है कि, सीम-मुखीम तीर्थ का नाम १२० वर्ष पहले शेष था। यह तीर्थ कमसे कम दो-सौ वर्ष पुराना अवश्य है। रावलों की वंशावली से भी भगीरथ का समय लगभग १२० वर्ष पहले निकलता है। इससे पता लगता है कि *मंगू रमोलाने शाप्य होकर कृष्ण या विष्णुके* जिस मंदिरकी स्थापना की थी उसके पुजारी वर्तमान रावलों से कोई अन्य थे। सम्भव है मुखीम की फिरवाल-जातियों में से कोई जाति पहले

यह कार्य करती रही हो और पूजा में व्यवधान पड़ने के कारण उन्हें हटाना पड़ा हो। फिरवालों की गाथाओं से पता चलता है कि नागराजा कभी उन पर रुष्ट होगये थे इसलिये उन्हें प्रति वर्ष भिक्षा के लिए निकलना पड़ता है।

प्रद्युम्नशाह और प्रदीपशाह के दानपत्रों को प्रामाणिक मानना कठिन है। भगीरथ रावल (जो लोभा से मुखीम आये थे) का समय रावलों की वंशावली के अनुसार लगभग १५० वर्ष पहले हो सकता है इसलिये संवत् १८६७ का गोरखा ताम्रपत्र वास्तविक हो सकता है। किन्तु उससे २० वर्ष पहले १८४७ का तथा ८४ वर्ष पहले १७८३ का दानपत्र भगीरथ सेमवालसे बहुत पहले की तिथियां घोषित करते हैं। ऐसे दानपत्रों की उत्पत्ति राजवंशों के परिवर्तन के समय प्रायः हुआ करती है। मुझे ताम्रपत्र और दानपत्रों की केवल प्रतिलिपियां दिखाई गई हैं, जो नए फुलस्केप कागज पर कुछ ही वर्ष पहले बनाई गई हैं। कहते हैं कि मूल ताम्र और दानपत्र टेहरी नरेश के पास भेजे गये थे, और वापिस नहीं आए।

(१७) अ० १८, पृ० ५२५ ब्रह्मपुर के ताम्रपत्र—

छटी शताब्दी में बराहमिहिर ने वृहत्संहिता में ब्रह्मपुर राज्य के पौरवों का उल्लेख किया है। और चीनी यात्री युवानचाङ् ने अपने यात्रा वर्णन में ब्रह्मपुर का उल्लेख किया है। लक्ष्मण झूला से लेकर कोटद्वार तक और आगे मोरी घाटी और काशीपुर तक शिवालिक पर्वत श्रेणियों के पाद प्रदेश में अनेक स्थानों में विस्तृत खण्डहर फैले हैं, जो भावर-प्रदेश की प्राचीन विनष्ट सभ्यता के द्योतकहैं। इनमें कोटद्वार-हरिद्वार-मार्ग पर 'लालढांग के पास प्राचीन ब्रह्मपुर के विध्वंस दूर-दूर तक फैले हैं, जो उसकी प्राचीन समृद्धि के द्योतक हैं। (फूरर, मौन्यू-

मेंटल ऐंटिक्विटीज आव ना. वे. प्रा. भाग २, मेरा लेख गढ़वाल-भाबर की विनष्ट सभ्यता, सत्यपथ, जून ४८)

मल्लपुर नरेशों के दो ताम्रपत्र अलमोड़ा के तालेश्वर नामक स्थान पर मिले हैं जो छठी शताब्दी ईसवी के सिद्ध हुए हैं। इनके अनुसार मल्लपुर-नरेशों की वंशावली इस प्रकार है। विष्णु वर्म्मन प्रथम-वृशवर्म्मन-अग्निवर्म्मन-द्युतिवर्म्मन-विष्णुवर्म्मन द्वितीय। (मजूमदार ऐंड पुशलकर, दि एज आव इम्पीरियल कन्नौज, पृ० १२३, १२४, ५३१)

ऐसा प्रतीत होता है कि मल्लपुर के पौरवोंने गुप्त सम्राटों, मोहर्य, भंडिकुल और प्रतिहारों की अधीनता स्वीकार करली थी। मल्लपुरके अवशेष तेरहवीं शताब्दी के हो सकते हैं।

—∴※∴—

उत्तराखण्ड-तीर्थ-यात्रा-दर्शन

२१—संक्षिप्त विषयानुक्रमणिका

संशोधन और परिवर्धन नामक अंतिम परिच्छेद

४२—उत्तरकाशी के पंडे ३६७—

कालीमठके ४४६, गुप्तकाशी के ४३६, गौरीकुण्ड के ४४२, गौरी माई के मन्दिर के ४४३, त्रिगुणीनारायण के ४४०, त्रियुगी के पंडों की दौड़ धूप ४४०, तुङ्गनाथ के ४४८, मध्यमेश्वर क ४४४, तुङ्गनाथ के ४४८, तप्तकुण्ड के ४४३, गोपेश्वर के ४४६.

४३—सीम-सुखीमके पण्डे फिकवाल ३३८—

फिकवाल का अर्थ ३३८, भिक्षायाचन, ३३८, गङ्गाजल विक्रय ३३८, दैनिकचर्या ३३८, फिकवाल और पण्डों में अन्तर स० प० फिकवाल और गङ्गापुत्र, स० प० सीम सुखीन के रावल स० प० अध्ययन की आवश्यकता, ३३८।

४४—केदारनाथ के पण्डे ४०३—

उपरेती, पी और रतूड़ी के मत ४०३, राहुल का मत ४०४, इतिहास का महत्व ४०४, हिमालय में खस रक्तकी प्रचुरता ४०५, उत्तराखण्ड के धाम खसों के तीर्थ ४०५, खसों द्वारा नकली पूर्वजों की ढूँढ, ४०५, केदार के पंडों की दौड़धूप ३८४, आठ साधारण अठारा बीसी ४०५, केदार मन्दिर में दक्षिणा लेनेका अधिकार ४०५।

४५—गङ्गोत्तरी के पंडे ३६७—

वैवाहिक सम्बन्ध ३९७, रीति-नीतियां-३६७, गङ्गोत्तरी के प्राचीन अर्चक धराली के बुढ़ेरे किरात-३६७, पण्डों के पाँच थोक ३६८।

४६—बदरीनाथ के पंडे २२१, ३८१, ४५०—

बदरीनाथ के पण्डों का प्राचीन उल्लेख ३ १, देवप्रयागी पण्डा ३८१, दे० पण्डों का महत्व ३८२, जातियों की खिचड़ी

३६८, अज्ञात मूलस्थान वाली जातियों के पण्डे ३६८, दाक्षिणात्य जातियों के पण्डे ३६६, गढ़वाली ब्राह्मण जातियों के पण्डे ४००, ग्राम वर्ग के पण्डों की प्राचीनता ३६६, घर जँवाई प्रथा ४००, दाक्षिणात्यों की देन ४०१, वैवाहिक प्रतिबन्ध ४०१, घर जँवाई बनते ही पडा ४००, घर जवाई का ब्राह्मण होना आवश्यक ४००, वैभव और विलास पूर्ण जीवन ४०२, गुमास्ते २२१, सुफल देना २२२।

४७–डिमरी पण्डे २२१, ४०२—

उत्पत्ति—४०२, बदरीनाथ के मन्दिर में अधिकार ४०२, ४५१, डिमर गाव की प्राप्ति ४०२, ब्रह्म कपाली ४५०।

४८–यमुनोत्तरी के पंडे २२१, ३६६—

पहिले यात्रियों की कमी ३६६, प्राचीन पुजारियों की परम्परा ३६६, रतूड़ी का मत ३६६, पूजा के नियम ३६६, पण्डों की वंशावली स० प०, यमुनोत्तरी के प्राचीन पुजारी स० प० खसोली और करयाली स० प०।

४६–गुमास्ते २२१—

जीवनचर्या २२२, सद्व्यवहार २२२।

उत्तराखण्ड के मन्दिरों के रावल और अन्य कर्मचारी

५०–रावल की उपाधि ४१५—

पुजारी रावल और पुरोहित ४०६, तीर्थों की सुव्यवस्था के लिए सुझाव ३१, पण्डे, पुजारी और रावलोंका कर्तव्य ४३१, अनुचित व्यवहार रोका जाए ४३२, अल्पायुमें महन्त न मूँडे जायं ४३५, महन्त, रावलादि का उचित चुनाव हो ४३५।

५१–केदारनाथ के रावल ४१३—

मलाबार के जङ्गम ४१३, उत्तराधिकार के नियम ४१४,

नियम की सूची ४४६, रोश्वर का मन्दिर ४५०, बदरीनाथ मन्दिर ४५० ।

५४—कर्मचारी—

पण्डा ४५०, मन्दिर में डिमरियों के पृथक अधिकार ४५१, ब्रह्मकपाली ४५०, बड़वा ४५१, कर्मचारी ४५१, रसोइया ४५१, वटशाल ४५१, मेवाकार ४५१, अन्य कर्मचारी ४५२, भण्डारी ४५२, महता ४५२, घड़िया ४५२, दुरियालों के अधिकार ४५२ ।

५५—चढ़ावा—

'बदरीनाथ के १६ तीर्थ जहाँ चढ़ावा लिया जाता है ४५३, तप्तकुण्ड का चढ़ावा ४५३, सुफल भेंट पर पण्डों का आग्रह ४५३, डिमरी पण्डों को मिलने वाला चढ़ावा ४५३, जजमानों से भेंट ४५४, अन्य स्थानों के चढ़ावे का वितरण ४५४, निश्चित दर पर चढ़ावा ४५५ ।

५६—सीम-मुखीम के रावल—

मन्दिर की प्राचीनता स० प०, गोरखा ताम्रपत्र स० प०, टेहरी नरेशों के दानपत्र स० प०, रावलों की वंशावली स० प०, तीन थोकों में विभाजन स० प०, रावलों का चरित्र स० प०, सीम-मुखीम के तथा कथित पण्डा पिकवाल स० प०, मुखीम के लिये मोटर मार्ग स० प०, तीर्थ की आय में वृद्धि स० प०, वार्षिक मेले में आय स० प० ।

५७—उत्तरकाशी—

केदारखण्ड में सौम्य वाराणसी १२०, यमुनोत्तरीसे उत्तरकाशी २४५ ठ, उत्तरकाशी २४५ ड, केदारखण्ड ग्रन्थमें माहात्म्य २४५ ड, नाना फडनवीस का मकान २४५ ड, दर्शनीय स्थान २४५ ड, पंचकोशी परिक्रमा २४५ ढ, उत्तरकाशी से गंगोत्तरी

कैलास-मानसरोवर-धाम

६६–यात्रा ३३६—

८१—गङ्गा—

८२—गंगोत्तरी—

में १६, अनुशासन पर्व मे २१, आश्वमेधिक पर्व में २१, आश्रमवासिक पर्व में ११, महाप्रस्थानिक पर्व में २१।

में नन्दा पूजा ३१६, नन्दा पूजा में वनद पूजा ३१६, भाव .
प्रमाद ३१६।

१०१—नाग-तीर्थ सीम मुखीम की यात्रा ३२६—

नागभूमि ३२६ नागराजा तीर्थ ३३० सीम मुखीम स्थान वाले गाँव ३३०, मुखीम गाव ३३१, सीम शब्द का अर्थ ३३२, नागराजा की पना वीरपूजा, श्री उमरायसिंह का मत ३३२, नाग रातेले नागिना रौतेली ३३२ गगू रमोला ३३३, ३३४, ३३६, नाग और विष्णु ३३३ तादात्म्य ३३४, नागराजा भोट नरेश की पूजा ३३४, उत्तरकाशी म बुद्धमूर्ति ३३४, ३३५, देवभट्टारक नागराज ३३४, कछोरा पर भोट (तिब्बत का आक्रमण ३३४ कछोरा नरेश का रमोली भागना, ३३४ नागपूजा में धार्मिक शान्ति ३३४, गगू रमोले पर कृष्ण का कोप ३३४, गंगू द्वारा नाग मन्दिरा की स्थापना ३३६ जोशीमठ से कत्यूरी नरेशों का भागना ३३६, नरसिंहका कोप ३३६, सीम मुखीमके फिक्वाल ३३७, नागराज और बुद्ध ३३८, फिक्वालों का भिक्षायाचन ३३८, गङ्गाजल विक्रय ३३८, अध्ययन की आवश्यकता ३३८।

१०२—नाला-चट्टी ५१६—

तथाकथित बौद्ध स्तूप ५१६, शिलालेख ५१६।

१०३—नारायण कोटि २५५—

प्राचीन खडहर २५५, ५१६, निवेदिता का मत २५५, चैत्याकार जलाशय २५६, श्री विशालमणि उपाध्याय का प्रशंसनीय कार्य २५६, मन्दाकिनी उपत्यका के खंडहरों का महत्व २५६ मन्दाकिनी उपत्यका का वैभव २५८, चढ़ाई २५६, प्राचीन सस्कृति ५६७।

११०—बदरीनाथ तीर्थ—

१४१—ओकले ऐंड गैरोला-हिमालयन फोकलोर
१४२—एटकिनसन-हिमालयन डिस्ट्रिक्टस, भाग १, २, ३
१४३—स्लीमैन-रैम्बल्स ऐंड रिकलैक्शन्स, भाग १
१४४—के एम. मुंशी-टु बदरीनाथ
१४५—कनिंघम-आर्केलॉजिकल सर्वे रिपोर्टस, खण्ड १०
१४६—कांगड़ा-गजेटियर
१४७—थापर-२५०० इयर्स ऑव बुद्धिज्म
१४८—डा० पातीराम-गढ़वाल, एनशिएट ऐण्ड मौडर्न
१४९—डा० मोहनसिंह-गोरखनाथ मेडिएवल मिस्टिसिज्म
१५०—डा० गोपीनाथ कविराज-सरस्वती भवन स्टेडीज भाग ६
१५१—प्रणवानन्द-एक्सप्लोरेशन इन तिबेट
१५२—　" कैलास-मानसरोवर
१५३—रैप्सन-कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑव इण्डिया, भाग १
१५४—गाइल्स-दि ट्रैवल्स ऑव फाशीन
१५५—सेन-कल्चरल यूनिटी ऑव इण्डिया
१५६—कारनाक-रफ नाट्स आन सम एनशिएण्ट स्कल्पचरिंग ऑव रौक्स इन कुमाऊँ
१५७—कौर्पस-इन्सक्रिप्शनेरम् इंडिकारिम , भाग ३
१५८—एपिग्राफिका इंडिका, भाग १
१५९—डा० भाडारकर-वैष्णविज्म, शैविज्म ऐंड माइनर रिलिजस सिस्टम्स
१६०—ब्रिग्ज-गोरखनाथ ऐंड दि कनफटा योगीज
१६१—डा० जदुनाथ सरकार-फाल ऑव मुगल एम्पायर, भाग २
१६२—इंडियन ऐंटीक्वायरी, १९०७
१६३—स्टोवेल-ए मैन्युएल ऑव लैंड टेन्यूर्स इन कुर
१६४—रूलिंग्ज फौर कुमाऊँ लौ कोर्टस
१६५—वाल-टैवरनियर, भाग २,

लिखी गई सर्वोत्तम पुस्तक)
६—शालिग्राम वैष्णव-उत्तराखण्ड-रहस्य
०—शिवप्रसाद डबराल-महाराणा-संग्रामसिंह
१— " हुतात्मा-परिचय
२—सान्याल-महाप्रस्थान के पथ पर
३—हरिशरण रतूड़ी-गढ़वाल का इतिहास
४— " नरेन्द्र हिन्दू लो
५—ज्ञानेश्वर-ज्ञानेश्वरी
६—रमाशंकर त्रिपाठी-प्राचीन भारत का इतिहास
७—भारतीय विद्या, खण्ड १०
८—मा० हीरानन्द वात्स्यायन-अरे मायावर ! रहेगा याद !

अंगरेजी साहित्य—
२९—बराई ऐंड हेडन-ए स्केच आव दि ज्यौग्राफी ऐंड जिओलौजी आव दि हिमालय, भाग १, भाग २
३०—रोमला-हिमालयन सरकुन,
३१—हरजोग-अन्नपूर्णा
३२—शेरिंग-वेस्टर्न तिब्बट ऐंड ब्रिटिश बोर्डर लैंड
३३—हेम ऐंड गानसेर-दि थ्रोन आव दि गौड्स
३४— " सेंट्रल हिमालय, जियोलौजिकल औबजरवेशन्स ऑव स्विस एक्सपेडिशन
३५—स्वेन हेडिन-ट्रांस हिमालय भाग १, २, ३
३६— " सौदर्न तिब्बट भाग २
३७—पी-गढवाल सेटलमेंट रिपोर्ट
३८—वेबर-दि फौरेस्ट्स ऑव अपर इण्डिया
३९—स्ट्रैची-इण्डिया
४०—ओकले-होलि हिमालय

९३—दयाशंकर दुबे पुराणों मे गङ्गा
९४—दत्त और बाजपेयी—उत्तर प्रदेशमें बौद्ध धर्मका विकास
९५—परशुराम चतुर्वेदी-उत्तर भारत की सन्त परम्परा
९६— " वैष्णव धर्म
९७—पाहुड दोहा (करंजा जैन सीरीज)
९८—पोद्दार-हिमालय की गोद में
९९—बदरीदत्त पांडे-कुमाऊ का इतिहास
१००—बलदेव उपाध्याय-श्रीशंकराचार्य
१०१—बङ्किमचन्द्र-आनन्दमठ
१०२—वेंक्टाचारियर-विज्ञप्ति संख्या १४
१०३—भीमसेन विद्यालंकार-वीर मराठे
१०४—भगवत शरण उपाध्याय-गुप्त साम्राज्यका इतिहास,
१०५— " कालिदास का भारत, भाग १, २
१०६—महीधर शर्मा बड़थ्वाल-गढवाल मे कौन कहां ?
१०७—मोतीचन्द्र-सार्थवाह
१०८—यशपाल जैन-जय अमरनाथ
१०९—रामदास गौड़-हिन्दुत्व
११०—चन्द्रवली पाडेय-कालिदास
१११—राहुल सांकृत्यायन-एशिया के दुर्गम भूखण्डो में
११२— " कुमाऊँ
११३— " घुमक्कड़ स्वामी
११४— " पुरातत्व-निबंधावली
११५— " बौद्ध संस्कृति
११६— " बुद्धचर्या
११७— " मेरी जीवन यात्रा, भाग २
११८— " गढ़वाल (हिन्दी में गढ़वाल

लिखी गई सर्वोत्तम पुस्तक)
११६—शालिग्राम वैष्णव-उत्तराखण्ड-रहस्य
१२०—शिवप्रसाद डबराल-महाराणा-संग्रामसिंह
१२१— " हुतात्मा-परिचय
१२२—सान्याल-महाप्रस्थान के पथ पर
१२३—हरिशरण रतूड़ी-गढ़वाल का इतिहास
१२४— " नरेन्द्र हिन्दू लो
१२५—ज्ञानेश्वर-ज्ञानेश्वरी
१२६—रमाशंकर त्रिपाठी-प्राचीन भारत का इतिहास
१२७—भारतीय विद्या, खण्ड १०
१२८—सा० हीरानन्द वात्स्यायन-अरे यायावर ! रहेग

अंगरेजी साहित्य—

१२९—बरार्ड ऐंड हेटन-ए स्केच आव दि ज्यौग्राफ जिओलौजी आव दि हिमालय, भाग १, भाग
१३०—रोम्मिला-हिमालयन सरछुट,
१३१—हरजौग-अन्नपूर्णा
१३२—शेरिंग-वेस्टर्न तिब्बेट ऐंड ब्रिटिश बोर्डर लैंड
१३३—हेम ऐंड गानसेर-दि थ्रोन आव दि गॉड्स
१३४— " सेंट्रल हिमालय,जियोलौजिकल ऑब आँव रिजस एक्सपेडिशन
१३५—स्वेन हेडिन-ट्रांस हिमालय भाग १ २, ३
१३६— " सौदर्न तिब्बेट भाग २
१३७—पी-गढ़वाल सेटलमेंट रिपोर्ट
१३८—वेबर-दि फोरेस्ट्स आव अपर इण्डिया
१३९—स्ट्रैची इण्डिया
१४०—ओकले-होलि हिमालय

९३—दयाराकर दुबे पुराणों में गङ्गा
९४—दत्त और वाजपेयी—उत्तर प्रदेशमें बौद्ध धर्मका विकास
९५—परशुराम चतुर्वेदी-उत्तर भारत की सन्त परम्परा
९६— " वैष्णव धर्म
९७—पाहुड़ दोहा (करजा जैन सीरीज)
९८—पोद्दार-हिमालय की गोद में
९९—बदरीदत्त पाडे-कुमाउ का इतिहास
१००—बलदेव उपाध्याय-श्रीशंकराचार्य
१०१—बङ्किमचन्द्र-आनन्दमठ
१०२—वेङ्कटाचारियर-विज्ञप्ति सख्या १४
१०३—भीमसेन विद्यालंकार-वीर मराठे
१०४—भगवत शरण उपाध्याय-गुप्त साम्राज्यका इतिहास, भाग २
१०५— " कालिदास का भारत, भाग १, २
१०६—महीधर शर्मा बड़थ्वाल-गढवाल में कौन कहा ?
१०७—मोतीचन्द्र-सार्थवाह
१०८—यशपाल जैन-जय अमरनाथ
१०९—रामदास गौड़-हिन्दुत्व
११०—चन्द्रवली पाडेय-कालिदास
१११—राहुल सांकृत्यायन-एशिया के दुर्गम भूखण्डों में
११२— " कुमाऊँ
११३— " घुमक्कड़ स्वामी
११४— " पुरातत्त्व-निबंधावली
११५— " बौद्ध संस्कृति
११६— " बुद्धचर्या
११७— " मेरी जीवन यात्रा, भाग २
११८— " गढ़वाल (हिन्दी में गढ़वाल पर प्रब।

७१—विशाखदत्त-मुद्राराक्षस

पाली साहित्य—

७२—महासुपिन जातक
७३—मङ्गलजातक
७४—सोमनस्स जातक
७५—निदान कथा (अ० कौशल्यायन)
७६—विनय-पिटक (अ० राहुल)

हिन्दी साहित्य—

७७—अलतेकर-गुप्तकालीन मुद्राएं
७८—इत्सिंग की भारत यात्रा
७९—उमरावसिंह रावत-उत्तरापथ की एक झांकी
(उत्तराखण्डकी यात्रा का सर्वोत्तम भावपूर्ण वर्णन
८०—ओकले तथा गैरोला-हिमालय की लोक कथाएं
८१—गोस्वामी तुलसीदास-विनयपत्रिका
८२—गौरीशंकर हीराचन्द ओझा-राजपूतानेका इतिहास,
८३—जवाहरलाल नेहरू-विश्व इतिहास की झलक
८४—डा० वासुदेवशरण अग्रवाल-पाणिनि-कालीन भारत
८५— ” हर्ष चरित का सांस्कृतिक अ
८६— ” कादम्बरी का सांस्कृतिक अ
८७— ” भारतकी मौलिक एकता
८८— ” मेघदूत
८९—डा० कल्याणी मल्लिक-नाथ सम्प्रदायेर इतिहास, दर्शन ओ
साधन-प्रणाली (बंगला)
९०—डा० यदुवंशी-शैवमत
९१—डा० हजारीप्रसाद-नाथ सम्प्रदाय
९२—डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल-गोरख-बानी

४७—मित्रमिश्र वीरमित्रोदय, तीर्थ प्रकाश
४८—श्रीधर-स्मृत्यर्थसार

तन्त्र साहित्य—

४६—कुलार्णव तन्त्र
५०—शारदा तिलक
५१—समयाचार तन्त्र
५२—कुब्जिका तन्त्र
५३—महानील तन्त्र
५४—यामकेश्वर तन्त्र
५५—प्राणतोषिणी तन्त्र

संस्कृत साहित्य—

५६—कल्हण-राजतरंगिणी
५७—कालिदास-कुमार-संभव
५८— " मेघदूत
५६—कौटिल्य अर्थशास्त्र
६०—गोरक्ष सिद्धान्त-संग्रह
६१—दलपति नृसिंह प्रसाद
६२—नीलमत पुराण
६३—आनन्दगिरि-बराह बृहत्संहि
६४—माधव बृहद् शङ्कर दिग्विज
६५—रघुनन्दन-उद्वाह तत्व
६६—बाणभट्ट-कादम्बरी
६७— " हर्ष चरित
६८—सिद्ध सिद्धान्त संग्रह
६६—हठयोग प्रदीपिका
७०—प्रबन्ध-चिन्तामणि

२३—स्कन्द पुराण
२४—ब्रह्मांड पुराण
२५—वामन पुराण
२६—बृहद् धर्म पुराण
२७—वायु पुराण
२८—कूर्म पुराण
२९—हरिवंश पुराण
३०—त्रिपाठी-वायुपुराण हिन्दी अनुवाद
३१—कल्याण-संक्षिप्त नारद-विष्णु पुराणांक
३२—कल्याण-संक्षिप्त स्कन्द पुराणांक
३३—केदार कल्प
३४—केदारखण्ड (बम्बई, मूल संस्कृत)
३५—मानसखण्ड
३६—महाभारत—(गीता प्रेस संस्करण)
३७—रामायण—(बड़ाक्षर तथा छ० भा० संस्करण)

धर्मशास्त्र—

३८—मनुस्मृति
३९—वशिष्ठ स्मृति
४०—बौधायन स्मृति
४१—बृहत्पाराशरीय धर्मशास्त्र
४२—संवर्त स्मृति
४३—व्यास स्मृति
४४—शंख स्मृति
४५—स्मृति-सार-समुच्चय
४६—धर्मशास्त्र-संग्रह

१४२—सहायक साहित्य

वैदिक साहित्य—

१—ऋग्वेद ८, १०,
२—अथर्व वेद ११, १६,
३—यजुर्वेद, वाजसनेयि संहिता
४—शतपथ ब्राह्मण
५—केनोपनिषद्
६—बृहद्दारण्यकोपनिषद्
७—तैत्तिरीय आरण्यक
८—कल्याण, उपनिषदांक

पौराणिक साहित्य—

९—ब्रह्म पुराण
१०—पद्म पुराण
११—विष्णु पुराण
१२—मत्स्य पुराण
१३—श्रीमद् भागवत पुराण
१४—देवी भागवत पुराण
१५—देवी पुराण
१६—बृहद् नारदीय पुराण
१७—मारकंडेय पुराण
१८—अग्नि पुराण
१९—ब्रह्मवैवर्त पुराण
२०—लिंग पुराण
२१—वराह पुराण
२२—भविष्य पुराण

१६६—एशियाटिक रिसर्चेज, खण्ड ११,
१६७—पिलग्रिम्स-वाडरिंग्ज इन दि हिमालयाज
१६८—आदम्स-रिपोर्ट आन दि पिलग्रिम रूट
१६९—फ्रेजर-जौरनल आव ए टूर इन गढवाल हिमालय
१७०—टूरिस्ट गाइड टेहरी डिस्ट्रिक्ट
१७१—सिस्टर निवेदिता-फुटफाल्स आव इंडियन हिस्ट्री
१७२—जिम कोरबेट-मैन ईटिंग ल्योपोर्ड आव रुद्रप्रयाग
१७३—चार्म स्पौट्स आव उत्तरप्रदेश, गढवाल
१७४—फूरर-मौन्यूमेंटल ऐंटिक्विटीज ऑव नौर्थ वेस्टर्न प्रौविन्सेज भाग २
१७५—भट्टाचार्य दि कलिवर्ज्य
१७६—डा० मोतीचन्द्र-सम आसपेक्ट्स ऑव यक्श कल्ट
१७७—क्रुक दि ट्राइब्ज ऐंड कास्ट्स आव नौर्थ वेस्टर्न प्रौविन्सेज, भाग १, २
१७८—शेरिंग हिन्दू ट्राइ ज ऐंड कास्ट्स ऐज रिप्रेजेंटेड इन बनारस, भाग, १
१७९—ईलियट ऐंड डौसन-चचनामा, (हिस्ट्री आव इंडिया, भाग १)
१८०—पन्नालाल-कस्टमरी लौ इन कुमाऊँ
१८१—श्री बदरीनाथ टेम्पिल एक्ट १९४१
१८२—घोप-अर्लि हिस्ट्री आव इंडिया
१८३—यंग हजबेंड-काश्मीर
१८४—मजूमदार ऐंड पुसालकर-दि एज आव इम्पीरियल कन्नौज
१८५—राजेश्वरी प्रसाद-सेंसस हैंड बुक, गढ़वाल
१८६— „ „ „ टेहरी
१८७—दयाल, मुकर्जी ऐंड पौवेल प्राइस डिस्क्रिप्टिव लिस्ट आव कोइन्स ऐंड इन्सक्रिप्सन्स
१८८—मालवीय कम्मेमोरेशन वौल्यूम

१८६—पैन्यूली-दि वेली आव गौड्स
१९०—टर्नर-सेंसस आव इण्डिया १३१
१९१—मजूमदार ऐंड आल्टेकर-वाकाटक-गुप्त-एज
१९२—वैकेट-गढवाल सेटलमेंट रिपोर्ट, १८६३,
१९३—घूशमैन-ईरान
१९४—ह्वंट ब्रुस द्वारा-कलचर ऐंड कलतर रेस-ओरिजिन्स
१९५—रैप्सन-कैम्ब्रिज हिस्ट्री आव इण्डिया, भाग १

४१—पत्र-पत्रिकाओं में लेख—

१९६—निकोलस रोरिक-त्रिपथगा, हिमालय-अङ्क (१९५८) में लेख
१९७—कल्याण-तीर्थांक,
१९८—यमुनादत्त वैष्णव, त्रिपथगा (दिसम्बर ५६) में लेख
१९९—माधव उपाध्याय, त्रिपथगा (दिसम्बर ५८) में लेख
२००—सम्पूर्णानन्द-त्रिपथगा (नवम्बर ५८) में लेख
२०१—प्रणवानन्द-नवभारत टाइम्स (६ फरवरी ५९) में लेख
२०२—नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भाग ३,
२०३—जारनल आव ऐशियाटिक सोसायटी, बंगाल, खंड १ (१८८३), १८८८,
२०४—रूपम-जनवरी, १९२४
२०५—शिवप्रसाद डबराल-कर्मभूमिमें लेख (१) शिमलीके प्राचीन और विचित्र-मन्दिर कर्मभूमि ३० अप्रेल ५७
(२)आदि बदरी के प्राचीन मन्दिर-कर्मभूमि ११ दिसम्बर
(३)तपोवन के पास प्राचीन ऐतिहासिक सामग्री कर्मभूमि १ जनवरी ५७
(४)कलाकारों का केन्द्र श्रीनगर-कर्मभूमि २७ नवम्बर सन् ५६
२०६—सत्यपथ में लेख (१) गढ़वाल भाबर की प्राचीन विनष्ट संस्कृति-सत्यपथ जुलाई सन ५८

❀ समाप्त ❀

श्री शिवप्रसाद डबराल की नवीन रचनाएं:-

१-उत्तराखण्ड के भोटांतिक—

अति संकीर्ण अजपथों पर चलकर हिमालय के १७००० फीट ऊंचे घाटों को पार करके तिब्बत से व्यापार करने वाले टेहरी, गढवाल और अलमोड़ाके जाड, तोलछा, मारछा जोहारी और दरमिया भोटांतिकों के असीम साहस की गौरव-गाथा। भोटांतिकों के इतिहास, सामाजिक, धार्मिक और आर्थिक परिस्थिति और समस्याओं के सम्बन्ध में एक मात्र ग्रथ।

२-उत्तराखण्ड और उसके निवासी—

उत्तराखण्ड के विस्तृत भूगोल, इतिहास, तथा निवासियों के जोवन और समस्याओं पर खोजपूर्ण ग्रन्थ।

३-तिब्बत और उसके निवासी—

तिबत्त के भूगोल, प्राचीन इतिहास, भारत तिब्बत के प्राचोन सम्बन्ध, तिब्बत की पशुचारक जातिया, भारत तिब्बत व्यापार तथा चीनके अधिकार से उत्पन्न समस्याओं आदि के सम्बन्ध में हिन्दी म एक मात्र ग्रन्थ।

४-चम्बा-कांगडा के गद्दी—

चम्बा कागडा में पशु चरने वाली विचित्र गद्दी जाति के मनोरजक जीवन का अध्ययन।

"उत्तराखंड–तीर्थयात्रा–दर्शन" के सम्बन्ध में विद्वानों की सम्मतियां

सभ्यता के उषाकाल से लेकर आज तक उत्तराखण्ड की तीर्थयात्रा भारतीय जीवन का प्रमुख अङ्ग रही है। प्राचीनकाल मे ब्रह्मचारी, वानप्रस्थी और सन्यासी उत्तराखण्ड की तीर्थयात्रा करना अपना परम कर्तव्य समझते थे और आज भी प्रति वर्ष एक लाख से अधिक व्यक्ति उत्तराखण्ड की तीर्थयात्रा करते हैं। फिर भी उत्तराखण्ड के तीर्थों के इतिहास, पूजा-पद्धति, पंडे और रावल, मन्दिर और मूर्तियां आदि के सम्बन्ध में कोई खोजपूर्ण विस्तृत वर्णन वाला ग्रन्थ हिन्दी या अन्य किसी भाषा में न था। लेखक ने उत्तराखण्ड-यात्रा-दर्शन नामक सात सौ पृष्ठों का अत्यन्त खोजपूर्ण एव प्रमाणिक ग्रन्थ लिखकर इस अभाव की पूर्ति की है। लेखक की विद्वत्ता, गहन अध्ययन और परिश्रम से यह ग्रन्थ केवल उत्तराखण्ड की तीर्थयात्रा के लिए ही नहीं, वरन् उत्तराखण्ड के इतिहास, हिन्दुधर्म के इतिहास, पुरातत्व और समाजशास्त्र के विद्यार्थी के लिए भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है। उत्तराखण्ड और कैलास-मानसरोवर के अद्भुत प्राकृतिक दृश्यों के वर्णन से पुस्तक पर्यटकों के लिए भी उतनी ही उपयोगी है।

(डा०) गोविन्दराम शर्मा शास्त्री, एम ए. (हिन्दी), एम ए (संस्कृत), एम ओ. एल, पी. एच डी, अध्यक्ष हिन्दी विभाग निर्मला डिग्री कालेज दिल्ली।

❀ समाप्त ❀

संशोधन-परिवर्द्धन (२)

१—इस पुस्तक में पृष्ठ ४२३ से लेकर पृष्ठ ४२७ तक
रम मित्र श्री वासुदेव नम्बूरी रिटायर्ड रावल महोदय
उनकी धर्म पत्नीजी के सम्बन्ध में श्री स्वामी वेंकटा-
ध्वर जी की विज्ञप्ति संख्या १४ से कुछ अंश छपे हैं।
पुस्तक प्रेस में थी, मैंने श्री रावल महोदय से इस
न्ध में पूछताछ भी की। किन्तु उत्तर न मिला। मैंने
ोधन परिवर्द्धन में पृष्ठ ४२६ की तीन पंक्तियां अनुचित
मझ कर हटा दीं। डेढ मास के पश्चात् श्री रावल महोदय
पत्र मिला जिससे पता लगा कि श्री स्वामी जी की विज्ञप्ति
ौर आन्दोलन व्यक्तिगत वैमनस्य पर निर्भर थे। श्री रावल
महोदय की धर्मपत्नी जी भट्ट ब्राह्मण जाति की हैं और उनकी
पुत्रियों के विवाह जोशी तथा काला ब्राह्मण परिवारों में हुए
हैं। ये तीनों जातियां गढवाल में उच्च कोटि के ब्राह्मणों में
गिनी जाती हैं। मुझे बड़ा खेद है कि सूचना देर से मिलने
के कारण पुस्तक स पहले ही अनुचित अंश न हटाया जा
सका।

"आशा है कि मेरे परम मित्र श्री रावलजी मुझे इसके
लिये क्षमा करेंगे। सम्भव है कि ४२६-२७ पृष्ठ पर छपा हुआ
श्री रावलजी का तथा कथित प्रतिज्ञापत्र भी काल्पनिक हो।